KABEER SAHITYA EVAM BIBLE MEM SAMAJSUDHAR EVAM LOKMANGAL KI BHAVANA

[THE CONCEPT OF SOCIAL REFORMS AND UNIVERSAL WELFARE IN THE WORKS OF KABEER AND THE BIBLE]

Thesis submitted to

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

रोस आन्टो

ROSE ANTO

Prof. & Head of the Dept.

Dr. A ARAVINDHAKSHAN

Supervising Teacher

Dr. L. SUNEETHA BAI

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi – 682022

2003

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis entitled *"KABEER SAHITYA EVAM BIBLE MEM SAMAJSUDHAR EVAM LOKMANGAL KI BHAWANA"* is a bonafide record of work carried out by ROSE ANTO under my supervision for Ph.D. and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any university.

Department of Hindi

Cochin University of Science and Technology,

Kochi -682022

Dr. L. Suneetha Bai

Supervising Teacher

DECLARATION

I here by declare that, the thesis entitled "KABEER SAHITHYA EVAM BIBLE MEM SAMAJSUDHAR EVAM LOKMANGAL KI BHAWANA" has not previously formed the basis of the award of any degree, diploma, associateship, fellowship or other similar title or recognition.

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi –682022

ROSE ANTO
Research Scholar

प्राक्कथन

काव्य के प्रमुख तत्व सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् में शिवम् मंगल का प्रतीक है। जो 'सत्य' है वही ' शिवम्' हो सकता है और वही वास्तव में 'सुन्दर' है । आचार्य मम्मट ने काव्य प्रयोजनों का जिक्र करते हुए काव्य को 'शिवेतर' कहकर इसी मंगल की ओर संकेत किया है । निस्सन्देह सच्चा काव्य वही है जिसमें अशिव या अमंगल को मिटाकर शिव या मंगल की स्थापना की जाती है । मंगल की भावना या स्थापना काव्य में शाश्वत मानव मूल्यों की अभिव्यक्ति से ही होती है । ये हैं परोपकार, सत्य, अहिंसा, अस्तेय, दया, क्षमा, करुणा आदि । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में इन तत्वों की अभिव्यक्ति समान रूप से वर्णित मिलती है । दोनों कृतियाँ लोकमंगल की भावना से भरी हुई हैं । स्व का त्याग एवं पर का प्रोत्साहन ही लोकमंगल का मूल रहा है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में स्थान स्थान पर इसका वर्णन मिलता है । मानव मानव के बीच ममत्व एवं साहोदर्य ही इन ग्रन्थों का मूल लक्ष्य है ।

धार्मिक एवं प्रगतिशील विचार असंगत या परस्पर विरोधी नहीं । वे एक ही सनातन धर्म के विविध रूप हैं जो विभिन्न देशों में समय समय पर अभिव्यक्त हैं । सारे धर्मों से श्रद्धाभाव रखने एवं अपनी क्षमता के अनुसार उसे मान लेने का पाठ ये हमें सिखाते हैं । युगों से पहले उद्घोषित ज्ञान एवं बुद्धि का यही संदेश धर्म या भक्ति में निहित मूल्यों की सहायता से वर्तमान पीढी को एक दूसरे के निकट लाने में सहायक सिद्ध हो सकता है । सहिष्णुता वैयक्तिक, सामाजिक एवं देशीय स्तर पर शांति फैलाने में सहायक बनती है । सत्य एक है लेकिन इसको विविध नामों में पुकारते हैं और इसके विविध रूप भी हैं । कबीर यह अच्छी तरह जानते थे । कबीर-साहित्य में सहिष्णुता का मुख्य स्थान है । बाइबिल के संबन्धों में भी

यही बात सही है । मानव महत्व या मानव मूल्यों के संबन्ध में सारे नबीगण एवं संत लोक एकमत हैं । मानव मूल्य संबन्धी समान भाव कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में देखे जा सकते हैं । आपसी व्यवहार जीवन का मुख्य भाव या शैली है । सभी धर्म इस संबन्ध में बताते हैं । सच्चे मानव व्यवहार पर थेडा सा ध्यान दिया जाय तो यह वैयक्तिक एवं सामाजिक प्रगति में अत्यधिक सहायक बन सकता है । आचरण की महत्ता को समझकर सच्चे आचरण का उपदेश कबीर-साहित्य एवं बाइबिल पाठकों को देते है ।

कई सालों से मैं बाइबिल का अध्ययन करती आयी हूँ और हिन्दी साहित्य के अध्येता के रूप में कबीर-साहित्य के प्रति भी मेरी विशेष रूचि है । मैंने एम.फिल में अपने लघु प्रबन्ध का विषय ''कबीर की सूक्तियाँ-एक अध्ययन'' रखा था । समाज-हित को लक्ष्य करके लिखे गये इन ग्रन्थों का विशेष अध्ययन मेरी चिरकालीन इच्छा रहा है । सांस्कृतिक, भाषापरक, देशकाल की भिन्नताओं के रहते हुए भी इन दोनों ग्रन्थों में सामाजिक परिस्थितियों एवं जीवन की समस्याओं के चित्रण में बहुत समानता देखी जा सकती है । इस बात को व्यक्त करने का प्रयास प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में हुआ है ।

कबीरदास के साहित्यिक जीवन पर अभी तक कोई शोधपरक एवं आलोचनात्मक ग्रन्थ निकल चुके है । इसी दिशा में उपलब्ध ग्रन्थों में कुछ है-श्यामसुन्दर दास की 'कबीर-ग्रन्थावली' रवीन्द्रनाथ ठाकुर का 'वन हंड्रड पोयम्स ऑफ कबीर' डॉ.हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का 'कबीर', डॉ.रामकुमार वर्मा का 'संत कबीर' 'कबीर का रहस्यवाद' डॉ.पारसनाथ तिवारी की 'कबीर-ग्रन्थावली' डॉ.पीतांबर दत्त बडथ्वाल का 'हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय' आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का 'उत्तरी भारत की संत परंपरा' डॉ.विलियम द्वायर की 'कबीर की भक्ति भावना' डॉ.गोविन्द त्रिगुणायत की

'कबीर की विचारधारा' डॉ.प्रह्लाद मौर्य की 'कबीर का सामाजिक दर्शन',डॉ.पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव की 'कबीर-साहित्य का अध्ययन' आदि ।

बाइबिल को लेकर भी अनेक ग्रन्थ रचे गये हैं । इन ग्रन्थों के अन्तर्गत 'द ऐडेन्टिटी ऑफ जीसस इन सेंट मारक' 'ट्रिनिटेरियन फोरमुला इन सेंट पोल' 'द डेस ऑफ मान आन्ट गोड्स डे-इन द बुक ऑफ रेवलेषन', 'जीसस-प्रेयर ऑफ प्रेय्स' आदि आते है । इसके अलावा बाइबिल के इतिहास ग्रन्थ, नबियों के लेख, प्रज्ञा साहित्य आदि को लेकर शोधार्थियों ने गहरा अध्ययन प्रस्तुत किया है । लेकिन कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में चित्रित समाज सुधार एवं लोकमंगल का विशेष अध्ययन पहली बार हो रहा है । हिन्दी में बाइबिल के कई अनुवाद प्रस्तुत किये गये हैं, इन में बाइबिल सोसाइटी ऑफ इन्डया के 'हिन्दी बाइबिल' और वाल्द और कामिल बुल्के के 'पवित्र बाइबिल' को ही आधार बनाकर प्रस्तुत अध्ययन मैंने किया है ।

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल का लक्ष्य सत्य का उद्घाटन एवं जनता का कल्याण ही था । इन ग्रन्थों ने लोगों के सामने सत्य का मार्ग खोल दिया । प्रेम, दया, क्षमा, अहिंसा, अस्तेय, मधुरभाषण, परोपकार आदि सद्भाव अपनाने से किस प्रकार मानव से एवं समाज से घृणा, द्वेष, शत्रुता, स्वार्थ चिन्तन आदि दूर हो सकते हैं, इसका कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में वर्णन हुआ है। दुर्गुणों को दूर करने के उपदेश भी इनमें स्थान स्थान पर मिलते है । मानव मानव के बीच की दूरी को हटाकर सबको एक बनाने का प्रयत्न इन ग्रन्थों में हुआ है । मनुष्य की समानता को महत्व देनेवाले समाज का निर्माण ही इनका लक्ष्य था । सद्भावना एवं सदाचार की श्रेष्ठता घोषित करके व्यक्ति व्यक्ति को मानवता का पाठ पढाना ये चाहते थे । संघर्ष रहित आपसी प्रेमयुक्त समाज के द्वारा ही मानव मात्र की भलाई

संभव है । वैयक्तिक एवं सामाजिक प्रगति केलिए जिन जिन बातों पर ध्यान देना आवश्यक है इनका चित्रण इन दोनों ग्रन्थों में अंतर्निहित है । स्वानुभूत सत्य का उद्‌घाटन कर पथभ्रष्ट समाज के मार्ग दर्शन करने में दोनों ग्रन्थ कुछ हद तक सफल रहे है । समाज की भलाई को लक्ष्य करके इन दोनों ग्रन्थों ने जो सन्देश दिया, वर्तमान युग के संदर्भ में उसका महत्व अमूल्य ही है । आज के युग के संन्दर्भ में दोनों ग्रन्थ बहुत प्रासंगिक एवं सार्थक रहे है । वैयक्तिक एवं सामाजिक उन्नति को लक्ष्य करके कही हुई इन की वाणी को आज भी लोग अपने मार्गदर्शी के रूप में स्वीकार करते है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त है । पहला अध्याय, कबीर-साहित्य एवं बाइबिल का परिचयात्मक अध्यायन है । इस में महात्मा कबीर का संक्षिप्त जीवन वृत्त, कबीर का ज्ञान, सत्संग का प्रभाव, कबीर का व्यक्तित्व,कबीर-साहित्य एवं भारतीय संस्कृति, कबीर की रचनाओं के प्रमुख संग्रह आदि का परिचय है । बाइबिल के परिचयात्मक अध्ययन के अंतर्गत बाइबिल शब्द की व्युत्पत्ति, बाइबिल का विभाजन, बाइबिल के विषय, बाइबिल की पुस्तकों का परिचय आदि आते हैं ।

दूसरा अध्याय, कबीर-साहित्य एवं बाइबिल की सामाजिक पृष्ठभूमि है । इसमें तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक अस्वस्थता का सामान्य परिचय दिया गया है ।

तीसरा अध्याय, कबीर साहित्य एवं बाइबिल में प्रतिबिंबित सुधारात्मक दृष्टि का अध्ययन विश्लेषण है । इसके अन्तर्गत कबीर एवं बाइबिलकालीन सामाजिक दुरवस्था, कबीरदास और समाज सुधार, बाइबिल में प्रतिबिंबित सुधारात्मक दृष्टि,

कबीर एवं बाइबिलकालीन समाज-वर्णाश्रम धर्म एवं सुधारात्मक विचार, जाति व्यवस्था-वर्गयुक्त समाज से वर्गमुक्त समाज की कल्पना, हिन्दू-मुस्लिम-विरोध एवं उनके बीच एकता की स्थापना के प्रयत्न, धार्मिक अव्यवस्था एवं सुधारात्मक प्रयत्न-कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में, पारिवारिक संबन्धों में सुधार, माता-पिता-पुत्र संबन्ध, गुरु-शिष्य संबन्ध एवं व्यक्ति सुधार, नारी सुधार आदि का विश्लेषण किया गया है ।

चौथे अध्याय में भी कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में प्रतिबिंबित सुधारात्मक दृष्टि का परिचय ही है । इसमें कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में प्रतिबिंबित बाह्याचार का खण्डन एवं समाज सुधार, सिरमुंडन, तिलक-माला-एकादशी, तीर्थाटन, वेशभूषा, बाह्यशुद्धि, मुसलमानी रीतियों का खण्डन, श्राद्ध-तर्पण, अन्धविश्वास, क्रियाकाण्ड एवं रूढियों का खण्डन, पुस्तकीय ज्ञान का खण्डन, करनी बिना कथनी पर परिहास, मूर्तिपूजा, पंडितों की पवित्रता का ढोंग, ढोंगी पाखंडी संतों का खण्डन, इन्द्रियों की निन्दा एवं वासना पर नियंत्रण, कुसंग की निन्दा एवं सत्संग का महत्व आदि पर विचार किया गया है ।

पाँचवाँ अध्याय कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में लोकमंगल के विधायक तत्वों के बारे में है । यहाँ लोकमंगल एवं जीवन मूल्य, भक्ति एवं लोकमंगल, कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में लोकमंगल की भावना, सदाचार और लोकमंगल, कबीर-साहित्य एवं बाइबिल बहुजन हिताय, स्वानुभव एवं लोकमंगल के तत्व, साहित्य का उद्देश्य लोकमंगल आदि का अध्ययन किया गया है । साथ ही सत्य, अहिंसा, अस्तेय, परोपकार, समभाव, कर्मण्यता, दया, प्रेम आदि लोकमंगल के विधायक तत्वों पर भी विचार किया गया है ।

छठे अध्याय में भी कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में लोकमंगल के विधायक तत्वों पर विचार किया गया है । इसके अन्तर्गत विश्वास, सारग्रहण और सहिष्णुता, कथनी और करनी का सामंजस्य, निष्काम कर्म, अपरिग्रह, गुरु का महत्व, ब्रह्मचर्य, आत्म नियंत्रण, आत्म शुद्धि, विनय शीलता, समर्पण भाव, मधुर भाषण, कर्म का फल, निन्दा या क्रोध का अभाव, क्षमा भाव, सत्संग से लोक कल्याण आदि का विश्लेषण किया गया है ।

सातवें अध्याय में कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में समाज सुधार एवं लोकमंगल की भावना का मूल्यांकन किया गया है । इसमें सामाजिकता की जागृत चेतना, सामाजिक जीवन में भाई चारे का सन्देश, समन्वयात्मकता, अनाचारों एवं अत्याचारों के विरुद्ध लडाई, मध्यम मार्गीय समाज की प्रमुखता, एक मानव समाज की कल्पना, आध्यात्मिक दृष्टि एवं समाज सुधार, सत्य से असत्य का विरोध, समाज सुधार का लक्ष्य-शांति मंत्र, भक्ति में आनन्द और रक्षा, सौन्दर्य का प्रयत्न पक्ष, शुभ-अशुभ आचरण, ईश्वर साक्षात्कार एवं लोकमंगल, अंतरजामिः ते बड बाहिरजामि, पूर्ण धर्म का स्वरूप, कर्म साधना ही धर्म साधना है, भक्ति से अन्तःकरण शुद्ध होता है आदि पर विचार किया गया है ।

उपसंहार में वर्तमान युग में कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में कही वाणी की प्रासंगिकता एवं उसके वैशिष्ट्य की स्थापना की गयी है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का कार्य कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की आदरणीय प्रोफेसर डॉ.एल.सुनीता बाई जी के विद्वत्तापूर्ण निर्देशन में संपन्न हुआ है । इस प्रयत्न के दौरान उनसे प्राप्त प्रेरणा, स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन, सहज वात्सल्यपूर्ण व्यवहार, उदार दृष्टिकोण, बहुमूल्य सुझाव एवं आशीर्वाद केलिए मैं हार्दिक कृतज्ञता

कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ ।

हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ.ए.अरविन्दाक्षन एवं विषय विशेषज्ञ डॉ.एन.जी.देवकी के प्रति मैं आभार प्रकट करती हूँ जिनसे समय समय पर शोध कार्य केलिए मुझे प्रोत्साहन एवं सहयोग काफी मिले हैं ।

इस विभाग के अन्य गुरुजनों के प्रति भी मैं कृतज्ञता प्रकट करती हूँ जिनसे मुझे इस शोध-प्रबन्ध के लेखन कार्य में सहायता एवं प्रोत्साहन मिले हैं ।

विभाग के पुस्तकालय अधिकारियों को भी मैं धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने समय समय पर पुस्तकें प्रदान करते हुए मेरा बडा उपकार किया ।

अन्त में मेरे प्रिय मित्रों और अन्य शुभ-चिन्तकों के प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में इस शोधकार्य में मेरी सहायता की है ।

हिन्दी विभाग, **रोस आन्टो**

कोचिन विज्ञान व प्राद्योगिकी विश्वविद्यालय,

कोचिन, पिन ६८२०२२

तारीखः ३१.१०.२००३

विषय-सूची

	पृष्ठ संख्या
प्राक्कथन	i-vii
पहला अध्याय	१-७९

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल--परिचयात्मक अध्ययन

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल--महात्मा कबीर का संक्षिप्त जीवन वृत्त--जन्म स्थान—कबीर की जाति--पारिवारिक जीवन—कबीर का ज्ञान—सत्संग का प्रभाव--कबीर का व्यक्तित्व-अखण्ड मानवता एवं कबीर--महात्मा कबीर—कबीर-साहित्य-प्रेरणा तथा प्रभाव—कबीर साहित्य एवं भारतीय संस्कृति—कबीर एवं सूफीमत--कबीर की रचनाएँ--कबीर की रचनाओं के प्रमुख संग्रह--रमैनी--साखी—लौकिक भाव प्रधान--संत मत का स्वरूप बताने वाली साखियाँ—पाखण्डों का विरोध करनेवाली साखियाँ-व्यवहार प्रधान साखियाँ--पारलौकिक भाव प्रधान भक्ति भाव प्रधान--दर्शन प्रधान--रहस्यात्मक--कथनी प्रधान--सबद (पद) धार्मिक पाखण्डों का खण्डन करने वाले पद--उपदेशात्मक पद—बाइबिल का परिचयात्मक अध्ययन--बाइबिल शब्द व्युत्पत्ति—बाइबिल का विभाजन—बाइबिल के विषय—बाइबिल की पुस्तकों का संक्षिप्त परिचय—पुराना विधान की पुस्तकें—नया विधान की रचनाओं का परिचय--बाइबिल की विवध पुस्तकें—ऐतिहासिक पुस्तकें—सामाजिक पुस्तकें--धार्मिक पुस्तकें-दार्शनिक पुस्तकें-नैतिक पुस्तकें—निष्कर्ष ।

दूसरा अध्याय	८०-१२४

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल की सामाजिक पृष्ठभूमि

बुरी राजनीति—सामाजिक वातावरण—धर्म का ह्रास--अर्थ की प्रमुखता—मोक्ष की असंभाव्यता-बाइबिलकालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ--सामाजिक वातावरण—आर्थिक स्थिति--धर्म का ह्रास--मोक्ष की असंभाव्यता--निष्कर्ष ।

तीसरा अध्याय १२५.२०८

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में प्रतिबिंबित सुधारात्मक दृष्टि-१

कबीरकालीन सामाजिक-दुरवस्था—बाइबिलकालीन सामाजिक-दुरवस्था—कबीरदास और समाज-सुधार—बाइबिल में प्रतिबिंबित सुधारात्मक दृष्टि—कबीरकालीन भारतीय समाज वर्णाश्रम-धर्म एवं सुधारात्मंक विचार—बाइबिलकालीन समाज-वर्गविवेचन एवं सुधारात्मक विचार—जाति-व्यवस्था-वर्गयुक्त समाज से वर्गमुक्त समाज की कल्पना—जाति-व्यवस्था एवं बाइबिल—हिन्दू-मुस्लिम विरोध एवं उनके बीच एकता की स्थापना के प्रयत्न—धार्मिक अव्यवस्था एवं सुधारात्मक प्रयत्न-कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में—पारिवारिक संबन्धों में सुधार—माता-पिता-पुत्र संबन्ध—गुरु-शिष्य-संबन्ध एवं व्यक्ति-सुधार—नारी सुधार-आन्तरिक सुधार-व्यक्ति सुधार ।

चौथा अध्याय २०९-२७१

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में प्रतिबिंबित सुधारात्मक दृष्टि -२

बाह्याचार का खंण्डन एवं समाज सुधार—सिरमुंडन--तिलक, माला,एकादशी--तीर्थाटन-वेशभूषा—बाह्यशुद्धि--मुसलमानी रीतियों का खण्डन—श्राद्ध,तर्पण—अन्ध-विश्वास—क्रियाकाण्ड एवं रूढियों का खण्डन—पुस्तकीय ज्ञान का खण्डन—करनी बिना कथनी पर परिहास-बहुदेवोपासना एवं सुधारात्मक विचार—पंडितों की पवित्रता का ढोंग-ढोंगी पाखंडी संतों का खण्डन—इन्द्रियों की निन्दा एवं वासना पर नियंत्रण—कुसंग की निन्दा एवं सत्संग का महत्व--निष्कर्ष ।

पाँचवाँ अध्याय २७२-३५०

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में लोकमंगल के विधायक तत्व- १

लोकमंगल की भावना एवं जीवन मूल्य—भक्तिभावना एवं लोकमंगल--कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में लोकमंगल की भावना—सदाचार और लोकमंगल—कबीर-साहित्य एवं बाइबिलःबहुजन हिताय—स्वानुभव एवं लोकमंगल के तत्व--साहित्य का उद्देश्य लोकमंगल है—सत्य के

अनुवर्तन से लोकमंगल-अहिंसा—अस्तेय—परोपकार—समभाव—कर्मण्यता—दया—प्रेम का महत्व।

छठा अध्याय **३५१-४२१**

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में लोकमंगल के विधायक तत्व-२

विश्वास--सारग्रहण और सहिष्णुता--कथनी और करनी का सामंजस्य-निष्काम कर्म--अपरिग्रह—गुरु का महत्व--ब्रह्मचर्य—आत्मनियंत्रण—आत्म-शुद्धि--विनयशीलता—समर्पणभाव-मधुर भाषण--कर्म का फल—निन्दा और क्रोध का अभाव—क्षमा भाव—सत्संग से लोककल्याण-निष्कर्ष ।

सातवाँ अध्याय **४२१-४९६**

क़बीर-साहित्य एवं बाइबिल में समाज सुधार एवं लोकमंगल की भावना-एक मूल्यांकन

सामाजिकता की जागृत चेतना--सामाजिक जीवन में भाई-चारे का सन्देश--संगठित मानव-समाज की कल्पना--समन्वयात्मकता--अनाचारों एवं अत्याचारों के विरुद्ध लडाई—मध्यमार्गीय समाज की प्रमुखता--आध्यात्मिक दृष्टि एवं समाज-सुधार--सत्य से असत्य का विरोध--समाज-सुधार का लक्ष्य शांति मंत्र--भक्ति में आनन्द और रक्षा-सौन्दर्य का प्रयत्न-पक्ष--शुभ-अशुभ आचरण--ईश्वर-साक्षात्कार एवं लोकमंगल--अंतरजामि ते बड बाहिरजामि--पूर्णधर्म का स्वरूप--कर्म-साधना ही धर्म-साधना है--निष्कर्ष ।

उपसंहार **४९७-५१०**

परिशिष्ट संदर्भ ग्रन्थ सूची ।

पहला अध्याय

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल-परिचयात्मक अध्ययन

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल

भारतवर्ष संतों तथा साधुओं का देश रहा है । विश्व के किसी भी देश में इतने अधिक संतों का आविर्भाव नहीं हुआ जितना कि भारत में । मंदाकिनी की भाँति पवित्र, स्निग्ध एवं ताप रहित रहकर इस देश के संतों ने मनुष्य मात्र के हितों का पूर्ण पालन किया है । संतों के साहित्य में भारतीय धर्म चेतना एवं समाज सुधार का रूप विकसित हुआ है । उपनिषदों के तत्वज्ञ मनीषियों की निर्गुण रहस्यवादी एवं आत्मपरक विचारधारा से सदैव ही भारतीय संत अनुप्राणित रहे । यही कारण है कि संतों के साहित्य में स्वानुभूति के साथ विश्व मंगल कामना का भी सरस संयोग हो गया है। पद-दलित समाज के उद्धार केलिए संतों ने जो कार्य किए उनका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। उन्होंनें अनीति के स्थान पर नीति की स्थापना की, असत्य का बहिष्कार कर सत्य का उद्‌घाटन किया । इस प्रकार भारतीय संत प्रगतिशील, समाजसुधारक, मानवीय धर्म के संस्थापक एवं जीवनोन्मुखी साहित्यकार थे।

अपने ज्ञान के प्रकाश से तिमिराछन्न सहस्त्रों हृदयों को आलोकित करने वाले महात्मा कबीर भारतीय संतों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । परमात्मा का निश्चल ध्यान एवं समाज के प्राणि मात्र के साथ शुद्ध व्यवहार प्रस्तुत संतों के धर्म का सार है। समाज, व्यक्तियों के विकासार्थ निर्मित वह संस्था है जिसमें व्यक्तियों के सत्याचरण पर बल दिया जाता है और उनकी स्वेच्छाचारिता पर नियंत्रण होता है तथा व्यक्ति परस्पर बंधे रहते हैं।

कबीर एक आस्थावान संत थे । उन्होंने ईश्वर चिंतन में ही जीवन की सार्थकता सिद्ध की। परंतु उनका ईश्वर चिन्तन, संसार के संघर्षों से पलायन करके किसी गुफा-विशेष में नहीं हुआ वह तो समाज के मध्य ही परोपकार साधना के साथ संलग्न था । उनके कार्य सत्यानुमोदित और आदर्श महान हैं। कबीरदास के समाज और धर्म सुधार, योग साधना, आध्यात्मिक विचार एवं साहित्यिक विषय विचारणीय हैं । उन्होंने अपनी वाणी द्वारा समाज को सच्ची मानवता का पाठ पढाया तथा सौहार्द और विश्व-बन्धुत्व को बढावा दिया ।

जिस आचरण से भलाई को प्रश्रय मिलता हो वह धर्म कहा जा सकता है । धर्म में पाप या अन्याय की गंध भी नहीं रह सकती । विश्व भर में विभिन्न धर्म परंपराएँ प्रचलित हैं और इन सभी विभिन्न धर्मों में अपने अपने धर्म ग्रन्थ भी पाये जाते हैं । इसी प्रकार पूरे विश्व में व्याप्त एक धर्म है ईसाई धर्म और 'बाइबिल' ईसाइयों का धर्म-ग्रन्थ है । संपूर्ण विश्व में मानव समाज द्वारा विशिष्ट नियमोपनियमों का पालन किया जाता है । मानव-मानव में विश्वबन्धुत्व की भावना पनपने केलिए और आपसी भिन्नता दूर कर मैत्रीपूर्ण संबन्ध रखने केलिए धर्म पर विश्वास करना आवश्यक है । बाइबिल तो लोकमंगल की चेतना का साकार रूप ही है । समाज में भिन्न भिन्न प्रकार के मानव रहते हैं । इनके बीच मित्रतापूर्ण व्यवहार कर आदर्श जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत करना सच्चे मानव का धर्म है । प्रस्तुत कार्य की पूर्ति का मार्गदर्शन 'बाइबिल' द्वारा प्राप्त होता है । प्रस्तुत ग्रन्थ व्यक्ति के चरित्र को दृढता प्रदान करके उसको संघर्षों का धैर्यपूर्वक सामना करने की क्षमता प्रदान करता है । मानव जीवन के व्यापक एवं बहुमुखी विकास केलिए जिन नियमों, उपनियमों, विधि-विधानों की जरूरत है ये सब बाइबिल में बताए गए हैं। बाइबिल का सबसे महत्वपूर्ण नियम प्रेम का नियम है । बाइबिल में कहा गया है -'' अपने

सारे हृदय से, अपनी सारी आत्मा से, अपने सारे मन से ईश्वर को प्यार करो और अपने पडोसी को अपने समान प्यार करो । इन्हीं दो आज्ञाओं पर समस्त संहिता और नबियों की शिक्षा अवलंबित है ।'' [१]

यही सन्देश कबीर रचनाओं में भी देखा जाता है । कबीर की समस्त प्रवृत्तियाँ चरम सत्य अथवा मूलतत्व ब्रह्म से तथा उसके प्रति दृढ विश्वास से उद्‌भूत होती हैं । इसके साथ ही कबीर संपूर्ण विश्व में व्याप्त अमरत्व को सभी प्राणियों में अनुभव करते हैं । प्रेम की महत्ता के बारे में वे कहते हैं -

कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं
सीस उतारैं हाथ सौं तब पैसे घर मांहि ।'' [२]

ईश्वर प्रेम तथा मानव प्रेम की प्रथम सीढी यह है कि अहंभाव से दूर रहना । वही सच्चे प्रेम का अधिकारी है । कबीर बार बार व्यक्ति को सदाचरण शील होने का आह्वान देते हैं और कहते हैं कि व्यक्ति को आदर्शवान, परोपकारी, त्यागवृत्तिवान एवं समाज हितू होना चाहिए -

तरवर तासु विलंबिए, बारह मास फलंत
सीतल छाया सघन फल पंखी खेली करंत ।'' [३]

यहाँ कबीर का आह्वान यह है कि व्यक्ति को भी दूसरों केलिए कल्याणकारी होना जैसे फल, छाया और पक्षियों को आश्रय देकर वृक्ष अपना अस्तित्व अर्थपूर्ण बनाते हैं।

---

१. नया विधान संत मात्यु २२:३७
२ डॉ. पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १८३
३. वही पृ. २०३

बाइबिल एवं कबीर की रचनाओं में व्यक्तिगत एवं समाजपरक सुधार की प्रवृत्ति भी सम्यक रूप में देखी जा सकती है । ईसा मसीह एवं कबीर के जीवन की यह विशेषता है कि उनके पास जो मनुष्य आता है उसको वे प्रेम एवं सदुपदेश द्वारा अपनाते हैं और ठीक रास्ता दिखाते हैं । कबीर साहित्य एवं बाइबिल में समान भाव वाले अनेक उपदेशों को हम देख सकते हैं । उदाहरण केलिए-शिष्य के प्रश्न पर बाइबिल में ईसा का उत्तर है - ''उन्हें रहने दो वे अन्धों के अन्धे पथ प्रदर्शक हैं । यदि अन्धा अन्धे को ले चले, तो दोनों ही गड्ढे में गिर जायेंगे ।'' [१] कबीर का उपदेश इससे मेल खाता है-

''जाका गुरु है आंधरा, चेला है जाचंध
अंधै-अंधा ठेलिया, दोन्यूं कूप परंत ।'' [२]

ऐसे, कबीर साहित्य एवं बाइबिल के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दोनों में कही बातों में बहुत साम्य है । ये बातें किसी एक देश की जनता की मात्र न होकर समस्त विश्व केलिए है । उनमें कही वाणी उन्हीं के युग में नहीं, सदा सर्वदा सब के कल्याणकारी मार्ग केलिए सुदुढ आधार बनी हुई हैं ।

महात्मा कबीर का संक्षिप्त जीवन वृत्त

जीवन-चरित या आत्मकथायें लिखने की प्रथा प्राचीन काल में नहीं रही थी। प्रायः सभी संत एवं भक्त कवियों के जीवन-वृत्त आज भी अंधकार में हैं । जो कुछ प्राप्त होता है वह या तो अन्तःसाक्ष्य के आधार पर उस विशेष रचनाकार की रचनाओं से विभिन्न संदर्भों के उल्लिखित संकेतों के रूप में मिलता है या बहिर्साक्ष्य

---

१. नया विधान संत मात्यू १८:१०-१५
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १३६

के आधार पर उस विशेष रचनाकार के समकालीन आलोचकों द्वारा लिखी गई आलोचनाओं के रूप में मिलता है । यह कहीं दंतकथाओं या कहीं किंवदन्तियों आदि के आधार पर भी पाया जाता है । महात्मा कबीर भी इसके अपवाद नहीं कहे जा सकते । उनके जीवनवृत्त, रचनायें, व्यक्तित्व आदि से संबन्धित बातें ऊपर कहे गये तीन आधारों पर प्राप्त सामग्री के अध्ययन के ज़रिए ही मिल जाती हैं । उनकी रचनाओं में प्रसंगवश यत्र तत्र ऐसे उल्लेख प्राप्त हो जाते हैं जो उनके जीवन वृत्त का धूमिल परिचय देते हैं । कबीर ने अपने को एकाधिक बार जुलाहा बताया है। उदाहरण केलिए -

तू बांम्हन मैं कासी का जुलाहा ।'' [१]
मेरे रांम की अभै पद नगरी कहै कबीर जुलाहा ।''[२]
हरि के नांउं बिन किन गति पाई, कहै जुलाहा कबीरा ।''[३]

किन्तु कबीर किस प्रकार के याने हिन्दू मुसलमान या इन दोनों से पृथक किसी अन्य कोटि के जुलाहे थे इसके बारे में कुछ जानकारी नहीं । उन्होंने यद्यपि अपने को बार-बार जुलाहा कहा है किन्तु मुसलमान एक बार भी नहीं कहा, बल्कि अपने को सदैव इन कटघरों से पृथक् बताया-

''जोगी गोरख गोरख करै । हिन्दू रांम नांम उच्चरै
मुसलमान कहै एक खुदाइ । कबीर का स्वामी घटि घटि रहा समाइ ।''[४]

कबीर ने एकाध स्थान पर ऐसा कहा है कि पूर्व जन्म में वे ब्राह्मण थे, किन्तु

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ११४
२. वही पृ. १७०
३. वही पृ. ५०
४. वही पृ. ७६

पापी होने के कारण राम ने उन्हें जुलाहा बनाया ।[१] अन्तःसाक्ष्य के द्वारा यह बात भी सिद्ध होती है कि बचपन से ही राम नाम के प्रति प्रीति उत्पन्न हो गयी थी । राम नाम में तल्लीनता इतनी बढ जाती थी कि तनना-बुनना ही नहीं-खाना पीना भी भूल जाते थे -

''तननां बुननां तज्यौ कबीर । राम नांम लिखि लियौ सरीर ।'' [२]

यद्यपि कबीर ने अपनी रचनाओं में अपने माता-पिता का उल्लेख नहीं किया है, तथापि उनके पारिवारिक जीवन का संकेत उनकी रचनाओं से मिलते हैं - बाप दिलासा मेरी कीना [३] में मानसिक उद्वेग के समय कबीर को सान्त्वना देनेवाले पिता का चित्र है । इसके विपरीत उनकी माता खिन्नता भाव से युक्त एक महिला थीं -

''मुसि मुसि रोवै कबीर की माई ए बारिक कैसे जीवहिं खुदाई ।'' [४]

बहिर्साक्ष्य के रूप में कबीर के जीवन वृत्त एवं उनकी रचनाओं से संबन्धित काफी सामग्री हिन्दी के बडे बडे आलोचकों एवं शोध कर्ताओं के शोध प्रबन्धों के रूप में हमें मिलती है । इन आलोचकों में डॉ.श्यामसुन्दर दास, डॉ.हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ.रामकुमार वर्मा, डॉ.पारसनाथ तिवारी, डॉ.माताप्रसाद गुप्त, डॉ.परशुराम चतुर्वेदी आदि प्रमुख हैं । इनके विभिन्न ग्रन्थों को आधार बनाकर कबीर के जीवन वृत्त एवं कृतियों से संबन्धित ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । इन विद्वानों ने कबीर

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी :कबीर-ग्रन्थावली पृ.११०
२. वही पृ. १२
३. डॉ.रामकुमार वर्मा पृ. ९२
४. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ९

के समय, उनके परिवार, उनकी जीवनी आदि से संबन्धित कई तर्क प्रस्तुत किये हैं जिनमें सबसे विश्वसनीय तर्क डॉ.पारसनाथ तिवारी के माने जा सकते हैं ।

जहाँ तक कबीर के जन्म का संबन्ध है यह सामान्य विश्वास है कि कबीर जयदेव और नामदेव के पश्चात् जन्मे थे । यह करीब तेरहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में माना जा सकता है । नीचे दिये गये दोहे से यह बात पुष्ट हो सकती है-

''चौदह सौ पचपन साल गए, चंद्रवार एक ठाट ठए
जेठ सुदी बरसाइत को, तिथि पूरऩमासी प्रगट भए ।'' [१]

विद्वानों का मत है ,''कबीर का समय तेरहवीं शताब्दी के उपरान्त चौदहवीं शताब्दी के आरंभ से पूर्व नहीं था तथा पन्द्रहवीं शताब्दी के अंतिम चरण के पूर्व था । हमारा निश्चित मत है कि कबीर का समय चौदहवीं शताब्दी तथा पन्द्रहवीं शताब्दी के बीच में था ।'' [२] अधिकतर विद्वानों ने कबीर का जन्म संवत् १४५५ ही स्वीकार किया है । इस तिथि के विषय में 'कबीर साहित्य का अध्ययन' में पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव ने ठीक ही लिखा है कि, ''यद्यपि इसका किसी इतिहास-ग्रन्थ अथवा कबीर की बानियों में कहीं उल्लेख नहीं है, फिर भी कई कारणों से यही तिथि मान्य ठहरती है । एक तो इसमें वर्ष, मास और तिथि के साथ वार का भी उल्लेख है, जो गणना के अनुसार शुद्ध निकलता है, दूसरे यदि प्रत्यक्ष रूप से नहीं तो परोक्ष रूप से अंतःसाक्ष्य द्वारा भी उक्त संवत् का ठीक होना संभव प्रतीत होता है । इतिहास से भी उसका विरोध नहीं है ।''[३]

---

१. डॉ.रामकुमार वर्मा संत कबीर पृ. ५२
२. डॉ.रामजीलाल सहायः कबीर दर्शन पृ.१२
३. डॉ.पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव कबीर साहित्य का अध्ययन पृ. १८

जन्म स्थान

कबीर के जन्मस्थान के संबन्ध में भी विद्वानों में विवाद चलते रहे हैं । इस संबन्ध में मुख्यतः तीन मत प्रचलित हैं जिनके अनुसार कबीर के जन्मस्थान को मगहर, आजमगढ एवं काशी माना जाता है । नाभादास के 'भक्तमाल' में विभिन्न भक्त कवियों के साथ कबीर संबन्धी विवरण भी मिलता है । उसमें कबीर के संबन्ध में एक छप्पय लिखा गया है –

कबीर कानि राखी नहीं, वर्णाश्रम षट दरसन
भक्ति विमुख जो धरम ताहि अधरम करि गायो

आरुढ दशा ह्वै जगत पर, मुख देखी नाहिन भनीं ।'' [१]

इस छप्पय में कबीर के जीवन-काल का कोई निर्देश नहीं है, कबीर के धार्मिक आदर्श, समाज के प्रति उनका पक्षपात-रहित स्पष्ट दृष्टिकोण और उनकी कथन शैली पर ही प्रकाश डाला गया है ।

डॉ.रामकुमार वर्मा [२] डॉ.गोविन्द त्रिगुणायत, डॉ.पीताम्बरदत्त बडथ्वाल आदि विद्वान कबीर का जन्म स्थान मगहर मानते हैं । इस मत को मानने वालों का कथन है कि कबीर ने मगहर का उल्लेख कई बार किया है । इसके संबन्ध में प्रायः कबीर की एक पंक्ति को उद्धृत किया जाता है --

---

१. नाभादास भक्तमाल पृ. ४६१-४६२

2. "Thus he was born at Maghar, but after spending his childhood there, he came to reside at Banaras" Dr.Ramkumar Varma, Kabir Biography and Philosophy P. 20

'पहले दरसन मगहर पायो '[१]

ये लोग प्रस्तुत 'दरसन' शब्द का अर्थ जन्म लेना मानते हैं किन्तु यह अर्थ किसी भी प्रकार उचित नहीं माना जा सकता । दूसरे कई विद्वान उनके जन्म स्थान को काशी मानते हैं । कबीर पंथियों के अनुसार भी कबीर का जन्म स्थान काशी ही है। लोक विश्वास में भी यह धारणा प्रचलित है कि कबीर काशी में ही जन्मे थे । कबीर की अनेक उक्तियों से इस अवधारणा को बल मिलता है —

''सगल जन्म सिवपुरी गवाइआ
मरती बार मगहरि उठि आइआ ।'' [२]

से संकेत मिलता है कि उनका पूरा जीवन काशी में ही बीता था । इसके अतिरिक्त बहुत पुराने समय से अनन्तदास, धर्मदास, गरीबदास आदि प्रायः सभी पुराने कवि इन्हें काशी निवासी ही चित्रित करते आए हैं ।

कबीर की जाति

कबीर की जाति के संबन्ध में विद्वनों में तर्क है । कबीर की राय में साधु महात्माओं की जाति ही न हुआ करती -

'जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान'

कबीर की जाति के बारे में पूछने की कोई ज़रूरत नहीं है क्योंकि कबीर का ज्ञान

---

१. डॉ. श्यामसुन्दरदास कबीर-ग्रन्थावली प्रस्तावना पृ. १७

२. डॉ.रामकुमार वर्मा संत कबीर पृ. १७

इतना गहरा एवं व्यापक रहा है कि यही उसकी जाति को सूचित करता है । कई किंवदंतियाँ इस संबन्ध में प्रचलित हैं कि कबीर का जन्म किसी विधवा ब्राह्मणी की कोख से हुआ था और वे जन्म से हिन्दू थे । बल्कि उनका लालन-पालन मुस्लिम जुलाहा परिवार में हुआ था और दोनों परिवारों की हिन्दू-मुस्लिम एकता के दर्शन कबीर के व्यक्तित्व की विशेषता रही । वे जाति को नहीं कर्म को प्रमुखता देते थे ।

मुसलमान परिवार पलते हुए भी कबीर पर हिन्दू संस्कारों, रीति-रिवाज़ों, देवी-देवताओं और पौराणिक कथाओं का गहरा प्रभाव पड़ा था । पुनर्जन्म में विश्वास कबीर के हिन्दू धर्म पर विश्वास को ही प्रकट करता है । वे कहते हैं -प्रभु ! पूर्व जन्म में मुझे अपने तप का गर्व था, किन्तु आपसे साक्षात्कार न हो सका । अब आपके वियोग में मेरी वही दशा हो रही है, जैसे जल के बाहर आने पर मछली छटपटाती है

अब हम भयल बाहिरि जल मीना
पूरब जनम तप का मद कीना ।'' [१]

ऐसा कहना उचित होगा कि 'कबीर जन्मना जायते शून्द्रः कर्मणा जायते द्विजः' वाली कहावत को अक्षरशः मानने वाले थे । वर्णाश्रम धर्म का बाहरी बाना उन्हें अभीष्ट नहीं था लेकिन उसकी अन्तः सत्ता को वे आवश्यक मानते थे । एक तरह से कबीर मुस्लिम प्रभाव में परिपोषित, हिन्दू संस्कारों का नया आविर्भाव रहे ।

पारिवारिक जीवन

कबीर के परिवार के संबन्ध में भी विद्वानों में मतभेद रहा है । अन्तःसाक्ष्य के

---

१. डॉ.वासुदेव सिंह कबीर साहित्य, साधना और पंथ पृ. १२

आधार पर कबीर को जुलाहे परिवार का अवश्य माना जा सकता है ।

जाति जुलाहा नाम कबीरा
बन बन फिरौ उदासी ।'' [१]

फिर भी अपने को ब्राह्मन मानने में कबीर को हर समय आनन्द अनुभव होता था । ब्राह्मण शब्द से मतलब यहाँ जाति संबन्धित नहीं बल्कि कर्मसंबन्धित था । ब्राह्मण माने ईश्वर को चाहने वाला । कबीर का कहना है कि वह पूर्वजन्म में ब्राह्मण थे और पाप कर्म से जुलाहा बन गये ।

पूरब जनम हम ब्राह्मण होते, ओछे करम तप हीना
रामदेव की सेवा चूका, पकरि जुलाहा कीन्हा ।'' [२]

कबीर परमात्मा को ही अपने पिता मानते हैं । लोक विश्वास के आधार पर नीरू और नीमा ने उनका पालन पोषण किया था । जो भी हो जीवन के प्रारंभिक दिनों से ही कबीर साधु महात्माओं की संगति में रहा करते थे और युवावस्था में से होकर वह साधक बन गये थे । [३] कबीर शान्त स्वभाव के व्यक्ति थे । उनका यही शान्त स्वभाव साधु संगति से प्रारंभ काल से ही उन के व्यक्तित्व में लोकमंगल के बीज पनपाने में सहायक बन गया ।

यद्यपि कबीर का पैतृक व्यवसाय कपडा बुनना था फिर भी संत मत में दीक्षित वे अधिकांश समय साधना एवं सत्संग में ही लगाते थे । कबीर जोकुछ भी

---

१. डॉ. श्यामसुन्दरदास कबीर-ग्रन्थावली पृ. १३५
२. वही पृ. १७
३. डॉ.रामजीलाल सहाय कबीर दर्शन पृ. २९

कमाते थे वे साधुओं पर व्यय करते थे । कबीर के इसी स्वभाव ने बाद में चलकर मनुष्य के जीवन में परोपकार के महत्व पर बल दिया । कबीर के अंतर्मन में राम नाम की यही धुन सवार थी । संसार के व्यक्ति व्यक्ति में वह राम को देखते थे । राम से मतलब व्यक्ति व्यक्ति के अंदर रहने वाली आत्मा से था और कबीर के मत में राम इसी आत्मा के प्रतिरूप निर्गुण ब्रह्म थे । कबीर हर व्यक्ति में राम के अंश को देखते थे । उनके विचार में व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति ही समाज की उन्नति थी और ऐसा ही आध्यात्मिक व्यक्तित्व लोकमंगल में सहायक बन सकता था । वह भगवान को हर किसी की आवश्यकताओं का 'पूरनहारा' मानते थे ।

कबीर ने अपनी रचनाओं में कई बार लोई का उल्लेख किया है जो उनकी पत्नी बतायी जाती है --

हम तुम बीच भयो नहीं कोई । तुमहि सुकंत नारि हम सोई
कहत कबीर सुनहु रे लोई । अब तुमरी परतीति न होई ।'' [१]

कहीं कहीं उन्होंने अपने दो विवाहों की ओर भी संकेत किया है --

पहली कुरुपि कुजाति कुलखनी
अब की सरुपि सुजाति सुलखनी ।'' [२]

जिससे उनकी दो स्त्रियाँ होने का अनुमान लगाया जाता है । जनश्रुति के अनुसार कबीर के एक पुत्र और एक पुत्री थी । अंतःसाक्ष्य के बल पर यह सिद्ध किया जा सकता है कि कबीर का बेटा कपूत था—

---

१. डॉ. श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. २७५
२. डॉ. रामकुमार वर्मा संत कबीर पृ. १२२

बूडा बंस कबीर का, उपजा पूत कमाल
हरि का सुमिरन छांडि के, घर ले आया माल ।'' [१]

कबीर के समान उनका पुत्र भगवान में विश्वास रखने वाला नहीं था । हो सकता है इस दुख ने कबीर की भगवान के और भी करीब आने में सहायता की ।

कबीर का ज्ञान

कबीर पढने केलिए किसी पाठशाला में भरती नहीं हुए थे । इसका कारण उनके परिवार की दरिद्रता एवं समय का अभाव था । फिर भी सत्संगति से और स्वानुभवों से कबीर ने काफी ज्ञान प्राप्त किया । प्रारंभ से ही कबीर निरासक्त कर्मयोगी की भांति जीवन बिताते थे । राम नाम के प्रति प्रीति बचपन से ही उनके मन में जागी थी । राम नाम की तल्लीनता में वे तनना-बुनना ही नहीं खाना-पीना भी भूल जाते थे -

तननां-बुननां तज्यौ कबीर
राम नांम लिखि लियौ सरीर ।''[२]

राम नाम में ज्ञान का भण्डार निहित था यही कबीर का विश्वास था । उनकी कई पंक्तियाँअपने स्वानुभवगत ज्ञान को व्यक्त करनेवाली हैं । जैसे-

बारह बरस बालपन बीते बीस बरस कछु तपु न कीओ ।
तीस बरस कछ देव न पूजा फिरि पछतानी बिरधि भइओ ।

---

१. डॉ. श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. २००
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ९

मेरी मेरी करते जनमु गइओ ।
साइर सोखि भुंज जा बलाइओ । ''[१]

वे संसारी होते हुए भी वैरागी थे । कबीर के अन्दर में राम नाम की ऐसी धुन सवार थी कि वह एक क्षण केलिए भी उस नाम को विस्मृत कर कपडा बुनने में नहीं लगाना चाहते थे । इस पर उनकी माँ ने पुत्र पर आक्रोश व्यक्त करते हुए कहा था कि - हमारे कुल में किसने 'राम' नाम कहा है ? जबसे इस निपूते ने माला धारण की है तबसे सुख की हानि हो गयी है ।

'' हमारे कुल कउने रामु कहिओ
जब की माला लई निपूते तबसे सुखु न जइओ ।'' २

राम की भक्ति को वे सबकुछ मानते थे । एक जगह उन्होंने बताया है —

राम भगति अनियाले तीर जोहि लागै सो जानै पीर
तनु महिं खोजौं चोट न पावौं, ओषद मूर कहाँ घसि लावौ ।''[३]

कबीर ने वैयक्तिक अनुभव को ही प्रमाण माना है, उन्होंने विभिन्न संदर्भो जैसे ब्रह्मानुभूति संसार-व्यापार की अनुभूति, साक्षात्कार का अनुभव, अनहद नाद का अनुभव, शब्दातीत परमतत्व का अनुभव, योगपरक साधना अनुभव, आत्मदर्शन का अनुभव आदि अनेक पक्षों में अनुभूति को मुख्य आधार बनाया है । कबीर ने जीवन और जगत में जिस सत्य का अनुभव किया, उन्होंने समस्त मानव समाज के

---

१. डॉ.रामकुमार वर्मा संत कबीर पृ. १०५
२. वही पृ. १५५
३. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ७

सम्मुख उनको प्रस्तुत किया । निस्सन्देह कबीर एक अनुभव सिद्ध महापुरुष थे जिन्होंने संत होकर इस भौतिक जीवन की व्यावहारिकता को बडी गहराई से देखा-परखा, जाना-जांचा और तब अपने अनुभव के आधार पर जनसमाज को प्रबोधित किया ।

कबीर ने शास्त्रज्ञ पण्डितों, ज्ञानियों को ललकारा है, उनका उपहास भी किया है । उनका दावा है कि तथाकथित पण्डित केवल शास्त्रों में भटकते रहते हैं। वे तत्वज्ञान से सर्वथा अपरिचित रहते हैं । वे स्वयं धोखे में रहते हैं और दूसरों को भी धोखा देते हैं । कबीर ने ज्ञान की उस सर्वोच्च दशा का अवश्य समर्थन किया है, जहाँ भक्ति से उसका अविरोधी भाव हो जाता है । उनके अनुसार सच्चा और निष्काम भक्त ही वास्तविक ज्ञानी होता है । कबीर का ज्ञान अनुभवजन्य था, पुस्तकीय नहीं । ऐसा ज्ञान भक्ति का सहायक होता है, विरोधी नहीं । वह जीव रूपी दीपक में अग्नि का कार्य करता है और भक्ति तेल का कार्य करती है । इन दोनों के मिलने पर विषय वासना रूपी पतंग स्वतः आ-आकर जल मरते हैं । यथा-

दीपक पावक आंनिया, तेल भी आंनां संग
तीनौं मिलिकै जोइया, तब उडि उडि परैं पतंग।'' [१]

इस अर्थ में कबीर ज्ञान और भक्ति का समन्वय भी करते हैं । वे कहते हैं कि साधना रूपी युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए जीवात्मा रूपी योद्धा प्रेम के घोडे पर सवार होकर ज्ञान रूपी तलवार के द्वारा जमकर युद्ध करता हुआ जन्म-मरण रूपी काल के सिर को काट देता है --

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ १४५

कबीर घोडा प्रेम का, चेतनि चढि असवार
ग्यांन खड़ग गहि काल सिरि, भली मचाई मार ।'' [१]

कबीर की मान्यता थी कि अज्ञान का आवरण हटने पर ही ज्ञान का प्रकाश होता है और भक्ति का प्रादुर्भाव होता है । इस तथ्य को उन्होंने एक पद में छप्पर, आँधी तथा वर्षा के रूपक द्वारा स्पष्ट किया है । ज्ञान की आँधी आने पर भ्रम की टटिया उड जाती है, माया की रस्सी छिन्न-भिन्न हो जाती है, विषयासक्ति और बाह्याचार के खम्भे ध्वस्त हो जाते हैं, मोह रूपी बडेर भी भग्न हो जाती है । फलस्वरूप छप्पर धराशायी हो जाता है अर्थात् तृष्णा नाष्ट हो जाती है । ज्ञान की आँधी के बाद प्रेमाभक्ति रूपी जल की वर्षा होती है ।

संतो भाई आई ग्यांन की आंधी रे
भ्रम की टाटी सभै उडांनी माया रहे न बांधी रे
दुचिते की दोइ थूंनि गिरांनी मोह बलेंडा टूटा
त्रिसनां छांनि परी घर ऊपरी दुरमति भांडा फूटा
आंधी पांछैं जो जल बरसै तिहिं तेरा जन भीनां
कहै कबीर मनि भया प्रगासा उदै भानु जब चीनां ।'' [२]

कबीर के मन में गुरु के प्रति अपार श्रद्धा थी । लेकिन उन्होंने गुरु का नाम कही भी नहीं लिया है । गुरु की महिमा निरंतर वे गाते रहते थे । गुरु की प्राप्ति भी वह गोविन्द की कृपा से मानते थे और उनके मत में यही गुरु ज्ञान को प्रकाशित करने वाले थे -

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १८४
२. वही पृ ३०

''ग्यांन प्रकासी गुरु मिला, सो जनि बीसरि जाइ
जब गोबिंद क्रिपा करी, तब गुरु मिलिया आइ ।'' [१]

कबीर के इस अपार ज्ञान ने उनके व्यक्तित्व में विश्व बन्धुत्व के बीज बोये । वह प्रेम को ही सबसे बडा ज्ञान मानते थे । पुस्तकीय ज्ञान में उनको विश्वास नहीं था । प्रेम से उनका मतलब ईश्वर से था । वही व्यक्ति प्रेम कर सकता है जिसमें ईश्वर का अंश निहित है । कबीर ने कहा है ईश्वर माने प्रेम है । उन्होंने कहा है —

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ
एकै आखर प्रेम का, पढै सो पंडित होइ ।'' [२]

प्रेम एक छोटा सा शब्द है जिसका अर्थ इस पूरे संसार में व्याप्त है । कबीर इसको अच्छी तरह जानते थे ।

सत्संग का प्रभाव

कबीर-कालीन जनता धार्मिक आडंबरों, परंपरागत कुरीतियों एवं मिथ्याचारों में मग्न थी । वेद, स्मृति तथा पुराण धर्मादि के नाम पर विविध वर्गों में जनता का विभाजन हो चुका था । समाज में जो संघटन एकता का सूत्र चाहिए था वह दिखाई नहीं देता था । अनेक भेदों की दीवारें चन्द लोगों ने जान बूझकर खडी कर दी थीं । इन भेदों को तोड़कर सारे समाज को समान धरातल पर लाना था । इस बात का पूरा अनुभव कबीर को था । सज्जनों की संगति से ,साधुजनों की सहायता से यह कठिन कार्य करने का प्रयत्न कबीर ने किया । कबीर के साधु जन जाति-

---

१.डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १३८
२. वही पृ. २४१

वंश- धर्म-कुल से परे थे। इसलिए उन्होंने संत सज्जन की सेवा को ही परमात्मा की सेवा कहा है । उनकी सेवा करने से साधक याने सेवक के मन के दोष दूर हो जाते हैं। जिस घर में साधु जन की सेवा नहीं होती वह घर नहीं है, मरघट है और उस घर में निवास करने वालों को कबीर ने भूत-पिशाच कहा है । कबीर ने जो ज्ञान प्राप्त किया था वह मूल रूप से उन्हें सत्संग से प्राप्त हुआ था । सत्संग की महिमा का स्थान स्थान पर कबीर ने उल्लेख किया है—

कबीरा बिगर्‌यौ रांम दुहाई
तुम्ह जिनि बिगरौ मेरे भाइ
चंदन कै ढिंग बिरिख जु भैला बिगरि बिगरि सो चंदन ह्वैला
पारस कौं जे लोह छियैला । बिगरि बिगरि सो कंचन ह्वैला
गंगा मैं जे नीर मिलैला । बिगरि बिगरि गंगोदिक ह्वैला
कहै कबीर जे रांम कहैला । बिगरि बिगरि सो रामहिं ह्वैला ।'' [१]

कबीर कहते हैं सत्संग से मैं सांसारिक दृष्टि में बिगड़ गया अर्थात् संसार के उपयुक्त न रहा । चन्दन के निकट जो वृक्ष होता है, वे बिगडकर चन्दन की सुगन्ध धारण कर लेते हैं । पारस पत्थर का स्पर्श करने वाला लोहा स्वर्ण में बदल जाता है । गंगा में मिलने वाला गंदा जल भी निर्मल और पवित्र गंगा जल में परिवर्तित हो जाता है । कबीर कहते हैं कि जो राम के भक्त हैं, वे परिवर्तित होकर राममय हो जाते हैं ।

मन को पवित्र रखने केलिए सत्संगति आवश्यक है, सत संगति रामु रिदै बसाई ।'' संत केलिए कबीर ने साध, साधू दास, भगत, हरिजन तथा वैष्णव

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ९७

शब्दों का भी प्रयोग किया है । अभिप्राय भगवान के भक्त से है । साध-संगति कभी निष्फल हो ही नहीं सकती -

कबीर संगति साध की, कदे न निरफल होइ ।'' [१]

क्षणभर की सत्संगति भी जीवन को सफल बना देती है । इसी से तो ब्रह्ममय वातावरण बनता है सत्गुरु की प्राप्ति होती है, सत्कर्म तथा सद्गुरुओं के माध्यम से जीवन का समुचित विकास होता है और जीव ब्रह्म की ओर बढता रहता है । सब लोग बैकुंठ की बातें करते हैं पर कबीर साध-संगति को ही बैकुंठ बतलाते हैं --

साध संगति बैकुंठहि आहि ।'' [२]

उनका ऐसा कहना अकारण नहीं, क्योंकि वैकुंठ तो वही है जहाँ भगवान का निवास हो, भगवान का निवासस्थान संतों या भक्तों का हृदय है । कबीर एक स्थान पर ऐसे बताते हैं-कोई चाहे जितनी तीर्थयात्रा करे, मथुरा जाए चाहे द्वारिका अथवा जगन्नाथपुरी, किन्तु साधु की संगति और हरि-भक्ति के बिना कुछ भी लाभ नहीं हो सकता --

मथुरा जाउ भावै द्वारिका, भावै जाउ जगनाथ
साधु संगति हरि भगति, बिनु कछु न आवै हाथ ।'' [३]

सत्संग के अतिरिक्त कबीर एक घुमक्कड भी थे और साधु संगति में दूर दूर तक भ्रमण करना उन्हें बहुत पसंद था । यद्यपि उनका अधिकांश जीवन काशी

---

१. डॉ.पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव कबीर साहित्य अध्ययन पृ. १६३
२. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. ८१
३. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ.१५६

में व्यतीत हुआ फिर भी वे साधु संतों के साथ दूर दूर तक घूमते रहे । यह भ्रमण अधिकतः तीर्थाटन ही था । सत्संग को वे सर्वोत्तम तीर्थयात्रा मानते थे ।

कबीर का व्यक्तित्व

कबीर का व्यक्तित्व अपने पारिवारिक संस्कारों के साथ साथ जीवन के कडे अनुभवों से रूपायित हुआ था । इस अखड व्यक्तित्व के साथ सत्संग के संस्कारों के मेल से उनके व्यक्तित्व में मानवतावादी तत्वों का विकास संभव हुआ । उनके व्यक्तित्व के शारीरिक, बौद्धिक, भावात्मक एवं चारित्रिक पक्षों में इन तत्वों का प्रभाव देखा जा सकता है । कबीर मानव की सेवा को ईश्वर की सेवा समझते थे । निष्काम कर्म पर विश्वास करने वाले कबीर अपने चारों ओर विषमता, असमानता, विभिन्नता देख चुप नहीं बैठते थे । अतएव जीवन के विभिन्न क्षेत्र में विषमता, असमानता और विभिन्नता देखकर निष्काम कर्मयोगी कबीर उस व्यवस्था को ठीक करने केलिए तत्पर हो जाते थे । कबीर की सुधारात्मक प्रवृत्ति इस प्रेरणा से उद्‌भूत है। वे बताते हैं कि सत्य स्वरूप को पहचानने केलिए पाखण्ड को दूर करना आवश्यक है। आडंबर के रहते हुए सत्य तत्व के दर्शन नहीं हो सकते । यथा --

जप तप पूजा संजम पूजा, अरचा जोतिंग जग बौराना
कागदि लिखि जगद भुलाना, मन ही मन न समाना ।'' [१]

तभी तो समाज सुधार एवं लोकमंगल की भावना उनमें सशक्त होकर सामने आयी। उनके व्यक्तित्व का बौद्धिक पक्ष इन्हीं भावनाओं के बल पर विकसित हुआ । अखंड होते हुए भीकबीर अंतर मन से अत्यधिक भावुक थे ।

---

१. डॉ. परासनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १९९

दाता तरवर दया फल, उपगारी जीवंत
पंखी चले दिसावराँ, बिरषा सुफल फलंत ।''[१]

वृक्ष दाता है, परोपकार केलिए ही जीवित रहता है । वह जिन पक्षियों को फल देता है यदि वे उसे छोडकर अन्यत्र चले भी जाएँ तो भी वृक्ष फल देता ही रहता है । यद्यपि यहाँ का वृक्ष ईश्वर है, कबीर के व्यक्तित्व में भी हम इसी दानशीलता को देख सकते हैं । वापस मिलने की इच्छा से नहीं, निस्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा वे करते थे । इन्हीं तत्वों से उनके चरित्र का निर्माण भी हुआ था । इसलिए उनके व्यक्तित्व का चारित्रिक पक्ष लोकमंगल की भावना से जुडा हुआ था । उनके मन का अपनत्व छोडकर भाषण करने की रीति उनके चरित्र की विशेषता थी । इससे स्वयं को और सुनने वाले का मंगल का भाव अनुभव होता था । उनका कहना है –

ऐसी बांनी बोलिए, मन का आपा खोइ
अपनां तन सीतल करै, औरां कौं सुख होइ ।''[२]

कबीर का व्यक्तित्व उनके समय की परिस्थितियों से भी प्रभावित रहा था । उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों का कबीर के व्यक्तित्व निर्माण में परोक्ष रूप से ही सही, हाथ रहा । आलोचकों ने उनके व्यक्तित्व का सुन्दर विश्लेषण किया है और यह भी स्पष्ट कहा है कि परिस्थितियों ने किस प्रकार उन्हें महान बनाया ।[३] सामाजिक कुरीतियों का वे विरोध करते थे । मानव मात्र को वे ईश्वर मानते थे । मन्दिर एवं मसजिद तक भगवान को सीमित नहीं रखते थे । मूर्तियों का विरोध, धार्मिक आडंबर का विरोध , धार्मिक अनाचार सब का विरोध

---

१. डॉ.जयदेवसिंह कबीर वाङमय खंड ३ पृ. ३०२
२ डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १९५
३. डॉ.धर्मपाल मैनी संतों के धार्मिक विश्वास पृ. ३८

उनके व्यक्तित्व में छिपी पडी मानव मंगल की भावना के कारण ही हुआ था । समाज का विरोध और संघर्ष उसे शान्ति और संतुलन की ओर प्रेरित करता है । कबीर पूछते हैं-पत्थर की पूजा से क्या लाभ, जो जीवन भर अनुनय-विनय का जवाब भी नहीं देता। यहाँ कबीरदास मूर्तिपूजा का खंडन करते हैं —

पाहन कौं क्या पूजिए, जो जनभि न देइ ज्वाब ।'' [१]

तीर्थाटन का खण्डन करते हुए कबीर कहते हैं कि तीर्थाटन तो विषैली लता के समान है जिसका कोई मूल नहीं, जिसमें कोई सार नहीं । यदि मन में सच्चाई नहीं है, यदि हृदय के भीतर वासना की अग्नि भभक रही है तो तीर्थो के करने से कुछ नहीं होगा । ये बाह्याडंबर विष इसलिए हैं, क्योंकि ये केवल धर्म का दंभ पैदा करते हैं । इनसे न तत्व-ज्ञान होता है और न सत्य का साक्षात्कार, प्रत्युत उनके आकर्षण से मनुष्य दिन-रात उन्हीं में लगा रहता है। इसलिए कबीर इन बाह्याचारों के चक्कर में कभी नहीं पडे --

तीरथ व्रत बिरव बेलडी, सब जग मेल्हा छाइ
कबीर मूल निकंदिया, कौन हलाहल खाइ ।'' [२]

माला पहनकर व्यर्थ भाव दिखाने वाले लोगों के बारे में भी कबीर बताते हैं । उनकी राय में सच्ची माला तो मन की है, उसी को बार-बार प्रभु के प्रेम में फेरना चाहिए। गले में पडी हुई माला सांसारिक दिखावा मात्र है । यदि ऐसी माला को धारण करने से प्रभु मिल सकते हैं तो ऐसी बहुत बडी माला रहट के गले में दिखलाई देगी, तो फिर उसे प्रभु अवश्य मिल जाना चाहिए --

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २२५
२. वही पृ. २२५

कबीर माला मन की, और संसारी भेरव
माला पहिरा हरि मिलै, तो अरहट कै गलि देखि।'' [१]

अक्षर अभ्यास के न रहते हुए भी कबीर के ज्ञानी व्यक्तित्व ने सगुण एवं निर्गुण ब्रह्म के वर्णन में सातों समुद्रों के जल को स्याही के रूप में स्वीकार किया था । वेदों का अध्ययन न करने पर भी वे लोगों को इन महान ग्रन्थों का सारोपदेश सुनाते रहे । भारतीय संस्कृति की उक्तियों का -- 'अहिंसा परमो धर्मः' 'सत्यमेवजयते' 'वसुधैवकुटुम्बकम्', 'यत्र विश्वंभवत्येकनीडम्','सर्वे सुखिनःसन्तु', 'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्' का कबीर के व्यक्तित्व पर अमिट प्रभाव पडा है । कबीर के व्यक्तित्व के इन गुणों ने अपने चारों ओर व्याप्त समाज में यदि अनगिनत दोष देखें तो आश्चर्य की बात नहीं है । उनके व्यक्तित्व के सुधारात्मक पक्ष ने अधिकार में डूबे हुए तत्कालीन समाज को सुधारने में कोई कसर नहीं उठा रखी । फलस्वरूप कबीर समाज सुधारक कहलाये । धन-दौलत को कबीर कोई महत्व नहीं देते थे । धन के न होते हुए भी अपने महान व्यक्तित्व के बल पर कबीर महात्मा कहलाये । इसी महात्मा के द्वारा रचा गया साहित्य अपने विशिष्ट रूप केलिए सर्वथा प्रसिद्ध रहा । जितना महान कबीर का व्यक्तित्व था उनका साहित्य उतने ही उदात्त गुणों का भण्डार रहा । कबीर के इस महान व्यक्तित्व का प्रतिफलन उनके साहित्य में अवश्य ही देखा जा सकता है ।

अखण्ड मानवता एवं कबीर

कबीर- साहित्य का मूलमंत्र 'मानवतावाद' है । उन्होंने जीवनपर्यन्त अपनी विचारधारा को मानवतावादी दृष्टि से समलंकृत करने का प्रयास किया । उनका

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २२२

यह मानवतावाद मनुष्य जाति तक सीमित न रहकर पशु-पक्षी, जीव-जन्तु तथा वनस्पति जगत तक प्रसारित है । संत कबीर ने जाति- पाँति की भेद भावना से ऊपर उठकर 'हरि को भजै सो हरि का होई का उद्घोष कर समस्त मानव जाति को समता के धरातल पर प्रतिष्ठित करने प्रयास किया । इसी मानवीय एकता के प्रतिष्ठापन केलिए ही उन्होंने आध्यात्मिक क्षेत्र में एक ऐसे निर्गुण ब्रह्म की स्थापना की जो सभी वर्ग और जाति को स्वीकार हो । उनका वह ब्रह्म सब ही का सृजनहार है--

रांम राई को ऐसा बैरागी हरि भजि मगन रहै विष त्यागी
ब्रह्मा एक जिनि सिष्टि उपाई, नांव कुलाल धराया ।'' [१]

वह सभी में और सब उसी में वास करते हैं ।

खालिक खलक खलक मैं खालिक, सब घट रह्यौ समाई ।'' [२]

'जब हरि में ही पिंड और पिंड में हरि [३] विद्यमान है तो मानव मानव में ऊँच और नीच की भेद भावना को स्थान कहाँ ?

कबीर ने अपने मानवताविषयक विचारों का प्रतिपादन करते हुए सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह तथा अभय आदि के अभ्यास पर विशेष बल दिया है । [४] इन महाव्रतों द्वारा मानव का व्यक्तिगत और समाजगत जीवन समुन्न बन सकता है । कबीर ने सदा सत्य व्यवहार, सत्य वचन, सत्यानुभूति, उदात्त

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. १३४
२. वही पृ. ८१
३. डॉ.रामकुमार वर्मा संत कबीर पद ३
४. डॉ.सावित्री शुक्ल संत साहित्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पृ. २५५

जीवन केलिए अनिवार्य माना है । 'सत्यमेव जयते' का प्रकाशन उनकी वाणी में सतत एवं सर्वत्र हुआ है । अहिंसा की महत्ता भारतीय वाड़मय में सदा से स्वीकृत रही है । कबीर ने भी जीवहिंसा की सर्वत्र निंदा की है ।

जोरी करि जिबहै करैं, कहते हैं ज हलाल
जब दफ्तर देखैगा दई, तब ह्वैगा कौंण हवाल ।'' [१]

'कामीं नर को अंग में ' इन्द्रिय़लोलुप और कामी पुरुषों की दुर्दशा का अच्छा चित्रण मिलता है । इन्द्रियों की प्रचंड ज्वाला में मानव उसी प्रकार नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार दीपक की लौ पर पतंग । वासना में लिप्त मानव साधना और परमार्थ दोनों केलिए अनुपयुक्त होता है ।

कबीर मानव-शोषण के कट्टर विरोधी हैं । यह शोषण चाहे धार्मिक धरातल पर हो चाहे सामाजिक अथवा आर्थिक धरातल पर, कबीर ने उसका डट कर सामना किया है । धार्मिक शोषण के उन्मूलन हेतु उन्होंने सहज धर्म को अपनाने पर बल दिया । आर्थिक शोषण की समाप्ति केलिए उन्होंने मानव की आर्थिक सीमा निर्धारित करते हुए उतने ही धन को उपार्जित करने का उपदेश दिया जिससे वे भूखे न रह सकें और अतिथि का सम्मान भी हो सके--

''साई एता दीजिए जामै कुटुम समाय
मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाय ।''

आवश्यकता से अधिक धन कमाने में व्यक्ति जब जब आतुर होता है तब तब मानव केलिए संकट उत्पन्न हो जाता है । संचय करने में सुरक्षा और संघर्ष की स्थिति

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. ३३.८

उत्पन्न हो जाती है । इसलिए उन्होंने आवश्यकताओं की सीमा निर्धारित की । उन्होंने सच्चाई और ईमानदारी से जीविकोपार्जन और जीवन यापन पर बल दिया! कबीर के इस मानवतावादी दृष्टिकोण से धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त कटुता का बहुत सीमा तक अन्त हो सका । उनका यह मानवतावादी सिद्धान्त समाज केलिए प्रेरणा श्रोत था ।

महात्मा कबीर

कबीर ने समाज में व्याप्त अमानवीय त्रासोन्मुखी मानसिकता को अच्छी तरह पहचाना और यह भी जाना कि ऐसी अवस्था में मानव कल्याण या समाज सुधार असंभव है और इसलिए इस प्रवृत्ति का निराकरण करते हुए लोगों में आत्मविश्वास और आत्मस्फूर्ति भर देने की कोशिश उन्होंने की जिससे व्यक्ति सुधर सके और मानवीय तत्वों से ओतप्रोत रहकर समाज का कल्याण कर सके । जन-साधारण के दिलों में छिपी संवेदना एवं रागात्कता को उन्होंने जगा दिया । उन्होंने परहित को ही अपना हित समझा, अहिंसात्मक प्रवृत्तियों को अपनाया । अहंकार रहित होकर जनता-जनार्दन की सच्ची सेवा की । वे आत्मा के सच्चे पूजारी थे न कि शरीर के । इसलिए उनका अटल विश्वास रहा कि जहाँ सत्य नहीं है वहाँ धर्म भी नहीं हो सकता। सत्य तथा धर्म पर जमे हुए मैल को पोंछने का असाधारण कार्य कबीर ने किया। इसलिए वे संत कहलाये ।

लौकिक एवं पारलौकिक जीवन में अद्‌भुत संतुलन एवं समन्वय स्थापित करते हुए और गौरवमय जीवन बिताते हुए संत कबीर ने समाज का पथ-प्रदर्शन किया । कर्मण्यता उनके जीवन का संपूर्ण ध्येय रही । समाज के आडंबरों को ठुकराते हुए आत्म निष्ठा और आत्मा विश्वास के बल पर व्यक्ति ने सफलता पायी।

समाज उनकी पुकार सुनने पर विवश हो गया । यही संत कबीर की महत्ता रही। धर्म पर चलते हुए कबीर ने अपने संत विशेषण को सार्थक बनाया यों तो संतों का लक्ष्य मानव जीवन को समुचित महत्व प्रदान करना होता है । कबीर ने आध्यात्मिक आधार पर जीवन का पुनर्निर्माण करते हुए इसी पृथ्वी पर जीवन मुक्त बनकर विश्वकल्याण में सहयोग देने का महत्वपूर्ण कार्य किया । कबीर ने एक साखी में कहा है कि

निरबैरी निहकांमता, सांई सेती नेह
बिखया सौं न्यारा रहै, संतनि का अंग एह ।'' [१]

याने संत निरबैरी अर्थात् किसी से किसी प्रकार की भी शत्रुता न रखने के कारण, निष्काम होने के कारण किसी वस्तु की कामाना न रखने से, परमात्मा के प्रति प्रेम की भावना रखने से और सारे विषय वासनाओं से अलग रहने के कारण, अनासक्त रहे हैं । संतों के जैसे व्यक्ति का हृदय भी प्रकाशपूर्ण रहा है जहाँ हमेशा ईश्वर वास करते हैं । उनका मन हमेशा एकरस एवं एकभाव में लीन रहा है । ऐसे उदात्त गुणों वाले कबीर यदि समाज सुधार या लोकमंगल की भावना से प्रभावित रहें, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

वस्तुतः कबीर का व्यक्तित्व असाधारण था । वे निष्काम कर्मयोगी एवं एकता के पूजारी थे । उनमें विनयशीलता और अक्खडपन का अद्‌भुत सामंजस्य था । वे वैष्णव भक्त थे साथ ही वैष्णव भक्तों के जप, तप, माला, छापा, तिलक की निन्दा भी करते थे । मुल्ला और पंडित दोनों उनके कोप के शिकार थे । उनके इसी निराले व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १५६

'' वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे, हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे, वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे, योगी होकर भी योगी नहीं थे । वे कुछ भगवान की ओर से सबसे न्यारे बनाकर भेजे गये थे । वे भगवान की नृसिंहावतार की मानवप्रतिमूर्ति थे । नृसिंह की भाँति वे नाना असंभव समझी जानेवाली परिस्थितियों के मिलनबिन्दु पर अवतीर्ण हुए थे ।'' [१]

कबीर अपनी आत्मा के सच्चे उपासक थे । आत्मा का सच्चा उपासक न तो किसी संप्रदाय में विश्वास करता है और न किसी के सामने घुटने टेकता है । वह किसी पिटे-पिटाए मार्ग पर भी नहीं चलता । कबीर जो कुछ करते थे, जो कुछ कहते थे उसका मूलाधार होता था उनका आत्मविश्वास । उनकी निर्भीकता, उन की फटकार, उनका फक्कडपन, उनकी साधु-सेवा, उनका गार्हस्थ्य-प्रेम, उनकी वाणी सब उनके आत्मविश्वास से ओत-प्रोत थे । आत्मा न तो हिन्दू है न मुसलमान, न तो शेख है न जुलाहा, न तो ब्राह्मण है, न शूद्र, न तो छूत है न अछूत। वह अजर अमर है, अविनाशी है, ईश्वर का अंश है । इसलिए वह विश्वसनीय है । मनुष्य का वही सच्चा गुरु है । जिसने अपनी आत्मा का कहना माना वह कभी नहीं भटका । उन्होंने स्वयं अपना मार्ग बनाया और दूसरों को भी असी प्रकार अपना-अपना मार्ग बनाने का उपदेश दिया ।

कबीर एक सच्चे विचारक थे । खोटा खरा परखने की उनमें अद्‌भुत शक्ति थी । वे पूर्वनिश्चित किसी भी मान्यता को मानने केलिए तैयार न थे। उनके मत में मानव मंगल करने वाली सारी प्रवृत्तियाँ और चीज़ें खरी थीं और इसके विपरीत, मानव का अमंगल करनेवाली सारी चीज़ें एवं सारी प्रवृत्तियाँ खोटी थीं । कबीर ने जिस समाज मे जन्म लिया वह समाज उनके इन विचारों का पोषक नहीं था ।

---

१. डॉ.हज़ारी प्रसाद द्विवेदी कबीर पृ. १८१

उसमें सुधार अत्यन्त आवश्यक था । कबीर ने कथनी और करनी में कोई भेद नहीं देखा । इसलिए समाज सुधार के प्रयत्न उन्होंने किये । उन्होंने सत्य के बारे में सोचा और अपनी करनी में भी सत्य का ही अनुवर्तन किया । सत्य माने परमात्मा। यही उनका अंतिम लक्ष्य था। उनके हृदय पर, अस्तित्व पर, शरीर पर उस परमात्मा का ही रंग चढता रहा। वे अपने को सर्वशक्तिमान ईश्वर का कुत्ता मानते थे, जो ईमानदारी केलिए प्रसिद्ध है –

कबीर कूता रांम का, मुतिया मेरा नांउं
गले राम की जेवरी, जित खैंचै तित जाउं ।'' [१]

संक्षेप में कबीर का व्यक्तित्व विशिष्ट गुणों का भण्डार था । उनके निर्माण में उनका अपना ही हाथ था । डॉ.हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने उनके व्यक्तित्व के संबन्ध में ठीक ही लिखा है कि हज़ार वर्ष के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक नहीं उत्पन्न हुआ । सत्य के प्रति आग्रह और असत्य पर आघात, भक्त से आत्मीयता और मायावी से अलगाव, कथनी में शक्ति और करनी में विश्वास, संत होते हुए भी पूर्ण गृहस्थ, संघर्षमय जीवन बिताते हुए भी स्वतः सरल, उपदेश देनेवाले होकर भी स्वतः आचरणशील, सामान्य होकर भी असामान्य एवं अद्वितीय स्वभाव रखने वाले युग-द्रष्टा कबीर युग नायक भी थे ।'' [२] इन्हीं गुणों ने उन्हें लोकमंगल का सशक्त समर्थक बनाया।

कबीर–साहित्य-प्रेरणा तथा प्रभाव

युग की सक्रियता सुप्त चेतना को उद्‌बुद्ध करती है, उद्‌बुद्ध चेतना को

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १६१
२. डॉ.हज़ारीप्रसाद द्विवेदी कबीर पृ. ३८

आन्दोलित करती है और आन्दोलित चेतना को विशिष्ट रूप प्रदान करती है । इस रूप के निर्माण में जहाँ परिस्थितियों की शक्ति झलकती है वहाँ व्यक्ति की निजी प्रतिभा भी अभिव्यक्त होती है । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कबीर का जो रूप हमारे सामने आया है उसका मूल स्रोत समाज है । उनके युग का समाज व्यापक एवं कटु संघर्षों से भरपूर था । जाति-पाँति, उच्च-नीच की भावना तथा आपसी द्वेष फैला हुआ था । दर्शन, धर्म जैसे विभिन्न विषयों पर सतर्क अध्ययन करने की प्रेरणा उन को समाज से ही मिली थी । समाज को एक सूत्र में बाँधने वाली दार्शनिक एवं धार्मिक बातों को स्वीकार कर उन्होंने समाज में भेद या अलगाव पैदा करने वाले तथ्यों को अस्वीकार किया । कबीर वाणी, चाहे वह किसी रूप में क्यों न हों, समाज के चित्रों से वंचित नहीं है । कबीर ने अपने समय के समाज का यथातथ्य वर्णन किया है । उन्होंने समाज की कुरूपता पर कोई मुलम्मा चढाने का प्रयत्न नहीं किया और यह काम कबीर की प्रकृति के अनुरूप भी नहीं था । वे सत्य को घटा-बढा कर या गढ-छोल कर प्रस्तुत करने के न तो पक्ष में ही थे और न उनकी वाणी में इस प्रकार का कहीं संकेत ही मिलता है।

कबीर-युगीन धार्मिक वातावरण कबीर वाणी को प्रेरित करने में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है । सामाजिक विषमता का बहुत बडा कारण धर्मों की विविधता में खोजा जा सकता है । कबीर के युग में अनेक मत और संप्रदाय प्रचलित थे । धर्म के विकृत रूप ने कबीर को सबसे अधिक प्रेरित किया । उनकी वाणी का अधिकांश भाग धार्मिक विकृतियों की धज्जियां उडाने में ही व्यय हुआ है। कबीर की दृष्टि में उनके समय का एक भी धर्म विकृतियों से मुक्त नहीं था । कुप्रथाओं, रूढियों, कुत्साओं, अन्धविश्वासों, आडंबरों आदि ने मौलिक मानव धर्म को ध्वस्त कर दिया था । कबीर प्रथाओं, वेष-भूषाओं या तीर्थ व्रतों में धर्म को देखने

केलिए तैयार नहीं थे । उन्होंने धर्म के वास्तविक रूप को आडंबरों से मुक्त माना है । जो धर्म संकीर्णता से मुक्त और समता पर आधृत है और जिसका मूल सत्य और अहिंसा से पुष्ट है, वास्तव में वही धर्म है ।

जीवन की साधना कर्म और भक्ति के मार्ग पर आरूढ होकर प्रवृत्तिमूलक भी हो सकती है और केवल ज्ञान के मार्ग पर चलकर निवृत्तिमूलक भी । कबीर के युग में दोनों प्रकार की रचनायें प्रचलित थीं । एक ओर शंकर का अद्वैतवाद था जो ज्ञान और सन्यास की सफलता में ही जीवन की चरम परिणति मानता था । दूसरा वैष्णव धर्म था जो भक्ति और अहिंसा का प्रचार करता हुआ सांसारिकों केलिए भी ग्राह्य और काम्य था । कबीर इन सभी धाराओं से प्रभावित हुए । कबीर के आलोचकों ने उन पर पडे हए इन्हीं विभिन्न धाराओं के प्रभावों को आंका है । उन्होंने अपने समय के किसी मत का खंडन अथवा उपहास नहीं किया । सब मतों के प्रति उनका आदर का भाव था । उनका विरोध मत-विशेष के उन अनुयायियों से था जो पाखंडी, धूर्त और ढोंगी थे । उन्होंने प्रत्येक मत के मूल-सिद्धान्तों में गहराई तक उतरकर विचार किया, समझा-बूझा और फिर पाया कि सब मूलतः एक ही हैं । कोई किसी से भिन्न नहीं है ।

कबीर–साहित्य एवं भारतीय संस्कृति

कबीर के विषय में यह कहा जाता है कि भारतीय संस्कृति में जो भी मूल्यवान है, उसे उन्होंने ग्रहण किया । इसका कारण यह था कि उनकी दृष्टि वाद-ग्रस्त नहीं, मानवीय थी । वे किसी एकवाद के पर्दे में सीमित नहीं थे । वे प्रत्येक सिद्धान्त, विचारधारा और साधना-पद्धति का मूल्यांकन करने में बडे समर्थ थे और उसके दोषों को त्याग कर उनके गुणों को ग्रहण कर लेते थे । उन्होंने कहा है कि

जो मूर्ख होते हैं वे गुणवान वस्तु से भी लाभ नहीं उठा सकते । समुद्र की लहरें जब मोती फेंकती हैं तो बगुला उसके मूल्य को नहीं समझता और हंस चुन चुनकर सब मोती खा लेता है –

कबीर लहरि समंद की, मोती बिखरे आइ
बगुला परख न जांनई, हंसा चुनि चुनि खाई।'' [१]

वैदिक संस्कृति समतामूलक थी । वैदिक ऋषि जड और चेतन में कोई तात्विक भेद नहीं मानते थे । वेदों में कर्मकाण्ड का प्राधान्य है । कर्मकाण्ड व बलि मनुष्य देवताओं को प्रसन्न करने केलिए करते थे । कर्मकाण्ड और अध्यात्म पर आधारित वैदिक दृष्टि में लोकजीवन की उपेक्षा नहीं थी । वहाँ लोकमंगल की भावना सर्वत्र दिखाई पडती है । वैदिक मंत्रों में परिवार की सुख-समृद्धि की कामना तथा अज्ञान, क्षुधा और व्याधि से मुक्ति की भावना मिलती है । सन्त काव्य में विशेषतः कबीर की वाणी में लोकमंगल का यही स्वर सर्वत्र विद्यमान है । उनकी दृष्टि में आपाततः दिखाई पडने वाले नाना प्रकार के भेद कृत्रिम हैं, मनुष्य निर्मित है । तत्वतः संपूर्ण जगत् एक ही महाशक्ति से परिचालित है और अन्ततः उसी में विलीन हो जाता है । वैदिक-मंत्रों में लोक-परलोक दोनों का चिन्तन उपलब्ध है। उनमें आध्यात्मिक उत्कर्ष के साथ भौतिक उत्थान की भी कामना मिलती है उनमें समाज के सभी वर्गों के कल्याण की इच्छा की गई है। ''ऋग्वेद को पढने पर पाठक के मन पर यह छाप पडे बिना नहीं रहता कि आज हमारे बीच की पशुपालक जातियों के गीतों और आलापों की भाँति थे वैदिक सूक्त भी दिन-प्रतिदिन की अभिलाषाओं की अभिव्यक्ति मात्र हैं ''। [२] कबीर की वाणी भी चराचर जगत् के

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २०५
२ डॉ.बलदेव उपाध्याय भारतीय दर्शन पृ. ६५

कल्याण की प्रतिध्वनि है जो वेदों द्वारा प्रभावित है । एक वाणी में कबीर संसर्ग के विचित्र परिणाम के बारे में बताते हैं और संसर्ग की भिन्नता से स्वाति नक्षत्र की बूँद में आने वाला परिवर्तन दिखाकर सच्चरित्र व्यक्तियों से संबन्ध रखकर व्यक्ति के सुधर जाने एवं भलाई पाने का आह्वान करते हैं –

''मूरिख संग न कीजिए, लोहा जल न तिराई ।
कदली सीप भुवंग मुख एक बूँद तिहुं भाई ।'' [१]

कबीर की विचारधारा उपनिषदों के बहुत निकट है । एक प्रकार से समस्त संत वाणी में उपनिषदों के तत्वचिन्तन की प्रतिध्वनि देखी जा सकती है । उपनिषदों में ब्रह्म और आत्मा में अभेद घोषित किया गया है । कबीर भी उपनिषदों के स्वर में आत्मा और परमात्मा को अभिन्न घोषित करते हैं–

''आत्माराम अवर नहीं दूजा [२]

कबीर ने नाथ पंथी योगियों से बहुत कुछ अपनाया । नाथपंथ वज्रयान का परिष्कृत रूप था । नाथ योगियों की साधना-प्रणाली हठयोग पर आधारित थी । हठयोग के प्रचार और प्रसार में गोरखनाथ का प्रमुख योग रहा है । गोरखनाथ ने कर्मकाण्ड, मूर्तिपूजा और तीर्थाटन का विरोध किया था, शास्त्रीय विधि-निषेधों को अस्वीकार कर दिया था । कबीर की वाणी में हठयोग संबन्धी उक्तियाँ अनेक हैं । डॉ.हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की 'कबीर' [३] नामक पुस्तक के अन्तर्गत हठयोग की साधना पद्धति का विशद विवेचन करते हुए उन्होंने लिखा है कि–''इस प्रकार आत्मा

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ.२२०
२. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. १००
३. डॉ.हज़ारीप्रसाद द्विवेदी कबीर पृ. ५१

को शून्य में और शून्य को आत्मा में लय करके साधक समाधि में लीन हो जाता है। उस समय उसके भीतर भी शून्य है और बाहर भी शून्य है-जैसे आसमान में कोई सूना घडा रखा हो। परंतु वह असल में भीतर से भी पूर्ण होता है, बाहर से भी पूर्ण होता है-समुद्र में जैसे भरा घडा हो ।'' जैसे-

''अन्तःशून्यो बहिः शून्यो शून्यः कुम्भ इवाम्बरे
अन्तः पूर्णो बहिः पूर्णो, पूर्णः कुम्ब इवार्णवे ।'' [१]

कबीर ने इसी तथ्य को बडे ही कौशल के साथ व्यक्त किया है-

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, यह तथ कह्यो गियानी
आगे गगना अन्तें गगना, मध्ये गगना भाई
कहै कबीर करम किस लागें झूठी एक उपाई ।'' [२]

कबीर रचना पर जैनों का प्रभाव भी पडा है । नवीं शताब्दी में जैन धर्म अनेक बाह्याचारों से युक्त था । प्रस्तुत परिस्थिति में कुछ सुधारकों ने लोक भाषा को माध्यम बनाकर समाज में प्रचलित अनेक दुर्गुणों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हुए उनको दूर करने का प्रयास किया । 'पाहुड दोहा' के रचनाकार जैन मुनि रामसिंह का नाम इनमें मुख्य है । वे बताते हैं-''अरे ओ मुंडिया ! तू ने मुड तो मुंडा लिया, चित्त (मन) क्यों नहीं मूँडा । जिसने चित्त का मुंडन कर लिया, उसने संसार का भी खंडन कर दिया-

---

१. डॉ.सरनामसिंह शर्मा कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्ध पृ. ४२७
२. डॉ. श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. ४४

"मुंडिया मुडिया मुंडिया । सिस मुंडिया चित्तु ण मुंडिया
चित्तहं मुंडणु जि कियउ । संसारहं खंडणुति कियउ ।"[१]

कबीर की साखियों में इनके दोहों के भावों को देख सकते हैं –

कैसों कहा बिगरिया, जे मूडै सौ बार
मन कौं काहे न मूडिए, जामैं बिरखै बिकार ।" [२]

कबीर ने वैष्णव धर्म से बहुत कुछ सीखा । अहिंसा, भक्ति, लोक-सेवा आदि की उदात्त भावनायें कबीर में और वैष्णव धर्म में समान ही हैं । कबीर के युग में वैष्णव, शैव, शाक्त आदि का व्यापक प्रभाव फैला हुआ था । इनमें कबीर ने वैष्णव मत को ही अधिक मान्यता दी है । उन्होंने अन्य सभी मतों की आलोचना करते हुए केवल वैष्णव भक्त को ही अपना प्रिय माना तथा बार-बार उनकी प्रशंसा भी की है । कबीर अपना संगी-मित्र दो को ही मानते हैं-

"मेरो संगी दोई जनां, एक बैस्नों एक राम
वो है दाता मुकुति का, वो सुमिरावै नांम ।" [३]

कबीर एवं सूफीमत

ईसा की आठवीं शताब्दी में इस्लाम धर्म में एक धार्मिक क्रांति हुई । पुराने विचारों के कट्टर मुसलमानों का एक विरोधी दल उठ खडा हुआ । फारस के प्रस्तुत छोटे से संप्रदाय ने परंपरागत मुस्लिम आदर्शों का घोर विरोध किया ।

---

१. डॉ.सरनामसिंह शर्मा कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्थ पृ. २२६
२. डॉ. पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २२१
३. वही पृ. १५३

संसार के सारे सुखों की तिलांजलि देकर सादगी और सरलता को उन्होंने अपनाया। सूफियों की साधना में प्रेम की प्रमुखता के साथ साथ विरह को प्रिय मिलन के उत्तम साधन के रूप में स्वीकार किया गया है । कबीर की प्रिय-मिलन व्याकुलता की तीव्रता सूफी संप्रदाय की देन है । कबीर ने सूफियों की अन्य मान्यताओं को स्वीकार तो नहीं किया, केवल विरह की स्वीकृति उनके प्रतीक-विधान की स्वीकृति के साथ-साथ की । कबीर के 'विरह को अंग' से संबन्धित साखियों में यह प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित है । कबीर बताते हैं -'' हे प्रभु ! मैं बहुत दिनों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ । मेरा हृदय तुमसे मिलने केलिए व्याकुल है और मन में चैन नहीं है ।''

बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी रांम
जिया तरसै तुझ मिलन, कौ, मन नाहीं विसराम ।'' [१]

प्रेम के साथ इस सूफी मत में प्रेम का नशा भी प्रधान है । उसमें नशे के खुमार का और भी महत्वपूर्ण अंश है । उसी नशे के खुमार की बदौलत ईश्वर की अनुभूति का अवसर मिलता है । संसार की कोई स्मृति नहीं रहती, शरीर का कुछ ध्यान नहीं रहता । केवल परमात्मा की 'लौ' ही सब कुछ होती है । कबीर ने भी एक स्थान पर लिखा है --

''हरि रस पीया जांनिए, जे उतरें नाहिं खुमारि
मैमंता घूमत फिरै, नाहिं तन की सारि ।'' [२]

लेकिन कबीर की प्रेम-पद्धति सूफियों की प्रेम-पद्धति से भिन्न है । सूफी मत में

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १४३
२. वही पृ. १७८

ईश्वर की भावना स्त्री रूप में मानी गयी है । वहाँ भक्त पुरुष बनकर ईश्वर रूपी दैवी स्त्री को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है । परंतु कबीर में राम याने परमात्मा, उनके पति अथवा प्रेमी है और जीवात्मा याने साधक पत्नी अथवा प्रेमिका है । भारतीय भक्ति-पद्धति के अन्तर्गत भी आत्मा-परमात्मा की यही स्थिति स्वीकार की जाती है। यहाँ यह कहना भी अनुचित न होगा कि कबीर ने परमात्मा को केवल 'पति' रूप में ही नहीं अपितु पिता, माता, स्वामी आदि रूपों में भी चित्रित किया है । सूफी संप्रदाय में इस प्रकार की स्वतंत्रता नहीं है ।

कबीर की रचनाएँ

कबीर के युग में काव्य को लोकहित के साथ संबन्धित करके देखा जाता था। उन्होंने भी अपनी साखियों का उद्देश्य बताया है-

''हरु जी यहै विचारिया, साखी कहाँ कबीर
भौसागर मैं जीव है, सुनिकै लागे तीर । [१]

कबीर ने जो कुछ अनुभव किया उसको वाणी देकर भवसागर में पडे हुए छोटे-बडे सबों को उससे मुक्ति देकर किनारे पर पहुँचाने का स्तुत्य कार्य किया । कबीर की रचनाओं में तत्कालीन समाज के अनेक-मुखी चित्र हमें स्पष्ट परिलक्षित होते हैं । उनमें समाज की चिन्ता प्यार और मनोदशा उभर आई है ।

कबीरदास के नाम पर जो वाणियाँ मिलती हैं उनका कोई हिसाब नहीं है । उन्होंने मसि कागद छुआ नहीं था और न कलम ही पकडी थी । यहाँ यह मानना उचित है कि कबीर अपनी वाणी को पुस्तक का रूप देना नहीं चाहते थे क्योंकि

---

१. डॉ.जयदेवसिंह कबीर वाङमय खंड ३ पृ. २३८

पोथी-ज्ञान के प्रति उनकी आस्था नहीं थी । वे अनुभव से अर्जित ज्ञान को महत्व देते थे । उनके कथन मौखिक ही हुआ करते थे उनको लिखने का कार्य उनके शिष्यों ने किया । यह संभव है कि कबीर वाणी को पूर्णतः कोई एक व्यक्ति न कर पाया हो । जिसको जो कुछ मिल गया हो, उसी को उसने संचित कर लिया । इसलिए कोई संग्रह या संकलन कबीरवाणी की पूर्णता का दावा नहीं कर सकता । ये वाणियाँ हस्तलिखित एवं मुद्रित रूप में प्राप्त होती हैं । प्रस्तुत अध्ययन केलिए केवल मुद्रित प्रतियों का ही सहारा लिया गया है ।

कबीर की वाणियों में सर्वप्रथम 'बीजक' ही छापा गया । बीजक कबीर पंथियों का पूज्य एवं आदरणीय ग्रन्थ है । बीजक शब्द साधरणतः उस सूची केलिए प्रयुक्त होता है, जिसमें माल का विवरण, दर, मूल्य आदि लिखा होता है । बीजक शब्द का एक और अर्थ यह है कि शत्रुओं के आक्रमण के वक्त लोगों ने अपने धन को पृथ्वी में यत्र-तत्र गाड दिया और उन स्थानों के संकेतात्मक सूची को वे बीजक कहते थे । यहाँ बीजक में कबीर ने जीब को शब्द द्वारा वित्त सम गुप्त बातें बताने का प्रयत्न किया इसलिए बीजक शब्द सार्थक प्रतीत होता है । कबीर की रचनाओं को बीजक नाम देने में उनकी रहस्यात्मकता भी सामने आती है । अतः बीजक वह ग्रन्थ है जिससे अन्तरतम में स्थित परम सत्य का साक्षात्कार हो सके ।

सिक्खों के धर्मग्रन्थ 'श्री गुरुग्रन्थ साहब' में भी कबीर की वाणी मिलती है। इसका संग्रह गुरु अर्जुनदेव जी ने सन् १६०४ ई में किया था । 'गुरुग्रन्थ साहब' को आधार बनाकर प्रयाग विश्वविद्यालय के डॉ.रामकुमार वर्मा ने सन् १९४३ ई. में साहित्य भवन, इलहाबाद से 'संत कबीर' प्रकाशित करवाया ।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा से दो संग्रह प्रकाशित किये गये-डॉ.श्यामसुन्दर

दास की 'कबीर-ग्रन्थावली' एवं अयोध्यायसिंह उपाध्याय की 'कबीर-वचनावली' । कुछ फुटकल रचनाओं का भी प्रकाशन हो गया । जैसे डॉ.रामकुमार वर्मा की 'कबीर पदावली', रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'वन हंड्रेड पोएम्स ऑफ कबीर', पं.हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की 'कबीर', श्री परशुराम चतुर्वेदी की 'संत काव्य' आदि रचनायें ।

कबीर की रचनाओं के प्रमुख संग्रह

यों तो अनेक व्यक्तियों ने कबीर की रचनाओं के संग्रह निकाले हैं फिर भी इसमें से चार संग्रह प्रमुख माने जा सकते हैं । कबीर-साहित्य की प्रामाणिकता और पाठनिर्धारण का महत्वपूर्ण कार्य सर्वप्रथम बाबू श्यामसुन्दरदास ने किया । उन्होंने सन् १९२८ ई.में दो हस्तलिखित प्रतियों [१] के आधार पर 'कबीर-ग्रन्थावली' का संपादन करके नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित कराया । प्रस्तुत 'कबीर-ग्रन्थावली' के प्रकाशन के पन्द्रह वर्षों के बाद डॉ.रामकुमार वर्मा ने 'संत-कबीर' नाम से कबीर की रचनाओं के अन्य संस्करण निकाले ।

कबीर-साहित्य के स्वरूप-निर्धारण का दूसरा कार्य डॉ.पारसनाथ तिवारी ने 'कबीर-ग्रन्थावली' नाम से किया है । इसकेलिए उन्होंने कबीर नाम से प्राप्त प्रचुर सामग्री का सतर्कता एवं सावधानी से अध्ययन करके निष्कर्ष रूप में २०० पदों, २० रमैनियों, एक चौंतीसी और ७४४ साखियों को प्रामाणिक रूप से कबीर की रचना माना है ।

इसके बाद डॉ.माताप्रसाद गुप्त ने 'कबीर-ग्रन्थावली' का संपादन किया है । प्रस्तुत संस्करण का पाठ एवं छन्द संख्या लगभग बाबू श्यामसुन्दर की 'कबीर

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली प्रथम संस्करण की भूमिका पृ. १

ग्रन्थावली' जैसी ही है । प्रत्येक साखी के प्रारंभ में कबीर शब्द अवश्य जोड दिया गया है । फिर डॉ.शुकदेव सिंह ने बीजक पर नया कार्य किया है। बीजक के प्रामाणिक पाठ निर्धारण केलिए विद्वान लेखक ने लगभग बारह हस्तलेखों और तीन दर्जन के आस-पास बीजक के मुद्रित संस्करणों का उपयोग किया है । इस प्रकार कबीर-साहित्य संबन्धी कार्यों का विवेचन बाबू श्यासुन्दर दास, डॉ.पारसनाथ तिवारी, डॉ.माताप्रसाद गुप्त और डॉ.शुकदेव सिंह द्वारा पाठ-निर्धारण और प्रामाणिकता संबन्धी किये गये कार्य अधिक वैज्ञानिक और सुसंगत हैं ।

कबीर का प्रमुख साहित्य तीन रूपों में विभक्त है -रमैनी, साखी और सबद या पद । यह माना गया है कि रमैनी में जगत, साखी में जीव और सबद में ब्रह्म संबन्धी विचार हैं ।

रमैनी

'बीजक' कबीर का प्रमाणिक ग्रन्थ माना जाता है । बीजक में रमैनी को प्रथम स्थान दिया गया है । रमैनी शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में हुआ है-

१. जिसमें संसार के जीवों के रमण का विवेचन हुआ है
२. परम तत्व में रमण करनेवाली
३. एक शब्द विशेष जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं । रमैनी में मुख्य रूप से सृष्टि और जीव तथा जगत् की स्थिति पर विचार किया गया है ।

अधिकतर रमैनियों मे राम तत्व की व्याख्या है । रमैणी का सीधा संबन्ध रामायण से है । रामायण से रामायणी रमयनी और फिर रमैनी हो जाना स्वाभाविक है । कबीर ने इनमें निर्गुण राम (ब्रह्म) का महत्व प्रकट किया है ।

साखी

कबीर साहब के काव्य रूपों में साखियों का प्रमुख स्थान है । उनके विभिन्न विचारों को प्रकट करने का प्रमुख माध्यम साखियाँ ही हैं । कबीर ने कितनी साखियाँ लिखीं, इसका कोई निर्धारित प्रमाण उपलब्ध नहीं है । डॉ.श्यामसुन्दर दास द्वारा संपादित 'कबीर ग्रन्थावली' में ८०९ साखियाँ संग्रहीत हैं । डॉ. पारसनाथ तिवारी की खोज में कबीर के नाम से ४५०० साखियाँ प्राप्त हुई किन्तु उन्होंने ७४४ साखियाँ को ही प्रामाणिक माना है ।

'साखी' शब्द संस्कृत के साक्षी का तद्भव है । साक्षी का अर्थ होता है- गवाह। गवाही केलिए संस्कृत में साक्ष्य शब्द है । साक्ष्य वह है जिसने स्वयं अपनी आँखों से तथ्य देखा है । कबीर ने अपनी इन उक्तियों का शीर्षक साखी इसलिए दिया है कि उन्होंने इसमें वर्णित तथ्यों का स्वयं साक्षात्कार किया है। उन्होंने किसी से सुनकर या दूसरे ग्रन्थों में उपलब्ध बात नहीं कही है । विषय की दृष्टि से कबीर साहब की साखियों को प्रधानतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है --

१. लौकिक भाव प्रधान

२. पारलौकिक भाव प्रधान

१. लौकिक भाव प्रधान

कबीर संत होते हुए भी सामाजिक हैं । समाज की अनेक गतिविधियों, दशाओं और भावनाओं का प्रभाव उनके मन पर पडा है । समाज संबन्धी भावनाओं और विचारों तथा इस लोक के समस्त क्रिया-कलापों को लेकर चलने वाली साखियाँ लौकिक भाव प्रधान हैं । इन लौकिक भाव प्रधान साखियों को भी तीन मुख्य भागों

में विभाजित किया जा सकता है--

१. सन्त मत का स्वरूप बतानेवाली

२. पाखण्डों का विरोध करने वाली

३. व्यापार प्रधान

१. सन्त मत का स्वरूप बतानेवाली साखियाँ

कबीर साहब ने भी अपनी कतिपय साखियों में सन्त और सन्तमत के संबन्ध में अपने विचार प्रकट किए हैं । उन्होंने अपनी एक साखी में कहा है--

"निरबैरी निहकामता साई सेती नेह
बिखया सौ न्यारा रहै, संतनि का अंग एह ।" [१]

इस साखी में संतों के चार लक्षण बताए हैं निरबैरी अर्थात् संतों का कोई जीव, जाति, मनुष्य, संप्रदाय, देश, धर्म आदि शत्रु नहीं होता । संत तो "वसुधैव कुटुम्बकम्" की दशा में रहते हैं । निहकामता अर्थात् निष्काम कर्म-बिना फल की इच्छा के कर्तव्य की दृष्टि से कर्म करना । भगवान से प्रेम-समस्त संसार में व्याप्त भगवान से प्रेम करने का व्यावहारिक अर्थ हुआ-सबसे प्रेमभाव रखना । सांसारिक विषयों से वैराग्य संत उन समस्त आसक्तियों से दूर रहे जो उपर्युक्त तीन बातों को अपनाने में बाधा डालती हैं ।

उस काल में भीख मांगने वालों की बहुत बडी संख्या इधर से उधर साधुओं के नाम पर भीख माँगती फिरती थी । संत कबीर ने भगवद् भजन के साथ ही अपने कारोबार में लगे रहने का ब्रत लिया । उच्चकोटि के संत होते हुए भी वे जीवन भर

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १५६

अपने धंधे में लगे रहे । उन्होंने --

''मांगण मरण समान है बिरला बंचै कोई
कहै कबीर रघुनाथ सूँ मतिर मंगावै मोहि ।'' [१]

कहकर भिक्षावृत्ति का घोर विरोध किया । उनकी दृष्टि में संत का लक्ष्य धन संग्रह नहीं है ।

पाखण्डों का विरोध करने वाली साखियाँ

व्यावहारिक क्षेत्र में कबीर पूर्णतः प्रगतिशील दिखाई देते हैं । वे परंपरागत रूढियों, अंधविश्वासों, मिथ्या प्रदर्शनों एवं अनुपयोगी रीतिरिवाज़ों के कट्टर विरोधी हैं । वे सभी धर्मों की मूलभूत एकता को स्वीकार करते हुए धर्म के नाम पर होने वाले पारस्परिक विरेध की तीव्र भर्त्सना करते हैं । इसी प्रकार वे मूर्तिपूजा, व्रत-उपवास, तीर्थाटन, रोजा, कुरबानी आदि के भी विरोधी थे । वैष्णवों के प्रति कबीर के हृदय में प्रेम है किन्तु वैष्णवों के भी बाह्य भेष, जपमाला, छापा, तिलक के वे विरुद्ध हैं । बनावटी भेष धारण करने वाले वैष्णवों की भी वे खतरी खोटी सुनाते हैं--

वैसनों भया तौ का भया, बूझा नहीं विवेक
छापा तिलक बनाइ करि, दग्ध्या लोक अनेक ।'' [२]

कबीर यहाँ पूछते हैं-यदि तूने विवेक नहीं प्राप्त किया, सत्-असत् के अन्तर को नहीं पहचाना तो केवल वैष्णव मत में दीक्षित हो जाने से क्या लाभ ? तू माथे पर

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २४१
२. डॉ.जयदेवसिंह कबीर वाङमय खंड - ३ पृ. १९६

तिलक और वस्तत्रादि में रामनाम का छापा लगाकर अनेक भोले भाले लोगों को ठगाता रहा और अपने कर्मों से पीडित करता रहा ।

सच्ची मानवता एवं सनातन धर्म को प्रमुखता देनेवाले कबीर ने ईश्वर भक्ति के आडंबरों को भी चुनौती देने का साहस किया । कदाचित उनसे पहले इतने निर्भीक और तटस्थ भाव से किसी और सन्त ने यह पराक्रम नहीं दिखाया था –

''यह सब झूठी बन्दगी विरथ पंच नवाज़
साँच मारे झूठी पढि काजी करै अकाज ।'' [१]

याने कबीरदास काजी से पूछते हैं - है काजी तू पाँच बार नमाज़ पढता है । क्या तू कुरान की आयतों के अनुसार आचरण भी करता है ? यंत्रवत् वाचिक प्रार्थना से तू तत्व को नहीं पहचान सकता । शब्दों के जाल में फँसे रहने से सत्य की हत्या ही होगी और तू जिस लक्ष्य की प्राप्ति केलिए वंदना करता है उससे च्युत हो जाएगा। तू अपनी ही हानि करेगा । खंडनात्मक शैली में कही गयी इन साखियों में किसी धर्म से द्वेष या वैमनस्य नहीं बल्कि मानवता की पुकार है ।

३.व्यवहार प्रधान साखियाँ

कबीर साहब दिव्य दृष्टि संपन्न सन्त थे उन्होंने समाज को खुली आँखों से देखा था । इसलिए उनके काव्य में समाज के बहुत रूप प्रतिबिंबित हुए हैं । व्यवहार प्रधान साखियों में संसार के प्रत्येक क्षेत्र में उचित व्यवहार की रीति बताई गई है । विधि-निषेध द्वारा अनेक सद्भावनाओं का उपदेश यहाँ दिया गया है । इन साखियों में मानवमात्र के कल्याणकारी अनुभव का नवनीत ही है । परनिन्दा,

१. डॉ.जयदेवसिंह कबीर वाङमय खंड - ३ पृ. १८३

असत्य, वासना, धन-लोभ, क्रोध, मोह, मद मत्सर, कपटादि का निषेध करके वे सहिष्णुता, दया, अहिंसा, दान, धैर्य, संतोष, क्षमा, विश्वास, समदर्शिता, परोपकार तथा मीठे वचनादि केलिए आग्रह करते हैं ।

कबीरदास कहते हैं दूसरों को उपदेश देना सुगम है स्वयं आचरण करना कठिन, जब उपदेश को त्यागकर आचरण किया जाता है तभी समाज में सुख वर्षा होती है–

कथनी मीठी खांड सी, करनी विष की लोय
कथनी तजि करनी करें, विष ते अमृत होय ।

२. पारलौकिक भाव प्रधान

प्रस्तुत साखियों में कबीर ने अपनी भावनाओं को लौकिक स्तर से उठाकर आध्यात्मिक या अलौकिक विचार धाराओं से भर लिया है । वह कभी तो उस परम शक्ति के साक्षात्कार से अभिभूत होकर अनेक प्रकार से उसका गुणगान करने लगते हैं तथा उसी का स्मरण और आत्म निवेदन करते हुए विश्व कल्याण की कामना करते हैं । पारलौकिक भाव प्रधान साखियाँ चार भागों में विभाजित की जा सकती हैं –

१. भक्ति प्रधान
२. दर्शन प्रधान
३. रहस्यात्मक
४. कथनी प्रधान

१. भक्ति भाव प्रधान

भगवान के प्रति सखाभाव से अनुरक्त रहकर भक्ति करना । कबीर साहब का प्रभु उनका सखा है । मुनियों को भी जिसका ज्ञान होता उसे ही कबीर ने अपना अभिन्न हृदय मित्र बना लिया है–

पाणी ही तैं पतला, धूवां ही तैं क्षीण
पवना वेगी उतावला, सो दोसत कबीरै कीन ।'' [१]

२. दर्शन प्रधान

कबीर की पारलौकिक साखियों में से कुछ साखियाँ दर्शन प्रधान भी हैं । कबीर तो भक्त, ज्ञानी और चिन्तक थे । कबीर कहते हैं कि ब्रह्मा निर्गुण और निराकार से भी परे वह पुष्प की सुगन्ध से भी सूक्ष्म है–

जाकै मूँह माता नहीं, नाही रूप अरूप
पुहुप बास थै पातरा, ऐसा तत्व अनूप । ''[२]

जैसे पानी से हिम बनता है और हिम गलकर पुनः जल बन जाता है और जल सूखकर हवा में उडकर अरूप में विलीन हो जाता है । वह ब्रह्म भी अरूप सत्ता से बना था अरूप में ही विलीन हो जाता है । उसके भेद को भी कहा नहीं जा सकता-

पाणी ही थैं हिम भया ,हिम ह्वै गया विलास
जो कुछ था सोई भया, अब कछु कह्या न जाय ।'' [३]

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २२८
२. वही पृ. १६३
३. वही पृ. १६८

संसार की असारता और परमात्मा की प्रमुखता दिखाते हुए कबीर ने सामान्य लोगों को जीवन की असारता के बारे में सोचने एवं स्वार्थ का त्याग करने का मार्ग दिखाया। साथ ही परमात्म चिन्तन में निमग्न रहने का उपदेश देते हुए अहिंसा, परोपकार, समभाव, दया आदि गुणों के विकास केलिए प्रयत्न करने का मार्ग दिखाया जो अन्ततः समाज सुधार एवं लोकमंगल में परिणत हो सके । इस प्रकार कबीर के विषय मूलतः लोगों को कल्याण की ओर ले जानेवाले बन गये ।

३.रहस्यात्मक

संत कबीर की कुछ साखियाँ रहस्यात्मक हैं । कबीर की आत्मा अपने को जलाकर भी प्रियतम के दर्शन केलिए तैयार है--

इस तन का दीवा करौ बाती मेल्यू जीव
लौही सीचौ तेल ज्युं कब देखो मुख पीव ।'' [१]

४.कथनीप्रधान

कथनी-प्रधान साखियों में कबीर की पारलौकिक भावना एक विशेष रूप में अभिव्यक्त हुई है । इनमें कथन के चमत्कार के साथ ही शैलीगत विचित्रता भी है। यह साखियाँ हठयोगी साधना और उलटबासियों से संबद्ध हैं । कबीर ने कहीं कहीं उलटबासियों के सहारे उलटे सीधे ढंग से अपनी भावनाओं को प्रकट किया है--

समन्दर लागों, आगि, नदियाँ जलि कोइला भई
देखि कबीरा जागि, मंछी रूपां चठि गई ।'' [२]

१. डॉ.परासनाथ तिवारी कबीर -ग्रन्थावली पृ. १४४
२. वही पृ. १४८

संक्षेप में साखी उपदेश देने तथा कर्तव्य का ज्ञान कराने केलिए कही गई है। इनमें अधिकतर ऐसे निषय हैं जिन्हें कबीर ने अपने दैनिक जीवन में भली भाँति समझकर प्रमाणित कर लिया है । साखियों में विचारों और भावों का सम्मिश्रण है। इनमें नैतिक, आध्यात्मिक, सांसारिक, पारलौकिक आदि विभिन्न विषयों का वर्णन है। इनमें कहीं कठोरता है तो कहीं विनम्रता, कहीं संयोग है तो कहीं वियोग । उन्होंने प्रत्येक मनुष्य की परिस्थितियों के अनुसार उसे उपदेश देकर कृतार्थ करने केलिए साखियों का प्रयोग किया है

सबद (पद)

साखियों के बाद कबीर द्वारा सर्वाधिक प्रयुक्त काव्य रूप पद या सबद है । उन्होंने अपने भावों और विचारों को जनता तक पहुँचाने केलिए मुख्यतः साखियों और पदों की ही सहायता ली है । डॉ.श्यामसुन्दर दास की 'कबीर-ग्रन्थावली' में पदों की संख्या ४०३ है, डॉ.पारसनाथ तिवारी की खोज में कबीर के नाम से लगभग १६०० पद प्राप्त हुए किन्तु वे २०० पदों को ही प्रामाणिक मानते हैं । पदों केलिए सबद (शब्द) तथा 'बानी' शब्दों का भी प्रयोग मिलता है । कबीर तथा अन्य संत इन पदों को लोगों के बीच गाते थे । गीति काव्य की दृष्टि से पदों का बहुत महत्व है । धर्मोपदेश, सुधार एवं प्रचार की भावना की प्रमुखता के कारण पदों की अभिव्यक्ति का स्वरूप अत्यन्त सरल और सीधा बन गया है । साखियों के समान कबीर के पदों को भी प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है ।

१. लौकिक भाव प्रधान

२. पारलौकिक भावप्रधान

सांसारिक भावों और विचारों से प्रभावित होकर कहे गये पद लौकिक भाव

प्रधान कहे जा सकते हैं । इनको भी मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

१. धार्मिक पाखण्डों का खण्डन करने वाले पद

२. उपदेशात्मक और नीतिपरक पद

१. धार्मिक पाखण्डों का खण्डन करने वाले पद

कबीर जातिवाद, ऊँचनीच की भावना तथा दिखावटी धार्मिक क्रिया कलापों के घोर विरोधी हैं। उन्होंने अपने पदों में अनेक स्थानों पर हिन्दू धर्म एवं इस्लाम के कुछ क्रिया कलापों का विरोध किया है । यदि हिन्दू धर्मावलंबी देवों और द्विजों की पूजा करते हैं, पूर्व दिशा को महत्व देते हैं, गंगा स्नान करते हैं, एकादशी का व्रत रखते हैं, तो मुसलमान रोज़ा रखते हैं पश्चिम को मुँह करके नमाज़ पढते हैं । इन्हें यह ध्यान नहीं कि यदि मस्जिद अल्लाह का घर है और मन्दिर भगवान का तो अन्य स्थान किसके हैं--

इनकै काजी मुलां पीर पैकंबर, रोजा पछिम निवाजा
इनकै पूरब दिया देव दिज पूजा, उदारिया गग दिवाजा ।'' [१]

२. उपदेशात्मक पद

उपदेशात्मक पदों में कबीर ने भ्रम में भूले हुए जीव को अनेक प्रकार से जगाने का प्रयत्न किया है । यथा--

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. १०६

"जागि रें जीव जागि रे
चोरन के डर बहुत कहत हैं उठि उठि पहरे लागि रे ।" [१]

इस प्रकार के पदों में भावुकता अधिक नहीं है क्योंकि कबीर की मनोवृत्ति उपदेशात्मक बातों के निरूपण में उलझ गई है । कबीर ने अपने हृदय की बात को जनता तक सरलतापूर्वक पहुँचाने की इच्छा से पद रचना की । उन्होंने काव्य के बाह्य सौन्दर्य की ओर ध्यान नहीं दिया । धर्मोपदेश सुधार और प्रचार की भावना ने इनकी अभिव्यक्ति के स्वरूप को अत्यधिक सीधा और सरल बना दिया है । कलात्मकता इनमें नहीं हैं बल्कि हृदय पर चोट करने की शक्ति सर्वत्र है ।

संक्षेप में, ज्ञान की चेतना, भक्ति की मधुरता, परम सत्ता से तादात्म्य और मानव जन्म की सार्थकता का परिचय इनके काव्य में व्याप्त है । कबीर का मूलस्वर सहिष्णुता और आत्मवत् अनुभव की भावना है । इन्होंने अपनी वाणियों द्वारा मानव-मात्र के स्वाभिमान को जगाया । मानव-मूल्यों की स्थापना, संस्कृति की गुणवत्ता एवं परिष्कार, चरित्रोत्थान, लोकमंगल कबीर के काव्य की मूल चेतना है । धर्म को अन्धविश्वास, कलुषित वृत्तियों के जाल से निकालकर उन्होंने उसको ज्योतिर्मय बनाने का साहसपूर्ण कार्य किया । कबीर ने अपने अन्तःकरण के सत्य को अपने काव्य में उद्‌घाटित किया और यही कारण था कि वह जीवन के सत्यों से अलग नहीं रह सके । स्वानुभूत ज्ञान में कितनी प्रबल शक्ति, उद्धाम आवेग होता है, कबीर का काव्य यह सिद्ध करता है । कबीर कोई बंधे-बंधाये परिवेश के कवि नहीं थे, हृदय की मुक्तावस्था ही कबीरदास की कविता थी । साखी, सबद और रमैनी में अपनी बात को कह दिया । इन वाणियों के द्वारा कबीर का लक्ष्य धर्म, दर्शन, आध्यात्म के प्रतिपादन की अपेक्षा मानव और समाज को एक स्वस्थ,

१. डॉ.जयदेव सिंह कबीर वाड़मय खंड-दो, सबद पृ. १४७

परिष्कृत, सुव्यवस्थित, सुदृढ, उदात्त और सुन्दर रूप देना था । कबीर ऐसे तपस्वी या साधक नहीं थे जो केवल अपने कल्याण केलिए ही आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख हुए थे, वे अपने अनुभवों द्वारा जन समाज का मार्ग दर्शन करना चाहते थे, लोकमंगल की कामना करते थे ।

बाइबिल का परिचयात्मक अध्ययन

बाइबिल शब्द व्युत्पत्ति

बाइबिल युनानी शब्द बिब्लोस से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है पुस्तक । यह शब्द किसी साधारण पुस्तक केलिए प्रयुक्त नहीं होता । विश्व की एक तिहाई से भी अधिक जनता उसे पवित्र ग्रन्थ के रूप में मानती है । साधारण पुस्तकों की अपेक्षा बाइबिल अधिक भक्तिपूर्ण, ज्ञान वर्धक एवं प्रेरणादायक है। लतीनी भाषा में बिब्लोस शब्द का बहुवचन रूप बिबलिया प्रयुक्त होने लगा और यही शब्द लतीनी भाषा के द्वारा धर्मशास्त्र के रूप में सर्वत्र प्रचलित हो गया । बाइबिल उस लतीनी शब्द का अंग्रेज़ी रूप या उच्चारण है ।

बाइबिल का विभाजन

बाइबिल एक पुस्तक नहीं, वरन् अनेक पुस्तकों का संकलन है । इसमें कुलमिलाकर तिहत्तर (७३) पुस्तकें है और चालिस (४०) लेखक हैं । इनके रचना काल का विस्तार दस शताब्दियों तक फैला पडा है । अनेक लेखकों द्वारा रचित प्रस्तुत धर्मग्रन्थ की मूलभाषा इब्रानी और यूनानी है । इनकी साहित्यिक शैली में भी भिन्नता पायी जाती है । इनमें कहीं ऐतिहासिक वृत्तान्त, कहीं काव्य, कहीं नियमावली, कहीं उपदेश, कहीं पत्र और कहीं जीवन-चरित है । जो व्यक्ति वचन

का उपयोग ठीक ढंग से करता है, उनके अनुसार जीता है वह समाज में सज्जन नाम से जाना जाता है । वह स्वयं पवित्र बनता है और पद-दलित समाज को कुकर्म से बचाकर सन्मार्ग पर आने की प्रेरणा भी देता है । इसमें लोकमंगल की ध्वनि मिलती है ।

बाइबिल को मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा है-पुराना विधान या प्राचीन नियम (आल्ड टेस्टामेण्ट) एवं नया विधान या नया नियम (न्यू टेस्टामेन्ट) । बाइबिल की तिहतर पुस्तकों में छियालीस पुस्तकें 'पुराना विधान' के अंतर्गत आती हैं जो ईसा मसीहा के आगमन के पहले इब्रानी भाषा में लिखी गयी हैं । यहूदियों द्वारा आदर से संरक्षित प्रस्तुत प्राचीन नियम की पुस्तक ईसा मसीह के समय में भी विद्यमान थी । यहूदी उसे ईश-वाणी का दर्जा देते थे तथा अपने धार्मिक जीवन की नियामक समझते थे । ईसा ने अपने जीवन एवं भाषण में 'पुराना विधान' को एक समुचित स्थान दिया । वे बताते हैं - 'यह न समझो कि मैं संहिता अथवा नबियों के लेखों को रद्द करने आया हूँ । इन्हें रद्द करने नहीं बल्कि पूरा करने आया हूँ ।' [१] ईसा के आगमन के बाद सौ वर्षों में लिखी गयी सत्ताइस (२७) पुस्तकों का समुच्चय है 'नया विधान' । नया विधान' का केन्द्रबिन्दु ईसा मसीहा ही हैं । ईसा के तीस वर्ष से शुरू होकर सत्तर वर्षों में रचित प्रस्तुत 'नया विधान' अनेक मोतियों से युक्त एक महासागर है ।

बाइबिल के विषय

संपूर्ण बाइबिल में ईश्वर के अनुपम प्रेम तथा मनुष्य के प्रति उसकी दयालुता को मुख्य विषय के रूप में हम अनुभव कर सकते हैं । ईश्वर का प्रेम मनुष्य के प्रेम से कई गुना अधिक है । उन्होंने अपनी अनन्त करुणा से विश्व की सृष्टि की और

१. नया विधान संत मात्यू ५:१५

मनुष्य को अपना ही प्रतिरूप बनाया ।[१] ईश्वर की इच्छा थी कि मनुष्य, मनुष्य रहकर हमेशा खुश रहे और उनके द्वारा पूरा विश्व मंगलमय हो । लेकिन मनुष्य ने ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन कर ईश्वर के समान बनना चाहा । मनुष्य ने ईश्वर की निरपेक्षता और प्रेम को इनकार किया । उनकी बुराई के फल से पाप का आगमन हो गया और मंगल के बदले अमंगल का स्वागत क्रिया गया । संत पोल कहते हैं कि सब मनुष्य स्वभाव से पापी हैं क्योंकि मनुष्यों के हृदयों की गहराई में ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध जाने की प्रवृत्ति है । पाप का मतलब मनुष्य का स्वार्थ और अहम् है । पाप मनुष्य के द्वारा ईश्वर की इच्छा की अवज्ञा करना है । पापों के द्वारा मानव की आध्यात्मिक मृत्यु का उदय हुआ । इस तरह मानव के ईश्वरीय जीवन से सहभागिता नष्ट हुई । प्रभु येसु इस संसार में इसलिए आये ताकि वे पाप एवं मृत्यु का विनाश कर जीवन की पूर्णता को ईश्वर में पुनः स्थापित कर सकें । प्रभु येसु ने क्रूसमरण द्वारा मृत्यु पर विजय पाकर सारी मानव जाति को क्षमा प्रदान की और मृत्यु से पुनः ईश्वरीय जीवन में प्रवेश दिलाया । याने पथ भ्रष्ट मानव जाति को सुधार कर मंगल मार्ग की ओर लौटाया । यही बाइबिल का मुख्य प्रतिपाद्य है।

बाइबिल में मानव कल्याण केलिए अनेक तत्वों का समावेश हुआ है जो ईश्वरीय प्रेरणा के मिस लोगों तक पहुँचाने का प्रयत्न हुआ है । इस कारण से धर्म-ग्रन्थ होते हुए भी बाइबिल सामान्य मानव के सदाचरण का महत्व उद्घोषित करता है । चुने हुए लोगों ने ही बाइबिल की विभिन्न पुस्तकों की रचना की है । इनमें से कई लोग प्रतिभा के धनी थे, जिनमें नैसर्गिक रूप से काव्य लिखने की ताकत थी। उसकी सहायता से इन लेखकों ने अपनी स्वतंत्र प्रतिभा और व्यक्तिगत शैली पर ज़ोर देते हुए, देश-काल की सीमाओं में आबद्ध रहकर इन ग्रन्थों की रचना की ।

१. पुराना विधान उत्पत्ति ग्रन्थ १:२७

बाइबिल में ईसा मसीह मनुष्यत्व के आदर्शों को आम लोगों के सामने प्रस्तुत करते हैं । वे ग्रन्थकार विख्यात साहित्यकार, श्रेष्ठ वैज्ञानिक या समुन्नत इतिहासकार न थे । वे साधारण मानव थे और उनका धन ईश्वरानुभव मात्र था । ईश्वर से संबन्धित उनके ज्ञान एवं अनुभव दूसरों को देकर उनको भी ईश्वरानुभव से संपन्न करते हुए मानवीय तत्वों से अवगत कराना उनका लक्ष्य था । वे सदा मानवकल्याण केलिए जागरूक थे । करीब दस शताब्दियों के स्त्री-पुरुषों, उनके विश्वासों और संशयों, वीरता और कायरता, सफलता और विफलता, धर्म और अधर्म का वृत्तान्त इनमें लिपिबद्ध है ।

बाइबिल की पुस्तकें का संक्षिप्त परिचय

'पुराना विधान' की पुस्तकें

बाइबिल की पहली पाँच पुस्तकें याने उत्पत्ति-ग्रन्थ, निर्गम-नग्रन्थ, लेवी-ग्रन्थ, गणना-ग्रन्थ और विधि-विवरण-ग्रन्थ मिलकर 'पेन्टाट्यक' कहलाते हैं जिसका अर्थ है पाँव ग्रन्थ । यह यूनानी भाषा का शब्द है । इब्रानी भाषा में इनको 'तौरत' या 'टोरा' कहते हैं जिसका अर्थ है 'संहिता' । इसका कारण यह है कि इन पांच ग्रन्थों में मुख्यतः यहूदियों के विधि-विधान दिये गये हैं, जिनपर उनका नैतिक आचरण एवं धार्मिक विधियाँ निर्भर करती है । पुराना विधान की पुस्तकों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-इतिहास-ग्रन्थ, नबियों के लेख एवं प्रज्ञा या उपदेशक ग्रन्थ । इतिहास ग्रन्थों में-उत्पत्ति, निर्गमन, लेवी, गणना, विधि-विवरण, जोशुआ के ग्रन्थ, न्याकर्ताओं का ग्रन्थ, रूत का ग्रन्थ, सामूएल के दोनों ग्रन्थ, राजाओं के दोनों ग्रन्थ, पहला और दूसरा इतिहास ग्रन्थ, एस्रा का ग्रन्थ, नेहम्या का ग्रन्थ, टोबित का ग्रन्थ, यूदित का ग्रन्थ, एस्तेर का ग्रन्थ, मक्काबियों का पहला और दूसरा ग्रन्थ आदि है ।

प्रज्ञा या उपदेशक तथा काव्यात्मक ग्रन्थों में सात ग्रन्थ हैं जो ज्ञान साहित्य नाम से प्रसिद्ध हैं । अंग्रेज़ी में इन्हें 'विस्डम लिट्रेचर' (Wisdom Literature) कहते हैं ।जोब का ग्रन्थ, स्त्रोत्र-ग्रन्थ, सूक्ति-ग्रन्थ, उपदेशक-ग्रन्थ,सोलमन के सर्वश्रेष्ठ गीत, प्रज्ञा-ग्रन्थ और प्रवक्ता-ग्रन्थ आदि इसके अंतर्गत आते हैं । ये सब ग्रन्थ एक ही तरह के नहीं । जोब के ग्रन्थ में एक सनातन प्रश्न उठाया गया है कि मनुष्य के सुख-दुख का आधार क्या है ? उस युग की धारणा थी कि दुख पापों के कारण प्राप्त होता है और सुख पुण्य के कारण । प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा इस प्रश्न का समाधान मिलता है कि मनुष्य के पाप-पुण्य का निर्णय इस जीवन में नहीं होता, मृत्यु के बाद होता है । प्रज्ञा में सबसे महत्वपूर्ण स्तोत्र-ग्रन्थ है । इन स्तोत्रों में विभिन्न ऐतिहासिक और धार्मिक विषयों को प्रस्तुत किया गया है । कुछ स्तोत्रों में इस्राएलियों का इतिहास वर्णित है । कुछ में ईश-कीर्तन, धन्यवाद ज्ञापन, पापों केलिए ईश्वर से क्षमा-याचना और प्रभु की अनुकम्पा की याचना है । सूक्ति, उपदेशक, प्रज्ञा एवं प्रवक्ता-ग्रन्थ में विभिन्न प्रकार की शिक्षा संबन्धी सूक्तियाँ दी गयी हैं । सूक्ति अनुभवसिद्ध सत्पुरुषों की वाणी है जो अंधकारावृत मानव जीवन में प्रकाश किरण सा काम करती है । जिसके द्वारा स्फूर्ति, प्रोत्साहन और मानसिक बल प्राप्त कर मनुष्य अपनी जीवन यात्रा सुगमतापूर्वक आगे ले चलता है । सूक्तियों में थोडे शब्दों में बहुत बातें कही जा सकती हैं । यह मानव जीवन का घनीभूत रत्न है । सोलमन के सर्वश्रेष्ठ गीत (सोन्ग ऑफ सोन्गस) प्रेम गीत हैं, जो मनुष्य को मानवीय प्रेम द्वारा ईश्वरीय प्रेम तक पहुँचाते हैं । तीसरा विभाग है नबियों के ग्रन्थ। नबियों के दो विभाग हैं-महान एवं छोटे । महान नबियों के ग्रन्थों के अंतर्गत चार ग्रन्थ हैं-इसया, जरेमिया, एज़ेकिएल एवं दानिएल । बारह छोटे छोटे नबियों के ग्रन्थों में होसिया, जोएल, आमोस, ओबद्याह, योना, मीकाह, नाहूम, हब्क्कूक, सफानिया, हग्गय, ज़करिया, मलआकी आते हैं । बारूक एवं शोकगीत भी नबियों

के ग्रन्थों के विभाग में आते हैं । प्रमुख चारों नबियों में इसया का नाम सबसे पहले आता है । उनके पास नैतिकता की प्रेरणा देने वाली और अनैतिकता का उन्मूलन करने वाली सशक्त व्यंग्योंक्तियों का कोष है । उनकी भविष्यवाणियों में ईसा मसीहा से संबन्धित अनेकानेक उल्लेख मिलते हैं । इसलिए नबियों में इसया को सुसमाचार लेखक कहा जाता है ।

'नया विधान' की रचनाओं का परिचय

'नया विधान' के प्रथम चार ग्रन्थ सुसमाचार नाम से जाने जाते हैं क्योंकि उनमें मानव जाति की मुक्ति का शुभ सन्देश मिलता है । इस शुभ संदेश के अन्तर्गत मनुष्य को दैवत्व तक ऊपर उठाने वाले सत्य, अहिंसा, शील, परोपकार, तप, कृपा, क्षमा, दया, नम्रता, उदारता, समता, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि गुणों के महत्व का चित्रण है ।

संत मात्यू के सुसमाचार को बाइबिल के उत्तरार्ध में प्रथम स्थान पर रखा गया है । इसका रचना काल ईस्वीं सन् ७५-९० के बीच माना गया है। यह सुसमाचार मुख्यतः यहूदी पाठकों केलिए लिखा गया है जिसमें मसीह के व्यक्तित्व का सजीव चित्र याने क्षमाशील, प्रेमपूर्ण तथा क्षमादान के भाव से भरपूर व्यक्ति का चित्र देख सकते हैं । उन्होंने अपने अनुयायियों को सिखाया कि -''दुष्ट का सामना नहीं करो । यदि कोई तुम्हारे दाहिने गाल पर थप्पड मारे, तो दूसरा भी उसके सामने कर दो ''।[१] यहाँ पर क्षमाशील का महत्व व्यंजित है । शत्रु भाव को दूर करने से मानव जीवन में आश्वासन अपने आप मिल जाता है । बाइबिल में- ''सर्वोच्च स्वर्ग में ईश्वर की महिमा प्रकट हो और पृथ्वी पर उसके कृपापात्रों को

१. नया विधान संत मात्यु ५.३९

शान्ति मिले'' [१] -कहकर इसी ओर संकेत किया गया है । क्षमाशीलता अनेक झगडे निपटाये जा सकते हैं और .नद्वारा रक्तपात से मानवता को बचाया जा सकता है।

संत मारक का सुसमाचार अन्य तीन सुसमाचारों से संक्षिप्त है और साथ ही यह सबसे प्राचीन भी माना जाता है । इसका रचनाकाल ईस्वीं सन् ६५-७० के बीच माना जाता है । संत लूक अपने सुसमाचार में ईश्वर को मुक्तिदाता के रूप में चित्रित कर, पापियों के प्रति उनकी दयालुता तथा दीन-हीन लोगों के साथ उनकी सहानुभूति का चित्रण करते हैं । मानव को स्वार्थ रूपी पापों के बन्धनों से छुटकारा दिलाना एवं सांसारिक मोहमाया के अंधकार में फंसे लोगों को मुक्ति दिलाना आदि उनके उपदेशों का मुख्य लक्ष्य है । मानव की यही स्थिति है कि वह ईश्वर के अस्तित्व को भूलकर धन, यश एवं नाम कमाने की होड में लग जाता है । शैतान का मार्ग कुकर्म का मर्ग है, वह अमंगल से युक्त है । सभी भौतिक एवं सांसारिक प्रलोभनों पर विजय पाने का उपदेश भी प्रस्तुत सुसमाचार से मिलता है ।

'नया विधान' का पंचम ग्रन्थ है प्रेरित चरित । इसमें अपने आपको सुधरकर मंगलमय जीवन बिताने वाले लोगों का चित्र हम देख सकते हैं । याने उस समय के सब लोग समान थे । उनमें कोई भी बडा, गरीब या ज़रूरमंद न था । उनका वह समुदाय प्रेममय, शांतिपूर्ण और सुन्दर था । वे नियमित रूप से मिलजुलकर प्रार्थना करते थे और अपने विश्वास में एक होकर अपनी संपत्ति को आपस में बांट लेते थे । जिनके पास ज्यादा या कम था वे इस पर गर्व नहीं करते थे या लज्जित नहीं होते थे । वे लोग अपनी सारी वस्तुओं को या जायदाद को बेचने और इससे जो पैसा एकत्रित होता था उसी से हर एक की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे । [२] भ्रातृप्रेम से पूर्ण एक समाज का चित्र बाइबिल के प्रस्तुत ग्रन्थ

१. नया विधान संत लूक २:१४
२. वही प्रेरित चरित २:४२-४७

में हम देखते हैं । एक दूसरे के प्रति द्वेष, दुश्मनी, आपसी फूट आदि रखकर जीवन बिताने वाले आधुनिक समाज के सामने भ्रातृप्रेम, दया, सहयोग एवं भूख से तडपने वालों को सहायता देकर लोकमंगल की कामना करने का आह्वान प्रस्तुत ग्रन्थ करता है ।

प्रभु ईसा मसीह के बाद संत पॉल 'न्यू टेस्टामेण्ट' के सबसे महत्वपूर्ण व्यक्तित्व हैं । उनके नाम से तेरह पत्र 'नया विधान' में संकलित हैं । वे हैं -रोमियों के नाम पत्र, कोरिन्थियों के नाम दो पत्र, गलातियों के नाम पत्र, एफेसियों के नाम पत्र, फिलिप्पियों के नाम पत्र, कलोसियों के नाम पत्र, थसलोनियों के नाम दो पत्र, फिलमोन के नाम पत्र, तिमथी के नाम दो पत्र, इब्रानियों के नाम पत्र । रोमियों के नाम पत्र में वे लिखते हैं -''मैं जो भलाई चाहता हूँ, वह नहीं कर पाता, बल्कि मैं जो बुराई नहीं चाहता वही कर डालता हूँ ।'' [१] संदेश यह है कि मानव मन हमेशा बुराइयों की ओर झुकता रहता है। लेकिन इनसे मानव को हमेशा सजग रहना चाहिए क्योंकि बुराईयाँ पाप को जन्म देनेवाली हैं । वे भ्रातृप्रेम का गुणगान, वेश्यागमन की निन्दा, मूर्तिपूजा से दूर रहने का अह्वान, मृतकों का पुनरुत्थान, उदारतापूर्वक दान देना, कष्टों पर गर्व करना, मनुष्य जो बोता है वही लुनता है आदि बातों पर विशेष विचार करते हैं ।

'नया विधान' के अन्य पत्र संत याकोब का पत्र, संत पीटर के दो पत्र, संत यूदस का पत्र और संत जोन के तीन पत्र है । संत याकोब अपने पत्र में दरिद्रों का सम्मान करने का आह्वान देकर कहते हैं कि ''भेदभाव और चापलूसी से दूर रहें। और आगे स्मरण दिलाते हैं कि यदि आप पक्षपात करते हैं तो पाप करते हैं ।''[२] संत

---

१. संत पोल रोमियों के नाम पत्र ७:१९
२. नया विधान संत याकोब २:९

पीटर अपने पत्रों द्वारा याद दिलाते हैं कि एक व्यक्ति को धार्मिकता के कारण दुख सहना पडता है, तो वह व्यक्ति धन्य है । अपना अन्तःकरण शुद्ध रखना आवश्यक है । सावधान रहें कि हत्यारा, चोर या कुकर्मी होने अथवा दूसरों के कामों में हस्तक्षेप करने के नाते कोई व्यक्ति दुख न भोगे । संत यूदस के पत्र में कहते हैं कि व्यक्ति अपने परमपावन विश्वास की नींव पर अपने जीवन का निर्माण करें, ईश्वर प्रेम में सुदृढ बने रहें और जिनको विश्वास में दृढता नहीं उन पर दया करे । उनकी चेतावनी यह है कि कुछ लोगों पर दया करते समय सतर्क रहें और विषयवासना से दूषित उनके वस्त्र से भी घृणा करें । संत जोन के तीन पत्रों में स्वस्थ समाज के निर्माण केलिए आवश्यक बातों पर बल दिया गया है । बाइबिल का अंतिम ग्रन्थ प्रकाशना ग्रन्थ है । प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रयुक्त विभिन्न प्रतीकात्मक दृश्यों का उद्देश्य संसार के अंत में बुराई की शक्तियों की पराजय, संसार के न्याय की स्थापना करना है । यह एक रहस्यात्मक पुस्तक है जो दुख संकट में रहनेवाले लोगों केलिए लिखी गयी है । यह दो युगों की मूल परिकल्पना पर आधारित है । इसमें वर्तमान युग का वर्णन है जो पूरी तरह बुरा है, जो नष्ट होने का है, जो शैतानी शक्तियों के हाथ में है । दूसरी ओर भावी युग का वर्णन है । वह नये आकाश और नयी पृथ्वी का युग होगा, जिसमें ईश्वर सब कुछ नया करेगा । याने यदि हममें प्रेम भाव की सच्ची जिज्ञासा उत्पन्न हो जाये तो निश्चय ही वह नया आकाश और नयी पृथ्वी से युक्त दिन दूर नहीं ।

बाइबिल की विभिन्न पुस्तकें

ऐतिहासिक पुस्तकें

मानव जीवन समस्याओं से भरा है । ये समस्याएँ जीवन को सजीवता

प्रदान करती हैं । ये समस्याएँ जीवन का रूप निर्धारित करती हैं । इन समस्याओं के दूर करने केलिए मनुष्य जिन परिस्थितियों का सामना करता है, उन परिस्थितियों का परिचय ही मानव जीवन का इतिहास है । उनसे उत्पन्न भाव संघर्ष ही इतिहास के तथ्यों का मूल है । विभिन्न समस्याओं के आधार पर लोक जीवन का जो ढंग बनता है, उसका क्रमिक रूप इतिहास में हम देखते हैं । व्यक्ति अथवा जाति के विकास व पतन की कहानी इतिहास में मिलती है । इतिहास के द्वारा मनुष्य जाति अपने पूर्वजों के जीवन की गतिविधि जान लेती है । अतीत को वर्तमान रखना इतिहास का लक्ष्य है । बाइबिल की ऐतिहासिक पुस्तकों का अपना विशिष्ट दृष्टिकोण है जिसमें लेखक समय और परिवर्तन को देखते हैं । बाइबिल की ऐतिहासिक पुस्तकों में छब्बीस पुस्तकें हैं-पुराना विधान में 'पंचग्रन्थी' से लेकर 'मकबियों का दूसरा ग्रन्थ' तथा 'नया विधान' के सुसमाचार और प्रेरित-चरित इनके अन्तर्गत आते हैं ।

बाइबिल के प्रथम ग्रन्थ 'उत्पत्ति' में प्रपंच सृष्टि एवं मानव सृष्टि के आरंभ का सुन्दर वर्णन मिलता है । मनुष्य द्वारा ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन, मनुष्य का पतन, पाप का आरंभ, उसके फलस्वरूप दुनिया में आपदा, विपत्ति, दुख, कष्ट एवं मृत्यु के आगमन आदि का चित्र प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम भाग में हम देख सकते हैं । आगे के अध्यायों में भी अच्छाई को छोडकर बुराई की ओर जानेवाली मानवजाति का चित्रण है । ''सब शरीरधारी कुकर्म पर चलने लगे थे [१] - कहकर ग्रन्थकार मानव में निहित बुराई की प्रबलता दिखाते हैं । मानव मूर्तिपूजा एवं पापकर्म की ओर बढते रहते हैं । इतनी अधिक धृष्टता के होते हुए भी मानव के प्रति ईश्वर की क्षमाशीलता एवं रक्षक रूप को यहाँ दिखाया गया है । मनुष्य के पाप उनके सद्भाव को भंग

---

१. पुराना विधान उत्पत्ति ग्रन्थ ६:१२

करते हैं । मानव को अपने पडोसी को अपने समान प्यार कर [१] ईश्वर के प्रति प्रेम दिखाने का आह्वान यहाँ मिलता है ।

मनुष्य हमेशा स्वतंत्र रहना चाहता है । दासता की बेडियों में जकडे रहना किसी भी मनुष्य केलिए हितकर नहीं है । यही बात 'निर्गमन-ग्रन्थ' में कही गयी है । इस ग्रन्थ में इस्राएलियों का मोसस के नेतृत्व में मिस्र के दासता से निकाले जाने (निर्गमन) का इतिहास है । प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रतिपादित एक और प्रमुख घटना है दस नियम (टेन-कमाण्डमेण्ड्स) को निर्धारित करना । 'टेन-कमाण्डमेण्ड्स' में दस नियम हैं जो समाज को सही दिशा में ले चलने, लोगों को नियंत्रित करने एवं जीवन को शांतिमय बनाये रखने केलिए आवश्यक हैं । ये नियम हैं-एकमात्र ईश्वर की पूजा करना, उसको छोडकर अपनेलिए कोई देवमूर्ति मत बनाना, प्रभु ईश्वर का नाम व्यर्थ मत लेना, विश्राम दिवस को पवित्र मानने का ध्यान रखना, अपने माता-पिता का आदर करना, हत्या मत करना, व्यभिचार मत करना, चोरी मत करना, अपने पडोसी के विरुद्ध झूठी गवाही मत देना, अपने पडोसी के घर-बार का लालच मत करना, अपने पडोसी की पत्नी का लालच मत करना । यहाँ सहानुभूति,दया और करुणा को स्वीकारने का और दूसरों से उसके साथ व्यवहार करने का आह्वान है ।

पंचग्रन्थ के लेवी, गणना, विधि-विवरण ग्रंथों में यह शिक्षा मिलती है कि लोग तभी सुख शान्ति से रह सकते हैं जब वे ईश्वर पर विश्वास करते हुए अपने धर्म में अटल रहते हैं । रूत की पुस्तक में मानव के सद्गुणों पर बल दिया गया है । इस कथा में यह दिखाया है कि अमीरी या गरीबी सद्गुणों का परिमाण नहीं हो सकती । यहाँ पर गरीबी में भी ऊँचे सद्गुणों का चित्रण दिखाया गया है । प्रस्तुत

---

१. पुराना विधान लेवी-ग्रन्थ १९:१८

पुस्तक से यह शिक्षा भी मिलती है कि विश्वास का अपना पुरस्कार है ।

जोशुआ के ग्रन्थ में मानव की परिश्रम शीलता एवं तज्जन्य कल्याण पर बल दिया गया है । परिश्रम से ऐश्वर्य की प्राप्ति संभव है । दूध और मधु की नदियाँ इसके प्रमाण हैं । धर्मानुष्ठान एवं कर्मनिरत रहने से ही मोक्ष की प्राप्ति संभव है । तभी मानव इन्द्रियों की गुलामी से छुटकारा पा सकता है और ईश्वर में लय प्राप्त कर सकता है । यही इस ग्रन्थ का संदेश है ।

न्यायकर्ताओं की पुस्तक में हमें यह शिक्षा मिलती है कि ईश्वर इतिहास का शासक है, ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना और उनकी इच्छा की पूर्ति करनी चाहिए । सामुएल के प्रथम ग्रन्थ में राजा के कर्तव्यों पर बल दिया गया है । यह भी दिखाया गया है कि मानव में अहंकार हमेशा नाश का कारण बनता है । संपन्नता में अहंकार न करते हुए ईश्वर में विश्वास रखकर विनयशील बने रहना मानव का कर्तव्य है । राजाओं की पुस्तक में दाविद के पुत्र राजा सोलमन से लेकर इस राजवंश के अन्त तक का इतिहास दिया गया है । प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा यह शिक्षा मिलती है कि राष्ट्र का राजनीतिक संगठन उसके नैतिक, आत्मिक संगठन के सामने बिलकुल गौण है । प्रस्तुत ग्रन्थों से पता चलता है कि उस समय के अधिकांश राजा कर्तव्यपालन में असफल रहे । अपनी प्रजा के सामने अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करने एवं उनके मंगल केलिए काम करने के बजाय वे उसे मूर्तिपूजा की ओर ले गये । याने पाप कर्म दोषभागी बनाते हैं । इनसे बचे रहना चाहिए ।

इतिहास की पुस्तक में यह शिक्षा मिलती है कि ईश्वर सर्वव्यापी है, सर्व-ज्ञानी हैं, सर्वसमर्थ हैं । इस संसार में ईश्वर क्रियाशील है । इतिहास का लेखक

यह स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करता है कि ईश्वर बुराई केलिए दण्ड और भलाई केलिए पुरस्कार देने के द्वारा अपनी नैतिक व्यवस्था को बनाए रखता है । एज्रा-नेहमिया की पुस्तकों से यह शिक्षा मिलती है कि हम पहले धार्मिकता की खोज करें । इन पुस्तकों में विश्वास एवं आचरण की शुद्धता पर ज़ोर दिया गया है । टोबित के ग्रन्थ द्वारा टोबित नामक एक संहिता-प्रेमी तथा परोपकारी व्यक्ति का चरित्र प्रस्तुत किया है । वे जीवन भर सन्मार्ग पर चलते रहे और धर्माचरण करते रहे । उन्होंने भूखों को भोजन और नंगों को वस्त्र दिया और कोई व्यक्ति मर जाता तो उसे दफनाता था।[१] यहाँ पर "परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्" वाली उक्ति सार्थक है । परोपकार मानव को उदात्तता प्रदान करता है । ईश्वर द्वारा चुनी हुई महिला के माध्यम से अपनी प्रजा की रक्षा है यूदित ग्रन्थ का विषय । प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा यही शिक्षा मिलती है कि निष्ठावान व्यक्ति को ईश्वर की सहायता एवं संरक्षण सदा मिलता रहेगा और उन्हें विपत्तियों से मुक्ति मिलती रहेगी । एस्तेर ग्रन्थ की कथा ऐतिहासिक है । प्रस्तुत पुस्तक से यह शिक्षा मिलती है कि आपत्ति के समय ईश्वर, विशवासी लोगों की रक्षा करता है । मक्कबियों के पहले ग्रन्थ में बताया गया है कि स्वधर्म पर अटल रहना मानव का कर्तव्य है । मक्कबियों के दूसरे ग्रन्थ का लेखक पाठकों के सामने एक ऐसा पवित्र ग्रन्थ उपस्थित करना चाहता है, जो ईश्वर की अलौकिक सहायता में आस्था उत्पन्न करे ।

'नया विधान' के प्रथम चार सुसमाचार एवं प्रेरित-चरित भी ऐतिहासिक ग्रन्थों के अंतर्गत आते हैं । 'नया विधान' के प्रस्तुत चार सुसमाचारों में कही गयी वाणी मानव के लौकिक आचरण को नियमित करती है, उसे मर्यादित करती है । इसलिए इनमें समाज-कल्याण की भावना निहित है । इसमें कही गयी बातें उच्च

१. पुराना विधान टोबित का ग्रन्थ १.१६. १७

जीवन की प्रेरणा देने के कारण स्तुत्य हैं साथ ही विभिन्न परिस्थितियो में आने वाली समस्याओं का सामना करने की शक्ति भी देती हैं। चारों सुसमाचारों में ईसा की जीवनी तथा उनकी शिक्षा का वर्णन इनमें किया गया है । लोगों को अंधकार, पाप, स्वार्थ, शोषण और अत्याचार से मुक्त करके परोपकार एवं उदारता की ओर ले जाने का कार्य इनमें हुआ है । इनका संदेश इस प्रकार है,वैरियों को क्षमा करें । बुराई के बुराई नहीं, शत्रुओं को क्षमा करके भलाई करनी चाहिए जिससे बुरे लोगों के मन परिवर्तन हों, और वे अपनी बुराई के कारण लज्जित हों । सुसमाचार में बताते हैं- 'अपने शत्रुओं से प्रेम करो और जो तुम पर अत्याचार करते हैं, उनकेलिए प्रार्थना करो । इससे तुम अपने स्वर्गिक पिता की सन्तान बन जाओगे, क्योंकि वह भले और बुरे, दोनों पर अपना सूर्य उगाता तथा धर्मी और अधर्मी, दोनों पर पानी बरसाता है।''[१]

वास्तव में ईसा के जन्म की अद्वितीयता इसी में है कि वे मानव जाति के प्रति ईश्वर के प्रेम का साकार संकेत या प्रत्यक्ष चिह्न हैं । उनका उद्देश्य है सबका उद्धार। लोकमंगल की भावना पर बल देते हुए हर किसी का सम्मान व आदर करके उनके प्रति सहनशील बनने तथा बुराईयों के विरुद्ध संघर्ष करने व कलंकित तत्वों को हटाने हेतु ईसा मानव को प्रेरित करते हैं । उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि करते हुए वे कहते हैं -''यदि तुम्हारा हाथ तुम्हारे लिए पाप का कारण बनता है, तो उसे काट डालो । अच्छा यही है कि तुम लूले हेकर ही जीवन में प्रवेश करो, किन्तु दोनों हाथों के रहते नरक की न बुझने वाली आग में न डाले जाओं ''। [२]

उनका आह्वान है कि प्रत्येक व्यक्ति को उन परिस्थितियों से दूर रहना चाहिए, जो उसे पाप करने केलिए प्रेरित करती हैं । अन्यथा वह हमें ईश्वर एवं

१. नया विधान संत मात्यु ५:४४-४५
२. नया विधान संत मारक ९:४३

अपने भाईयों के साथ पूर्ण संबन्ध स्थापित करने में बाधक बनेगी । यहाँ स्पष्ट है कि पाप सबसे बडा बाधक तत्व है, जो हमें सदाचरण से दूर रखता है ।

संत लूक ने ईसा को एक आदर्श मानव के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत सुसमाचार के द्वारा यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्य घमंडी और स्वाभिमानी मत बने। जो अपने को सर्वश्रेष्ठ समझता है तथा दूसरों को पापी मानकर तिरस्कार करता है वह सुख से वंचित रह जाता है । फरीसी और नाकेदार के दृष्टान्त [१] द्वारा यह व्यक्त किया गया है कि थोडी सी लापरवाही और असंयम सुविचार को दूषित करके ईश्वर प्रदत्त मानवीय सामंजस्य की भावना को आघात पहुँचाते हैं । मनुष्य ईमानदारी से आगे बढते जाए तो सफल जीवन जीकर दूसरों का मार्गदर्शन कर सकता है । मानव को एक दूसरे की ज़रूरत के प्रति संवेदनशील रहने का आह्वान भी वे देते हैं । प्रेरित चरित में विश्व कल्याण की भावना से युक्त होकर जीने का चित्र प्रस्तुत किया गया है । ग्रन्थ में बताते हैं - ''विश्वासियों का समुदाय एक हृदय और एक प्राण था । कोई भी अपनी संपत्ति अपनी ही नहीं समझता था, जो कुछ उनके पास था, उसमें सबों का साझा था ।'' [२]

सामाजिक पुस्तकें

समाज, व्यक्तियों के पारस्परिक मिलन की उपज है, व्यक्तियों का समूह है । इस मानव-जगत् को,मनुष्यों के इस समूह को मनुष्य समाज कहते हैं । समाज का अर्थ एक स्थान पर रहनेवाला समूह अथवा एक ही प्रकार का कार्य करने वाले लोगों का वर्ग, दल या समूह-समुदाय । मनुष्य इस लंबी जीवन यात्रा में पारस्परिक

१. नया विधान संत लूक १८:९-१४
२. वही प्रेरित चरित ४:३२

सहयोग, सह-अस्तित्व, समन्वय और संतुलन स्थापित करता है । उनके जीवन में पारस्परिक संबन्धों की भिन्नता भी स्वाभाविक है। व्यक्ति का सर्वांगीण विकास इन सामाजिक संबन्धों से होता है । समाज का वास्तविक स्वरूप देखने और समझने का एक माध्यम है साहित्य । बाइबिल में यहूदी या इस्राएल समाज के द्वारा पश्चिम एशियाई समाज की स्थिति का भी उल्लेख मिलता है । बाइबिल की सामाजिक पुस्तकों में जरेमिया का ग्रन्थ, एज़किएल का ग्रन्थ, बारूक का ग्रन्थ, ओबद्याह का ग्रन्थ, रोमियों के नाम पत्र, एफेसियों के नाम पत्र, फिलिपियों के नाम पत्र, थेसलोनियों के नाम पत्र, संत याकूब का पत्र, संत यूदस का पत्र, संत पीटर का पहला पत्र, संत जोन का पहला, दूसरा और तीसरा पत्र आते हैं ।

जरेमिया के ग्रन्थ में, जरेमिया ने अपने उपदेशों में धर्म के आध्यात्मिक मूल्यों और आत्मा-परमात्मा के घनिष्ठ संबन्ध पर विशेष बल दिया । ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण तथा दुःखभोग का जीवन बिताने के कारण नबी जरेमिया ईसा मसीहा के प्रतीक माने गये । एज़ेकियेल ग्रन्थ के द्वितीय भाग में (३४-४८) आशा का महान सन्देश है । एज़ेकिएल बताते हैं -''जो पाप करता है वह मर जायेगा । पुत्र अपने पिता के पाप का दण्ड नहीं भोगेगा । और पुत्र के पाप का दण्ड पिता नहीं भोगेगा। धर्मी को अपनी धार्मिकता का फल प्राप्त होगा और दुष्ट को अपनी दुष्टता का फल मिलेगा ।''[१] एज़ेकिएल के वचनों से यह शिक्षा भी मिलती है कि मनुष्य का संपूर्ण जीवन ईश्वर की पवित्र इच्छा के अधीन होना चाहिए । ''यदि पापी, अपना पुराना पापमय जीवन त्याग कर, ईश्वर की सब आज्ञाओं का पालन करता है और धार्मिकता तथा न्याय के पथ पर चलने लगता है, तो वह अवश्य जीवित रहेगा।''[२] सच्चा प्रेम, अपने पडोसी की शारीरिक और आध्यात्मिक सहायता देने

१. पुराना विधान एज़ेकिएल का ग्रन्थ १८:२०
२. वही १८:२१

के अलावा उस पडोसी की बुराईयों को सुधारने का, उसकी गलतियों को सूचित करने का अधिकार भी देता है ।

बारूक की पुस्तक में पाप केलिए क्षमा याचना करने का संदेश है । प्रस्तुत ग्रन्थ में मूर्तिपूजा की व्यर्थता का वर्णन भी मिलता है । इक्कीस पदों के ओबद्याह का ग्रन्थ नबियों की रचनाओं में सबसे छोटा है । इसमें दावीद राजा के वंश की पुनःस्थापना और भावी सुख-समृद्धि का वर्णन है । संत पोल के रोमियों के नाम लिखे पत्र में विश्वास की अनिवार्यता, आदर्श मसीही जीवन की विशेषता, मसीहियों के कर्तव्य आदि पर बल देते हैं । गैर-यहूदियों का अविश्वास और पापाचरण के बारे में लिखते हैं और आदर्श मसीही जीवन बिताने का आह्वान करते हैं । इसमें बताया गया है कि सेवा, भ्रातृप्रेम, अनुशासन, आत्मसंयम आदि के द्वारा समाज कल्याण एवं ईश्वर की स्तुति करना उचित है । संत पोल के एफेसियों के नाम पत्र में समाज में एकता बनाये रखने और नवीन स्वभाव धारण करने का अनुरोध करते है । ईसा ने शत्रुता को पराजित कर एक नयी मानवता की सृष्टि की । इसी प्रकार मानव को भी शत्रुता को मिटाकर शान्ति की स्थापना करना है । वे आह्वान करते हैं -''आप लोग सब प्रकार की कटुता, उत्तेजना, क्रोध, लडाई-झगडा, परनिन्दा और हर तरह की बुराई अपने बीच से दूर करें । एक दूसरे के प्रति दयालु तथा सहृदय बनें । जिस तरह ईश्वर ने मसीह के कारण आप लोगों को क्षमा कर दिया, उसी तरह आप भी एक दूसरे को क्षमा करें ''। [१] संत पोल ने फिलिप्पियों के नाम पत्र में प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच आनन्दित रहने का उपदेश दिया है । संघर्ष में दृढ बने रहें, एकता बनाये रखें, ईश्वर का अनुकरण करें आदि विषयों का भी उपदेश मिलता है। थेसलोनियों के नाम पत्र में शुद्धता, भ्रातृप्रेम, परिश्रम का महत्व, मृतकों का

---

१. संत पोल एफेसियों के नाम पत्र ४:३२

पुनरुत्थान, सदा जागृत रहने का अनुरोध, विश्वास में दृढता आदि पर बल दिया गया है । वे बताते हैं -''ईश्वर की इच्छा यह है कि आप लोग पवित्र बनें और व्यभिचार से दूर रहें । गैर यहूदियों की तरह, जो ईश्वर को नहीं जानते, कोई भी वासना के वशीभूत न हो ''। [१] आगे वे बताते हैं कि ईश्वर ने हमें अशुद्धता केलिए नहीं पवित्रता केलिए बुलाया । यहाँ संत पोल का लक्ष्य है कि समाज में लोग दुराचार से विमुक्त हो और सद्भावनाओं से युक्त हों । संत याकोब के पत्र में विपत्तियों से लाभ, कर्मों का महत्व, ईश्वर वचन का पालन, दरिद्रों का सम्मान, कर्मों के बिना विश्वास की व्यर्थता, जीभ पर नियंत्रण, परनिन्दा का निषेध, भविष्य का अनिश्चय, धनियों को चेतावनी, धैर्य की आवश्यकता, शपथ की निन्दा, प्रार्थना की आवश्यकता, पापियों का सुधार आदि विषयों पर ज़ोर दिया गया है । वे लिखते हैं- ''ईश्वर घमण्डियों का विरोध करता है, किन्तु विनीतों को अनुग्रह प्रदान करता है''।[२]

संत यूदस के पत्र में बहकाने वाले शिक्षकों से एवं पाप से दूर रहने का आह्वान देते हैं । उनका उपदेश है कि ''आप अपने परम पावन विश्वास की नींव पर अपने जीवन का निर्माण करें । कुछ लोगों का विश्वास दृढ नहीं है उन पर दया करें और उन्हें आग से निकाल कर उनकी रक्षा करें । आप कुछ लोगों पर दया करते समय सतर्क रहें और विषयवासना से दूषित उनके वस्त्र से भी घृणा करें ''। [३] संत पीटर के पहले पत्र में मानव को परमपावन ईश्वर के अनुरूप जीवन बिताने का आह्वान है। मसीहियों के कर्तव्यो की ओर भी वे ईशारा करते हैं । याने गैर-यहूदियों को सदुदाहरण, शासकों की अधीनता, विवाह के कर्तव्य, भ्रातृप्रेम,अत्याचार

---

१. संत पोल थेसलोनियों के नाम पत्र ४:३
२. नया विधान संत याकोब का पत्र ४:६
३. नया विधान संत यूदस का पत्र २०,२३

से धैर्य, निष्पाप जीवन आदि विषयों पर ज़ोर दिया गया है । उनका आह्वान है कि -''आप सब-के-सब एकमत, सहानुभूतिशील, भ्रातृप्रेमी, दयालु तथा विनम्र बनें। आप बुराई के बदले बुराई न करें और गाली के बदले गाली नहीं, बल्कि आशीर्वाद दें । आप यही करने बुलाये गये हैं, जिससे आप विरासत के रूप में आशीर्वाद प्राप्त करें''।[१] संत जोन के पहले, दूसरे और तीसरे पत्र में आह्वान किया गया है कि ईश्वरीय जीवन की सहभागिता की शर्तों का पालन करना, याने पाप से दूर रहना, आज्ञाओं का पालन करना, संसार से एवं मसीह-विरोधियों से सावधान रहना आदि। साथ ही साथ ईश्वर की सन्तान का आचरण करने का उपदेश भी देते हैं और कहते हैं कि एक दूसरे को प्यार करें, ईश्वर तथा मनुष्यों को प्यार करें क्योंकि ईश्वर-प्रेम है, विश्वास द्वारा संसार पर विजय प्राप्त करें, भटकानेवाले शिक्षकों से सावधान रहें आदि । जीवन में प्रेम और सद्भाव के साथ किये जानेवाले कार्य ही सफल हो सकते हैं । भ्रातृ-प्रेम द्वारा ही ईश्वर-प्रेम संभव है । हम अपने पडोसियों और ईश्वर से कितना ही प्रेम करें, पर हमारे प्रति ईश्वर के महान प्रेम का ऋण हम कभी नहीं उतार सकते । यही कारण है कि अपने ज़िद्दी पथभ्रष्ट भाईयों से द्वेष या नफरत न करें बल्कि उन्हें प्रेम से अपनायें । संक्षेप में बाइबिल के प्रस्तुत सामाजिक पुस्तकों द्वारा रचनाकार का यही उद्देश्य है कि सबसे पहले व्यक्ति व्यक्ति का सुधार हो इसके फलस्वरूप समाज में सुधार संभव है तभी पूरा संसार मंगल भावना से ओतप्रोत हो जाएगा ।

धार्मिक पुस्तकें

भलाई को महत्व देने वाले आचरण को धर्म कह सकते हैं । इसके द्वारा मनुष्य पूर्णता प्राप्त करता है । धर्म से प्रेरित मनुष्य कर्तव्यनिष्ठ, सदाचार प्रिय,

१. संत पीटर का पहला पत्र ३: ८-९

सुकृत करने वाला, पुण्य जीवन का इच्छुक, न्यायी आदि बन सकता है । बाइबिल में अन्य विषयों की अपेक्षा धार्मिकता को अधिक महत्व दिया गया है । इसकी वाणी द्वारा पाठकों के चरित्र को दृढता प्रदान करके संघर्षों का धैर्यपूर्वक सामना करने की क्षमता प्राप्त होती है । जब व्यक्ति सुधर जाता है तब समाज अपने आप सुधरने लगता है । तद्द्वारा लोककल्याण भी होता है । बाइबिल की विभिन्न पुस्तकों में निहित वाणियों का लक्ष्य भी यही समाज सुधार एवं लोकमंगल की भावना है ।

बाइबिल की धार्मिक पुस्तकों की संख्या सत्रह (१७) है । ये हैं-एशया, दानियेल, होसिया, आमोस, विलापगीत, जोएल, योना, नाहूम, सफन्याह, हग्गय, मलाकी, भजनगीत, कोरिन्थियों के नाम पत्र, गलातियों के नाम पत्र, थिमथी के नाम पत्र, इब्रानियों के नाम पत्र और सुसमाचार ।

प्रमुख चारों नबियों में एशया का नाम सबसे पहले आता है । उनके ग्रन्थ में मनुष्यों की पापावस्था, उनके व्यर्थानुष्ठान, घमण्ड, धिक्कार, कृतघ्नता, मूर्तिपूजा की निन्दा, दुष्टों पर दोषारोपण, अधर्म की निन्दा आदि का चित्रण मिलता है । यहाँ स्पष्ट किया गया है कि धार्मिक अनुष्ठान ढोंगी है जब तक मन शुद्ध नहीं होता ।[१] पवित्र मन में भगवान वास करते हैं । पवित्र गुणों से युक्त व्यक्ति ही समाज का भला कर सकता है । इसमें आगे कहा गया है-''पाप करना छोड दो, भलाई करना सीखो। न्याय के अनुसार आचरण करो। पददलितों को सहायता दो, अनाथों को न्याय दिलाओ और विधवाओं की रक्षा करो ''।[२] दीनों की सेवा मनुष्य मन को उदात्तता प्रदान करती है । ऐसे मन में हमेशा ईश्वर वास करते हैं । पश्चात्ताप कर लौटाने का आह्वान भी इस ग्रन्थ में यत्र तत्र देख सकते हैं । 'पुराना नियम'

---

१. पुराना विधान एशया का ग्रन्थ १:११
२. वही १:१६-१७

के नबियों की पुस्तक में स्वधर्म पर अटल रहने का उपदेश मिलता है । स्वधर्म पर अटल रहना मुक्तिमार्ग को खोलना है ।

होसिया की पुस्तक ईश्वर के अपरिवर्तनीय प्रेम की द्योतक है । इसमें यह भी कहा गया है कि प्रायश्चित ही पाप को दूर करता है । आमोस की पुस्तक में कहा गया है कि सामाजिक न्याय तो सच्ची पवित्रता की आवश्यक अभिव्यक्ति है । ईश्वर भक्तों की रक्षा करता है । ईश्वर की भक्ति व्यक्ति के पापों को दूर करके उनमें सद्‌गुणों को बढाती रहती है ।

शोकगीत पुस्तक में कहा गया है कि ईश्वर का मार्ग चिरंतन भलाई का मार्ग है । यदि हम पाप करते जाए तो पवित्र और धार्मिक ईश्वर की ओर से हमें दण्ड की अपेक्षा करनी चाहिए । मनुष्य यह सिखाते हैं कि उनके अनगिनत एवं कठोर पापों के बीच भी ईश्वर की सच्चाई और प्रेम एक स्थायी नींव और आशा के आधार के रूप में उनके सामने है । अंधकारावृत मानव-हृदय को प्रकाशोन्मुख कराने में प्रस्तुत पुस्तक विशेष महत्व का है ।

जोएल की पुस्तक में बताया गया है "....हृदय से पश्चाताप करो और अपने प्रभु ईश्वर के पास लौट जाओ, क्योंकि वह करुणामय, दयालु, अत्यन्त सहनशील और दयासागर है और वह सहज ही द्रवित हो जाता है ।" [१] नीतिनिष्ठ एवं विशुद्ध जीवन जीने का आह्वान ग्रन्थकार प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वारा लोगों को देते हैं ।

योना की पुस्तक की शिक्षा यह है कि ईश्वर दया करने में पक्षपात नहीं करता। इस ग्रन्थ में जातिभेद के विरुद्ध स्वर उठाया गया है और मानव मात्र की

---

१. पुराना विधान जोएल का ग्रन्थ २:१३

मुक्ति कामना की गई है । मीका की पुस्तक की शिक्षा यह है कि सामान्य मनुष्यों के अधिकारों की रक्षा की जानी चाहिए । धार्मिक पुनर्जागरण एवं भविष्य केलिए आशा संबन्धी वाणियाँ भी इसमें मिलती है । नाहुम की पुस्तक का केन्द्रीय विषय यह है कि क्रूरता, अत्याचार, मूर्तिपूजा तथा दुष्टता दूर की जानी चाहिए तभी तो मानव-मंगल संभव है । सफन्याह की पुस्तक में उन्होंने मन्दिर की धार्मिक दुर्दशा और कुलीन लोगों के भ्रष्टाचार के विरुद्ध उपदेश दिये है । वे आनेवाली विपत्तियों की चेतावनी और ईश्वर की दया का प्रचार करते थे । इनकी यही शिक्षा है कि लोगों को पवित्र और धार्मिक जीवन जीना चाहिए । हग्गय की पुस्तक में भक्ति के महत्व पर बल दिया गया है । भजनों की पुस्तक में कहा गया है कि हमें प्रत्येक स्थिति में ईश्वर के पास जाने की चेष्टा करनी चाहिए । ईश्वर पर सदा भरोसा करना चाहिए । क्योंकि वह प्रेम, करुणा, सच्चाई और धार्मिकता में परिपूर्ण है ।

मलाकी की पुस्तक के मुख्य विषय हैं याजकों के भ्रष्टाचार, लोगों का अपने परिवार के विरुद्ध पाप तथा विजातियों के विरुद्ध विवाह और बहु प्रचलित तलाक का विरोध । मलाकी ने बारंबार ईश्वर की सार्वभौमिकता के विषय में कहा है । प्रस्तुत पुस्तक में हमें यह शिक्षा भी मिलती है कि अन्य धर्म के अनुयायियों में उनके ईश्वर के प्रति जो सच्ची भक्ति भावना मिलती है उस भावना का हम आदर करें । दूसरों का आदर करना सद्भावना है यह मानव कल्याण में सहायक बन जाता है। कोरीन्थियों के नाम दूसरे पत्र में संत पोल ने अनेक धार्मिक सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं । इनमें विशेष रीति से ईश्वर का स्वभाव, स्वरूप और उसकी कार्यप्रणाली वर्णित हैं ।

गलातियों के नाम पत्र में उद्धार के विषय पर ज़ोर दिया गया है । संत पोल का कहना है कि आत्मा और शरीर एक दूसरे के विरोधी हैं, इसलिए लोगों को आत्मा

की प्रेरणा के अनुसार चलना चाहिए । आत्मा के फल हैं-प्रेम, आनन्द, शांति, सहनशीलता, मिलनसारी, दयालुता, ईमानदारी, सौम्यता, और संयम । शरीर के कुकर्म-व्यभिचार, अशुद्धता, लम्पटता, मूर्तिपूजा, जादू-टोना, बैर, फूट, ईर्ष्या, क्रोध, स्वार्थपरता, मनमुटाव, दलबन्दी, द्वेष, मतवालापन, रंगरलियाँ और इस प्रकार की और बातें आदि छोड़ने का उपदेश दिया गया है । थिमथी के नाम पत्र में पुनर्जीवित ईसा (ईश्वर) को बराबर याद रखने और विश्वासियों का आदर्श बनने का अनुरोध करते हैं । साथ ही भ्रामक धारणाओं की निन्दा, ईश्वर की कृपा, स्त्रियों के कर्तव्य, धर्म का रहस्य, झूठे धर्म प्रचारकों से सावधानी, सद्व्यवहार, दासों के कर्तव्य, धन में अनासक्ति, धनियों को चेतावनी, लौकिक और व्यर्थ बकवाद से दूर रहना, अन्तिम दिनों का अधर्म आदि का भी आह्वान करते है ।

इब्रानियों के पत्र में धर्म एवं विश्वास में उन्नति करने का आह्वान, परीक्षा में धैर्य रखने की आवश्यकता आदि विषयों पर अधिक बल दिया गया है । इसके अलावा भ्रातृप्रेम बनाये रखना, अतिथि सत्कार का महत्व, बन्दी लोगों से दया, जिन पर अत्याचार किया जाता है उनकी याद की आवश्यकता, व्यभिचार से दूर रहना, धन का लालच न होना आदि उपदेश भी मिलते हैं ।

सुसमाचार में मानव को किस प्रकार इस दुनिया में जीवन बिताना है, किन किन बातों पर उन्हें अधिक ध्यान देना है इस पर बल दिया गया है । मानव की महिमा दिखाकर उस महिमा को बनाये रखने केलिए भाई से मेल-मिलाप, प्रतिकार न करना, शत्रुओं से प्रेम, ईश्वर पर भरोसा, सच्चा धन इकट्ठा करना, शुद्धता, प्रार्थना का प्रभाव, कथनी-करनी की एकरूपता, दूसरों पर दोष न लगना, झूठे नबियों से सावधान, मूल्यहीन परंपराओं की व्यर्थता, आत्मत्याग की आवश्यकता, अपराधों की क्षमा, धन का जोखिम, सेवाभाव का महत्व, सबसे बडी आज्ञा आदि

का उपदेश दिया गया है।

इस प्रकार बाइबिल की कई पुस्तकें धर्माचरण पर बल देती हैं और मनुष्य को किस प्रकार जीना चाहिए इसके बारे में कहती हैं । ईश्वर में भक्ति और विश्वास सब पापों का नाश करता है । मनुष्य को मनुष्य का आदर एवं हित करना चाहिए। दूसरों का अहित पाप होता है और इससे समाज का संतुलन नष्ट होता है । इनमें ईश्वर की महानता और मनुष्य की लघुता का चित्र खींचते हुए यह शिक्षा दी गई है कि धार्मिक आचरण से मनुष्य ऊपर उठ सकता है ।

दार्शनिक पुस्तकें

'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' अर्थात् जिसके माध्यम से देखा जाये, उसे दर्शन कहते हैं । यह दर्शन या तो इन्द्रिय-जन्य निरीक्षण हो सकता है या अन्तदृष्टि द्वारा अनुभूत हो सकता है । ज्ञान के प्रति अनुराग का नाम दर्शन है । यहाँ ज्ञान का अर्थ तथ्यों की जानकारी नहीं, वरन् विश्व और मानव जीवन के गहनतम प्रश्नों के संबन्ध में अभिज्ञता है । दर्शन का क्षेत्र व्यापक है । दर्शन, जो दृष्टिगोचर है उसे देखता है और जो स्थूल दृष्टि से परे है उसे भी देखता है । अर्थात् दर्शन के अन्तर्गत दृश्यादृश्य दोनों ही आते हैं । बाइबिल का विश्वसंबन्धी दृष्टिकोण सामान्य मानव का जीवन दर्शन है, वह सूक्ष्मता के साथ देखा जाय तो वह विद्यानुराग ही है, यही साहित्य का मार्ग है ।

बाइबिल की दार्शनिक पुस्तकों में उत्पत्ति, दानियेल की पुस्तक, सभा उपदेशक, हबकूक, संत जोन रचित सुसमाचार, प्रकाशना-ग्रन्थ आदि प्रमुख हैं। संत जोन रचित सुसमाचार "नया नियम" की सबसे बहुमूल्य दार्शनिक पुस्तक है । यह

ऐसी पुस्तक है जो सबसे अधिक मनुष्य के मन को बल देती है, हृदय को तृप्त करती है और आत्मा को विश्राम देती है । गरुड संत जोन का प्रतीक है । कारण यह है कि सब जीवधारियों में गरुड एक ऐसा जीवधारी है जो सीधे सूर्य को देख सकता है पर उसकी आँखें नहीं चौंधियातीं । संत जोन में अनन्त रहस्यों और शाश्वत सत्यों और ईश्वर के मानस को देखने की अत्यन्त पैनी दृष्टि है । संत जोन ने अपने सुसमाचार में दो तथ्यों पर बडा ज़ोर दिया है । वह ईश्वर के वास्तविक मनुष्यत्व और उनकी सच्ची मानवता पर ज़ोर देता है। सभोपदेशक की पुस्तक में लेखक अपने व्यक्तिगत अनुभव के द्वारा यह दर्शाना चाहता है कि यदि सांसारिक सुख और आशीष प्राप्त करना ही उद्देश्य है तो उसका अन्त असन्तोष और अतृप्ति होता है । ईश्वर का आदर करना और उसकी आज्ञा का पालन करना ही सर्वोत्तम जीवन है ।

हबकूक की पुस्तक में जीवन और मृत्यु दोनों के कारण बताये गये हैं। मृत्यु तो पाप का परिणाम होती है । इस पुस्तक में बताया गया है कि युगान्त में विधर्मियों का विनाश हो जाएगा और धार्मिक मनुष्य अपनी भक्ति एवं विश्वास के द्वारा जीवन प्राप्त करेगा । दानियेल की पुस्तक का विषय ईश्वर की सार्वभौमिकता है । दानियेल के दर्शन स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि ईश्वर ही विजेता है । उसकी सार्वभौमिकता की चरम सीमा प्रकाशित वाक्य में पूरी होती है । संत जोन के प्रकाशित-ग्रन्थ में भव्य चित्रों और प्रतीकों द्वारा इतिहास, युगान्त और भविष्य का चित्रण है । पुस्तक का चिरंतन महत्व है । इस पुस्तक में इतिहास के चरमोत्कर्ष का उदात्त चित्र है । नवीन मानव, नवीन दृष्टि ही परम कल्याणकारी ईश्वर का अभिप्राय है । इसी लक्ष्य की ओर ईश्वर की समस्त गतिविधि उन्मुख है । पुस्तक में सशक्त वर्णन है कि हिंसा और अत्याचार पर अंततः भक्ति और विश्वास की विजय होती है । इसमें व्यक्ति और समाज दोनों केलिए आशा का मंगलमय अमर संदेश

है कि मनुष्य ईश्वर के साथ सदा रहेंगे-न मृत्यु रहेगी, न शोक, न विलाप और न कष्ट। इस पुस्तक में स्पष्ट घोषणा है कि सब मनुष्यों का न्याय होगा ।

नैतिक पुस्तकें

उचित व्यवहार (कर्तव्य) का नाम नीति है । अपना कार्य दूसरे को दोष पहुँचाये बिना सुचारू रूप से चलाने की कुशलता को नीति कहते हैं । नीति मनुष्य के सामाजिक व्यवहार को सरस एवं कल्याणकारी बनाने में सहायता देती है । मनुष्यों को उचित व्यवहार की शिक्षा देना नीति-काव्यों का लक्ष्य है । बाइबिल में जोब की पुस्तक, नीतिवचन या सूक्ति-ग्रन्थ, प्रज्ञा-गन्थ, श्रेष्ठ-गीत, प्रवक्ता-ग्रन्थ, उपदेशक, ज़करिया की पुस्तक, कोरिन्थियों के नाम पहला पत्र, तीतूस के नाम पत्र, संत याकोब के नाम पत्र, पीटर के नाम पहला और दूसरा पत्र, संत जोन के नाम पहला, दूसरा, तीसरा पत्र आदि नैतिक पुस्तकों में आते हैं । उनके द्वारा पाठक अपना जीवन दर्शन रूपायित कर सकते हैं ।

नीतिवचन या सूक्ति-ग्रन्थ की नैतिक शिक्षायें बहुत ही उच्चकोटि की हैं । ईमानदारी, सच्चाई तथा जीवन सम्पत्ति का मान करने पर ज़ोर दिया गया है । इन्हीं गुणों के अभ्यास से मानव एवं समाज का कल्याण संभव है। लोगों से अनुरोध किया गया है कि वे दूसरों से न्याय, प्रेम और दया का व्यवहार करें । इसमें एक उत्तम पारिवारिक जीवन का वर्णन किया गया है जिसमें बच्चों का सतर्कतापूर्वक प्रशिक्षण किया जाता है और स्त्रियों का सम्मान होता है । लेखक यह कहता है कि सच्चरित्र बनकर जीवन बिताने केलिए किन किन सिद्धान्तों को मानना चाहिए । सभोपदेश पुस्तक में लेखक अपने व्यक्तिगत अनुभव के द्वारा यह दर्शाना चाहता है कि यदि सांसारिक सुख और आशीष प्राप्त करना ही उद्देश्य है तो उसका अन्त

असन्तोष और अतृप्ति होता है । ईश्वर का आदर करना और उसकी आज्ञा का पालन करना ही सर्वोत्तम जीवन है । प्रज्ञा की पुस्तक में बुद्धि, शिक्षा, समझ, न्याय आदि का प्रयोग बार बार किया गया है । अर्थ केवल मानवीय बुद्धि तथा प्रवीणता में नहीं है, यहाँ बुद्धि एक आध्यात्मिक तथा नैतिक गुण है । श्रेष्ठगीत में विश्वासी का प्रेम सुन्दर शब्दावली के माध्यम से गहरा हो सकता है, इसके बारे में कहा गया है ।

प्रवक्ता-ग्रन्थ में ईश्वर के प्रति कर्तव्य, माता-पिता के प्रति कर्तव्य, विनम्रता, दानशीलता,धार्मिकता, मित्रता, प्रज्ञा की प्राप्ति, परोपकार, धर्मी को सुख-शान्ति, आत्मसंयम, प्रार्थना, पति-पत्नी-संबन्ध, सच्चरित्र पत्नी, सुखी गृहस्थ का सौभाग्य, ईश्वर पर श्रद्धा, सपनों की व्यर्थता, सच्चा धर्म, चिकित्सक और रोग, सृष्टिकर्ता की स्तुति, मनुष्य की दयनीयता, मृत्यु आदि विभिन्न विषयों और नीतियों पर विवेचन किया गया है । कोरिन्थियों के नाम पहले पत्र में मुक्ति के महत्व पर बल दिया गया है । वहाँ बताया गया है कि सच्चा जीवन वही है जो मुक्ति को लक्ष्य बनाकर जिया जाता है । जकर्या की पुस्तक में नैतिक जागरण पर बल देते हैं और नवीन युग की आशा दिलाते हैं । तीतुस के नाम पत्र का मुख्य विषय खरी शिक्षा है । सत्य को समझने का फल भले कामों में प्रकट होना चाहिए । क्रीत-वासी तो नैतिक बातों में कुछ ढीले थे और वहाँ की कलीसिया में भी कुछ लोगों का आचरण लापरवाह हो गया था । ऐसी बातों का विरोध करने केलिए तीतुस को संत पोल समझाता है कि खरी शिक्षा ज़रूरी है, वह इस बात पर ज़ोर देता है कि मसीही आचरण का आधार तो ईश्वर का वचन ही है । उनमें यह भी बताया गया है कि कलीसिया समाज के व्यक्तियों का जीवन आत्मिक और नैतिक दृष्टिकोण से आवश्य श्रेष्ठ हो । उन्हें चरित्र में दूसरों केलिए आदर्श और काम करने में सक्षम होना चाहिए ।

फिलेमोन के नाम पत्र में भाईचारा और क्षमा आदि महत्वपूर्ण सिद्धान्तों पर बल दिया गया है । सन्त पीटर के दूसरे पत्र में मुख्य रूप से, प्राप्त सत्य में दृढ बने रहने और झूठे शिक्षकों से सावधान रहने पर ज़ोर दिया गया है । प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने एक दूसरे से प्रेम रखने, जागते हुए सावधान रहने का आह्वान भी दिया है ।

मानव में जब ईश्वर के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति का भाव आता है तब उसमें जो शैतान के गुण होते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं । वह उदात्त बन जाता है, सद्‌गुणों की खान बनता है और स्वयं ईश्वर की पदवी प्राप्त करता है । वह अपना और दूसरों का ईश्वर (कल्याण का इच्छुक) बन जाता है । इससे व्यक्ति की, समाज की और संसार की ही वृद्धि होती है । बाइबिल की पुस्तकों का यही संदेश है । मानव जब इसका अनुवर्तन करते हैं तब निस्संदेह संसार स्वर्ग बन जाता है ।

निष्कर्ष

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल के विषय व्यक्ति सुधार, समाज सुधार एवं तद्वारा लोकमंगल की भावना को बढाने वाले हैं । मनुष्य की प्रगति लक्ष्य कर लिखे गये दोनों ग्रन्थों में सत्याचरण, धर्म की रक्षा, सत्य की खोज, हिंसा का त्याग और समाज में एकता का भाव आदि पर बल दिया गया है । दिशाहीन समाज को उचित रास्ते पर लाने का भरसक प्रयत्न ही दोनों ग्रन्थों का मुख्य विषय है । जब मानव का चलन ठीक होता है तो समाज ठीक होता है और संसार में भलाई होती है-यही विचार सात्विक भावना से युक्त संत कबीर एवं बाइबिल के संत रचयिताओं में था। वे अनुभव सिद्ध सत्य के धनी होने के कारण उनके अनुभवों में जो सिद्ध हुआ उसको उन्होंने वैसे ही कहा। ज्ञान के प्रकाश से भरपूर इन संतगणों ने व्यक्ति में, समाज

में एवं पूरे विश्व में प्रकाश फैलाने की कोशिश की । इसमें संदेह नहीं कि ये दोनों ग्रन्थ पूरे मानव को उदात्त भावों से परिपूर्ण करने में सक्षम हैं । सर्वहिताय एवं सर्व-सुखाय जीनेवाले इन संतों ने इस विशाल समाज को भेदभाव रहित कर पारस्परिक एकता में बांधने की इच्छा की । राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक उथलपुथल के कारण तिमिराच्छन्न व्यक्ति एवं समाज को सन्मार्ग पर चलने की सामाजिक, धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा ही इनमें दी गयी है ।

दूसरा अध्याय

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल की सामाजिक पृष्ठभूमि

साहित्यकार अपनी परिस्थितियों से हमेशा प्रभावित रहता है । वह समाज का अंग होता है और उसकी कृति भी समाज का ही अंग रहती है । समाज में प्रचलित परंपराएँ, भाव और विचार कवि को प्रभावित करते रहते हैं । उस काल की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और साहित्यिक परिस्थितियों का प्रभाव उसकी रचनाओं पर भी पडता है । इसलिए किसी साहित्यकार की कृतियों के अध्ययन केलिए, उसकी विचार धाराओं एवं भावाभिव्यक्तियों के सम्यक मूल्यांकन केलिए यह आवश्यक हो जाता है कि तत्कालीन परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त किया जाए ।

कबीर एवं बाइबिल युगीन समाज की अवस्था शोचनीय थी । यह एक व्यापक और कटु संघर्ष का युग था । जीवन के सभी क्षेत्रों में संघर्ष था । सांस्कृतिक टकराव के उस युग में शासक और जनता दोनों ही विचलित थे । भारतीय समाज में इनसान अपने को कुछ बेसहारा पा रहा था । धर्म, दर्शन कोई भी उसका सहायक नहीं था । वह लक्ष्य-भ्रष्ट हो रहा था । समाज का राजनीतिक जीवन हिन्दू विजित जाति और मुसलमान-विजयी जाति के संघर्ष से आक्रांत था । समाज के हिन्दू-मुसलमान तथा अन्य वर्गों में धार्मिक एवं व्यावहारिक सभी बातों में आडंबर बठता जा रहा था । सभी वर्ग असत्य एवं झूठी बातों के चक्कर में पडे थे । शासक वर्ग का सुलतान स्वेच्छारी होता था । राज्य की सार्वभौमिकता उसी में केन्द्रित होती थी ।[१] सभी लोग आचरण भ्रष्ट होते थे । दुराचारी एवं विलासी जीवन

---

१. एस.आर.शर्मा भारतीय मुस्लिम शासन का इतिहास पृ. १९५

व्यतीत करना इनका लक्ष्य सा हो गया था । [१] पर्दे की प्रथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह, गुलाम प्रथा तथा अन्य सामाजिक कुरीतियों का प्रचलन था । [२] हिन्दू महिलाओं के साथ मुस्लिम युवकों की शादी जबरदस्ती से करायी जाती थी। लिखा गया है कि विजय नगर के राज्य से फीरोज ने वीरतापूर्वक बदला लिया और राजा को परास्त कर के स्वयं उसकी पुत्री का विवाह अपने पुत्र हुसेन खाँ के साथ करा दिया । [३] इस प्रकार हिन्दू समाज की दशा बडी ही शोचनीय थी । बाइबिलकालीन सामाजिक जीवन ऊँच-नीच की भावना, आपसी द्वेष, अपनी परंपराओं, अंधविश्वासों और कुरीतियों के महाजाल में फंसकर बेचैनी की जिन्दगी जी रहा था। दार्शनिक-धार्मिक जीवन के संघर्ष की विभीषिका तो सबसे अधिक विराट और गंभीर थी । ऐसे समय में इन बुराइयों से लडने केलिए ज्ञान और स्वानुभवरूपी तलवार के साथ कबीर नबीगण, ईसामसीह आदि आगे आये । इनको मानव के प्रति अनन्त प्रेम और सहानुभूति थी । अपने युग की हालत को जगह-जगह घूमकर वे अच्छी तरह जान चुके थे । उन्होंने देखा कि उस अंधकाराच्छन्न युग में नैराश्य, भय, उत्पीडन, नरसंहार, अशांति, दारिद्रता तथा आचरण-भ्रष्टता अपनी पराकाष्टा पर पहुँच चुके थे। शासकों की धर्मान्धता, सांप्रदायिक विद्वेष की ज्वाला को भडका रही था। अनादिकाल से पोषित एवं रक्षित संस्कृति असहाय होकर, कंपित एवं जर्जर शरीर से, अपने उत्कृष्ट एवं महान् स्वरूप को धराशायी तथा विनाश के मुख में देखकर, व्यक्ति हृदय से आँसू बहा रही थी । पुरी राजनीति, अस्वस्थ पारिवारिक संबन्ध, समाज में नारी का स्थान, मानवीय संबन्धों में दरार, धर्म का ह्रास अर्थ की प्रमुखता, मोक्ष की असंभाव्यता (चारों पुरुषार्थ की अवस्था), व्यक्ति की, परिवार की, समाज की उन्नति में बाधा यही रही सामाजिक पृष्ठभूमि विभिन्न युगों में लिखे जाने पर भी

---

१. पी.डी.गुप्ता मध्यकालीन भारत पृ. १३९
२. वही पृ. १४३
३. एस.आर.शर्मा भारतीय मुस्लिम शासन का इतिहास पृ. १७५

कबीर-साहित्य एवं बैबिल में ये बातें समान ढंग से चित्रित मिलती हैं ।

बुरी राजनीति

कबीर के आविर्भाव के समय भारत की राजनीतिक स्थिति अत्यन्त भयावह थी । कबीर का उदयकाल अफगान-शासन काल का उत्तरार्द्ध था । शासकों की अयोग्यता और उनकी दोषपूर्ण नीतियों ने केन्द्रीय शासन को इतना अशक्त बना दिया था कि एक के बाद एक अनेक प्रांतीय शासक स्वतंत्र हो गए थे । सम्राट हर्षवर्धन के बाद भारत छोटे-छोटे राज्यों में बंट गया और ऐसी स्थिति पैदा हो गई जबकि किसी प्रकार की राजनीतिक एकता का विचार भी नहीं किया जा सकता था। सन् १३९८ में तैमूर के आक्रमण ने केन्द्रीय शासन व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया था । इनके आक्रमण से हिन्दू धर्म तथा हिन्दू जाति की रीढ ही टूट गयी । अकाल, भूखमरी और नृशंसता ने देश में अशान्ति, अव्यवस्था और अराजकता का वातावरण उपस्थित कर दिया ।[१] दिल्ली का गौरव नष्ट हो गया और हिन्दू धर्म को गहरा आघात लगा । तैमूर के लौटने के बाद दिल्ली का सिंहासन लोदी वंश के हाथ में पहुँचा । इनमें सिकन्दर लोदी विद्रोह-दमन में ही व्यस्त रहा । इनके द्वारा हिन्दुओं के दुख, नैराश्य तथा विनाश में वृद्धि ही हुई । उसकी संकीर्ण धर्मान्धता और हिन्दुओं के प्रति उसके अत्याचारों से रंगे हुए इतिहास के पृष्ठ इस बात में साक्षी हैं कि उसने उदार-हृदय कबीर को भी हाथी के पैरों तले कुचलवाने[२] और उन्हें जंजीर में बांधकर गंगा में डुबो देने का प्रयास अवश्य किया होगा ।[३]

इस प्रकार १४वीं १५वीं शताब्दी राजनैतिक अराजकता, धार्मिक असहिष्णुता,

---

१. डॉ.एस.आर.शर्मा भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास पृ.१५९
२. डॉ.रामकुमार वर्मा संत कबीर पृ. १६७
३. वही पृ. २२५

प्रशासनिक अव्यवस्था, कलह और अशांति, बर्बर हिंसा तथा विक्षोभ का युग था । सामंतवादी युग में प्रजा के हितों की नितांत उपेक्षा थी । राजदरबार षडयंत्र और विलासिता के केन्द्र थे । राज-कर्मचारी भ्रष्ट और अत्याचारी थे । शासक वर्ग निरंकुश था । हिन्दू अत्याचार के शिकार थे । दंभी और अहंकारी शासक वर्ग को अपने प्रभुता की रक्षा और इस्लाम के प्रचार की ही चिन्ता थी, प्रजा के कल्याण की नहीं ।

उन दिनों राजनीति का प्रसार आजकल के समान जन-जीवन में नहीं रहा था । राजाओं के शासन काल में राजनैतिक बातों को लोग बहुत कम प्राप्त करते थे । कर की अदायगी या अन्य सामाजिक या आर्थिक घोषणाओं के समय ही लोग राजनीति और राजतंत्र से परिचित हो पाते थे । देश में चलनेवाले उत्पीडनों, दुर्भिक्षों इत्यादि को तथा ऐसे अवसरों पर शासन के द्वारा प्रस्तुत कार्यों को लोग समझ लेते थे उससे अधिक राजनैतिक बातों से लोगों का संपर्क नहीं होता था । कबीर न तो राजनीतिज्ञ थे और न उससे किसी प्रकार संबद्ध ही थे । कबीर को यह मालूम था कि उस समय के राजा लोग हिंसात्मक उपायों से सत्ता हडप लेते थे और अपनी प्रभुता केलिए वे कुछ भी कर सकते थे । ऐश्वर्य-लोलुपता से अन्धे ये राजा यह नहीं समझते थे कि उन्हें भी मर जाना है और ज़मीन के भीतर उनका भी शरीर गाड़ दिया जायेगा । कबीर ने उन अधिकार-लोलुप शासकों को चेतावनी के स्वर में टोका है कि हयवर पर छत्र धारण करके चलने वाली उनकी राजसत्ता अल्पकालिक है । इसलिए गर्व नहीं करना चाहिए ।

कबीर गरबु न कीजिए चाम लपेटे हाड़
हैंवर ऊपरि छत्र तर ते भी देबा हाड । [१]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १८८

कबीर ने इसी भावना को अपने अनेक दोहों में अभिव्यक्त किया है । कभी वे यह बताते हैं कि सभी का जीवन बहुत छोटा होता है चाहे सव हो, रंक हो या सुलतान हो । मृत्यु उनके बीच में कोई अन्तर नहीं करती –

कबीर थोडा जीवणां, मांडे बहुत मंडा
सबहीं उभा मोल्हि गया, राव रंक सुलितान ।'' [१]

अन्यत्र वे कहते हैं कि एक दिन सभी को इस दुनिया से चला जाना ही है । अपने अधिकार के मद में रहने वाले राजा, राणा और छत्रपति सभी के लिए मृत्युकाल आ ही जायेगा । इस कारण कबीर उनको सावधान करते हैं –

इक दिन ऐसा होइगा सबसू पडै बिछोहा
राजा राणा छत्रपति, सावधान किन होय ।'' [२]

वैभव विलास में आसक्त होकर रहने वाले शासकों को कबीर ने नाना प्रकार से यह स्मरण कराने की चेष्टा की है कि उनका राजपाट, सिंहासन और अनेक सुन्दरियों के साथ विलासपूर्ण जीवन सब निरर्थक हैं । इनमें से कोई भी मृत्युवेला में उनकी सहायता नहीं करता ।

राजा पाट स्यंघासण आसण, बहु सुन्दरि रमणां
चन्दन चीर कपूर बिराजत अंति तऊ मरणां ।'' [३]

एक पद में कबीर कहते हैं कि जीवन में श्रेष्ठता और बडप्पन, बन्दूकों और बम को

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १९१
२. वही पृ. १९२
३. श्यामसुन्दरदास कबीर -ग्रन्थावली परिशिष्ट, पद १७२

चलाकर लोगों को मारने से या लडाई करने से प्राप्त नहीं होता । मन का लोभ मिटाने से ही वास्तविक महत्व प्राप्त होता है । क्या दत्तात्रेय ने मवासियों द्वारा कभी शत्रुओं पर चढायी की थी ? शुकदेव ने तोपाची कब जोडी थी ? नारद ने बन्दूक क्या चलायी थी? व्यासदेव ने कब बम बजाया था ? लेकिन वे ही दुनिया के सच्चे महान व्यक्ति हुए हैं । यह भूलकर लडाई करने वाला मूर्ख होता है

कब दत्तै मावासी तोरी । कब शुकदेव तोपची जोरी
कब मारद बंदूक चलाया । व्यासदेव कब बंब बजाया
करहिं लडाई मति के मंदाई हैं अतिथि कि तरकस बंदा ।'' [१]

अपने राजपद को शाश्वत मानकर अत्याचार में लगे रहने वाले अधिकारियों या शसकों से कबीर ने कहा है कि 'हे राजा, तू भूल रहा है, तुझे जो राज्य मिला है वह क्षणिक है । तू क्यों नहीं समझता कि वास्तव में मुझे सपने में ही शय्या मिली है । हाकिम और हुकुम की दोहाई सब मिथ्या है । जागने पर मालूम होगा कि तेरी सेना भी काम नहीं देती ।

सुपने में तोहि राज मिलियो है हाकिम हुकुम दो हाइ
जागि पर्‌यो तब लाव न लगकर पलक खुले सुधि पाई ।'' [२]

यों महात्मा कबीरदास ने शासकों के वैभव विलास की निरर्थकता नाना प्रकार से व्यक्त करके राजाओं को सही रास्ते लाने का प्रयत्न किया है ।

सामाजिक वातावरण

कबीर के आविर्भाव काल में समाज की दशा अत्यन्त विषम एवं शोचनीय

---

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय कबीर-वचनावली पद १८०
२. वही पद २१२- पृ. ७६

थी। उस समय का समाज प्रमुखतः हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के संयोग से बना था । भारतवर्ष की बहुसंख्यक जनता उस समय हिन्दू थी । मुसलमानों के आगमन से पूर्व वे शासक और संपूर्ण देश के स्वामी थे । मुसलमानों के युग में भी उनमें से अनेक धनी तथा समृद्धशाली सामन्त थे । संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था जातिगत आचार-विचार, वंशगत ऐश्वर्य-मद एवं ऊँच-नीच की भावना पर आधारित थी । इस काल तक आते आते हिन्दुओं की कुछ आन्तरिक व्यवस्था गडबड हो गई थी । वर्णाश्रम व्यवस्था जो हिन्दू जाति की परम विशेषता थी इस युग में विकृत और सदोष हो चली थी । इस युग में ब्राह्मणों की महिमा और शक्ति बहुत बढी । शूद्रों की निन्दा का प्राचुर्य होने के कारण उनका समाज में निम्न स्थान समझा जाने लगा । उत्तम से उत्तम आचरण वाला होते हुए भी शूद्र समाज में आदर न पाता था । व्यक्तियों का हिन्दू जाति से भ्रष्ट हो जाना तो साधारण बात थी । शूद्रों की संख्या में वृद्धि होती जा रही थी । उच्च जाति से भ्रष्ट होने पर व्यक्ति को इन्हीं का सहारा लेना पडता था । आचार-विचार भी रूढिगत मान्यताओं एवं अंधविश्वासों में पर्यवसित हो चुका था । फलतः मानव जीवन की सार्थकता का स्रोत अवरुद्ध हो रहा था । सारा समाज वर्ण–आश्रम, वेद-शास्त्र, तप-तीर्थ, व्रत-पूजा, दान-पुण्य,माया-मोह,धन-यौवन के मद से ग्रस्त था । राजा-रंक, योगी-जती, काजी-मुल्ला, स्त्री-पुरुष, पीर-पैगम्बर सभी विषय-वासना से ग्रस्त थे । धर्म के नाम पर पाखण्ड और मिथ्याचार को बढावा मिल रहा था, कथनी-करनी में कोई साम्य नहीं था, छल और धूर्तता का साम्राज्य था । नाना प्रकार के संप्रदाय जन्म ले चुके थे, तथा-कथित साधुओं की भीड चतुर्दिक दिखाई पडती थी, जिनकी वेश-भूषा संतों जैसी थी, किन्तु आचरण निम्न कोटि का था ।

कबीर के समय एक ओर साधु-सन्यासियों की मण्डली धर्म के नाम पर

पाखण्ड और मिथ्याचार को बढावा देकर सामान्य जन को दिग्भ्रमित कर रही थी, तो दूसरी ओर सारा समाज वर्ण-व्यवस्था और जातिगत श्रेष्ठता-हीनता की जकडबन्दी का शिकार हो रहा था । वर्णव्यवस्था पर प्रतिष्ठित सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मण सर्वोपरि था । वह धर्मशास्त्र का नियामक था । उसने सभी वर्गों के मनुष्यों केलिए कर्म-विभाजन करके अपने लिए अध्ययन, अध्यापन, यज्ञानुष्ठान आदि सुरक्षित करके समाज का उच्चतम स्थान सुरक्षित कर लिया था । समाज में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ, उसके बाद क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को स्थान दिया गया । वैदिक काल में ब्राह्मण विद्या का, क्षत्रिय लडने का, वैश्य कृषि तथा व्यवसाय का और शूद्र सबकी सेवा करने का अधिकारी माना गया था । उसका आंशिक रूप कबीरकालीन समाज में भी विद्यमान था । निम्न जातियों को अस्पृश्य मानकर घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा । तथाकथित शूद्रों केलिए वेदाध्ययन और मंदिर-प्रवेश आदि धार्मिक कृत्य भी वर्जित कर दिए गए । उन्हें अछूत की संज्ञा दे दी गयी । ब्राह्मणों की वज्रमुष्टि के कारण हिन्दू समाज का दम घुट रहा था । हिन्दू समाज में व्याप्त इसी प्रकार की भिन्नता के कारण मुसलमानों को परास्त करने में वे विफल हो गये। वर्ण-व्यवस्था और ब्राह्मणों का विरोध भी कबीर में साधारण नहीं है । वे बडी धक्कामार भाषा में इन सबका विरोध करते हुए दिखाई देते हैं । वे जनता के उस वर्ग में से आए थे जहाँ उन्होंने उच्च वर्ग के अत्याचारों को खुली आँखों देखा था । उनके विचारों और भावों में जातिवाद का खण्डन करने वाली धारणा बडी दृढता पूर्वक बैठ गई थी ।

कबीरकालीन भारतीय समाज का सारा वातावरण दुर्गुणों से भरपूर था । समाज के बडे से लेकर छोटे तक के जीवन में नैतिकता का पतन हो गया था । तरह तरह के कुकृत्यों से ही समाज में भ्रष्टाचार फैल रहा था । उस समाज में

वेश्यागमन तथा मद्यपान का भी प्रचलन था । इस माहौल में सबसे अधिक उत्पीडित, सज्जन एवं-साधारण जनता ही थी । वास्तव में तत्कालीन समाज में निहित जाति-धर्म के भेद-भाव जनता की दुर्गति के कारण थे ।

ऐसे अधःपतन को दूर करने केलिए ही युग-युग में महान विभूतियों का जन्म होता रहता है । इन्हीं महान विभूतियों में कबीर का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने अपने युग में विद्यमान कुरीतियों, रूढियों और अंधविश्वासों का विद्रोह किया । वर्गयुक्त समाज को वर्गमुक्त समाज में बदलना उनका मुख्य लक्ष्य था । आर्थिक विषमता, धनी और निर्धन का भेद-भाव भी समाज की विकासोन्मुखता केलिए बाधक है-यही विचार उनके मन में उभर आया । समरूपता, अन्योन्याश्रित भावना, सहकारिता आदि जो गुण समाज कल्याण एवं लोकमंगल केलिए अनिवार्य हैं, इस पर उन्होंने बल दिया । व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर एक दूसरे केलिए काम करना और अपने काम के द्वारा दूसरों का कल्याण करना यही समाज की मूलभूत भावना होनी चाहिए, यही कबीर का विचार था । उनकी वाणियाँ इसकी द्योतक हैं। इनमें सामाजिक सत्य अंकित है । एक साखी में कबीर बताते हैं –

कबीर नौबति आपनीं, दिन दस लोहु बजाई
यहु पुर, पट्टन यहु गली बहुरि न देखहु आई ।'' [१]

यहाँ कबीर दास कहते हैं कि मनुष्य जीवन का आनन्दोल्लास दस दिन तक-अल्पकाल-तक है । मृत्यु हो जाने पर इस संसार के पुरों, नगरों और गलियों को देखने का सौभाग्य पुनः नहीं मिलेगा । इसलिए जो सहायता दूसरों को करनी है, शीघ्र ही कर लो । कबीरदास न केवल अपने युग की सामाजिक, आर्थिक एवं

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १८५

राजनीतिक अवस्था पर टीका-टिप्पणी ही नहीं करते हैं, अपितु उनकी समस्त प्रतिभा एक सुसंगठित, आदर्श समाज की स्थापना में केन्द्रित हो जाती है । भक्ति में तल्लीन होने पर भी वे अपने युग में व्याप्त सामाजिक मूल्यों के ह्रास से विमुख नहीं रह सके तथा इस ह्रास से खिन्न उनका हृदय चीत्कार कर ही उठा । उनके अपने कर्तव्य की ओर इशारा करते हुए वे बताते हैं-

कबीर कहता जात है, सुनता है सब को
राम कहें भल होइगा, नातर भला न होई ।'' [१]

कबीर बराबर कहते ही रहते हैं सभी उनकी बात सुनते भी हैं किन्तु उनके उपदेश के अनुरूप कोई आचरण नहीं करता । सत्वचनों के अनुरूप जो जीता उसके जीवन में भलाई या मंगल सुनिश्चित है । एक और साखी में वे बताते हैं कि पेड में जैसा फल लगता है तदनुरूप अन्त तक उसका संरक्षण हो तो सार्थक हो जाता है, ऐसे ही गुरु से जो उपदेश मिला है उसका अन्त तक निर्वाह हो जाय तो जीवन सार्थक और फलस्वरूप हो जाता है । जैसे पैसा-पैसा जोडने से लाख करोड एकत्र हो जाता है, वैसे ही उपदेश के अनुसार निरन्तर प्रयत्न से अंत में पूर्णता प्राप्त हो जाती है --

जैसी उपजै पेड तैं, जौ तैसी निबहै ओरि
कौडी कौडी जोडता, जौरै लाख करोरि ।'' [२]

धर्म का ह्रास

कबीरकालीन समाज में 'धर्म' का अर्थ कुछ और ही हो गया था । व्यक्ति-

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १५२
२. वही पृ. १८६

धर्म, जाति-धर्म, समाज-धर्म सब के सब नष्ट हो चुके थे और धर्म का केवल एक ही अर्थ प्रमुख बन गया था । वह था धार्मिक विश्वास । धार्मिक विश्वासों में एकरूपता न होने के कारण लोगों में प्रतिदिन झगडे एवं झंझट बने रहते थे । धर्म की इस नई व्याख्या ने समस्त वातावरण को ही दूषित कर दिया था । धार्मिक वातावरण अत्यन्त दूषित और विषाक्त था । एक ओर हिन्दू और मुसलमानों के बीच धार्मिक झगडे हो रहे थे तो दूसरी ओर हिन्दुओं में भिन्न भिन्न मतों के माननेवालों के बीच ईर्ष्या और द्वेष की भावना प्रबल होती जा रही थी । बौद्ध, वैष्णव, शैव, शाक्त, जैनी, योगी, नाथ-पंथी सब हिन्दू आपस में लड-भिड रहे थे । पाखंड का बोलबाला था। इस्लाम-धर्म की मूल भावना में भी परिवर्तन हो चला था । उसमें भी 'पीर' और 'औलिया' पूजे जाने लगे थे । उसके अन्तर्गत एक नया संप्रदाय-सूफी संप्रदाय-भी धीरे धीरे फैल रहा था । साथ ही इस्लाम पूरी शक्ति के साथ जनता को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था । एक तो ब्राह्मणों का विरोध और दूसरे इस्लाम की सामाजिक समानता की भावना के कारण निम्न वर्ग, इस्लाम धर्म की ओर आकर्षित हो रहा था । वह नये जन्म की तमन्ना में खुदकुशी करने के समान मुसलमान होकर अपने जीवन को सुखी बनाने का सुख-स्वप्न देखता था । याने निम्न वर्ग के अनेक हिन्दू अपने धर्म का परित्याग करके मुसलमान बन रहे थे । वास्तव में उस समय धर्म का क्षेत्र अत्यन्त जीर्ण था और अधार्मिकता का वह युग बिलकुल शोचनीय था। धार्मिक जगत् की विकराल दशा हो गयी थी । कोई वेद के जंजाल में उलझ गया था, तो कोई उदास बनकर घूमता-फिरता था । कोई नग्न रहकर तप में लीन था, तो कोई योग से कायाक्लेश उठा रहा था । कोई दानी बना बैठा था, तो कोई सुरापान को ही सच्ची साधना कह रहा था । कोई मंत्र-तंत्र के पाश में उलझ पडा था, तो कोई तीर्थ-यात्रा पर विश्वास रखता था, तो कोई धूनी रमाकर श्याम वर्ण हो गया था । कबीर ऐसी दशा देखकर विस्मय से चकित हो गये –

इक पढहि पाठ इक भ्रमैं उदास, इक नगन निरंतर रहें निवास
इक जोग जुगति तन हूंहि खीन, ऐसे राम नाम संगि रहै न लीन
इक हूँहि दीन एक देहि दान, इक करैं कलायी सुरापान
इक तंत मंत ओषध जान, इक सकल सिध राखें अयांन
इक तीर्थ व्रत करि काया जीति, ऐसैं राम नाम सूं करैं न प्रीति
इक धौम घोंटि तन हूंहि स्याम, यूं मुकति नहीं बिन राम नाम ।'' [१]

यह तो हिन्दू धर्म की दशा थी । मुस्लिम धर्म का हाल भी अच्छा नहीं था । वहाँ मुल्लाओं का विचित्र ठाट था । वे धार्माधीश बन बैठे थे । वे जीव-हिंसा करते और उसे हलाल कहते थे । रोजा रखना, पांच समय नमाज़ पढना, मसजिद को सर नवाना आदि का वहाँ भी आडंबर था ।

महात्मा कबीर का आगमन इस समय हुआ और उन्होंने देखा कि बाह्याडंबर तथा पाखंड ने धर्म के सत्य स्वरूप को दबा लिया था । जाति-व्यवस्था, मूर्तिपूजा, सुधार और अनुसन्धान का विरोध, ये हिन्दुत्व के मुख्य दोष थे ।'' [२] इसी प्रकार की धार्मिक अराजकता के प्रस्तुत युग में सर्वसाधारण के हृदय में सत्य एवं सदाचरण का भाव जागृत कर समाज में सच्ची शांति लाना कठिन समस्या थी । पंडित, योगी, सन्यासी, तपस्वी आदि अपने अपने मार्ग को अच्छा बताकर अहंकार में ही वशीभूत हो गये थे और इसी कारण सब का ह्रास हो रहा था-

सब मदमाते कोई न जाग, ताथै संग ही चोर घर मुसन लाग
पंडित माते पठि पुरान, जोगी माते धरि धियान
सन्यासी माते अहंभाव, तपा जू माते तप कै भेद ।'' [३]

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. २१६
२. एस.आर.शर्मा भारत में मुस्लिम का इतिहास पृ. २२०
३. कबीर -ग्रन्थावली पृ. २१६

इसलिए कबीर ने बहुत सोच समझकर ऐसे सभी प्रश्नों के तल तक जाने का प्रयत्न किया और उन्होंने सबकेलिए एक नित्य एवं शाश्वत सत्य के अस्तित्व का प्रतिपादन कर, उसे अपने जीवन में अनुभव करने तथा उतारने की सलाह दी । उन्होंने किसी भी प्रचलित धर्म और संप्रदाय के मूल सिद्धान्तों का विरोध नहीं किया । बल्कि उनके अनुयायियों से अपनी कथनी और करनी में सामंजस्य स्थापित करने का आह्वान किया । साथ ही इन धर्मों या सप्रदायों में प्रचलित आडंबरों का खंडन कर उन्होंने कहा कि बाह्यरूप दिखावटी होता है इनसे उनको घृणा है । उन्होंने समाज को सत्य धर्म की श्क्षा देने का यत्न किया । हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्मों के प्रति उन्मुख होकर वे कहते हैं-'' अल्लाह से ध्यान लगाओ, रात-दिन राम-नाम का जप करो, हलाल हलाल कहकर जीव हिंसा के स्थान पर गुरु के मुँह के शब्द को कलमा समझो, ज्ञान की छुरी समझो ।'' [१] परंतु मध्यकालीन समाज में धार्मिक समस्या व्यक्ति के जीवन की प्रमुख समस्या बन चुकी थी । हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्मों को एक बनाना कठिन कार्य था और असंभव था । दोनों धर्मों के रीति-रिवाज़ अलग थे । दोनों भी अपनी अपनी धर्मनिष्ठा पर अटल थे । इसलिए दोनों धर्मों में कठिन विरोध था । कबीर का कहना है कि बिना शुद्ध हृदय के सच्ची धर्म-साधना हो ही नहीं सकती । हृदय में कपट भाव, मुँह में झूठी बातें बुरा कर्तृत्व ये सारे अवगुण है, अधर्म है । इससे व्यक्ति एवं समाज का कल्याण नहीं हानि ही हो सकती है । बल्कि धर्म का लक्ष्य व्यक्ति का सुधार है, लोकमंगल है ।

कबीर न केवल साधक थे, अपितु वे युग स्रष्टा और युग-द्रष्टा भी थे । राजनीतिक उत्पीडन से इस युग में देश की धार्मिक दशा का अध्ययन करके उन्होंने देखा कि जनता की आस्था सत्य से हटकर असत्य में संलग्न है । मानवता

---

१. डॉ. श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. १७५

पथभ्रष्ट हो चुकी है, मानव-जीवन का कोई मूल्य नहीं रह गया है । मानव-समाज द्वैत के संकल्प विकल्प में पडा बाह्याचारों में जकडा है । वह भक्ति के पावन-पथ से विचलित होकर माया-काया के मोह में पडा है ।'' [१] झूठे अहंकार के वशीभूत पंडित, योगी, सन्यासी, तपस्वी आदि सभी पाखंडों, बाह्याचारों, विधि-विधानों, जीव-हिंसा, मूर्ति-पूजा तथा अनेक प्रकार की कुत्सित साधनाओं पर आधारित अपने अपने मार्ग को सर्वोत्कृष्ट मानते हैं ।

तंत्रमंत्र तथा भूत पिशाचों की पूजा का प्रचलन था । मूर्तिपूजा के पीछे सब चले जा रहे थे । कितने ही देवी-देवताओं की पूजा पाठ होती थी । आचरण-भ्रष्टता का ज़ोर था । कबीर ने संकेत किया है --

पांहण केरा पूतला, करि पूजै करतार
इहि भरोसे जे रहे, ते बूडे काली धार । [२]

यही कहा जा सकता है कि कबीर के समय में धार्मिक परिस्थितयाँ तिचित्र हो गयी थीं । सभी मत-मतान्तरों और संप्रदायों में बाह्योपचार और पाखंड का समावेश था। उन्हीं पाखंड और आडंबरों में सब उलझे हुए थे । इन्हीं आडंबरों के आधार पर आपसी कलह और फूट ने घर कर लिया था । सच्ची साधना का लोप हो चुका था धर्म का इस भांति ह्रास देखकर कबीर अत्यन्त दुखी हुए । [३]

अर्थ की प्रमुखता

कबीर-कालीन समाज का आर्थिक ढाँचा बडा जटिल विषय था । देश में

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. ९८
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २२४
३. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. १६३

धन का अभाव नहीं था याने आर्थिक परिस्थिति अच्छी थी जिसके लोभ से अनेक विदेशियों ने भारत पर आक्रमण किया । सामान्यतया शासक और व्यापारी वर्ग का स्तर अधिक ऊँचा था । श्री. पी.डी.गुप्ता के शब्दों में - '' धन का विभाजन इस समय बहुत असमान था । जागीरदार और अमीरों के पास सोना-चाँदी एकत्र हो गया था और साधारण जनता के पास बहुत कम धन रह गया था ।'' [१] सामान्यतया निम्न श्रेणी के लोगों की ओर विशेषतया हिन्दू-शूद्रों की दशा बडी शोचनीय थी । प्रजा कर-भार से दबी हुई थी । कृषि, व्यापार अथवा किसी भी आय पर कर लगाता था। उपज की वस्तुएँ आनुपातिक दर से राजकोष केलिए भेजनी पडती थीं ।

कबीर ने अपने युग की विषम आर्थिक परिस्थितियों को न केवल दूर से देखा था, अपितु उन्हें भोगा भी था । उन्होंने समाज के उत्पादक वर्ग और भोक्ता वर्ग के मध्य गहरी खाई देखी । एक ओर समाज का उच्च वर्ग बिना कोई श्रम किए हर प्रकार के सुख-वैभव में डूबा हुआ है, दूसरी ओर श्रमजीवी वर्ग न केवल उपेक्षा का शिकार हैं, अपितु अभावग्रस्त होकर नारकीय जीवन जीने केलिए विवश है । सुलतानों ने अपने राज्य-कोषों की पूर्ति केलिए प्रजा से उचित-अनुचित हर प्रकार से धन एकत्र किया, किन्तु उसको प्रजाहित में व्यय नहीं किया, वरन् उसका उपयोग विलास केलिए किया । इसका प्रमाण प्रस्तुत पंक्ति में मिलता है -'' शसकों के मुकुट का हर मोती किसानों के रक्त-बिन्दुओं से बना है । इसका अर्थ यही है कि जनसाधारण के परिश्रम का पैसा सुलतानों के विलासमय कार्यों में व्यय होता थ।''[२]

राजसत्ता द्वारा किया गया शोषण तो था ही, साथ-ही-साथ प्राकृतिक प्रकोपों का प्रभाव भी इन्हीं के ऊपर पडता था । कभी अतिवृष्टि, तो कभी अनावृष्टि के

---

१. पी.डी.गुप्ता मध्यकालीन भारत पृ. १४०
२ वही पृ. १४१

कारण फसलों की बरबादी से अकाल पडता और दीन-हीन अधीन प्रजा की आर्थिक स्थिति को वीभत्स बना देते थे । उचित राजनीतिक व्यवस्था न होने के कारण लोगों का आर्थिक स्तर बहुत असमान हो चुका था । इसलिए लोग अपनी स्वार्थपूर्ति केलिए एक दूसरे को धोखा देकर ही चलते रहते थे । जीवन निर्वाह केलिए आर्थिक समस्या ही उनके जीवन की मूल समस्या बन गयी थी । जीविका निर्वाह केलिए ब्राह्मणों तक को राज-द्वारों पर भटकना पडता था । अनेक धर्म-गुरु भी राजद्वारों पर माँगने पहुँचते थे । कबीर यह देखकर पीडित होते थे । वे नहीं चाहते थे कि वे लोग माँगने जायें –

मांगन मरन समांन है, बिरला बचै कोइ
कहा कबीरा रांम सौं, मति रे मंगावै मोहि ।'' [१]

उनके अनुसार माँगना मृत्यु के समान दुखदायी है । ईश्वर से कबीर की प्रर्थना तो यह है कि ऐसा एक अवसर अपने जीवन में न आवें कि कभी किसी से कुछ माँगना पडे । आर्थिक संकट का सामना कबीर को भी करना पडता था । परिवार के पोषण केलिए अटूट परिश्रम की आवश्यकता थी । ऐसी परिस्थिति में कबीर के सामने माँगने के सिवा और कोई चारा ही नहीं था, किन्तु कबीर न तो याचना को व्यवसाय बनाने वाले थे और न किसी लोक-सत्ता के सामने हाथ फैलाने वाले थे । वे अपने अभाव को अपने प्रभु के सामने व्यक्त करते हैं और उससे याचना करने में वे किसी हीनता के भाव का अनुभव नहीं करते । कबीर ने धन संचय की प्रवृत्ति तथा उसे निजी स्वार्थमयता की पूर्ति के हेतु व्यय करना अनुचित बताया है । एक दूसरे के कल्याण की कामना रखते हुए, अपना निर्वाह करना और भविष्य की विशेष चिन्ता न करके धनोपार्जन करना ही श्रेयस्कर है । धन का उपयोग अपनी ही स्वार्थपूर्ति

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २४१

केलिए नहीं करना चाहिए । उनके अनुसार धन संचय कृपण का काम है —

कोटि धन साह हस्तीबंध राजा, क्रिपन को धन कौने काजा।'' [१]

कबीर तो ऐसे धन संचय केलिए आदेश देते हैं जिसका लाभ पारलौकिक हो और जो सदा सदा सुखदायी हो सके । यह धन परोपकार है, दूसरों की सहायता एवं सेवा करना है । भौतिक धन जो यहीं पडा रह जायगा । उसका संचय करना व्यर्थ है —

कबीर सो धन संचिये, जो आगे कू होइ
सीस चढाये पोटली, ले जात न देख्या कोइ ।'' [२]

ये पंक्तियाँ धनसंचय एवं धन के सदुपयोग न होने की प्रवृत्ति पर कुठारघात हैं । कबीर अपने समय की आर्थिक स्तिथि से अत्यधिक अतृप्त थे । इसी कारण उनकी लेखनी से ऐसी पंक्तियाँ निकलीं । इन पंक्तियों में कंजूस एवं धनी व्यक्तियों के प्रति धन के सदुपयोग करने पर उपदेश मिलता है । सीस चढाये पोटली, ले जात न देखा कोई '' में इसकी सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है । धनलिप्सा से बचने के एक उपाय के रूप में कबीर बताते हैं कि जो कुछ मिल जाय, उसी में संतोष माना जाय। दूसरे के धन वैभव का लोभ न किया जाय । कबीर ने इस निरासक्त भाव को व्यक्त किया है —

मीठा खांण मधूकरी, भांति भांति को नाज
दावा किसु का नहीं, बिन बिलाइति राज ।'' [३]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १२०
२ वही पृ. २३७
३ डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. ५९

बृहद् उद्योग-धंधों का स्थापत्य भी धन संतुलन को असमान करता है, इनके स्थान पर प्रत्येक मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए शरीर श्रम करना ही चाहिए । सीधे सादे जीवन केलिए शरीर श्रम करना अनिवार्य है । कबीर का निश्चित मत है कि मनुष्य को भक्ति भजन करते हुए भी शरीर श्रम करते रहना चाहिए । जो लोग ऐसा नहीं करते वे अपने मूल स्वरूप के प्रति अन्याय करते हैं -

कबीर जे धंधों तो धूलि, बिन धंधों धूले नहीं
ते नर विनठे भूलि, जिनि धंधे में ध्याया नहीं ।" [१]

कबीर की वाणी को इतिहास की तुला में तोलने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कबीर ने परिस्थितियों को बडी सूक्ष्मता से देखा था । कबीर का लक्ष्य समाज को सुधारना था जो विषमता के निवारण के बिना संभव नहीं था । उस विषमता का एक अंग आर्थिक विषमता भी थी । कबीर ने इन अभावग्रस्तों की करुण पुकारों को अपने हृदय के कानों से सुना और अपनी वाणी द्वारा समाज के सामने प्रस्तुत किया ।

मोक्ष की असंभाव्यता

जिस व्यक्ति की भौतिक चेतना याने क्षुधा, काम, जमीन, जायदाद आदि से इतनी सशक्त हो उठती है कि वह, चेतना के अन्य सभी स्तरों याने नैतिक या सामाजिक चेतना-जिसका संबन्ध समाज की रीति-नीति, वर्ग संघर्ष, राजनीतिक उथल पुथल आदि से-धार्मिक चेतना जिसका संबन्ध यज्ञ, तप. दान, भक्ति आदि विविध धार्मिक क्रियाओं से-दार्शनिक चेतना जिसका संबन्ध व्यक्ति की जीवन-मरण, अंतिम लक्ष्य अथवा अनुभूति संबन्धी शाश्वत समस्याओं के समाधानों से है-की

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. २३

उपेक्षा करने लगता है तो उसका पतन निश्चित सा हो जाता है । भौतिक चेतना को ही प्रधान मानकर चलने-वाले व्यक्ति के जीवन में कोई अन्तर नही होता। केवल भौतिक चेतना से ग्रस्त जीवन पाशविक जीवन है । जहाँ तक व्यक्ति की नीजी आवश्यकताओं या इन्छाओं का सवाल है कबीर संयम और त्याग का उपदेश देते हैं। भौतिक जीवन के क्षेत्र में व्यक्ति की मुख्य दुर्बलताएँ हैं -खाने पीने का लोभ (मद), अर्थ संचय की प्रवृत्ति (लोभ) और कामवासना का प्रकोप । कबीर ने इन तीनों दुर्बलताओं का बडे कठोर शब्दों में खण्डन किया है । भोजन के संबन्ध में कबीर का कथन है—

मधुर खाँड है खीचरी जामैं दोटुक लौंण
रोटी पेडा खाय करि जानि गँवावै कौन ।'' [१]

रोटी और पेडा खाने केलिए अधिक धन प्राप्त करने की आवश्यकता होगी और अधिक धन की प्रप्ति में लोभ छिपा है । लोभी व्यक्ति कभी मुक्त नहीं हो सकता । उन व्यक्तियों केलिए जो प्रत्येक भले या बुरे उपाय से धन का संचय करने में लगे हैं, कबीर का कहना है कि ऐसे धन का संचय करना चाहिए जो मृत्यु के पश्चात् भी काम आये और यह धन है रामभक्ति का । दूसरा धन तो बन्धन, भय और मृत्यु का कारण होता है --

कबीर सो धन सँचिये, जो आगैं कूँ होइ
सीस चढांयें पोटली, ले जात न देख्या कोई ।'' [२]

काम वासना मनुष्य का सबसे बडा शत्रु माना गया है । कबीर ने कहा कि

---

१. डॉ.भगवत् स्वरूप मित्र कबीर-ग्रन्थावली पृ. ११३
२. वही पृ. २३७

G8530

जब मनुष्य की देह में कामना भरी है, तब तक उसका जीवन नरक के समान है । जो व्यक्ति निष्काम होकर राम का स्मरण करते हैं वे ही राम के भक्त हैं, मोक्ष के अधिकारी हैं । कबीर बताते हैं कि राम का स्मरण भी निष्काम होना चाहिए ।

नर नारी सब नरक है, जब लगि देह सकाम
कहै कबीर ते राँम के, जे सुमिरैं निहकाम ।'' [१]

सोने और कामिनी का प्रभाव एक सा ही होता है । इनके देखने से ही शरीर में विष सा व्याप्त हो जाता है और यदि उनका सेवन किया जाए तब तो निश्चय ही मनुष्य का नाश हो जायगा —

एक कनक अरू काँमनीं, विष फल कीए उपाइ
देखै हीं थैं विष चढै, खाँये सूँ मरि जाइ ।'' [२]

भगवान और सब पापों को क्षमा कर देगा किन्तु कामी व्यक्ति को तो वह समूल नष्ट कर देगा -

अन्धां नर चेते नहीं, करै न संसय सूल
और गुनह हरिं बक ससीं, काँमी डाल न भूल ।'' [३]

कबीर के युग में ऐसे सन्यासियों की कमी नहीं थी जो 'अहम् ब्रह्मास्मि' कह कर विषय विलास में अनुरक्त रहते थे । वे अपने आपको संसार का निर्माणकर्ता बताते थे और जैसा चाहें व्यभिचार करते थे । यह ज्ञान का दुष्प्रयोग था जिसके द्वारा

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २३२
२. वही पृ. २३३
३. वही पृ. २३३

पाखण्डी सन्यासी जनता को गुमराह करते रहते थे । सन्यासियों को भी कबीर ने फटकारा है --

ग्यांनी तौ नींडर भया, मानैं नाही संक
इन्द्री केरे बसि पड़या, भूँचै विषै निसंक ।'' [१]
ग्यांनी मूल गवाइयो, आपण भया करता
ताथैं संसारी भला, मन मैं रहें डरता ।'' [२]

व्यक्ति को अपनी आयु का, अपनी शक्ति का कभी घमण्ड नहीं करना चाहिए । आखिर यह शक्ति और जीवन सभी तो अस्थायी हैं । प्रतिपल मृत्यु का भय रहता है । न जाने कब प्राण-पखेरू उड जाए । यह क्षणभंगुर है । किंशुक या टेसू के फूल के समान इसकी बहार थोडे दिनों केलिए है । जैसे टेसू के फूल थोडे ही दिनों में मुरझा कर गिर जाता है, वैसे ही जवानी की प्रफुल्लता भी अल्पकालिक होती है । पत्र-पुष्प-विहीन पलाश के समान शरीर भी यौवन-विहीन होकर कंकालमात्र बन जाता है ।

कबीर कहा गरबियौ, इस जोबन की आस
टेसू फूले दिवस चारि, खंखर भये पलास ।'' [३]

आगे भी कबीर पूछते हैं—काल ने अपने हाथों से तुम्हारे केश को पकड रखा है । इसलिए तुम व्यर्थ में क्यों गर्व करते हो ? वह तुम्हें न जाने कहाँ— घर हो या परदेश-मार डालेगा । कबीर यहाँ याद दिलाते हैं कि घमण्ड या गर्वभावना मोक्ष की

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २३४
२. वही पृ. २३५
३. वही पृ १९१

प्राप्ति में बाधा है ।

'' कबीर कहा गरबियो, काल गहै कर केस
नां जाणौं कहाँ मारिसौ, कै घरि कै परदेस ।'' [१]

इस प्रकार के वर्णनों में कबीर ने मनुष्य को अपनी भौतिक चेतना नियंत्रित करने का उपदेश दिया है । जब तक मनुष्य पर भौतिक चेतना का रँग गहरा है तब तक कभी भी भगवान के चरणों में अपने मन को नहीं लगा सकता । याने भौतिकता में मग्न रहने वाले जो ईश्वर एवं ईश्वरपुत्र मनुष्य को भूलकर स्वार्थ लिप्सा में मग्न रहता है उसकेलिए मोक्ष की प्रप्ति असंभव ही है । इसी प्रकार समाज में जीने वाले लोगों को देखकर कबीर ने कई उपदेश दिये हैं।

बाइबिलकालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ

बाइबिल के इतिहास का रंगमंच सिरिया से मिश्र तक व्याप्त भूप्रदेश है । जो 'पलस्तीना' नाम से जाना जाता है । यह प्रदेश पश्चिम एशिया में स्थित है । प्रस्तुत स्थान को सूचित करने केलिए बाइबिल में 'कनान' शब्द का प्रयोग किया गया है । [२] नूह के पौत्र कनान [३] और उसकी सन्तान के रहने का स्थान होने के कारण उसको 'कनान देश' [४] नाम भी पडा । इब्रानी वंशज अब्राहम एवं उसके भाई लोट के वासस्थान होने के कारण यह 'इब्रानियों के देश' [५] नाम से भी जाना जाता है । इस्राएलियों के वास केन्द्र होने के नाते इसको इस्राएल

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १९१
२. पुराना विधान उत्पत्ति-ग्रन्थ १२:५, १७:८
३. वही ९: १९
४. वही १७: ८
५. वही ४०:१५

राज्य'' भी पुकारते हैं । [१] प्रस्तुत यहूदी जाति ने महान् शासकों और राज्य का विस्तार करने वाले शक्तिशाली राजाओं को जन्म दिया । लेकिन ये शासक सदा स्वाधीन नहीं रहे, काल-क्रम में किसी न किसी की अधीनता उन्हें स्वीकार करनी पडी -कभी मिश्री, कभी अमोरी, कभी यूनानी और रोमी । यही नहीं, इनके राजवंशों और पुरोहितवंशों में उसी तरह की प्रतिद्वन्द्विता, संघर्ष तथा हत्याएँ पायी जाती हैं, जैसी अन्यों में । पिता ने पुत्र की हत्या की, पुत्र ने पिता की, भाई ने भाई की आदि। ये सब पुराना विधान की पृष्ठभूमि में हम देखते हैं । प्रस्तुत प्रदेश के अन्तर्गत विभिन्न देश के लोग निवास करते थे । सुमेरी, मिश्री, रोमी, यूनानी, अमोरी आदि इनमें प्रमुख थे । अपना अस्तित्व स्थापित करने केलिए ये आपस में युद्ध करते थे। इसके फलस्वरूप पूरा वातावरण अशान्ति, अस्थिरता, रक्तपात, हत्या, षडयंत्र आदि से भरपूर था । बाइबिल में चित्रित समाज से बहुत अधिक संबन्ध रखने वाला एक राज्य था मिश्र । मिश्र के राजा फेराओ (Pharaoh) नाम से जाने जाते थे । वहाँ के लोग राजा को देवी-देवताओं के समान मानकर आदर देते थे साथ ही पूजा-पाठ भी करते थे । सूर्य की पूजा करने वाले ये लोग अपने राजा को सूर्यदेव की सन्तान या सूर्य के अवतार समझते थे । इसलिए राजा की आज्ञा उनकेलिए मान्य एवं स्वीकार्य थीं, बाद में इसी आदर्श को समाने रखकर सम्राटों की पूजा करने वाली प्रथा समाज में शुरू हुई ।

कनान देश में अकाल पडने के कारण इस्राएली लोग मिश्र में आकर बसने लगे । वहाँ फेराओ के अधीन में इस्राएलियों को खूब कष्ट सहना पडा । मिश्र के राजा फेराओ का व्यवहार क्रूर एवं अमानुषिक था । उन्होंने इस्राएलियों पर ऐसे अधिकारियों को नियुक्त किया, जो उन्हें बेगार में लगाकर उनका दमन करें । [२] उन

---

१. पुराना विधान राजाओं का पहला ग्रन्थ ११:१३, एज़ेकिएल का ग्रन्थ ७:२
२. वही उत्पत्ति ग्रन्थ १५:१९-२१

अधिकारियों ने उनको बेगार में लगाया और उनसे कठोर परिश्रम कराकर उनका जीवन कडवा बना दिया । उन्होंने गारा और ईंट बनाने और खेत में हर प्रकार का काम करने केलिए उन्हें बाध्य किया ।[१] शक्तिसंपन्न इस्राएलियों का दमन करना ही प्रस्तुत अत्याचार के द्वारा राजा का लक्ष्य था । किन्तु उन पर जितना अधिक अत्याचार किया जाता था, उतना ही अधिक वे संख्या में बढते और फैलते जाते थे। यह देखकर असफल फेराओ ने एक और उपाय के द्वारा इस्राएलियों का नाश करने का परिश्रम किया । उन्होंने अपनी समस्त प्रजा को यह आदेश दिया कि वह प्रत्येक नवजात इब्रानी (इस्राएली) लडकों को नील नदी में फेंक दे ।''[२] इसके बाद भी अनेक बार इस्राएलियों को शत्रु सेना के साथ युद्ध करना पडा । उन दिनों फिलिस्ती जनता इस्राएल पर आक्रमण करने केलिए एकत्र हो गयी और इस्राएली उनका सामना करने निकले । फिलिस्ती इस्राएलियों के सामने पंक्तिबद्ध हो गये । घमासान युद्ध हुआ और इस्राएली हार गये । फिलिस्तियों ने रणक्षेत्र में लगभग चार हज़ार सैनिकों को मार डाला । यहाँ ग्रन्थकार दिखाते हैं कि इस्राएली पुरोहित एली के पुत्र की दुष्टता एवं कुकर्म ही युद्ध में इस्राएली सेना परास्त होने के कारण बन गये । इसके बाद साऊल की नियुक्ति हुई । उनके शासन से भी लोग पीडित थे। साऊल के बाद दाविद सिंहासन पर आये लेकिन वे भी उचित ढंग से शासन करने में पराजित पाये गये । उन्होंने सेनानायक ऊरीया की पत्नी बतशेबा के साथ रमण करके महान पाप किया । राजा दाविद की नीचता के बारे में साऊल के वंश का शिमाई नामक एक व्यक्ति यों चिल्लाता है - '' दूर हो, रे हत्यारे, दूर हो, रे नीच! तू ने साऊल का राज्य छीन लिया है । रे हत्यारे ! तू अपनी करनी का फल भोग रहा है ।''[३] इस विवरण से स्पष्ट है कि राजा दाविद के शासन से लोग तृप्त नहीं

---

१. पुराना विधान निर्गमन-ग्रन्थ १:१४-१५
२. वही १:२२
३. वही :सामुवल का दूसरा ग्रन्थ १६:५-८

थे । राजा दाविद के बाद पुत्र सोलमन शासन पर आये । वे बुद्धिमान और विवेकशील थे, उनके समान न तो पहले कभी कोई था और न बाद में कभी कोई रहा, लेकिन स्त्रियों के प्रति विशेष रुचि रखने वाले थे । कहा जाता है उनके महल में सात सौ राज-परिवार की पत्नियाँ और तीन सौ उपपत्नियाँ थीं । उन पत्नियों ने उसको बहकाया । वे अपने अपने देवताओं को धूप और बलिदान चढाया करती थीं ।

सुलेमान के शासन काल में लोगों को खूब कष्ट सहना पडा । बडे बडे महलों के निर्माण में, राजा एवं उनके सेवकों के आडंबरपूर्ण जीवन केलिए दिये गये मूल्यों एवं परिश्रम पर जन अतृप्त था । इसके अलावा राजा सुलेमान ने समस्त इस्राएल से तीस हज़ार लोगों को बेगार में लगाया, सत्तर हज़ार बोझा ढोने वालों और पहाडी प्रदेश में अस्सी हज़ार संगतराशों को काम पर लगाया था और सुलेमान के पास तीन हज़ार तीन सौ निरीक्षक थे, जो इन काम करने वाले मज़दूरों की देखरेख करते थे ।[१] राजा की आज्ञा थी कि मन्दिर की नींव सुन्दर गढे हुए पत्थरों से बनायी जाये और बडे-बडे तथा बहुमूल्य पत्थर खोद निकाले जायें । इस प्रकार राजा सुलेमान के शासन काल में मज़दूर लोगों की स्थिति बहुत शोचनीय थी । कठिन व्यथा पूर्ण इन लोगों के रुदन को अनसुना कर सिंहासन पर आये राजा सुलेमान के पुत्र रहबआम के आगे इस्राएल का सारा समुदाय आकर बोला—'' आपके पिता ने हमारे कन्धे पर भारी जुआ रख दिया था । आप अपने पिता की कठोर बेगार और हमारे कन्धे पर रखे हुए उसके भारी जुए को हल्का करें तो हम आपकी सेवा करेंगे ।''[२] सुलेमान के पुत्र ने उन युवकों से, जो उसके समवयस्क थे —सलाह लेकर इस्राएलियों को उत्तर दिया जो उनकी प्रतीक्षा के विपरीत थे । उन्होंने कहा-

---

१. पुराना विधान राजाओं का पहला ग्रन्थ ५:१३
२. वही १२:४

मेरी छोटी ऊँगली मेरे पिता की कमर से भी अधिक मोटी है । मेरे पिता ने तुम पर भारी जुआ रखा मैं तुम्हारा जूआ और भारी करूँगा । मेरे पिता तुम्हें कोड़ों से पिटवाते थे, मैं तुम्हें कील लगे कोडों से पिटवाऊँगा ।'' [१]

इसके बाद इस्राएल दो भागों में विभक्त हो गया । यूदा-बञ्चमिन गोत्र मिलकर दक्षिण में यूदा देश, बाकी दस गोत्रों से उत्तर में इस्राएल देश की स्थापना हुई । यूदा के राजा थे -रहबआम, अबीयाम, आसा आदि और इस्राएल के राजा थे यरोबआम, नादाब, बाशा, एला, जिम्री, ओम्री, अहाब आदि । उन्होंने उन राष्ट्रों के सारे घृणित कर्मों का अनुसरण किया । राजा रहबआम के पाँचवें वर्ष मिस्र के राजा ने जरुसलेम (यूदा) पर आक्रमण किया । उसने प्रभु के मन्दिर और राजभवन के सारे खजाने लूट लिये । उसने सब कुछ छीन लिया—सोने की उन ढालों को भी, जिन्हें सोलमन ने बनवाया था ।

इस्राएली देश की स्थिति भी यूदा देश से भिन्न न थी । बाहरी आक्रमण एवं आपसी लडाई के कारण दुर्बल बने उत्तर के इस्राएल देश ई.पू. ७२१ में असीरिया के अधीन में हो गये । तद्पश्चात इस्राएल के दस गोत्र इतिहास से गायब हो गये । दक्षिण के यूदा देश लगभग १५० वर्ष भी स्थिर रहे । लेकिन देश के विस्तार सीमित हो गये । अंत में ई.पू. ५८७ में बाबिलोन के राजा नबुकदनेज़र ने जरूसलेम (यूदा) पर अपना अधिकार स्थापित किया । उसने नगर के सामने शिविर डाला और उसे चारों ओर से घेर लिया । इस प्रकार इस्राएल के राजशासन सर्वदा केलिए समाप्त हो गया । बाइबिल का इतिहास सिरिया से मिस्र तक फैला हुआ है । इसमें सुमेरी, मिस्री, अमोरी, यूनानी, रोमी आदि जातियों का आवागमन, उत्थान-पतन, आपसी मिस्रण तथा संघर्ष चलता रहा है । इसमें आपसी रक्तरंजित संघर्ष भी चलता रहा

---

१. पुराना विधान राजाओं का पहला ग्रन्थ १२:१०-११

है । साम्राज्य की स्थापना के महत्वाकांक्षी सम्राटों की टकराहट आम बात थी । इसी हलचल, अशांति, अस्थिरता, रक्तपात, हत्या एवं षड्यंत्रों के बीच यहुदी जाति का इतिहास सिमटता रह गया था । दासता, श्रम, निष्कासन, बन्दी जीवन, मुक्ति संघर्ष सब इनके इतिहास से जुडे हुए हैं ।

सामाजिक वातावरण

बाइबिल कालीन समाज विविध जातीय लोगों से भरा था । जैसे जैसे जनसंख्या में वृद्धि होती गयी आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए एक ही जगह को अपर्याप्त पाकर वे अपनी जगह को छोडकर दूसरी जगह की खोज में जाने लगे । उक्त स्थान में पहुँचने के बाद वहाँ की परिस्थिति के अनुसार मनुष्य की बाहरी आकृति में विषेषतः मुख, सिर, बाल, होठ, आँख, नासिका आदि में भेद दिखाई पडने लगे ।[१] मनुष्य की शारीरिक विशेषतायें, भौगोलिक स्थिति, स्वजाति, विजाति संबन्ध आदि के कारण कई जातियों का आविर्भाव हुआ था । इन विभिन्न जातियों के अंतर्गत मिश्र की काकेशियन जाति, सेमाइट जाति, नीग्रोवाइट जाति, निबियन जाति, सुमेरिया की सुमेरियन जाति और सुमेरियन दक्षिणी प्रदेश में सेमटिक शाखा की एमोराइट जाति, बाबिलोन की ओमर जाति, इस्राएली या यहूदी जाति (प्राचीन काल में हीब्रू नाम इस्राएली जाति केलिए प्रयुक्त होता था और वे बाद में यहूदी नाम से जाने गये) । बाइबिलकालीन पूरे समाज में विविध वर्ग के लोगों को भी देख सकते हैं । वर्ग से तात्पर्य समान सामाजिक स्तर वाले व्यक्तियों के समूह से है जो अपने वर्गानुसार एवं कर्मानुसार समाज के नाना प्रकार के दायित्व की पूर्ति करते रहते थे । बाइबिल के मिस्र, हीब्रू, सुमेरिया, बाबिलोन, यूनानी, रोम आदि देशों के समाज में जाति-भेद एवं अपने द्वारा किये जानेवाले कर्म के अनुसार कुछ

---

१. डॉ.ब्रजेन्द्र प्रताप गौतम पश्चिम एशियाई में राष्ट्रीयता का विकास पृ. ८१

वर्ग विभाजन देखा जा सकता है । बाइबिल के पूर्वकालीन समाज में इन्हीं वर्गों, जातियों के अतिरिक्त अनेक 'संप्रदाय' मिलते हैं, इनमें प्रमुख है-अनामी, अमोरी, यबूसी, फिलिस्ती, समारी आदि ।

मिश्र के समाज में उच्च जाति और नीच जाति का भेद-भाव था । उच्च और नीच जाति के लोग अलग स्थानों पर रहते थे । उनकी आर्थिक स्थिति भिन्न थी। मिस्र देश के वर्गविभाजन में राजा और राजकुल का एक प्रमुख स्थान था । राज्य के अन्य लोगों से राजवंश अलग रहते थे । विवाहादि संबन्धों द्वारा अन्य गोत्रों या वर्गों से कोई मेल-मिलाप उनमें नहीं थे । इसलिए मिस्र के राजवंशीय लोग अपने ही परिवार से विवाह करते थे । याने भाई-बहन, पिता-पुत्री में भी विवाह होने की प्रथा प्रचलित थी । कारण यह बताया जाता है कि राज्य का अधिकार बहिन को था । राज पद प्राप्त करने केलिए और उसको बनाये रखने केलिए वे ऐसा करते थे। मिस्र देश में काम के अनुसार दूसरा स्थान सामन्तों का था । सामन्तों के अंतर्गत सामन्त पुरोहित, बडे बडे ज़मीनदार और राजसेवक आदि आते थे । इनमें सबसे श्रेष्ठ सामन्त पुरोहित ही थे । तीसरे वर्गों में कृषक, व्यापारी, एवं स्वतंत्र नागरिक आदि थे और अंतिम वर्ग में दासगण आते थे । मिस्र में सामन्त पुरोहितों का दायित्व राजकार्य में सलाह देना एवं धार्मिक कार्यों को निभाना था । कालान्तर में सामन्त पुरोहित अपने कर्तव्यों से छूटने लगे । देवालयों में देवदासियों को रखने की म्लेच्छ रीति प्रचलित थी । वहाँ के सामन्त पुरोहित अपनी वासना की तृप्ति केलिए इनके साथ रहते थे ।[१] मिस्र की पूरी धरती के अधिकारी भी राजा ही थे।

सुमेरिया में सुमेरियन जाति एवं दक्षिण सुमेरिया में सेमटिक शाखा की एमोराइट जाति रहती थी । सुमेरिया के समाज अभिजात वर्ग के थे । यहाँ के

1. Alped A knope : The westeren experience, Egyption society p. 15-16

निम्न जाति के लोग मध्यवर्ग के लोगों के साथ कृषिकार्य आदि करते थे । बाबिलोन के पुरोहित विशेष अधिकारी थे । इनके पास पुरोहित अनुदान के रूप में प्राप्त बहुत धन-संपत्ति थी । वे राजा के समान अधिकारों से युक्त व्यक्ति थे । यूनानी समाज में भी सबसे शक्तिशाली सामन्त राज पद लेते थे । निम्न वर्ग के मानव इन सामन्ती राजाओं के अधीन में रहते थे । जनता राजा को देवता का स्थान भी देती थी । धार्मिक कर्मों का संपादन राजा के निर्देशानुसार किया जाता था । राजा एक साथ दैविक और लौकिक अधिकार से युक्त थे । यूनानी समाज में भी उच्च जाति के लोग नीच जाति के साथ विवाहादि संबन्ध स्थापित नहीं करते थे । रोमी समाज के लोग नियम और व्यवस्था के प्रेमी थे ।[१] रोम में पूरे साम्राज्य का शासन सम्राट ही करता था । रोमी शासन प्रबन्ध में स्थानीय स्वायत्त शासन भी होता था । रोमी सभ्यता यूनानी सभ्यता से भी अधिक नगर के जीवन पर निर्भर थी । ईसा के समय यहूदी लोग रोमियों के अधीन थे । रोमी साम्राज्य के यहूदी लोगों को जातीय कर देना था । कहीं कहीं स्थानीय लोग ही कर जमा करते थे।[२] कर वसूल करने वाले (नाकेदार) अधिकांश बेइमान थे, इसलिए अधिकतर लोगों के साथ अन्याय होता था।[३]

बाइबिल में यहूदी जाति (हीब्रू, इस्राएली) का प्रतिपादन बहुत मात्रा में देख सकते हैं । यहूदी लोग अपने को ईश्वर के लोग मानते थे[४] और इस पद को बनाये रखने केलिए धर्मानुष्ठान बहुत निष्ठा के साथ करते थे । इस्राएली समाज में परिवार ही मुख्य भाग था । विधान के द्वारा वे 'याहवे' (ईश्वर) के ही परिवार के अंग बन जाते थे । पुराना विधान में परिवार को 'पिता का भवन' विशेषण देते हैं । पिता

---

1. Yohan Dhulla : The Background of the New Testament P. 162
२. नया विधान संत मात्यु ९: १२, संत लूक ५:३०
३. वही संत लूक ३:१३, १९:८
४. पुराना विधान निर्गमन-ग्रन्थ ३४:९

ही परिवार के मुख्य अधिकारी थे । हर परिवार वाले को पिता की आज्ञा का पालन करना था । सन्तान अपने पिता को आदरपूर्वक 'प्रभो' पुकारती थी । पिता की आज्ञा का पूर्णरूपेण पालन करने वालों का समूह था परिवार । इसके अंतर्गत पुत्र-पुत्रियाँ, उनकी सन्तान, गुलाम, दास-दासियाँ, आदि रहते थे । अनेक परिवार मिलकर कुल बन जाते थे । कुल, परिवार एवं गोत्र के बीच की कडी थी । इस्राएल में साठ कुल थे इसकी सूचना गणना-ग्रन्थ से प्राप्त होती है ।[१] कुल के अनुसार देश का विभाजन किया जाता था । इसका वर्णन भी बाइबिल से मिलता है ।[२] इसके अलावा बाइबिल में प्रतिपाद्य समाज विभिन्न गोत्रों एवं विभिन्न उपजातियों के नाम से भी जाने जाते थे । गोत्र से तात्पर्य समाज से ही है । प्रस्तुत गोत्रों में विविध परिवार, कुल, रक्त संबन्ध आदि से युक्त सामाजिक व्यक्तित्व थे । बाइबिल के 'पुराना विधान' के बारह इब्रानी गोत्र जो याकोब के बारह पुत्रों द्वारा स्थापित थे, विशेष महत्व के रहे । इन बारह गोत्रों के नाम थे - रूबेन गोत्र, सिमओन गोत्र, यूदा गोत्र, इस्साकार गोत्र, दान गोत्र, आशेर गोत्र, ज़बुलोन गोत्र, एफ्राईम गोत्र, मनास्से गोत्र, बेनयामीन गोत्र, गाद के गोत्र और नफताली गोत्र । यहूदियों की उपजातियाँ थीं-फरीसी, शास्त्री और सदूकी । यहूदी गोत्रों के लेवी और हारून वंश को विशेष महत्व देते थे । वे ही मन्दिर की सेवा, पूजा-अर्चना आदि करते थे। हारून वंश के लोग याजक (पुरोहित) नाम से भी जाने जाते थे । इनको कठोर नियमों का पालन करने थे । याजक अन्य जातीय स्त्रियों से विवाह करने पर याजक पद से हटा दिये जाते थे । रक्त की पवित्रता का होना अति आवश्यक था। लेवियों के धर्म का पालन केवल मन्दिर तक ही सीमित था । लेवी, याजकों के सहायक थे । प्रातः और सन्ध्या को मन्दिर के गर्भ-गृह में प्रवेश कर धूप की वेदी पर धूप जलाना उनका कर्तव्य था । इन याजकों में एक महायाजक होता था । इसके अलावा प्रधान

---

१. पुराना विधान गणना-ग्रन्थ २६:१-५६
२ वही जोशुआ का ग्रन्थ १३:१५

याजक भी था जो यहूदियों की सर्वोच्च सभा के अध्यक्ष थे । ईश्वर-पूजन, वेदाध्ययन, अध्यापन, पौरोहित्य आदि जो कार्य भारत के ब्राह्मण करते थे ये सब कार्य पश्चिमी एशियाई समाज में लेवी एवं हारून गोत्र के लोग करते थे। पुराना विधान में ही ऐसे पुरोहितों का चित्र भी है जो अपने कर्तव्यों की पवित्रता का पालन न कर पथभ्रष्ट होकर भ्रम करते थे । उनका कर्तव्य था कि ईश्वर की सेवा करना, ईश्वर के नाम पर आशिर्वाद देना, हर झगडे तथा मार-पीट को निपटाना ।[१] ईश्वर एवं जन का मध्यवर्ती बनना ही पुरोहित का दायित्व था । ईश्वरीय ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान था। प्रस्तुत ज्ञान पुरोहित जन को ही देना था । युनानीकरण के प्रभाव में पडकर याजक गणों में विदेशी रीतिरिवाज़ों को अपनाने का इतना बोलबाला था कि उनको वेदी की सेवा करने की चिन्ता नहीं रही । वे मन्दिर को तुच्छ समझते थे और बलिदान चढाना छोड देते थे, किन्तु चक्र फेंकने की घंटी बजते ही वे संहिता-विरोधी खेलों में सम्मिलित होने केलिए व्यायामशाला की ओर दौड पडते, वे अपने पूर्वजों द्वारा सम्मानित पदों की उपेक्षा करते थे और यूनानियों द्वारा प्रदत्त सम्मान को बडा महत्व देते थे । पुराना विधान में नबी होसिया की राय में पुरोहित इसमें विफल हो गये-

याजको ! मैं ही तुम पर दोष लगा रहा हूँ । दिन-रात तुम स्वयं पथभ्रष्ट होकर ठोकर खाते चलते हो और नबी भी तुम्हारे साथ हैं । धर्म के अभाव में मेरी प्रजा भ्रष्ट हो गयी है ।'' [२]

इस्राएल के याजकों विशेषतः पुरोहित एली के पुत्रों के कुकर्म के बारे में न्यायकर्ता सामुवल यों चित्रित करते हैं -'' एली के पुत्र दुष्ट थे । वे याजक प्रभु पर श्रद्धा नहीं रखते थे और लोगों के साथ इस प्रकार का व्यवहार करते थे-जब कोई बलि चढाता, याजक का सेवक त्रिशूल लेकर आ जाता और जब मांस पकने

---

१. पुराना विधान विधि विवरण-ग्रन्थ २१:५
२. वही होसिया का ग्रन्थ ४:४-६

`लगता, तो उसे तवा या कडाही या बरतन में चुभोता और जो कुछ त्रिशूल में लग जाता, याजक उसे अपने लिए रख लेता । यहाँ तक कि याजक का सेवक आकर बलि चढाने वाले से कहता ''याजक को भुनने केलिए मांस दो । वह तुम्हारे पकाये हुए मांस से कुछ नहीं लेना चाहता । वह कच्चा मांस माँगता है । तुम्हें अभी तो देना पडेगा, नहीं तो मैं उसे ज़बरदस्ती ले लूँगा ।'' [१] प्रस्तुत विवरण से पता चलता है कि पुरोहित अपने वास्तविक दायित्व को पूर्णरूपेण भूलकर पेट भरने एवं जिह्वा को रुचिकर बनाने में ही ध्यान देते थे साथ ही प्रभु को अर्पित चढावे को तुच्छ भी समझते थे ।

इस्राएली राजा की स्थिति भी इससे भिन्न न थी । स्वयं ईश्वर की आज्ञा के पालन के साथ ही अपनी प्रजा से उसका पालन कराना भी राजा के कर्तव्य में था। लेकिन बाइबिल द्वारा यह स्पष्ट है कि इस्राएली सिंहासन पर जितने शासक गण आये उन्होंने ऐसा नहीं किया । इस्राएली समाज के साधारण जन भी आचरण भ्रष्ट होकर मनमाने ढंग से जीते थे । इस प्रकार बाइबिल में चित्रित इस्राएली समाज का हरेक व्यक्ति, राजा से लेकर सामान्य जन तक–सबों ने सन्मार्ग छोडकर दुर्मार्ग पर चलना शुरु किया था । इसके फलस्वरूप समाज की वास्तविक उन्नति में बाधा पडी । पथभ्रष्ट जनता को ठीक रास्ते पर लाने केलिए उत्तरदायी पुरोहित जन भी दुराचार एवं दुष्कर्म के शिकार बन गये थे ।

दासत्व की प्रथा मिश्र, हीब्रू, सुमेरिया, बाबिलोन, यूनान, रोम जैसे पश्चिम एशियाई समाज में प्रचलित थी । भारत के शूद्र की स्थिति के समान उनका जीवन भी कठोर था । अपने स्वामी केलिए उनको खूब काम करना पडा था । उनसे मुक्ति मिलना कठिन बात थी । राजमहल आदि के निर्माण केलिए अधिक मज़दूरों की

---

१. पुराना विधान सामुएल का पहला ग्रन्थ २:१२-१६

आवश्यकता बन पडी तो मिश्र के प्रान्त प्रदेशों और सीमाओं में बसने वाले हीब्रू लोगों को गुलाम बनाकर खूब काम कराते थे । इनसे अधिकारी वर्गों के व्यवहार क्रूर एवं आमानवीय थे । काम करने में विमुखता दिखाने पर कठोर दण्ड भी देते थे ।

बाइबिल में तीन प्रकार के दासों का चित्रण है जिनका जीवन अत्यन्त क्लेशपूर्ण था-युद्ध में पकड़े हुए बन्दी, गुलाम के कुल के तथा खरीदे हुए । पश्चिम एशियाई समाज में यह प्रथा रही थी कि युद्ध में विजयी लोग विजित लोगों को अपने परिवार के दास बनाते रहे थे । उससे उनका व्यवहार अत्याचार पूर्ण था । घर के स्वामी की संपत्ति में इन्हें भी गिनते जाते थे । इन्हें खरीदा और बेचा जाता था घर के पूरे काम इनके दायित्व में थे । हरेक गुलाम पर अपने स्वामी का चिह्न होता था । स्वामी के घर से भागने वाले दासों को मृत्युदण्ड का भागी होना पडता था। दासों केलिए कानून बने थे जिनके द्वारा उन्हें कुछ सुविधायें भी प्राप्त थीं । उस कानून के अनुसार उनको अपने श्रम से कमाई करने की स्वतंत्रता थी । वर्षों के बाद अपना कर्ज चुका देने पर स्वतंत्र होने की अनुमति भी थी । इब्रानी रीति के अनुसार दास अपने स्वामी के वहाँ छ वर्ष तक सेवा करने के बाद स्वतंत्र हो सकता था । मिश्र एवं बाबिलोन के दासों के समान कठिनाई इब्रानी दासों को न थी । यूनान एवं रोमी समाज के दासों की स्थिति भी कठिनाईयों से पूर्ण थी । युद्ध में पकडे हुए बन्दियों को दासत्व के बन्धन में लाना यहाँ भी साधारण बात थी ।

बाइबिल की रचना करने से पूर्व संत पोल पाश्चात्य देश की वास्तविक परिस्थिति तथा उससे छुटकारे का परिचय कराते हैं । उन्होंने पाश्चात्य देश में एक अव्यवस्थित संसार को देखा । उसमें मानव समाज के आपसी संबन्ध बिगडे हुए थे । स्त्री-पुरूषों के परस्पर संबन्धों में अनैतिकता छा गई थी । मस्तिष्क और चरित्र में विकार होने के फलस्वरूप सामाजिक संबन्ध टूटने लगे थे । चरित्र-हीनता बढ

गई थी । उनकी राय में यहूदी वास्तविक रूप में पापी था । उन्होंने व्यवस्था भंग की थी ।

'नया विधान' की पृष्ठभूमि का समाज ऐसा समाज था जिसमें यहूदी, यूनानी, रोमी धर्म और रहस्यवादी गुप्त पंथों ने मानवजाति में एक तीव्र लालसा जगा दी पर वे उसे शान्त न कर सके । यूनानी दार्शनिक और रोमी विज्ञान, समाज के लिए एक सर्वगुण संपन्न आदर्श की तलाश में थे । ईसा में उन्हेंने यह आदर्श पा लिया ।

भारतीय एवं पश्चिम एशियाई समाज के वर्ण-विभाजन व वर्ग विभाजन की दृष्टि से विश्लेषण करने पर मुख्य रूप से यह स्पष्ट है कि ज्ञानार्जन, सुरक्षा, व्यापार तथा सेवा प्राचीनकाल से देश-काल भेद के बिना समान ही रही भारत में विद्या और ज्ञानप्राप्ति के आधिकारी ब्राह्मण, पश्चिम एशियाई समाज में पुरोहित, क्षत्रीय या राजा देश सुरक्षा के अधिकारी, कृषि अथवा व्यापार वाले वैश्य, कृषक या व्यापारी, सेवा करने वाले शूद्र या सेवक भारतीय एवं पश्चिम एशियाई समाज में समान रूप से दिखाई पडते हैं । बाइबिल के समाज में वर्ग विभाजन तो मिलता है, जिसमें भारत में प्रचलित वर्ण एवं उनके कर्तव्यों में समानताएँ देखी जाती हैं फिर भी कहीं कहीं कुछ असमानताएँ भी हैं जैसे भारतीय समाज में जहाँ वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मणों (पुरोहितों) का प्रथम स्थान रहा है तो पाश्चात्य एशियाई समाज में सर्वप्रथम स्थान राजाओं का है और पुरोहित उनके सामन्तों के अन्तर्गत आते हैं ।

आर्थिक स्थिति

धन के अभाव में क्लेशपूर्ण जीवन बितानेवाले लोगों का चित्र बाइबिल के आदि से लेकर अंत तक देख सकते हैं । सात वर्ष तक अकाल से पीडित जनता

सर्वसंपन्न राजा 'फेराओ' की शरण में आती है और रोटी माँगती है । [१] इस्राएली लोग अकाल के कारण काननदेश से भी मिश्र में अनाज लेने केलिए आते हैं । अकाल की विभीषिका का चित्र बाइबिल यों देता है -'' घोर अकाल के कारण उस समय सारे देश में अनाज की कमी थी और इसलिए मिस्र और कानन, दोनों अकाल के कारण त्रस्त थे । लोगों द्वारा अनाज खरीदे जाने के कारण मिस्र और कानन देश का सारा रूपया-पैसा मिस्र देश के शासक के पास इकट्टा हो गया था । उन्होंने उसे फेराओ के कोश में जमा कर दिया । दरिद्र लोग पैसे के अभाव में अपने पशुधन के बदले अनाज लेते थे ।'' मिस्र एवं कानन की आम जनता के कष्ट प्रस्तुत कथन के द्वारा और भी स्पष्ट हो जाते हैं -'' हम अपनी भूमि सहित फेराओ के दास बन जायेंगे। हमें अन्न दीजिए, जिससे हम जीवित रहें जायें, मरें नहीं ।'' [२] अकाल पडने के कारण सब मिस्रवासियों ने अपने खेत बेच दिये । इस प्रकार सारी भूमि फेराओं की हो गयी । उसने मिस्र के एक छोर से दूसरे छोर तक के सभी लोगों को दास बना लिया । फेराओ की प्रस्तुत भूमि पर इन दासों के द्वारा फसलें उगवाते और कटवाते थे । आज तक यही नियम मिस्र देश में प्रचलित है । कानन देश से मिस्र आये हुए इस्राएलियों को भी मिश्र के राजा एवं मिस्री देश केलिए खूब काम करना पडा । उन्होंने गारा और ईंट बनाने और खेत में हर प्रकार का काम करने केलिए उन्हे बाध्य किया । इस प्रकार शोषकों का अधिकारभाव एवं शोषितों की नीच स्थिति एवं निर्धनता यहाँ व्यक्त है ।

'नया विधान' में पलस्तीना का यहूदी समाज आर्थिक दृष्टि से बहुत बुरी दशा में दिखाई पडता है । वहाँ तीन मुख्य धन्धे थे -- कृषि, पशुपालन और मछली पकडना । गाँव में रहने वाले लोगों की बस्ती के आसपास ही खेत थे । इन

---

१. पुराना विधान उत्पत्ति -ग्रन्थ ४२:५५
२. वही ४९:१९

किसानों का जीवन क्लेश पूर्ण था । पहाड-पहाडी, ऊबड-खाबड उस प्रदेश को कृषि केलिए योग्य बनाने में उनको खूब काम करना पडा था । साथ ही कृषि सर्वथा वर्षो पर निर्भर थी । जल का अभाव एवं कभी कभी होने वाली बाढ के कारण भी किसानों को खूब सहना पडा । किसानों में अधिकाधिक लोग दरिद्र थे । लेकिन फिर भी कुछ लोग धनिक भी थे ।[१] दैनिक वेतन के रूप में मिलने वाले एक दीनार से आजीविका चलाना मुश्किल की बात थी ।

कनानी लोगों में व्यापार करनेवाले भी थे । व्यापार के ज़रिए आम लोगों को लूट-मार कर धमंडी एवं बहुत अधिक लाभ लेने वाले लोग भी उस ज़माने के समाज में थे । संत याकूब इन पर यों आक्रोश करते हैं - आप नहीं जानते कि कल आपका क्या हाल होगा । आपका जीवन एक कुहरा मात्र है वह एक क्षण दिखाई दे कर लुप्त हो जाता है । आप लोगों को यह कहना चाहिए, '' यदि ईश्वर की इच्छा होगी, तो हम जीवित रहेंगे और काम करेंगे । किन्तु आप अपनी धृष्टता पर घमण्ड करते हैं ।''[२]

इस्राएल के गडरियों की स्थिति बहुत क्लेशपूर्ण थी । वे भेड-बकरी के पालन केलिए चारे की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान में घूमते फिरते थे । इस कारण उनका एक स्थिर वासस्थान नहीं रहता था । धनिक गडरिये विरले ही थे। यह उनकी आजीविका चलाने का काम होने पर भी समाज में प्रस्तुत काम करनेवालों की मान्यता नहीं थी । समाज के उन्नत वर्ग गडरियों को अज्ञानी, नियमों के बारे में अनभिज्ञ, पापी आदि मानते थे । वे समाज के ऊँचे पद अलंकृत नहीं कर सकते थे । उनको झूठ बोलनेवाले कहकर समाज से अलग किया जाता था और उनसे

---

१. नया विधान संत लूक १२:१६-२१, संत मात्यू २३:३३-३६
२. वही संत याकूब ४:१४-१६

भेड बकरी, दूध आदि न खरीदने की आज्ञा यहूदी लोग देते थे । [१] मछली पकडनेवालों का भी समाज में निम्न स्थान था ।

राजाओं के शासनकाल में प्रगति उसकी पराकाष्ठा पर थी । बल्कि धन की वृद्धि के अनुसार उनकी धर्मनिष्ठा में वृद्धि नहीं हुई । दरिद्रों को पीडित करना, दास बनाना उनको दबाना आदि बहुत मात्रा में चलता था । नबी एज़किएल इसका चित्रण यों करते हैं -'' देश के पदाधिकारी अपने शिकार को फाडते समय गरजनेवाले सिंह की तरह हैं । उन्होंने नर-भक्षण किया है । उन्होंने उनका धनकोष और बहुमूल्य पदार्थ छीने हैं ।'' [२] यहाँ पदाधिकारी को शोषक एवं दरिद्रों को शोषित के रूप में दिखाया गया है । शोषण के संबन्ध में यहाँ कहा गया है - '' वे चाँदी के सिक्कों पर निर्दोष को बेचते हैं और जूतों की जोडी के दाम कंगाल को । वे दरिद्रों का सिर पृथ्वी की घूल से रौंदते हैं और दोनों पर अत्याचार करते हैं ।'' [३] धनी एवं दरिद्र रूपी भिन्नता इस्राएलियों के बीच प्रारंभ में नहीं थी लेकिन राजशासन की शुरूआत से इसका भी आविर्भाव हुआ । अन्याय एवं असत्यमार्ग से धन कमाकर दरिद्रों की उपेक्षा कर जीनेवाले इन धनिक लोगों को देखकर नबीगण आक्रोश करते थे । धिक्कार है उन लोगों को, जो अन्यायपूर्ण कानून पारित करते हैं और अत्याचार को विधि सम्मत बनाते है ! वे दरिद्रों के अधिकार को छीनते हैं और पददलित जनता को न्याय से वंचित करते हैं । वे विधवाओं को अपना शिकार बनाते हैं और अनाथों को लूटते हैं ।'' [४] इन अत्याचारियों का वर्णन नबी जरेमिया यों करते हैं -'' मेरी प्रजा के बीच दुष्टों की कमी नहीं, जो चिडीमारों की तरह झुक कर घात लगाये बैठे हैं । वे लोगों को फन्दे लगा कर फँसाते हैं । पक्षियों से भरी

---

१. फिलिप्प तय्यिल सुविशेषाङ्ल-ओरु पश्चातल पठनम् पृ. १९
२. पुराना विधान एज़ेकिएल का ग्रन्थ २२:२५
३. वही आमोस का ग्रन्थ २:६
४. वही इसायाह का ग्रन्थ १०:१-३

टोकरी के समान उनके घर लूट के माल से भरते हैं । वे छल-कपट से धनी बनते[४] और समाज में बडे समझे जाते हैं । वे मोटे-ताज़े हैं उनके शरीर पर चरबी चढ गयी है । उनके कुकर्मों की सीमा नहीं । वे अनाथों को न्याय नहीं दिलाते और दरिद्रों के अधिकारों की रक्षा नहीं करते ।[१] आडंबर प्रियता के कारण अनीतिपूर्वक धन कमाने केलिए अपने पति को प्रेरित करनेवाली पत्नी का चित्रण आमोस एवं एशया नबी देते हैं । यथा -'' तुमने दरिद्रों का शोषण किया है और तुम जबरदस्ती से अनाज की वसूली करते हो, जो महल तुमने कटे-छँटे पत्थरों से बनाये हैं, तुम उनमें नहीं रह पाओगे.....तुमलोग धर्मियों को तंग करते हो, तुम घूस लेकर न्यायालय के द्वार से ज़रूरतमन्दों को भगा देते हो ।''[२] इससे स्पष्ट है कि अपनी इच्छा की पूर्ति केलिए स्वार्थी बनाये गए संपन्न वर्ग उस समाज में थे । इन लोगों का अस्तित्व इस्राएल के सामाजिक संगठन को दुर्बल बनाता था।

इस्राएल की आबादी में अधिकांश लोग दरिद्र ही थे । दैनिक वेतन पानेवाले, विधवायें, भिक्षुक, दास आदि बहुसंख्यक दरिद्र येशु के समय में थे । अन्धा, लंगडा आदि विभिन्न प्रकार के मरीज़ जरूसलेम मन्दिर में आनेवाले भक्तों से भिक्षा लेकर जीते थे ।[३] नौकरी की तलाश करने वाले[४] आधी रात को अपने घर पर सफर कर आये मित्र केलिए रोटि की खोज में पडोस जानावाले[५] आदि आदि दरिद्रों के प्रतिनिधि माने जा सकते हैं ।

धर्म का ह्रास

पश्चिम एशियाई समाज में कई जातियाँ, भाषा, धर्म आदि के संकेत मिलते

---

१. पुराना विधान जरेमिया का ग्रन्थ ५:२६-२९
२ वही आमोस का ग्रन्थ ५:११
३. नया विधान संत लूक १८:३५-३६, प्रेरित चरित ३:१-२
४. वही संत मात्यु २०:७
५. वही संत लूक ११:५-७

हैं । बहुत प्राचीनकाल से ही यहाँ के लोग ईश्वर में विश्वास करते थे । लोगों के जीवन में देवताओं का बाहुल्य था । ईश्वर में अटूट विश्वास रखते थे और कई तरह की बालि चढाते थे । लेकिन कालान्तर में धार्मिक आचार एवं अनुष्ठान में विश्वास का आधार नष्ट होता गया । समाज धीरे-धीरे धार्मिकता से फिसलता जा रहा था। धार्मिक आचारों और अनुष्ठानों का संबन्ध जीवन के आदर्शों से नहीं था बल्कि बाह्य आचार एवं व्यवहार से था । हीब्रू धर्म का प्रारंभिक विश्वास क्रूर अन्धविश्वास का था । इस्राएलियों को मिस्र एवं एशिया की सभ्याताओं के मध्य में रहना पडा जिससे उक्त सभ्यताओं का प्रभाव इन पर पडा । हीब्रुओं में प्रारंभिक काल में भूत-प्रेत की पूजा का प्रचलन था जो वृक्षों, पर्वतों, पवित्र कूपों और विभिन्न रूपों वाले पाषाणों में रहते थे । ये लोग इनकी पूजा करते थे साथ ही बलि भी चढाते थे । कुलदेवता की पूजा, सर्प-पूजा आदि भी प्रचलित था। बालदेव की पूजा भी होती थी जो पौरुष का द्योतक था । यह विश्वास हीब्रूओं में प्रारंभ से लेकर ११ वीं शताब्दी ई.पू. तक चलता रहा ।[१] बाद में बहुदेव के स्थान पर एकदेव याहवे (Yahweh) में विश्वास की ओर बल दिया गया । ग्रीक लोग अनेक देवी-देवताओं के उपासक थे । इसलिए उनका धर्म बहुदेववादी था । संसार की शक्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले अनेक देवगण उन लोगों के विश्वास में रहे थे । समुद्र-देव-याम, धान्य देव-दागण, तूफान के देव, हदाद, चन्द्रदेव, शीन आदि उनके अन्तर्गत आते हैं । लोगों की अज्ञता ने इसी प्रकार के विविध देवों को जन्म दिया था । याने वज्रपात का कारण न जाननेवाले ये लोग बादलों की गरज 'बज्रपात देव' की गरज मानने लगे। इन देवों को प्रसन्न कराने केलिए मन्दिर बनाकर, पूजा-पाठ आदि करते थे । बाइबिल में ऐसे देवों का विवरण हम देख सकते हैं । वृक्षों में ईश्वर का रूप देखने की प्रथा भी उस काल में प्रचलित थी । उत्पत्ति-ग्रन्थ में ऐसा एक वर्णन देखा

---

1. Simon Schuster : The History of Ancienct world civilization P. 224

जा सकता है । याने अब्राहम ने बएर-शेबा में एक झाऊ का वृक्ष लगाया और वहाँ प्रभु शाश्वत ईश्वर से प्रार्थना की ।'' [१] और एक स्थान पर ऐसा चित्रित किया गया है कि हीब्रू वंशज याकूब ने चाँदी के सौ सिक्के देकर भूमि को खरीद लिया और उस पर अपना तम्बू खडा कर दिया । वहीं उसने एक वेदी भी बनायी और उसका नाम इस्राएल का महान ईश्वर रखा । [२] इन विवरणों से व्यक्त होता है कि प्रारंभिक काल में हीब्रू धर्म अन्ध विश्वास से भरा था ।

हीब्रू समाज में दो तरह के पुरोहित थे । बहुदेवताओं को माननेवाले और एक ईश्वर को माननेवाले । देवी-देवताओं में बालदेव की पूजा करनेवाले और एक ईश्वर में विश्वास करनेवालों के बीच मतभेद था । बाइबिल के 'नया विधान' में प्रतिपादित यहूदी शास्त्रियों और फरीसियों की दृष्टि में धर्म कुछ बाहरी नियमों, उपनियमों और रीतियों को मानना ही था । बाह्य विधियों के पालन में ही वे धर्म की सत्ता देखते थे । याने उनकी दृष्टि में अनुष्ठान (कर्मकाण्ड) और धार्मिक क्रियाओं का पालन मात्र आराधना थी । वे लोग स्नेह एवं करुणा को प्रमुखता न देकर नियमों एवं परंपरागत विश्वासों को मात्र स्थान देते थे । अपने कर्मों के द्वारा सबों की प्रशंसा पाने केलिए वे केवल दिखावे केलिए भिक्षा देते थे और सदा समय प्रार्थना करते थे । फरीसी, शास्त्री एवं सदूकी लोगों से भरे समाज में धर्म का वास्तविक अर्थ एवं स्थान न रहा केवल अपनी इच्छापूर्ति केलिए कुछ न कुछ कर्म करने वाले आधर्मी लोगों के कारण धर्म का ह्रास हो गया था ।

मोक्ष की असंभाव्यता

जीवन का चरम लक्ष्य है आत्मसाक्षात्कार करना । आत्मतत्व सर्वत्र व्याप्त

---

१. पुराना विधान उत्पत्ति-ग्रन्थ २१:३३
२. वही ३३:१९-२०

है । विश्व के सभी प्राणी चरमसत्यमय हैं । इस सत्य की उपलब्धि केलिए मनुष्य अपने व्यवहार में जितना अधिक निर्मल हृदय होगा और सार्वभौम प्रेम का पालन करनेवाला होगा, उतना ही अधिक वह सफल हो सकेगा । ईश्वर और मनुष्य के बीच के यथार्थ संबन्ध का अनुभव करना ही मोक्ष है । वही ईश्वरीय समाज है । वह भाईचारे का अनुभव और जीवन तथा प्रेम का बंटवारा करना है । ज्ञानियों ने मोक्ष को पुरुषार्थ में सर्वोपरि माना है । मोक्ष की उपलब्धि केलिए मनुष्य को जीवन-पर्यन्त अनेक प्रकार के प्रयास करने होते हैं । इन प्रयासों का परिशुद्ध रूप साधना कहलाता है । मन के विकारों का परित्याग कर मनुष्य को आत्मसाक्षात्कार की प्राप्ति केलिए इच्छुक बनना चाहिए । मोह, लोभ, क्रोध, द्वेष घृणा आदि दुर्गुणों का परित्याग कर देने पर मनुष्य में ज्ञान का विकास हो जाता है । मन जब विकार रहित हो जाता है तब निर्मल मार्ग की भांति प्रकाशित होता है । इसके फलस्वरूप वह व्यक्ति आध्यात्मिक एकता की ओर आकृष्ट होता है । बाइबिल मानव से इसी आध्यात्मिक एकता की ओर आने का आह्वान करता है । नश्वर भौतिकता की प्राप्ति में निरत न होकर अनश्वर आध्यात्मिक संबन्ध की कामना करने का उपदेश ही बाइबिल में भरे पडे हैं । भौतिकता के पीछे जानेवाले मनुष्यों को धन कमाने की इच्छा से दौडते हुए देखकर बाइबिल उनकी लक्ष्यहीनता पर भत्सना करते हुए कहता है -'' पृथ्वी पर अपने लिए पूँजी जमा नहीं करो, जहाँ मोरचा लगता है, कीडे खाते हैं और चोर सेंध लगाकर चुराते हैं । स्वर्ग में अपने लिए पूँजी जमा करो, जहाँ न तो मोरचा लगता है, न कीडे खाते हैं और न चोर सेंध लगा कर चुराते हैं । क्योंकि जहाँ तुम्हारी पूँजी है, वहीं तुम्हारा हृदय भी होगा ।'' [१]

विषयासक्ति वास्तव में बन्धन का कारण है, जब मन सांसारिक मोह-मायाओं

---

१. नया विधान संत मात्यू ६:१९-२१

से अलग रहता है तब मोक्ष मिल जाता है । व्यक्ति को निर्विवाद रहना आवश्यक है । आसक्तिपूर्ण मन द्वारा आत्मदर्शन असंभव है । निर्मल मन से ही आत्मोपलब्धि अर्थात् मोक्ष-प्राप्ति है । व्यक्ति व्यक्ति की मोक्ष-प्राप्ति संभव हो, यही उद्देश्य करके बाइबिल ने नैतिक-धार्मिक आचरण पर विशेष बल दिया है । मुक्ति वास्तव में पूर्ण सुरक्षा है, परिपूर्ण स्वातंत्र्य है । बाइबिल बताता है कि धार्मिक एवं नैतिक आचरण एवं सेवा से ही महानता मिलती है । इसके फलस्वरूप लोग पापों से मुक्ति पाते हैं। पापों से दूर रहकर परलोक या स्वर्गराज्य में परमानन्द का भागी होना मुक्ति या मोक्ष प्राप्ति है । वह आध्यात्मिक नवजीवन है । 'नया विधान' द्वारा संत पोल स्मरण दिलाते हैं कि ''पापमुक्ति के फलस्वरूप आत्मा को नया जीवन प्राप्त है ।''[१] सब मनुष्यों को पापा से मुक्त करने केलिए ईसा संसार की ओर आए हैं । 'ईसा'' नाम का अर्थ भी मुक्तिदाता है । मूल्यों से युक्त जीवन जीने का आह्वान उन्होंने लोगों को दिया जो मोक्ष का द्वार है ।

बाइबिल के अनुसार मुक्ति पाने केलिए कई शर्तों का पालन करना आवश्यक है । ये हैं - आध्यात्मिक पुनर्जन्म [२] आज्ञाओं का पालन, पाप से दूर रहना, गहरी धार्मिकता, पश्चात्ताप, क्षमादान आदि । स्वर्गराज्य मिलने या मुक्ति पाने केलिए बाइबिल में तीन बडी शर्तें हैं - अपने गुनाहों का पश्चात्ताप करना, ईश्वर की दया पर आश्रित होना और ईश्वर का आज्ञाकारी होना । जो ईश्वर की इच्छा पर चलता है, वह ईश्वर के राज्य में प्रवेश करेगा । ईश्वर जिस प्रकार पवित्र हैं, वही पवित्रता व्यक्ति को भी चाहिए । बालकों जैसा शुद्ध हृदयवाला मोक्ष का अधिकारी है । बाइबिल में ईसा लोगों से अनुरोध करते हैं कि - '' तुम सबसे पहले ईश्वर के राज्य और उसकी धार्मिकता की खोज में लगे रहो और ये सब चीज़ें तुम्हें यों ही मिल

---

१. संत पोल रोमियों के नाम पत्र ८:१०
२. नया विधान संत जोन ३:३

जायेंगी । [१] बाइबिल यह भी सिखाता है कि मुक्ति केलिए विश्वास और धैर्य की भी आवश्यकता है । ईसा ने क्रूस पर अपना बलिदान देकर मनुष्य का रास्ता मौत की ओर से मुक्ति की ओर मोड दिया । क्योंकि वे मानव जाति को पाप के भार से मुक्त करने आये हैं । मोक्षप्राप्ति केलिए समाज-सत्य को जानना है, क्योंकि केवल सत्य ही उन्हें स्वतंत्र करा सकता है । बाइबिल के अनुसार मोक्ष या मुक्ति का प्रारंभ इस संसार से प्रारंभ होता है । जिन में भक्ति, प्रेम, शान्ति और ईश्वर हित निर्वहण की इच्छा हो मृत्यु के बाद इसकी पूर्णता होती है । संत पोल का कथन यहाँ विचारणीय है - '' ईश्वर का राज्य खाने पीने का नहीं, बल्कि वह न्याय, शान्ति और पवित्र आत्मा द्वारा प्रदत्त आनन्द का विषय है । [२] बाइबिल याद दिलाता है कि मनुष्य के पवित्र हृदय से ईश्वर और अपने पडोसी को समान रूप से प्यार करने से मोक्षप्रप्ति होती है । मोक्ष का आरंभ इस संसार से होता है और पूर्ति मृत्यु से होती है ।

निष्कर्ष

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में प्रतिबिंबित समाज की स्थिति जीर्ण-शीर्ण, अनैतिक एवं पतनोन्मुखी थी । इन दुरवस्थाओं से समाज को मुक्त करने के उद्देश्य से कबीर, ईसामसीह और अनेकों नबीगण आगे आये और उन्होंने अपनी वाणी द्वारा अहिंसात्मक क्रान्ति मचाकर समाज का उद्धार करने का परिश्रम किया । राजनीतिक दृष्टि से कबीर एवं बाइबिलकालीन स्थिति अराजकता और अव्यवस्था से पूर्ण थी। आंतरिक विद्रोह, राजनीतिक षडयन्त्र एवं बाह्य-आक्रमणों ने देश की शान्ति नष्ट कर दी थी । प्रजाहित की पूर्ति के बदले स्वार्थ की पूर्ति एवं विलासिता के हेतु

---

१. नया विधान संत मात्यु ६:३३
२. संत पोल रोमियों के नाम पत्र १४:१७

प्रयत्न करने वाले धर्मांध शासकों के कारण जनता भी पथभ्रष्ट हो गयी थी । आम जनता शोषण की शिकार थी । शासक एवं शासित के बीच एकता स्थापित करने एवं तद्वारा समाज में प्रगति व मंगल लाने में कबीर, ईसामसीह एवं अन्य समाज सुधारक प्रयत्न निरत रहे । दोनों ग्रन्थों में तत्कालीन राजनीतिक विकलता का चित्र साफ साफ दिया गया है । दोनों समाजों की धार्मिक स्थिति भी शोचनीय थी। विविध दुराचारों एवं बुराइयों से युक्त धार्मिक जीवन में लोग मग्न थे । अंधविश्वासों का बोलवाला था, मूर्तिपूजा, सिरमुंडन, छापा तिलक, तीर्थयात्रा आदि बाह्याचारों में फंसे लोग इन आचारों के पालन में आनन्द पाते थे। नियमों एवं उपनियमों से पूर्ण धार्मिक जीवन की अर्थहीनता दिखाकर मानवता की महत्ता घोषित करने में ये सुधारक सक्षम थे । रूढिवादिता एवं परंपरावादिता का कट्टर विरोध कर ज्ञान एवं भक्ति को अर्जित करने की आवश्यकता पर दोनों ग्रन्थ बल देते हैं । दोनों ग्रन्थ बहुदेवोपासना का भी कट्टर विरोध करते हैं । सामाजिक कुरीतियों की भत्सना एवं उनको दूर करने का प्रयास दोनों ग्रन्थों की मुख्य विशेषता है । काम की महत्ता दिखाकर समाज में प्रचलित वर्ग-वैषम्य को मिटाने का प्रयत्न भी दोनों रचनाओं में हम देख सकते हैं । आर्थिक विषमता दोनों ही युगों में विद्यमान थी । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल ने सांसारिक संपत्ति की नश्वरता दिखाकर अलौकिक एवं अनश्वर धन पाने का आह्वान किया है । समाज में आर्थिक समता लाने को लक्ष्य कर आपसी सहयोग एवं परोपकार जैसे मूल्यों पर अडिग रहने का पाठ दोनों ग्रन्थ समान भाव से देते हैं । आध्यात्मिक चरमसत्य की उपलब्धि के हेतु कबीर साहित्य एवं बाइबिल यही विचार प्रकट करते हैं कि मनुष्य के जीवन का लक्ष्य सादा जीवन एवं आत्मविकास होना चाहिए । ये ग्रन्थ यह भी सिखाते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं का संयम करना चाहिए ताकि उसके द्वारा अर्जित पदार्थ दूसरों को भी दिये जा सकें। सारांशतः यह कहा जा सकता है कि लक्ष्यहीन एवं

विनाश के पथ पर चलने वाले तत्कालीन समाज को दुरवस्था से मुक्ति दिलाकर ठीक रास्ता दिखानेवाले पथप्रदर्शक के रूप में, इन ग्रन्थों के सुधारकों ने लोगों को ज्ञान ज्योति से भर कर जीर्ण-शीर्ण एवं अनैतिक मार्ग से ऊपर उठाने का स्तुत्य कार्य किया ।

तीसरा अध्याय

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में प्रतिबिंबित सुधारात्मक दृष्टि-१

समाज व्यक्ति से बनता है और जब व्यक्ति सुधर जाता है, उसके सामाजिक संबन्ध सुधर जाते है, समाज भी सुधर जाता है । समाज-सुधार के मूल रूप से दो तरीके हैं-लौकिक सुधार एवं आध्यात्मिक सुधार । लौकिक सुधार के अन्तर्गत बाह्याचार, अन्धविश्वास, धार्मिक अस्वस्थता, क्रियाकांड, रूढियाँ आदि का खंडन एवं सुधारात्मक प्रवृत्तियाँ आती हैं और आन्तरिक सुधार के अन्तर्गत नीति-स्थापना, धर्म-स्थापना आदि आते हैं । इन्हीं की सम्यक् योजना में ही समाज का सार्वजनिक सुख निहित है । नैतिक स्थापना से जीव की मलिन वृत्तियाँ विमल हो जाती हैं और जीव-सुधार के मार्ग पर चलने लायक हो जाता है । सद्‌गुरु के उपदेश से यह सुधारात्मक कार्य संभव हो सकता है । गुरु की सहायता से जीव माया के सत्व, रज, तम-गुणों का परिचय प्राप्त कर लेता है और उसको ग्राह्य अग्राह्य का बोध हो जाता है । जीव की अज्ञता मनुष्य को नीतिमार्ग से हटा देती है और वहाँ पर सुधारात्मक कार्य संपन्न नहीं होता । इसलिए कबीर-साहित्य एवं बाइबिल सबसे पहले नीतिस्थापना पर बल देते हैं । गुरु (ईश्वर) की दया से व्यक्ति के क्रोध, मात्सर्य, अभिमान आदि दुर्गुण सदा केलिए नष्ट हो जाते हैं और उनमें भूतदया, परोपकार, अहिंसा आदि गुणों की वृद्धि हो जाती हैं । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल हमेशा गुरुवचन के महत्व पर बल देते रहते हैं क्योंकि परमानन्द तत्व की प्राप्ति में मनुष्य की वही सहायता कर सकते हैं । आध्यात्मविद्या के विषय में श्रवण, पूजन, भजन आदि का महत्व रहता है । उपासनामार्ग या भक्तिमार्ग में ज्ञान एवं कर्म का समावेश अपने आप हो जाता है ।

कबीरकालीन सामाजिक-दुरवस्था

हिन्दी कविता का मध्ययुग 'सामन्त-युग' था । भारतीय सामाजिक जीवन की बागडोर सामन्तों के हाथों में थी । इन सामन्तों के सबसे शक्तिशाली वकील थे ब्राह्मण और मौलवी । ब्राह्मण प्रत्यक्ष देवता के रूप में रहा था । उसी को लोगों का गुरु माना जाता था ।

गुरुहि सर्वभूतानां ब्राह्मणो परिकीर्तितः।'' [१]

राजा को ईश्वर का रूप और जिल्ले हलाही घोषित करके इन पंडितों तथा मौलवियों ने निरीह भारतीय जनता को, भक्ति के रूप में, नशे की गोलियाँ खिलाकर यह समझा दिया था कि उनके समस्त दुख-क्लेश किसी प्रकार के शोषण का या दूषित अर्थव्यवस्था का परिणाम नहीं थे अपितु उनके पूर्वजन्म के कर्मों के फल थे । अगले जन्म में उन्हें ये दुख-क्लेश प्राप्त न हों, इसलिए उन्हें सांसारिक सुखों का मोह त्यागकर, भगवद् भजन द्वारा, भविष्य केलिए पुण्यकर्मों के संग्रह का उपदेश दिया गया ताकि वे अपनी शोचनीय वर्तमान अर्थ-व्यवस्था के प्रति सजग न हो जायें । वर्णाश्रम की कट्टरता पर बल देकर समाज को संगठित होने से रोकने की चाल भी सफल रही । संगठन की संभावना पर एक और कुठाराघात यह किया गया कि भारतीय समाज को हिन्दू तथा मुसलमान, दो वर्गों में विभक्त करके रख दिया गया। इन परिस्थितियों के बीच संतकाव्य का उदय हुआ । क्योंकि संत-साहित्य के रचयिता इन संत कवियों का आविर्भाव या तो निम्न जातियों से हुआ था या समाज के मध्यवर्ग से, इसलिए इनके काव्य में दो-चीज़ें पाँव जमाकर उभर आयीं । एक-सामन्तों के पक्षधर पण्डितों तथा मौलवियों के पाखण्ड-जाल को विदीर्ण करने का

---

१. महाभारत आदि पर्व २८, ३१४

निश्चय, तथा दूसरे मानव और मानव के बीच का अन्तर मिटाने का लक्ष्य । फलतः कबीर, रविदास, नानक इत्यादि सन्त कवियों ने खुलकर धार्मिक बाह्याचार की निन्दा की । इस्लाम और हिन्दू, दोनों धर्मों में व्याप्त अंधविश्वास तथा कर्मकांड के मिथ्यात्व को स्पष्ट करके इन संत कवियों ने धर्म पर से, सामन्तों के पोषक पण्डितों तथा मौलवियों की इजारेदारी को झिंझोडा । ''माणस की जाति सबै एकै पहिचानिबो'' तथा ''एक नूर तें सब जग उपज्या'' की भावना के प्रचार एवं प्रसार द्वारा इन भक्त कवियों ने समाज में प्रचलित कुप्रथाओं को बदलने का स्तुत्य प्रयास किया । कबीर, रविदास, धन्ना, सेन तथा नामदेव इत्यादि संत कवियों का संबन्ध समाज की निम्नतम जातियों से था, अतः उनके हाथों वर्गभेद का दमन तार तार होना स्वाभाविक ही था । उच्चवर्गों, विशेषकर विप्रवर्ग के हाथों तिरस्कृत एवं पीडित जातियों के प्रतिनिधि इन संत कवियों ने, भक्ति साहित्य में, अपने पेशे से संबद्ध प्रतीकों एवं उपमाओं के समावेश से न केवल पंडित की धार्मिक इज़रेदारी पर ही आक्रमण किया, न केवल सहज स्वाभाविक मानवीय प्रतिशोधात्मक प्रतिक्रिया को ही अभिव्यक्त किया बल्कि लोगों में यह विश्वास भी कायम किया कि भक्ति तथा मुक्ति केलिए पंडितों तथा पुरोहितों की मध्यस्थता के बिना भी काम चल सकता है ।

क्षत्रिय राजाओं, सामन्तों, जागीरदारों तथा धनिकों केलिए एक से अधिक पत्नियों का रखना तत्कालीन समाज में उनकी प्रतिष्ठा का द्योतक बन गया था । इस कुप्रथा ने भारतीय परिवार को दुख, कलह, द्वेष तथा ईर्ष्या की भयानक आग में धकेल दिया तथा मध्यकालीन कवि इसका विरोध किये बिना न रह सके । सामाजिक संगठन के प्रारंभ में किसी भी देश में किसी भी प्रकार का वर्ण-भेद नहीं था ।[१] कालान्तर में कर्मों के विभाजन और कार्यनिर्वाह की योग्यता के अनुसार

---

१. ''अमरेन्द्र मया बुद्धया प्रजाः सृष्टास्तया प्रभो
एकवर्णा समभाषी एकरूपाश्य सर्वशः'' रामायण ३:१०:१९

भारत में समाज का चार वर्णों में विभाजन हुआ । वर्णव्यवस्था के विकास में धार्मिक कर्मकाण्ड का अतिशय महत्व और राज्य संस्था में राजसत्ता की प्रभुता -मुख्य रूप से दो कारण थे । धार्मिक कर्मकाण्ड के कारण ब्राह्मण पुरोहित वर्ग की एक पृथक श्रेणी बन गयी और राज्य संस्था में राजा के अधिकार प्रबल होने से समाज की शक्ति क्षत्रिय वर्ण के हाथ में केन्द्रित हो गयी । इसलिए क्षत्रिय भी समाज के अन्य वर्णों की अपेक्षा अपनी महत्ता को अधिक समझने लगे । फलतः उनकी भी अलग श्रेणी बन गयी ।

लेकिन जाति को 'कर्म' के स्थान पर जन्म से जोडकर मध्ययुगीन पंडितों तथा पुरोहितों ने शूद्रों को जिस अपमान, असुरक्षा, तिरस्कार तथा प्रकोप का शिकार बनाया, उसका सचमुच मूल्यांकन कठिन ही है । वर्ण-व्यवस्था से हमारे समाज का आर्थिक पक्ष सीधा जुडा हुआ था । नतीजा यह हुआ कि उच्चवर्गीय ब्राह्मण मध्यकालीन कवियों की प्रताडना का पात्र था । कबीर कहते हैं —

जो तूँ बामन बंभनी जाया
आन बाट् काहे नहीं आया ।

जाति-पाँति का भेदभाव मिटाकर, एक स्वस्थ समाज के निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया गया । धर्म के नाम पर प्रस्थापित पाखण्ड जाल पर प्रहार करके, अदृश्य के भय से तथा परलोक के प्रलोभनों में सामाजिक अत्याचारों को सहन करने की विवशता का भ्रम तोडा गया तथा लोगों में सामाजिक चेतना का आभास पैदा हुआ।

दैवी प्रकोप जैसे-दुर्भिक्ष, बीमारी आदि के कारण या युद्धों तथा राजसी आतंक के कारण, जब भूख व्याप्त हुई या जब प्रजा अत्याचारों से चीत्कार कर उठी

तब भी मध्यकालीन कवि का हृदय विदीर्ण हुए बिना नहीं रहा । दुर्भिक्ष या महामारी तो दैवी-प्रकोप है, वे मानव के वश में नहीं हैं परंतु इनसे समाज का एक वर्ग पीडित क्यों हो ? यह चेतना सामाजिक चेतना है जो इस रूप में तुलसी के यहाँ प्रकट हुई है कि कृषक यदि अन्न के अभाव में क्षुधा-पीडित है तो धनिकवर्ग अपनी जमाखोरी में से उसे कुछ देने से इनकार क्यों करे ? यह सहायता भीख के रूप में हो या चाकरी के रूप में, लेकिन जीवित रहने का अधिकार तो उससे नहीं छीनना चाहिए।

असमान अर्थ-वितरण, असमान आर्थिक उपलब्धियाँ तथा असमान अवसरों की विद्यमानता मध्यकालीन भारतीय समाज पर हावी रही है । धनिकों द्वारा निर्धनों बल्कि मेहनतकश लोगों का शोषण इस युग का चलन रहा है । इन विषमताओं के प्रति मध्यकालीन कवियों की जागरूकता तथा उनकी प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति भी यत्र तत्र उपलब्ध होती है । अस्तु, इस सत्य को स्वीकार करते हुए भी कि राजनीतिक दृष्टि से पराजित एवं हताश समाज में जन्म लेकर मध्यकालीन हिन्दी कवियों ने यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से जगत् के मिथ्यात्व के प्रचार द्वारा परलोक की प्रतिष्ठा ही स्थापित की है, फिर भी उनका काव्य युगबोध-विहीन नहीं है । अपने युग में व्याप्त सामाजिक असमानता, सामाजिक कुरीतियों तथा सामाजिक विषमताओं का न केवल यथार्थ चित्रण ही उनके यहाँ उपलब्ध होता है अपितु उन्होंने समाज इन विषमताओं तथा कुरीतियों से मुक्ति दिलाने केलिए समाज को संगठित करके चैतन्यावस्था में लाने का प्रयास भी किया है । यही जागृति, यही चेतना तथा यही रोष एवं आक्रोश का भाव था जो आधुनिक हिन्दी साहित्य में आनेवाले अनेकानेक क्रान्तिकारी परिवर्तनों की पूर्वपीठिका बना ।

मध्ययुग के अनेक संतों ने ऊँचनीच के भेद पर कसकर आघात किया था । बहुत से दूरदर्शी संतों ने इस प्रथा के उन्मूलन का प्रयास किया था । इस युग में

विकसित पौराणिक धर्म ने धार्मिक समता की व्यवस्था की थी । एक ही परमात्मा सबका पिता है । गंगा, तीर्थ, पर्व-त्योहार आदि सभी हिन्दुओं को समान रूप से मान्य हैं । भारतवर्ष के भूगोल तथा इतिहास को ये सभी समान रूप से पवित्र समझते हैं । राम, कृष्ण, शिव, गणेश, हनुमान इत्यादि देवता सभी के पूज्य हैं । इन सब बातों से हरिजनों की धार्मिक समस्या हल हो गयी थी । दुर्भाग्य से इसी बीच भारत में मुसलमानों के साथ इस्लाम धर्म के प्रचारकों ने हरिजनों को शेष समाज से पृथक रखने और इस्लाम में दीक्षित करने का प्रयत्न किया । बहुत सी हरिजन जातियाँ मुसलमान हो भी गयीं । किन्तु वहाँ उनकी धार्मिक समस्या हल नहीं हो सकी । इसी दौर पर कबीर, दादू इत्यादि मुसलमान संतों ने नारा लगाया कि वैदिक धर्म और इस्लाम धर्म दोनों भ्रम हैं । उधर रैदास आदि हिन्दू हरिजन संतों ने भी उनके सिद्धान्त को महत्व दिया । इन संतों के द्वारा सन्तमत का प्रवर्तन हुआ । सन्तमत में वही अद्वैतवाद है, वही आचार प्रधान धर्म है, वही भक्ति का सिद्धान्त है वही वैष्णव मत है और वही ध्यान-योग है जो पुराणों में मिलता है । किन्तु पुराणों ने वैदिक चातुर्वण्य के स्थान पर जाति-पांति तोडने का विधान बनाया। इन्होंने ही अछूतों को पहले पहल 'हरिजन' या 'हरिदास' कहा था, जिसे बाद में गांधीजी ने बहुत प्रचलित किया और जो आज इस अर्थ में रूढ हो चला है।

बाइबिलकालीन सामाजिक दुरवस्था

बाइबिलकालीन समाज की स्थिति कबीरकालीन समाज से भिन्न नहीं थी। ईश्वर के स्थान पर राजा को बिठाकर उनकी पूजा केलिए आम जनता को प्रेरणा देनेवाले कुछ राजाश्रित लोगों को बाइबिल के 'पुराना विधान' में देखा जा सकता है । इस समाज में सब प्रकार के दुर्गुण वर्तमान थे । संपन्नता की दृष्टि से यह समाज अत्यन्त पिछडा हुआ था । गरीबी एवं दासत्व की प्रथा पूरे समाज में आम

तौर पर फैली थी । समाज धार्मिकता से फिसलता जा रहा था । विश्वास का आधार नष्ट हो चुका था । आचारों और अनुष्ठानों का संबन्ध आदर्शों से न होकर बाह्य आचार एवं व्यवहार से था । इससे मानवता नष्ट हो गयी थी । मानव में आपसी सहयोग का अभाव, स्वार्थलिप्सा सर्वसाधारण की बात बन गयी थी । सब के धन संपादन में ही अतीव तत्पर होने के कारण समाज से मैत्रीभाव नष्ट हो चुका था। साथ हो इष्यो पनपती रहती थी । परोपकार को पूर्णतः भूलाकर जातिवाद पर अधिक ध्यान देने के कारण बाइबिलकालीन समाज आदर्शहीन होकर अशान्ति का जीवन जीता था । पारिवारिक संबन्धों में विघटन, चरित्रभ्रष्ट नारी की दुरवस्था, अंधे-मार्गदर्शी गुरुगण, मूल्यहीन शिष्यपरंपरा, अधर्मी नेतागण आदि के कारण समाज की स्थिति शोचनीय थी । येशु की निम्नलिखित उक्ति में यह स्पष्ट दिखाई देता है । येरुसालेम पर विलाप करते हुए येशु बताते हैं -'' येरुसालेम! येरुसालेम ! तू नबियों की हत्या करता और अपने पास भेजे हुए लोगों को पत्थरों से मार देता है । मैं ने कितनी बार चाहा कि तेरी सन्तान को एकत्र कर लूँ, जैसे मुर्गी अपने चूज़ों को अपने डैनों के नीचे एकत्र कर लेती है, परंतु तुम लोगों ने इनकार कर दिया ।'' [१] प्रस्तुत वाणी के द्वारा यहूदी जनता की हीन अवस्था का चित्र उभर आता है । जैसे मुर्गी आपदाओं से अपने चूज़ों की रक्षा केलिए डैनों के नीचे उसको सुरक्षा देती है उसी प्रकार बिखरे हुए, अपनी अपनी मर्जी के अनुसार जीने वाले एवं ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध दुराचरण करने वाले इस्राएलियों को पापमार्ग से लौटाकर अच्छा जीवन बिताने केलिए ईश्वर ने प्रेरित किया । उनके उद्धार केलिए समय समय पर विभिन्न नबीगण आये लेकिन जनता ने उनका बहिष्कार किया और बुराई के मार्ग पर ही अपना पैर रख दिया ।

---

१. नया विधान संत लूक १३:३४

अविश्वस्त एवं व्यभिचारी इस्राएल का बीभत्स चित्र नबी एज़ेकिएल यों दिखाते हैं - '' तुम्हारे सौन्दर्य ने तुम्हें बहका दिया । तुम अपनी ख्याति का दुरुपयोग करते हुए व्यभिचार करने लगीं । तुमने किसी भी बटोही को अपना सौन्दर्य बेच दिया । तुमने अपने कुछ वस्त्र लेकर अपनेलिए भडकीले रंगोंवाले पहाडी पूजास्थान बनाये और वहाँ व्यभिचार किया । तुमने मेरे द्वारा दिये हुए सोने और चाँदी के आभूषणों से अपने लिए पुरुष प्रतिमाएँ गढ़ीं और उनके साथ व्यभिचार किया । तुमने उनको अपने बेलबूटेदार वस्त्र पहना दिये और उन्हें मेरा तेल और लोबान अर्पित किया । तुमने मेरा दिया हुआ भोजन- मैदा, तेल और मधु जो मैं तुम्हें खिलाता था-लेकर उन्हें सुगन्धित बलि के रूप में अर्पित किया ।'' [१] यहाँ नबी दिखाते हैं कि इस्राएलियों में भलाई का अंश तक नहीं था । सत्कर्मों में विश्वास खो चुका था । सब कहीं स्वार्थ ही स्वार्थ का बोलबाला था । स्तोत्र-ग्रन्थकार बताते हैं कि - वे अपने आचरण से दूषित हो गये । [२] 'नया विधान' में संत पोल वहाँ के लोगों से पुराने इस्राएल (पूर्वजों) की बात कहकर सावधान रहने एवं भलाई करने का उपदेश देते हैं । [३] संक्षेप में बाइबिलकालीन समाज की ओर दृष्टि डालने पर वहाँ हम भलाई से ज्यादा बुराई की प्रवृत्ति देख सकते हैं । इनके उद्धार के प्रयत्न येशु बराबर करते रहते हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर एवं बाइबिलकालीन सामाजिक व्यवस्था आदर्शोन्मुख एवं भलाई से युक्त नहीं थी । भ्रातृप्रेम पर ज़रा ध्यान दिये बिना समाज के लोग स्वार्थी होकर जीवन बिताते थे । शासक एवं शासित, स्वामी एवं सेवक सभी अपने अपने धर्म को भूलकर पथभ्रष्ट हो चुके थे । लोग सामाजिक

१. पुराना विधान एज़ेकिएल का ग्रन्थ १६:१५-१९
२. वही स्तोत्र ग्रन्थ १०६:३९
३. संत पोल कोरिन्थियों के नाम पहला पत्र १०:५-१२

उन्नति पर नहीं, बल्कि वैयक्तिक प्रगति केलिए किसी भी प्रकार के अनुचित मार्ग को स्वीकारने के इच्छुक थे । समाज में व्याप्त प्रस्तुत अधार्मिकता एवं असमानता से लोगों को बचाने केलिए सुधारक कबीर एवं बाइबिल के अनेक सुधारकों ने जो प्रयत्न किया वह सराहनीय है ।

कबीरदास और समाज-सुधार

हिन्दी का समग्र पूर्व-मध्याकालीन काव्य धार्मिकता और सामाजिकता की जागृत चेतना का परिणाम है । कबीर का उद्‌भव युग की संक्रमण वेला में था । उनकी वास्तविकता की ओर संकेत करते हुए डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है -'' कबीरदास ऐसे ही मिलन-बिन्दु पर खडे थे जहाँ से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है दूसरी ओर अशिक्षा, जहाँ पर एक ओर योग-मार्ग निकल जाता है दूसरी ओर भक्ति मार्ग, जहाँ से एक ओर निर्गुण-भावना निकल जाती है, दूसरी ओर सगुण साधना, उसी प्रशस्त चौराहे पर वे खडे थे । वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरुद्ध दिशा में गये मार्गों के दोष-गुण उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे ।'' [१] इस प्रकार देखते हैं कि वह समन्वय और विभिन्न मतों एवं विचारों के मिलन का युग था । इस कारण, जो भी सुधार की भावना को लेकर सामने आया, उसे समन्वयात्मक दृष्टि अपनानी पडी । तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक संगठन बहुत ढीले पड गये थे और उनकी अवस्था बहुत पतित हो चली थी, यह कहा जा सकता है कि उस काल में आत्मविश्वास और आस्था का पूर्ण अभाव-सा हो चला था ।

सामाजिक विषमता से उत्पन्न विभिन्न अनाचारों एवं अत्याचारों को देखकर

१. डॉ.हज़ारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य पृ. १२०-१२१

सुधारक कबीर का मन खिन्न हो उठा और इसी कारण उन्होंने उनपर जमकर प्रहार भी किया । कबीर को जातिगत विषमता, धर्मगत विषमता और अशिक्षा आदि ने बहुत दूर तक उकसाया । उनके विचार से मानव-मानव में भेद नहीं है, चाहे वह किसी भी ऊँची-नीची जाति से क्यों न संबन्ध रखता हो । ऐसा करके कबीर ने भारतीय भक्ति-मार्ग में निम्नवर्गीय भक्तों केलिए एक राजमार्ग-सा खोल दिया ।

कबीर एक मध्यममार्गीय समाज सुधारक थे । उनकी पैनी दृष्टि को, सगुण-निर्गुण, राम-रहीम, ऊँच-नीच, सत्य-असत्य, धनी-गरीब, ज्ञानी-अज्ञानी ,भक्त-अभक्त, हिन्दू-मुसलमान के बीच से होकर जानेवाले रास्ते को पहचानने में देर नहीं लगी । अतिवादिता से दूर रहकर जो कुछ भी ग्रहणीय और जीवनोपयोगी है, उसका वे मध्यमार्ग के नाम से संचयन करना चाहते थे । इसी कारण, असत्य को छोडकर सत्य को अपनाते हुए उन्होंने सामाजिक और धार्मिक विषमताओं और आडंबरों को छिन्नमूल करके अपने दूरदर्शी न्याय तथा तर्कसंगत युगान्तकारी व्यक्तित्व का परिचय दिया ।

कबीर की सबसे सुन्दर और महत्वपूर्ण सुधारात्मक भावना थी मानवजाति को एकता के सूत्र में आबद्ध करना। मानवतावाद की वह धारणा, जिसका उद्‌गम और विकास १९ वीं शताब्दी के पश्चात् की घटना है, उसकी कल्पना दूरदर्शी संतों ने पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्व कर ली थी । कबीर की यह भावना समस्त संसार के लोगों को आध्यात्मिक दृष्टि से एक समझती है, जाति, कर्म एवं जन्म आदि के कारण उत्पन्न विभिन्न अंतर को वे कुछ नहीं मानते । उनकी दृष्टि में इस प्रकार की जाति से एवं कर्मादि से उत्पन्न अन्तर ढोंग मात्र है । सत्य सबमें समान रूप से व्याप्त है । इन कृत्रिमताओं का संबन्ध सत्य स्वरूप आत्मा से न होकर शरीर से ही है । वे वर्गविहीन समाज एवं जातिगत एकता के पक्षपाती थे ।वे शूद्र एवं ब्राह्मण

में किसी भी प्रकार का कोई अन्तर नहीं मानते थे । कबीर ब्राह्मणों से प्रश्न करते हैं -'' जो तू बाभन-बाभनी जाया, आन बाट ह्वै क्यों नहीं आया ?'' डॉ. बडथ्वाल जी बताते हैं - इस मत ने शूद्रों के भद्दे आचरणों में सुधार किये, उन्हें धर्म के प्रति आदर का भाव प्रदर्शित करना सिखलाया, उनकेलिए भक्ति का द्वार उन्मुक्त कर दिया और उनके भीतर आत्मसम्मान की भावना भर दी । [१]

कबीर को जहाँ दोष दिखाई पडता है वे उसे दूर करने की चेष्टा करते है, परंतु ऐसा करते हुए भी वे दोषी का किसी प्रकार भी किसी तरह का अहित नहीं करना चाहते । वे दोष अथवा बुराई के शत्रु हैं, बुराईवाले अथवा दोषी व्यक्ति के नहीं। सहनशीलता से युक्त कबीर ने कहा था-जब कभी तुम्हें कोई गाली देता है तो वह दुर्बचन अकेला रहता है, किन्तु जब तुम उसका बदला दे देते हो, वह कई गुना बढ जाता है --

गारी आवत एक है, पलटत होय अनेक ।''

उन्होंने बुराई की दवा भी बताई है । वह है बुराई करनेवाले के प्रति बुराई न करके भलाई करना । कबीर का यह कहना था कि असत्य का विरोध यदि सत्य से किया जाय तो यह निर्मूल हो जायेगा । दुष्टों से दुष्टता का जवाब यदि हम दया अथवा सहानुभूति से दें तो उसकी दुष्टता अथवा शठता उसे अन्दर ही अन्दर मारेगी और तत्पश्चात् वह सुमार्गगामी हो जायेगा । इस प्रकार की सुधारात्मक दृष्टि कबीर की रचनाओं में बिखरी मिलेंगी --

जो तोको कांटा बुवै, ताहि बोइ तू फूल
तोको फूल के फूल हैं, वाको है तिरसूल ।''

---

१. डॉ.पीताम्बरदत्त बडथ्वाल हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय पृ. २८५

कबीर इतने आत्मविश्वासी थे कि निंदकों की निन्दाओं को सुनकर कुढने के विपरत उन्हें अपना उपकारक मानते थे और कहते थे –

निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ।'' [१]

अर्थात् निन्दक को अपने समीप ही आँगन में कुटी बनवाकर रखना चाहिए । वह पानी और साबुन के बिना ही हमारे स्वभाव को निर्मल कर देता है । इसके अलावा कबीर बताते हैं कि दूसरों में दोष-दर्शन करने की अपेक्षा यदि हम अपने में ही अपनी बुराइयों को खोजने का प्रयत्न करें तो हमारा सुधार बडी सीमा तक हो सकता है ।

सुधारक कबीर ने समाज में काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद की व्याप्ति को देखा, अतः वे लोगों को जागरूक होने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं --

कामी, क्रोधी, लालची इनसे भक्ति न होय''

काम एवं मोह में अनुरक्त मनुष्य अपने गुरु और इष्ट-देवता तक को विस्मृत कर देता है । कबीर ने जिस मानवीय धर्म की स्थापना केलिए प्रयास किया है वह सांगोपांग रूप में लौकिक और पारलौकिक उन्नति प्रदान करनेवाला है । मानवीय धर्म के कट्टर पक्षपाती इस महात्मा ने समाज-सुधार के द्वारा सब कहीं शान्ति फैलाने की कोशिश की ।

बाइबिल में प्रतिबिंबित सुधारात्मक दृष्टि

समाज तरह तरह के व्यक्तियों का समूह है जिसमें भले-बुरे, संत-दुराचारी,

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २१८

योग्य-अयोग्य एवं सभी प्रकार के लोग सम्मिलित हैं । व्यक्ति के किये गये उसके समस्त कृत्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में समाज को प्रभावित करते हैं । मनुष्य जिन लोगों के बीच में रहते हैं, वे तरह तरह की रूढियाँ, मनोवृत्तियाँ एवं अभिलाषाएँ रखते हैं । यह ज़रूरी नहीं कि एक व्यक्ति जिस क्षेत्र में रूचि रखता है वह किसी अन्य व्यक्ति के लिए भी रोचक हो । कुछ लोग जिसे महत्वपूर्ण व महान समझते हैं, हो सकता है वही दूसरों कोलिए महत्वहीन हो । इसी प्रकार समाज में मतभेद, ईर्ष्या, द्वेष, अत्याचार, शोषण, भ्रष्टाचार, जातिवाद, कलह, हिंसा आदि दुर्गुण उभर आते हैं । फलस्वरूप समाज के लोग इस वास्तविकता को स्वीकार करने केलिए मज़बूर हो जाते हैं कि संसार में ज्योति की नहीं बल्कि अन्धकार, बुराई और असत्य का साम्राज्य है । निर्दोष व्यक्ति इस बुराई के बोझ से दबकर भयंकर कष्ट झेलते रहते हैं और अंधकार को दोष देते रहते हैं । प्रस्तुत अंधकार युक्त समाज में दिया जलाने एवं प्रकाश फैलाने का कार्य बाइबिल ने किया है । इस ग्रंथ में ऐसी बातें कही गई हैं जिनका अनुवर्तन करते हुऐ व्यक्ति एक छोटा सा प्रकाश पुंज बन जाता है । ईश्वर ने मनुष्य को इस सुंदर संसार को प्रकाशित करने केलिए बनाया है । इसलिए मनुष्य का काम अंधकार को अपनाना नहीं बल्कि उसके अपने जीवन रूपी दीप को सत्य और प्रेम से प्रज्वलित करना है । जीवन के भौतिक और आध्याात्मिक दो पहलू हैं और दोनों के समान विकास से ही मानव-जीवन सुख, शान्ति और आनन्द की प्रगति कर सकता है । बाइबिल की यही इच्छा है कि समाज को सारे लोगों में सुधार आवे और ईश्वर की पूर्णता में परिवर्तित हो जावे । इसलिए येशु कहते हैं - जिस प्रकार तुम्हारा स्वर्गिक पिता पवित्र है, उसी प्रकार तुम भी पवित्र एवं परिपूर्ण बनो । [१] दुर्बल एवं बुराई से युक्त मानव परिपूर्णता के मार्ग के यात्री हैं । जहाँ परस्पर सहयोग की भावना का अभाव हो, व्यक्ति अपने ही स्वार्थ

---

१. नया विधान संत मात्यु ५:४८

में लीन हो, धन संपादन में अतीव तत्पर हो, मैत्रीभाव का अभाव हो, ईर्ष्या पनपती जा रही हो, परोपकार को भुलाया जा चुका हो वह समाज एक आदर्श समाज नहीं कहा जा सकता । इस वातावरण में मानव को शान्ति नहीं मिल सकती । इन परिस्थितियों से ऊबकर मनुष्य ऐसे वातावरण की कल्पना करता है जहाँ उसे पूर्ण सुख मिल सके । उस केलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्तव्यों के प्रति सजग रहना चाहिए । बाइबिल ने विभिन्न संदर्भों में इनकी शिक्षा विभिन्न वाणियों के माध्यम से दी है ।

इतिहास हमें उन महान व्यक्तियों की याद दिलाता है, जिन्होंने विकट परिस्थितियों में रहकर राष्ट्र या राज्य को पूर्णतः नष्ट होने से बचाया । वे इतिहास में उद्धारक या सुधारक के रूप में आए । बाइबिल में कुछ ऐसे सुधारकों को देखा जा सकता है जिन्होंने समाज में नीति की स्थापना एवं असमता को दूर करने केलिए तनतोड मेहनत की । ईसा एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने दुष्ट शक्तियों तथा अनैतिक पद्धतियों के विरुद्ध लडने और संसार को धार्मिकता एवं कल्याण की ओर लाने का कार्य किया । व्यक्ति को अपने जीवन में प्रकाश का महत्व जानना है । प्रकाश का महत्व यह है कि वह अन्धकार को दूर करता है और सभी वस्तुओं को स्पष्ट रूप से गोचर बनाता है । इसलिए प्रकाश खुशी एवं सुरक्षा की अनुभूति प्रदान करता है जबकि अन्धकार व्यक्ति को जोखिम व दुविधा में डाल देता है । उसके कारण व्यक्ति कुछ भी नहीं देख सकता । प्रकाश से यहाँ तात्पर्य खुशी एवं मुक्ति से है और अंधकार का मतलब मुक्ति का अभाव है । समाज में फैले अन्धकार की शक्तियों को दूर कर समाज को आनन्द एवं मुक्ति से भरपूर करना ही बाइबिल का उद्धेश्य था ।[१]

मुक्ति पाने केलिए व्यक्ति को दुख,कष्ट-सहन एवं मृत्यु से गुजरना है ।

---

१. नया विधान संत जोन ८:१२

संपूर्ण बाइबिल में हमें इसी प्रकार की घटनाएँ देखने को मिलती हैं । 'पुराना विधान' के प्रारंभ में बाबेल के मीनार निर्माण का जो वर्णन है उसमें वहाँ के लोगों के घमण्ड का चित्र ही उभर आता है । लेकिन अचानक ही बाबेल का सर्वनाश हो गया तो एक नये राष्ट्र के निर्माण हेतु अब्राहम को बुलाया गया । मिस्र देश में कई प्रकार के कष्ट एवं विपत्तियों को झेलने के बाद यहूदी जनता ने प्रतिज्ञात देश में एक नये जीवन का अनुभव किया । विश्व इतिहास में भी इसी प्रकार का उदाहरण देखने को मिलता है । कई वर्षों के पतन के बाद पुनर्जागरण एवं सुधार का समय आया। इसलिए बाइबिल सिखाता है कि दुख कष्ट रूपी मृत्यु के बाद ही मुक्ति या पुनरुत्थान संभव है ।

ईसा ने अपना संपूर्ण जीवन मानव उद्धार केलिए पूर्ण रूप से समर्पित किया था । एक भले गडरिये की भाँति उन्होंने अपना जीवन अपनी भेडों केलिए कुर्बान कर दिया । उनकी निगाहों में भेड रूपी उपमा से अलंकृत मानव जाति बहुत ही बहुमूल्य है । जिस तरह एक भला गडरिया अपनी भेडों को चराने केलिए सुदूर वनों में ले आता है और हरेक भेड को सकुशल वापस भेडशाला में ले आता है उसी तरह प्रभु मसीह भी अपनी कृपाओं की सुरक्षा में प्रत्येक मनुष्य को इस संसार की बाधाओं से निकालकर स्वर्गराज्य की सुरक्षा में पहुँचा देते हैं । ईसा एक सशक्त क्रान्तिकारी भी थे । उनको हमेशा यहूदी धार्मिक नेताओं से तिरस्कार एवं भर्त्सना का शिकार होना पडा क्योंकि वे सदियों से चली आ रही परंपराओं का खंडन करते गये और उन नेताओ के विचार एवं व्यवहार में एक कलंक एवं बाधा बन गये । उन्होंने स्वार्थभरी रुचियों, अधिकारों और झूठी प्रतिष्ठओं के खिलाफ आवाज़ उठायी । परिणामस्वरूप उसे एक कुख्यात अपराधी की भांति क्रूस पर लटकना पडा ।

बाइबिल का आह्वान यह है कि मात्र प्रभु मसीहा को अपना भला गडरिया

मानकर उनका अनुसरण करना ही प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य नहीं बल्कि प्रत्येक व्यक्ति को इस दुनिया में भला राह-गडरिया बनकर असंख्य लोगों को सच्चाई के मार्ग पर ले चलना है । बाइबिल के प्रेरित चरित [१] नामक ग्रन्थ में संत पोल और बरनबास की जीवनी द्वारा एक सच्चे एवं भले गडरिये के स्वरूप की झलकियाँ मिलती हैं । इन दोनों को चुनौतियों का सामना करना पडा । विभिन्न प्रकार के कष्टों एवं विरोधों का सामना करते हुए संत पोल एवं बरनवास ने मानव-उद्धार केलिए सतत् परिश्रम किया । किन्तु लोगों ने उनका कदम कदम पर तिरस्कार किया फिर भी मानव स्नेह के बन्धन से बन्धे रहकर अत्याचारों को जड से उखाड कर मानव की रक्षा करते गये । गलातिया के निवासियों को लिखे पत्र [२] द्वारा संत पोल संपूर्ण मानव से कहते हैं कि उद्धार प्राप्ति केलिए किसी रूढिवादी परंपरा अथवा नियम की आवश्यकता नहीं है । इसकेलिए ईश्वर के प्रति स्नेह से उत्प्रेरित विश्वास की आवश्यकता है । प्रस्तुत कथन के द्वारा संत पोल लोगों का सुधारात्मक प्रवृत्ति की ओर स्वागत करते हैं और कहते हैं कि परंपरा एवं रूढिग्रस्त विचारों से ऊपर उठकर स्नेहजन्य सद्वृत्तियों द्वारा जीना ही यथार्थ जीवन है । याने पूरे बाइबिल में यही दृश्य देख सकते हैं कि ईश्वर समय समय पर विभिन्न सुधारकों को बुलाते हैं और लोगों को धार्मिक और सदाचारी जीवन बिताने केलिए सहायता देने का आह्वान भी उनको देते हैं । सुधारकों में ईश्वर यही दायित्व अदा करते हैं कि यदि लोग दुष्कर्म करें तो सुधारकों को चाहिए उनकी गलतियों को बताएँ ताकि लोग अपनी गलतियाँ सुधार सकें । इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर साहित्य एवं बाइबिल में अपने समय के अस्वस्थ समाज को सुधारते हुए उसे लोक-कल्याण की ओर उन्मुक्त बनाने का महत्वपूर्ण कार्य किया गया । दोनों ग्रंथों का उद्धेश्य एक ही

---

१. नया विधान प्रेरित चरित १३:१४, ४३-५२
२. संत पोल गलातियों के नाम पत्र १:१,२,६-१०

रहा । इस उद्धेश्य की पूर्ति किस तरह से इन ग्रंथों में की गई है इनका विश्लेषण ही यहाँ किया-गया है ।

कबीर-कालीन भारतीय समाज--वर्णाश्रम-धर्म एवं सुधारात्मक विचार

अपने गुण और कर्म के आधार पर मनुष्यों का समाज में अपना एक स्थान होता है और उस स्थान के अनुरूप उनको कुछ कर्तव्य भी करने होते हैं । इन्हीं को 'वर्ण-धर्म' कहते हैं । ये धर्म का सामाजिक पक्ष उपस्थित करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र-ये समाज के चतुर्वर्ण हैं । इन चतुर्वर्णों का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त में मिलता है । वहाँ यह उल्लिखित है कि विधाता (ब्रह्म) के शरीर से इनकी उत्पत्ति हुई-उसके मुख से ब्राह्मण की, भुजाओं से क्षत्रिय की, जंघाओं से वैश्य की और पैरों से शूद्र की ।[१]

प्राचीन काल में समाज और राष्ट्र की सुव्यवस्था केलिए ही समाज को चार भागों में विभक्त किया गया था । इस विभाजन का आधार श्रम तथा कर्म था जिससे सेवा-भावना जागृत रहे तथा लोक -संवृद्धि भी होती रहे । प्रस्तुत विभाजन के होते हुए भी ये सभी वर्ग या वर्ण एक ही समाज के विभिन्न अंग माने जाते थे । उनमें कोई भेदभाव नहीं था और वे सभी सामाजिक दृष्टि से समान थे ।

समय और परिस्थिति के अनुसार वर्णाश्रम-धर्म में कुरीतियों ने घर कर लिया। मनुष्य के गुण, कर्म, एवं स्वभाव आदि के स्थान पर उसके जन्म के अनुसार उसकी जाति-पाँति का निर्णय किया जाने लगा । जो सबल थे वे उच्चवर्ण कहलाने लगे और जो निर्बल थे वे पिछडे, दलित, अस्पृश्य कहे जाने लगे । वर्गविभेद, रंग-भेद एवं जाति-विभेद के कारण मनुष्य एक ऐसे भयानक दल में फंस गया जिसमें

---

१. ऋग्वेद १०:९०:१२

घृणा, द्वेष, ईर्ष्या तथा वैमनस्य का प्रभुत्व था । एक वर्ण दूसरे वर्ण के साथ अमानुषिक व्यवहार करने पर तुल गया । ऐसी अनेक जातियाँ, उप-जातियाँ उत्पन्न हो गईं जो एक दूसरे को फूटी आंख से भी नहीं चाहती थीं ।

घोर अव्यवस्था सर्वत्र फैली थी । अनपढ, अशिक्षित एवं पापी भी जन्म से ब्राह्मण होते थे और पूज्य माने जाते थे तथा अन्य वर्णों के विद्वान एवं गुणी भी समाज में यथायोग्य सम्मान न पाते थे । कबीर के समय में समाज की यही अवस्था थी । इसी अव्यवस्था को दूर करने केलिए कबीर जैसे संत कवियों ने काम किया । उन्होंने वर्णाश्रम का विरोध किया और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्रियाँ सबको समान रूप से उदार आश्रय देकर आत्मोन्नति का मार्ग दिखाया । हिन्दुओं में वर्ण भेद के कारण कितने ही निम्न वर्ग समाज में सम्मान नहीं पाते थे, आध्यात्मिक साधना से वंचित रह जाते थे ।उनको नीच समझा जाता था । उनके साथ अमानुष व्यवहार किया जाता था । कबीर ने ऊँच-नीच के विचारों की आलोचना की और उन्हें सारहीन बताया –

हम्ह तुम्ह माँहै एके लोहु एकै प्रांन जीवन है मोहू
एक ही बास रहे दस मासा, सूतग पातग एक ही आसा
एक ही जननी जन्याँ संसारा, कौन ग्याँन थे भये बिनारा ।''

कबीरदास ने युग के सताये समाज को उठाया और उनको अन्य वर्गों के समान ही सम्मानित होने की बात कही । कबीरदास की ओजस्वी वाणी ने इन वर्णों में भी आशा आत्मसम्मान और आत्मोद्धार की तडपन को जन्म दिया । उनको उचित मार्ग दिखाया । हिन्दू वर्ण-व्यवस्था को वे नहीं मानते थे –

नहीं को ऊँच नहीं को नीच जाका प्यंड ताही का सींचा
जे तू बांमन बमन्नी जाया, तौ ओर बाट हैं क्यों नहीं आया ।

कबीरदास मनुष्य मात्र को समान समझते थे । अतएव जहाँ भी वह भेदपूर्ण आचरण देखते थे, वही अपना विरोध और कभी कभी आक्रोश तक व्यक्त कर देते थे । हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था उनकी दृष्टि में मानव विरोधी थी क्योंकि इसके अन्तर्गत ब्राह्मण को ही महत्व दिया जाता था वह मानव-मानव के मध्य भेदभाव का समर्थन करती थी । चतुर्वर्ण-व्यवस्था हिन्दू धर्म में जितनी व्यापक है उतनी अन्यत्र चाहे न हो, लेकिन वह वर्ण-व्यवस्था हिन्दुओं तक ही सीमित नहीं थी । चतुर्वर्ण व्यवस्था संसार के हर सामन्ती समाज की विशेषता थी । यह मुसलमानी सामन्ती समाज में भी स्वीकृत थी । कबीर जिस जुलाहा जाति में ललित पालित हुए थे, वह मुसलमानी समाज की सबसे नीची जाति थी और मुसलमान समाज में ऊँचे स्थान के अधिकारी थे ।

समाज में प्रचलित वर्णभेद के कारण छूतछात अथवा अस्पृश्यता पर भी वे बल देते थे । यह अन्य सामाजिक कुरीतियों की अपेक्षा हिन्दू समाज केलिए घोर अभिशाप है । इसके कारण मानव-मानव से घृणा करता है और उसे पशुतुल्य समझते है । मुझे न छुओ, मैं पवित्र हूँ की भावना ने हिन्दुओं के संगठन को खोखला कर दिया । शूद्र-वर्ग को अस्पृश्य कहकर ठुकराने की भावना के परिणामस्वरूप ही हमारे अनेक भाई अपने से भिन्न होने लगे । उनमें ईर्ष्या -द्वेष उत्पन्न हुए और वे अन्य धर्म एवं अन्य जातियों में सम्मिलित होने लगे । यह आश्चर्य की बात है कि जब ईश्वर एक ही हैं, आत्मा भी एक है तो फिर अछूत की भावना कैसी।

मध्ययुग में कबीर आदि संतों ने '' हरि को भजै सो हरि का होइ, जाति-पांति बूझत नहीं कोई '' कहकर इस अस्पृश्यता की भावना को दूर करने का प्रयास किया पर वह बहुत अधिक फलोत्पादक सिद्ध नहीं हो सका । मध्ययुग के संतों ने अस्पृश्यता की निन्दा कर, मानव मात्र के प्रति समता और विश्वबन्धुत्व का पाठ पढाया । सभी संत कवियों ने ब्राह्मणों और उनके माया जाल का कट्टर विरोध किया है । ब्राह्मण तो वह होता हैं जो ब्रह्म के जानता है । यज्ञोपवीत लटकाकर त्रिपुंट लगाकर पीताम्बर धारण करके छुआछूत में मानने वाला ब्राह्मण नही । कबीर कहते हैं कि जो ब्राह्मण अपने पानी की गागर दूसरे को छूने नहीं देता वही ब्राह्मण वैश्यवृत्ति करने वाले वैश्य के पास जाकर भ्रष्ट और अपवित्र बन जाता है । यहाँ ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा का एक नग्न सत्य खोलकर रख दिया है, शूद्र और ब्राह्मण में किसी भी प्रकार का भेद नहीं मानते --

हमारे कैसे लोहू, तुम्हारे कैसे दूध
तुम्ह कैसे ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद ।

छुआछूत पर विरोध करते हुए कबीर पूछते हैं कि जल में स्थल में, जन्म में मरण में सभी जगह यदि छूत है तो फिर पवित्रता कहाँ रह जाती है । अतएव यह कृत्रिम भेद मनुष्यनिर्मित है, बनावटी है । परिणामस्वरूप उन्होंने इस विकृत व्यवस्था का खुलकर विरोध किया । कबीर एक अर्थ में ऋषि थे । वह लकीर पर चले नहीं, बल्कि उन्होंने नवीन लकीर का निर्माण किया । याने वे परंपरा छोडकर चलने में सुशक्त थे । उन्होंने जन्मजात श्रेष्ठता को पूर्णतया अस्वीकार कर दिया और कहा कि यदि स्रष्टा के मन में वर्ण-व्यवस्था, उच्च-नीच भाव, अस्पृश्यता आदि होती तो वह मानव को जन्म देते ही ब्राह्मण के मस्तक पर तीन चिह्नों का तिलक क्यों नहीं लगा देता ? अतः ये सारे भेदभाव नैसर्गिक नहीं हैं मानव कृत हैं ।

ब्राह्मण की तथाकथित अस्पृश्यता जन्मजात श्रेष्ठता और कर्महीनता पर कबीर ने बार बार प्रहार किया है । कबीर की राय में ब्रह्म को जाननेवाला ही ब्राह्मण है, किन्तु समाज में ब्राह्मण वे कहे जाते हैं जो ब्रह्म को नहीं जानते, केवल यज्ञ में प्राप्त धन से अपना पेट पालते हैं । वे स्रष्टा को पहचानने तक नहीं और कर्म, धर्म की बातें बताते हैं । सूर्य चन्द्र में ग्रहण लगने पर और अमावस्या, द्वितीया आदि तिथियों पर वे दान लेते हैं और अपने स्वार्थ केलिए शान्तिपाठ तथा पूजा करते हैं। ऐसे ब्राह्मणों का जीवन श्राद्ध आदि से प्राप्त अन्न के द्वारा चलता है और उनके भीतर वासना व्याप्त रहती है । वे बराबर यह आशा लगाये रहते हैं कि होम कब होगा? वे मृतकों के श्राद्ध आदि अशुचि कर कर्म संपन्न कराकर भोजन करते हैं । वह भोजन एक प्रकार से उच्छिष्ट हैं । इससे उनकी मति भ्रष्ट होती है । वे स्वयं तो जूठा खाते ही हैं , दान में प्राप्त अपवित्र सामग्री का पुत्र व पुत्री को भी खिलाते हैं। किन्तु जो वास्तव में प्रभु के भक्त हैं, उन्हें अछूत समझते हैं। यथा–

ब्राह्मन होय कै ब्रह्म न जानै, घर मँह जग्य प्रतिग्रह आनै,
जे सिरजा तेहि नाँह पहिचानै, करम धरम लै बैठि बखाने
ग्रहन अमावस सायर दूजा, सांती पाठ परोजन पूजा
प्रेत कनक मुख अंतर बास, आहुति सहित होम की आसा ।
कुल उत्तिम जग मांहि कहावै, फिरि फिरि मधिम करम करावै
सुत दारा मिलि जूठे खाई, हरि भक्ता के छूति लगाई ।'' [१]

पुरोहित-वर्ग के मिथ्याचारों के फलस्वरूप ही समाज में ऊँच-नीच की भेद-भावना का प्रसार हुआ और छुआछूत की बीमारी बढती चली गई । कबीर ने

---

१. डॉ.जयदेव सिंह कबीर वाङमय खंड-२ पृ.४५९

देखा था कि यह छूत की बुराई सारे समाज को पतन के गर्त में धकेल रही है । इसलिए उन्होंने इसका खुले शब्दों में विरोध किया । एक और बार वे पंडित से सीधे प्रश्न करते हैं कि भला बताओ कि छूत क्या है और कहाँ से उत्पन्न हुई है ? तुमने बिना सोचे-समझे छूत नामक भावना बना ली है । प्रभु ने एक ही पृथ्वीरूपी पीढे पर सभी को समान रूप से बिठा दिया है फिर तुम किसको छूत कहोगे और किसे अछूत ? सभी लोग छूत से उत्पन्न हैं, उससे कौन बचा है ? अतः यह छुआछूत का भेदभाव निरर्थक है । [१]

वह समाज में प्रचलित छुआछूत की भावना का उपहास करते हुए अपनी व्यंग्यात्मक शैली में ऐसे तर्क उपस्थित करते हैं, जिसका कोई उत्तर नहीं है । वे कहते हैं कि हे पंडित ! तुम तथाकथित नीच जाति के घर में रखे हुए मिट्टी के पात्र और उसके जल को भी अशुद्ध समझते हो । इसलिए अब समझ बूझकर पानी पिओ, क्योंकि सभी जगह की मिट्टी और जल भी अशुद्ध है । तुम्हारा घर जिस मिट्टी से बना है, वह भी अपवित्र है । क्योंकि सारी दृष्टि उसी में लीन होती है। मरने पर सभी लोग मिट्टी में मिल जाते हैं । इसी मिट्टी में यादव एवं ऋषि मुनि मरकर विलीन हो गये । वे सभी सडकर मिट्टी बन गए हैं । हे पंडित ! उसी मिट्टी से तुम्हारे सारे बर्तन बनते हैं । केवल मिट्टी ही अपवित्र नहीं है, अपितु जिस जल को पीते हो, वह भी अशुद्ध है । नदी के जल में मछलियाँ, कछुए आदि रहते हैं । उसमें उनके बच्चे पैदा होते हैं, उस समय उनका रुधिर-युक्त नीर निकलकर उसी जल में मिल जाता है । यहीं नहीं जो मृत-पशु उसमें फेंके जाते है, वे उसी में सड जाते हैं । इसी प्रकार नदी का जल अशुद्ध हो जाता है । और भी पिए हुए दूध को तुम पवित्र समझते हो वह भी पशुओं की हड्डी से झडकर और

---

१. डॉ.जयदेव सिंह कबीर वाङमयःखंड २ पृ. ४५९

गूदे से गलकर बनता है । ऐसे दूध को शुद्ध समझकर तुम पीते हो और मिट्टी को अशुद्ध बताते हो । हे पंडित ! धर्म-ग्रन्थों का प्रमाण तुम व्यर्थ में देते हो । यह विपरीत आचरण तुम्हारे भ्रान्त मन की उपज है । यह मिथ्या पाखंड तुम्हारी ही करतूत है। इनका वेद-कुरान से कोई संबन्ध नहीं । यथा–

पांडे बूझि पियहु तुम पानी ।
जेहि मटिया के घर मँह बैठे, तामे सृष्टि समानी
छपन कोटि जादव जँह भीजे, मुनि जन सहस अठासी
पैग पैग पैगम्बर गाडे, सो सब सरि भो माटी
तेहि माटिया के भाँडे पांडे, बूझि पियहु तुम पानि
मच्छ कच्छ घरियार बियानें, सधिर नीर जल भरिया
नदिया नीर नरक बहि आवै, षसु मानुष सब सरिया
हाड झरी झरि गूद गलीगल, दूध कहाँ ते आया
सौ लै पांडे जेंवन बैठे, मटियहि छूति लगाया
बेद कितने छाँडि देहु पांडे, ई सब मन के भर्मा
कहै कबीर सुनो हो पांडे, ई सब तुम्हारे कर्मा ।'' [१]

कबीर की मान्यता है कि वास्तविक पवित्रता मानसिक विकारों का त्याग है, शेष सब दिखावा है । इसलिए वे पाखण्डी पंडित से प्रश्न करते हैं कि हे पंडित ! तुम वह स्थान बताओ जो सर्वथा पवित्र है । मैं वहीं बैठकर भोजन करूँ । इस संसार में सभी अपवित्र है । पिता के संयोग में अपवित्रता रहती है, माता का गर्भ भी अपवित्र रहता है और नवजात शिशु भी अपवित्र रहता है । मानव-जन्म की सारी प्रक्रिया अपवित्रता से जुडी हुई है । द्विवेदी जी के शब्दों में -'' कबीरदास का पंडित बहुत

---

१. डॉ.जयदेव सिंह कबीर वाङमय खंड २ पृ. २२०.१७४

अदना आदमी है । स्वर्ग और नरक के सिवा कुछ जानता नहीं, जात-पांत और छुआछूत का अंधा उपासक है, तीर्थ-स्नान और व्रत-उपवास का ठूँठ समर्थक है - तत्वज्ञानहीन, आत्मविचारविवर्जित, विवेकबुद्धिहीन, अटूट गंवार है ।'' [१] कबीर के अनुसार मानव मूल से एक है उन्हें भाई-भाई के समान रहना आवश्यक है । भेदभाव मानव-निर्मित है । उस भेदभाव को मिटाना आवश्यक है । मिलजुलकर रहने मे ही जगत् का कल्याण है । वादविवाद का त्याग करके प्राणिमात्र में व्याप्त एक ही अमरत्व को कबीर ने देखा था । और उन्होंने एक ही समझकर व्यवहार किया था । यही समाज केलिए उनका संदेश है । कबीर को वर्णविहीन समाज की रचना पसन्द थी । क्योंकि मानव-कल्याण का वही एक रास्ता है ।

बाइबिलकालीन समाज -- वर्ग-विवेचन एवं सुधारात्मक विचार

भारतीय समाज में वर्णव्यवस्था का जो चित्र मिलता है वैसा ही चित्र बाइबिल में नहीं देख सकते लेकिन कर्म के अनुसार इन समाजों में और बाइबिल में दिये गये समाज में जन विभाग के अन्तर्गत विभाजन की रेखाएं देखी जा सकती हैं । प्रसिद्ध विद्वान माईकिल रसोल के अनुसार '' मिश्र के सामाजिक वर्ग विभाजन में भारतीय वर्ण व्यवस्था की अनुरूपता देखी जा सकती है ।'' [२] उनके अनुसार भारतीय और मिस्र देशों के निवासी विविध श्रेणियों में बँटे हुए थे जिनके अधिकार, सम्मान, स्थिति आदि में भेद था । ग्रीक इतिहासकार पीटर के अनुसार '' मिस्र के एक समाज के लोग दूसरे समाज में सम्मिलित नहीं किये जाते थे । राजा, पुरोहित, कर्षक या दास भिन्न भिन्न स्थानों पर ही रहते थे ।'' [३] पर इतना होते हुए भी भारत के समान कठोर वर्ण-धर्म-व्यवस्था का विकास यहाँ पर न हो सका। बाइबिल में,

---

१. पं.हज़ारी प्रसाद द्विवेदी कबीर पृ. १३२
२. माईकिल रसेल एन्शन्ट आन्ट मॉडेन इन्ट्रोक्षन्स पृ. ११
३. पीटर सोशियल लाइफ इन एन्शन्ट ईजिप्त पृ. ११-१२

प्राचीन पश्चिम एशियाई समाज का जो चित्र मिलता है उसमें वर्ग-विभाजन का पुट अवश्य है । बाइबिल में चित्रित जनता यहूदी नाम से जानी जाती थी । प्रस्तुत यहूदी जनता बारह गोत्रों में विभक्त थी । इस्राएल नाम से जाने जाने वाले याकूब के बारह पुत्र से ही प्रस्तुत बारह कुलों की उत्पत्ति हुई । ये बारह कुल हैं-रूबेन, सिमओन, लेवी, यूदा, इस्साकार, ज़बुलोन, जोसफ, बेनयामीन, दान, नफ्ताली, गाद और आशेर ।

भारतीय वर्ण-व्यवस्था में प्रमुखता ब्राह्मण को थी लेकिन ब्राह्मण बाइबिल में नहीं मिल सकता । फिर भी ब्राह्मण का काम जैसे ईश्वर पूजन, वेद-वेदाध्यापन, अध्ययन, पौरोहित्य आदि करनेवाले एक जन-विभाग को बाइबिल में हम देख सकते हैं । यहूदी के बारह गोत्रों में मात्र लेवी और हारून वंश के लोग मन्दिर की सेवा एवं पौरोहित्य का काम करते थे । ब्राह्मण की तरह विद्या, ज्ञान, अध्यापन आदि की अधिकारिणी भी यहूदी जनता थी । भारतीय क्षत्रिय वंशज जो काम करते थे उसके समान काम करनेवाले के रूप में बाइबिल में राजाओं एवं राजवंशों को देख सकते हैं । कृषि एवं व्यापार करनेवाले भारतीय वैश्यों का काम बाइबिल में कनानी वंश के लोग करते थे । वे मुख्यतः व्यापारी थे । मिस्र में धान्य आदि वस्तुओं का व्यापार करनेवाले जोसफ को हम देख सकते हैं । इब्रानी (Hebrew) लोग जो बाइबिल के समाज में आते हैं, भेड-बकरी पालने वाले चरवाहे थे । बाइबिल में शूद्र के संज्ञा के न रहते हुए भी शूद्र धर्म याने दासत्व का चित्र स्थान स्थान पर मिलता है । मिश्र,यूनान, हीब्रू, बाबिलोन,रोम जैसे पश्चिम एशियाई समाज में दासत्व की प्रथा थी । उनका जीवन कठोर था । अपने स्वामियों केलिए उनको खूब काम करना पडा था ।

भारतीय समाज के समान बाइबिलकालीन समाज में भी राष्ट्र की

सुव्यवस्था केलिए ही काम करने का उत्तरदायित्व विभिन्न वर्ग के लोगों में विभक्त कर दिया गया था । लेकिन कालान्तर में ऊँचे काम करनेवाले लोग अपने को उन्नत एवं दूसरों को हीन दृष्टि से देखने लगे । यहूदी वंश की उपजाति फरीसी एवं शास्त्री लोग जो धर्म-व्यवस्था सिखाने में प्रसिद्ध थे, वे व्यवस्था का अक्षरशः पालन करना चाहते थे । फरीसी लोग कहते और सिखाते थे परंतु आप नहीं करते थे । उन्होंने नाना प्रकार के नियम बनाकर लोगों का जीवन भार बना दिया था । केवल रीति-विधियों और बाहरी बातों पर मन लगानेवाले और धर्म के सार को नहीं समझनेवाले इन कपटी लोगों से आक्रोश करने में ईसा नहीं हिचकते थे । फरीसी लोग हर छोटे से छोटे नियम पर ध्यान दिया करते थे, लेकिन महत्वपूर्ण आज्ञाओं को अनदेखा कर देते थे । इसलिए येशु सदैव उनकी आलोचना करते थे- ढोंगी शास्त्रियों और फरीसियो! धिक्कार है तुम लोगों को! तुम पुदीने, सौंफ और जीरे का दशमांश जो देते हो, किन्तु न्याय, दया और ईमानदारी, संहिता की मुख्य बातों की, उपेक्षा करते हो। इन्हें करते रहना और उनकी भी उपेक्षा नहीं करना तुम्हारे लिए उचित था! ''[१] एक रूपक के ज़रिए ईसा उनसे और भी बताते है- अन्धे नेताओ! तुम मच्छर छानते हो, किन्तु ऊँट निगल जाते हो ।'' [२] याने ये फरीसी लोग छोटे छोटे नियमों पर अधिक बल देते थे और बडी बडी बातों की उपेक्षा करते थे । फरीसियों को यह भय था कि येशु के कारण समाज में उनकी प्रतिष्ठा कहीं गिर न जाए । इसलिए वे येशु में गलतियाँ ढूँढने लगे तथा येशु को फंसाने के अवसर की तलाश करने लगे। शास्त्रीलोग व्यवस्था का अध्ययन करना और उनकी व्याख्या जीवन की प्रत्येक परिस्थिति के अनुकूल करना, संपूर्ण यहूदी जीवन को व्यवस्था से बाँध देना और समाज में धार्मिकता फैलाना, विद्यालय में व्यवस्था सिखाना, शिक्षण-संबन्धी कार्यों

---

१. नया विधान सन्त मात्यू २३:२३
२. वही २३:२४

का क्षेत्र विस्तृत करना, नियम बनाना आदि काम करते थे । उनका विशेष ध्यान धर्मशास्त्र की व्याख्या धर्मशास्त्र की शिक्षा, ध्यान और यहूदी के प्रसार पर रहा था। इन गुणों के कारण सभाघरों का नेतृत्व उन्हीं के हाथों में रहता था । लोग उनकी कही हुई बातों के पालन में विवश होते थे । इन पाखण्डी शास्त्रियों और फरीसियों की ओर इशारा करते हुए ईसा ने जनसमूह तथा अपने शिष्यों से कहा-'' भोजों में प्रमुख स्थानों पर और सभागृहों में प्रथम आसनों पर विराजमान होना बाज़ारों में प्रणाम प्रणाम सुनना और जनता द्वारा गुरुवर कहलाना-यह सब उन्हें बहुत पसन्द है । लेकिन तुम लोग ऐसा न करो । जो तुम लोगों में सबसे बडा है, वह तुम्हारा सेवक बने ।'' [१] फरीसी लोग अपने को धर्मी एवं अन्य सब लोगों को पापी समझते थे । [२]

बाइबिल के अनुसार मन्दिर-सेवा का काम करने वाले पुरोहित, याजक आदि लेवी गोत्र से थे । पुरोहित या याजकों केलिए व्यवस्था में कठोर नियम थे । उनमें रक्त की पवित्रता का होना अति आवश्यक था । पुरोहित स्तोत्र-ग्रन्थकार की राय में प्रभु ईश्वर के सेवक थे । उनका दायित्व प्रार्थना एवं ईश्वर स्तुति करना था । इसके बारे में स्तोत्र ग्रन्थ में यों बताते हैं -'' प्रभु के सब सेवको ! जो रात के समय मन्दिर में नियुक्त हो, प्रभु को धन्य कहो । वेदी की ओर हाथ उठाकर प्रभु को धन्य कहो । [३] संत पोल याद दिलाते हैं कि पुरोहित या नेता होने के नाते गर्व करने की आवश्यकता नहीं । एक उदाहरण के ज़रिए संत पोल बताते हैं - पौधा रोपनेवाला एक, उसको सींचने वाला और एक लेकिन ईश्वर ने उसे बडा किया । न तो रोपनेवाले का महत्व है और न सींचने-वाले का, बल्कि वृद्धि करने वाले अर्थात्

---

१. नया विधान संत मात्यु २३:१,६,७-११
२. वही संत लूक १८:९
३. पुराना विधान स्तोत्र-ग्रन्थ १३४:१-२

ईश्वर का ही महत्व है । हम तो धर्म-सेवक मात्र हैं ।[१] लेकिन कालान्तर में ये गर्विष्ट पुरोहित गण पाप करने लगे । उनकी पवित्रता में कलंक आने लगा । इनको देखकर, उनकी दुष्कृति पर कोप करके नबी एशया यों वाणी देते हैं - देखो प्रभु पृथ्वी को उजाड कर उसका सर्वनाश कर रहा है । वह उसका तल उलट कर उस पर निवास करने वालों को तितर-बितर कर देगा । याजकों की वही दशा होगी, जो जनता की, जैसा स्वामी के साथ होगा, वैसा दास के साथ ।[२] एक और स्थान पर नबी यों आक्रोश करते हैं -'' याजक और नबी भी अंगूरी पीकर मत्त हैं । वे मद्यपान के कारण झूम रहे हैं । वे सब के सब लडखडाते हैं उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है । मेज़ घृणित वमन से भरी हैं, कोई जगह गन्दगी से खाली नहीं''।[३]

कबीरकालीन समाज में पुरोहित का काम करनेवाले ब्राह्मण लोग अपने ऊँचे स्थान की चिन्ता कर जिस प्रकार गर्व करते थे उसी प्रकार ही बाइबिल के पुरोहितगण, जिन पर प्रभु-ईश्वर की पूजा का दायित्व निर्भर था, गर्वभाव से, दूसरों को नीच दृष्टि से देखने और मनमाने ढंग से जीवन बिताने लगे थे । उनकी बुरी आदतों की भर्त्सना करनेवाले कबीर के समान बाइबिल के सारे नबीलोग एवं स्वयं ईसा भी उनके विरुद्ध शब्द उठाने में नहीं डरते थे ।

संक्षेप में वर्णाश्रम धर्म का यथोचित निर्वाह भौतिक़ उन्नति के साथ साथ आध्यात्मिक विकास में भी सहायक है । भारतीय एवं पश्चिम-एशियाई समाज का वर्ण विभाजन एवं वर्ग-विभाजन की दृष्टि से विश्लेषण करने पर मुख्य रूप से यह बात सामने आती है कि मानव एवं समाज की प्रगति केलिए विद्या या ज्ञान, सुरक्षा,

---

१. संत पोल कोरिन्थियों के नाम पहला पत्र ३:५-८
२. पुराना विधान एशय का ग्रन्थ २४:१-२
३.. वही २८:७-८

कृषि अथवा व्यापार तथा सेवा प्रचीन काल से देश काल भेद के बिना प्रमुख रही है। विद्या अथवा ज्ञान के अधिकारी ब्राह्मण अथवा पुरोहित, राज्य की सुरक्षा का कार्य करनेवाले राजा लोग, कृषि,व्यापार इत्यादि करनेवाले वैश्य, कर्षक या व्यापारी और सेवा करनेवाले शूद्र या सेवक भारतीय एवं पश्चिम एशियाई समाज में प्राचीन काल में समान रूप से वर्तमान रहे हैं । वर्णभेद के कारण मानव मानव में भेद करनेवाली यह व्यवस्था कबीर को मान्य नहीं थी, येशु भी इसका खुले आम विरोध करते थे । दोनों ग्रन्थों के उदाहरण इसके प्रमाण हैं । मानव मानव के बीच का यह भेद-भाव मिटाकर उनमें एकता की स्थापना करना ही दोनों ग्रन्थों का लक्ष्य था। इसके द्वारा लोकमंगल की स्थापना दोनों का अभीष्ट कार्य था ।

जाति-व्यवस्था -- वर्गयुक्त समाज से वर्गमुक्त समाज की कल्पना

मध्यकाल तक आते आते वर्ण-व्यवस्था जाति-व्यवस्था में परिणत हो गई । वर्ण केवल चार थे किन्तु जातियों की संख्या बढती चली गई वर्णव्यवस्था का लक्ष्य संगठित समाज का निर्माण करना था । कालान्तर में वर्ण-व्यवस्था जाति-व्यवस्था के रूप में बदल गयी । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि जातियाँ बन गयीं । ब्राह्मण को श्रेष्ठ जाति माना जाने लगा । क्षत्रिय राजा होने के नाते सभी के आदर एवं सम्मान के विषय बन गये । वैश्य धन-संपादन में मग्न होकर दूसरों के बीच में अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए परिश्रम करने लगे । वैश्य-शूद्रों के बीच विवाह-संबन्ध के कारण अनेक संकर जातियाँ उत्पन्न हुईं । ब्राह्मण और क्षत्रिय का दूसरी जातियों से विवाह होने के कारण वहाँ भी संकर-जाति का आविर्भाव हुआ । धीरे धीरे जातिबन्धन और जातिगत संकीर्णताएँ भी बढती गईं । वर्गभेद, रंगभेद एवं जाति-विभेद के कारण मनुष्य एक ऐसे भयानक दल में फंस गया जिसमें घृणा, द्वेष, ईर्ष्या तथा वैमनस्य की प्रमुखता थी । एक वर्ग दूसरे वर्ग के साथ अमानुषिक

व्यवहार करने पर तुला था । ऐसी अनेक जातियाँ, उपजातियाँ उत्पन्न हो गयीं जो एक दूसरे को नहीं चाहती थीं । फलतः इस पारस्परिक विद्वेष के कारण देश, विदेशियों द्वारा पराधीन बना लिया गया । कबीर का युग पराधीनता का युग था। वर्ण-विद्वेष का प्रभाव स्वयं कबीर को भी भोगना पडा था । हिन्दू कहे जाने-वाले वर्ण अस्पृश्य कहे जानेवाले वर्णों से दुर्व्यवहार करते थे । मन्दिर-प्रवेश, मन्दिरों की पूजा करना, भक्ति कर पाना, शास्त्रों का ज्ञान उपार्जन करना शूद्र वर्णों केलिए वर्जित था ।

कबीर की आत्मा इस पारस्परिक दुर्व्यवहार से उद्विग्न हो गई । उन्होंने अपनी वाणियों में अस्पृश्यता निवारण के हेतु वर्ण-विभेद की इस रूढि का घोर विरोध किया । उनके मत से जन्म ही से कोई हिन्दू या शूद्र अथवा मुसलमान नहीं हो सकता था । यह सब तो मनुष्य के स्वार्थमय व्यवहारों की सृष्टि है—

हम तुम्ह माहि एकै लौहु, एकै पांन जीवन हे मोहू
एकहि जननी जन्यां संसारा कौन ग्यांन से भये किनारा ।'' [१]

आध्यात्मिक रूप में आत्मा सर्वत्र व्याप्त है । उसी चरमसत्य के व्याप्तत्व के कारण सभी प्राणी एकत्वपूर्ण हैं । सभी के शरीरान्तर में एक ही वर्ण का रक्त प्रवाहित है और सभी में समान रूप से प्राण व्याप्त हैं । एक ही प्रकृति के सब निर्मित हैं फिर पृथक पृथक कैसे हो सकते हैं ? पारस्परिक भेदभाव का परित्याग करके सभी को मिलजुलकर रहना चाहिए इसी में सबका कल्याण है । कबीर के शब्दों में—

सर्वभूत एके करि जान्यां, चूके वाद विवादा
कहि कबीर में पूरा पाया, भये राम परसादा ।''

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. २४४
२. वही पृ. २९४

समाज के संगठन को व्यवस्थित रूप देने केलिए भेद-भाव का उच्छेद अत्यन्त आवश्यक है । यहाँ कबीर का कार्य निषेधात्मक एवं उपदेशात्मक था । जातिभेद के संबन्ध में वे कहते हैं –

''एक जोति ते सब जग उतपना, का बामन का सूदा ।''

कबीरदास ने जातिभेद का उन्मूलन करके एक प्रकार के साम्यवाद की प्रतिष्ठापना की । वे समाज में ऊँच, नीच, ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र आदि के भेद-भावों को सहन नहीं कर पाते थे । उन्होंने इस दृढता के साथ उसकी व्यर्थता बतायी है । उन्होंने स्पष्ट कहा है –

''भूला भरमि, पैर जिनि कोई, हिन्दू तुरक झूठा कुल दोई ।'' [१]

कबीर ने ईश्वर की उपासना के सामान्य क्षेत्र में उतरकर सभी पारस्परिक भेद-भावों को भुलाकर आगे बढने का रास्ता अपनाया । कबीर ने धर्म-भेद को भी समाज के संघर्ष का प्रमुख कारण समझा, अतएव प्रगति-पंथ का अनुसरण करने का सुझाव दिया –

कहै कबीरा, दास फकीरा, अपनी रहि चलि भाई ।
हिन्दू तुरक का करता एकै, ता गति लखि न जाई । [२]

सम-भावना को जागृत करने केलिए दोनों धर्मों के बाह्य चिह्नों को भी कबीर ने व्यर्थ ठहराया है । कबीर सावधान करते हुए कहते हैं कि कोई भूलकर भी जाति-

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ८३
२. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. ८३

भेद के भ्रम में न पडे । ये हिन्दुओं और मुसलमानों के पारस्परिक भेदभाव झूठे हैं। कबीर के मतानुसार ईश्वर् की भक्ति में जाति-पांति नहीं देखी जाती, जो भी ईश्वर से सच्ची लगन रखता है वही श्रेष्ठ है ।

जाति पाँति लखै नहि कोई हरि को भजै सो हरि का होई ।'' [१]

कबीर ने हिन्दुओं के जाति-पाँति, छुआछूत, खान-पान आदि के व्यवहारों और मुसलमानों के मुसलमानी करने का चुभती भाषा में विरोध किया है । इन दोनों जातियों की जी भरकर खिल्ली उडाई है –

एकै पवन एक ही पांणी करी रसोई न्यारी जान
माटी यूँ माटी मटी ले पोती, लगी कहौ कहाँ धूँ छोती । [२]

सारे लोगों के द्वारा समान भाव से उपयोग किये जानेवाले पवन, पानी मिट्टी से बनने वाले कुम्भ आदि उदाहरण देकर कबीर यहाँ आह्वान करते हैं कि मनुष्य की उपयोगी वस्तुएँ जिस प्रकार समान हैं उसी प्रकार उसके उपभोक्ता मानव की भी भिन्नता छोडकर एकता में रहना चाहिए । जन्म से ही कोई द्विज या शूद्र अथवा हिन्दू या मुसलमान नहीं हो सकता । इसे कबीर ने कितने सीधे किन्तु मन में जम जाने वाले ढंग से कहा है । कबीरदास ने ऊँचा-नीच का भेद दूर कर सबको एकता में रहने की प्रेरणा दी थी । कबीर जब एक ही तत्व से उद्भूत हुआ तो उसमें जाति-पाँति भेद कहाँ से आया –

एक बूँद एकै मल मूतर, एक चाम एक गूदा
एक जोति थैं सब उतपनां, कौन ब्राह्मण कौन सूद ।'' [३]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ३
२. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. ३
३. वही पृ. ४२

प्रस्तुत पंक्तियों के ज़रिए कबीर संदेह प्रकट करते हैं कि मानव एक ही तत्व से उद्‌भूत हैं और सर्वशक्तिमान, विश्व ज्योति-रूपी एक ही ईश्वर से उद्‌भूत होकर पृथ्वी पर आये । फिर उनके बीच में ब्राह्मण एवं शूद्र रूपी भेदभाव किस प्रकार आ गये ? ईश्वर ने मानव को समान ढंग से जन्म दिया इसलिए उनकी दृष्टि में सब मानव एकरूप हैं । कबीर ऊँच-नीच से रहित आदर्श समाज की स्थापना करना चाहते थे । कबीर का विचार था कि अनेक व्यवसाय मनुष्य की एकता को खंडित नहीं कर सकते । आजीविका के साधनों में अन्तर होते हुए भी मूलतः सभी मनुष्य एक हैं । व्यवसाय बडाई-छोटाई का मापक नहीं । बाह्य विभिन्नताओं का संबन्ध आत्मा से न होकर शरीर से है । कबीर की राय में भिन्नतायें समाज को दुर्बल करने के साथ-साथ गतिहीन भी कर देती हैं । कबीर ने इन्हें बडी करुणा एवं क्षोभ से देखा । कबीर ने एक ओर वरेण्य ब्राह्मणों को फटकारा, दूसरी ओर हीन-भावना से पीडित शूद्रों को उठाया । कबीर के हृदय में हीन-भावना का उद्‌गम कभी नहीं हुआ। कबीर स्वयं जुलाहे थे, तो भी उन्होंने तथाकथित उच्चकुलीन ब्राह्मणों को ललकार कर अपनी बात कही है –

तू ब्राह्मण मैं कासी का जुलाहा, मोहि तोहि कैसे के बनहि
हमरे राम नाम कहि ऊबरे वेद भरोसे पांडे डूबि मरहिं । [१]

अर्थात् कबीर कहते हैं कि तू ब्राह्मण है मैं काशी का जुलाहा हूँ । मेरी और तेरी बराबरी कैसे संभव है ? हमारे साथ-वाले तो राम नाम कहकर उद्धार पा गये लेकिन ब्राह्मण पंडित वेद के भरोसे डूबकर मर गये ।

जाति-पांति का विरोध मिटाकर सब एक होकर अपने अपने कर्तव्य का

---

१. डॉ.रामकुमार वर्मा संत कबीर पृ. १९०

पालन करें, यह बात कबीर की वाणी में दिखाई देती है । संसार के सब मनुष्य एक पिता के पुत्र अर्थात् भाई-भाई हैं । यही विश्व-बन्धुत्व की भावना मनुष्य जीवन का लक्ष्य होनी चाहिए । जाति-पांति, संप्रदाय और छूत-छात आदि की संकीर्णता तो बडी विघातक एवं विनाशक है । इसने सारी मानव-जाति को छिन्न-भिन्न कर दिया है । इस विषमतामयी द्वेषाग्नि को बुझाने केलिए कबीर की राय में एकता की आवश्यकता है ।

जाति-व्यवस्था एवं बाइबिल

बाइबिल में भी जाति-भेद का चित्रण स्थान स्थान पर मिलता है । 'पुराना विधान' के एज्रा के ग्रन्थ में विभिन्न जातियों का उल्लेख किया गया है, वे हैं -कनानी, हित्ती, परिज्जी, यबूसी, अम्मोनी, मेआबी, मिस्री, याजक, सामरी, इब्रानी, फिलिप्पि, यहूदी आदि ।[१] प्रस्तुत विवरण से यह पता चलता है कि इस समय के लोग जाति-भेद को मानते थे । मिश्र में कई जाति के लोग रहते थे । मिश्र के समाज में उच्चजाति और नीच जाति का भेद भाव था यहाँ के प्रमुख निवासी काकेशियन जाति के थे । अन्य जाति सेमाइट थी । कुछ लोग नीग्रोवाइट तथा निबियन जाति के थे । सुमेरिया में सुमेरियन जाति और सुमेरियन दक्षिणी प्रदेश में सेमटिक शाखा की एमोराइट जाति रहती थी ।[२] बाबिलोन में ओमर जाति के उल्लेख मिलते हैं। प्राचीन इन्डो-यूरोपीय जातियों में हित्ती जाति सर्वाधिक सभ्य और शक्तिशाली थी । इसी प्रकार की जाति-भिन्नता के कारण उस समाज में आपसी घृणा द्वेष शत्रुता आदि भाव भी चलते रहते थे । उस समय अन्तर्जातीय विवाह भी वर्ज्य माना जाता था । विधि-विवरण-ग्रन्थ में इसके बारे में यों लिख गया है - तुम न तो उन से

---

१. पुराना विधान एस्रा का ग्रन्थ ९:१

२. विल डुरन्ट अवर ओरिएन्टल हेरिटेज द स्टॉरी ऑफ सिवलैसेषन्स पृ. ११६

विवाह करोगे, न अपनी पुत्री को उनके पुत्र को दोगे और न अपने पुत्र का विवाह उनकी पुत्री से करोगे ।'' [१] 'पुराना विधान' में याजक एज्रा इसके बारे में आगे लिखते हैं - तुमने ईश्वर के साथ विश्वासघात किया और विजातीय स्त्रियों से विवाह कर तुमने इस्राएल के दोष को और भी बढाया है । अब प्रभु, अपने पूर्वजों के ईश्वर के सामने अपना अपराध स्वीकार कर लो और उसकी इच्छा पूरी करो । देश के दूसरे लोगो से मेल-जोल मत रखो और विजातीय स्त्रियों का त्याग कर दो।''[२] उस समय सामरी लोग नीच जाति के माने जाते थे । यहूदी लोग अपने को ईश्वर के चुने हुए लोग मानते थे [३]और बाकी सभी जातियों से घृणित व्यवहार करते थे ।

लेकिन यहूदी वंश में जन्मे ईसा यहूदियों और यूनानियों में भेद नहीं मानते थे । नीच जाति के समारी लोग घृणा के पात्र समझे जाते थे । सुसमाचार में इसका वर्णन यों है -'' एक समारी स्त्री पानी भरने आयी । ईसा ने उससे कहा, ''मुझे पानी पिला दो ।'' (यहूदी लोग समारियों से कोई संबन्ध नही रखते थे) । इसलिए समारी स्त्री ने उन से कहा– ''यह क्या कि आप यहूदी हो कर भो मुझ समारी स्त्री से पीने केलिए पानी माँगते है ? [४] इस का कारण तो यह है कि समारियों से यहूदी किसी प्रकार का व्यवहार नहीं करते थे । समारियों के रास्ते से यहूदी यात्रा भी नहीं करते थे । परंतु ईसा की शिक्षा नयी थी । उन्होंने वर्ग-भेद, वर्ण-भेद एवं जाति-भेद पर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया बल्कि उसका घोर विरोध किया । वे यहूदी शास्त्रियों एवं फरीसियों से अधिक प्रभावशाली थे । समाज में नीच समझी जाने वाली जातियों से उन्होंने अच्छा व्यवहार किया, उनके साथ बैठते

---

१. पुराना विधान विधि-विवरण-ग्रन्थ ७:३-४
२. वही एज्रा का ग्रन्थ १०:१०-११
३. पुराना विधान निर्गमन ग्रन्थ ३४:९
४. नया विधान संत जोन ४:७-९

थे और भोजन भी कर लेते थे । नीच जाति के प्रति उनका उदार दृष्टिकोण देखकर उस समाज के ऊँच जाति के फरीसियों ने ईसा के शिष्यों से कहा -''तुम्हारे गुरु नाकेदारो और पापियों के साथ क्यों भोजन करते है ? यह सुनकर ईसा ने उन से कहा -'' नीरोगियों को नहीं, रोगियों को वैद्य की ज़रूरत होती है । जाकर सीख लो कि इसका क्या अर्थ है -मैं बलिदान नहीं बल्कि दया चाहता हूँ । मैं धर्मियों को नहीं पापियों को बुलाने आया हूँ ।'' [१] प्रस्तुत कथन के द्वारा ईसा स्पष्ट करते हैं कि लोगों की जाति, वर्ण, वर्ग आदि पर बल देकर नहीं उनकी आवश्यकता पर बल देकर ही सहायता देते हैं । नीच जाति के प्रति उनके उदार दृष्टिकोण एवं व्यवहार के कारण कभी कभी ईसा आक्षेप और अपमान के शिकार बन जाते थे । लेकिन फिर भी वे समाज में तुच्छ समझे जानेवाले लोगों के साथ अधिक उदार रहते थे ।

येशु ने समाज के जाति-भेद, समाज का मूल्यहीन दृष्टिकोण,सांस्कृतिक धारणा तथा अमानवीय व्यवहार का घोर विरोध किया । वे जातियों के बीच की दीवारें तोड देते थे, भेदभाव का अन्त करते थे । 'नया विधान' में चित्रित संत पोल एक और व्यक्ति थे जिन्होंने ईसा के समान समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं विविध प्रकार की भिन्नताओं को दूर करने का खूब परिश्रम किया । संत पोल स्थापित करते हैं कि ईश्वर ने ईसा मसीहा के द्वारा यहूदियों तथा गैर-यहूदियों को अपने से मिला कर एक नयी मानवता की सृष्टि की और शान्ति स्थांपित की उन्होंने यहूदियों और गैर-यहूदियों को एक कर दिया । दोनों में शत्रुता की जो दीवार थी, उसे उन्होंने गिरा दिया ।'' [२] संत पीटर अपने पत्र द्वारा मसीहियों से यही आदेश करते हैं -'' गैर-मसीहियों के बीच आप लोगों का आचरण निर्दोष हो ।'' [३] 'नया विधान'

---

१. नया विधान संत मात्यु ९:११-१३
२. संत पोल एफेसियों के नाम पत्र २:१४-१५
३. संत पीटर का पहला पत्र २:१२

के प्रेरित चरित में आत्मा से आविष्ट संत पीटर ने एक दिव्य तेज देखा, उसके बाद गैर-यहूदी एवं रोमन शतपति करनेलियूस से उनका कथन जातिभेद को मिटाने के इस प्रसंग में उल्लेखनीय है । वे बताते हैं - आप जानते हैं कि गैर-यहूदी से संपर्क रखना या उसके घर में प्रवेश करना यहूदी केलिए सख्त मना है, किन्तु ईश्वर ने मुझ पर यह प्रकट किया है कि किसी भी मनुष्य को अशुद्ध अथवा अपवित्र नहीं कहना चाहिए ।'' [१] इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट है कि भिन्न जातियों के रहते हुए भी बाइबिल भाई-चारे का सन्देश देता है । बाइबिल में ईसा, नबी-गण, संत पीटर आदि आदि महान समाज सुधारकों का काम करते दिखाई पडते हैं ।

बाइबिल में बताया गया है कि ईश्वर ही सबका जनक है । समारी और अन्य सभी वर्ग एवं जाति के लोग भी ईश्वर की सन्तानें हैं। इसलिए यहूदी होने पर भी येशु धार्मिक पूर्वाग्रह की उपेक्षा करते हुए, कुएँ के पास बैठकर एक समारी स्त्री से पानी पिलाने का अनुरोध करते हैं। ईसा सभी जातियों की समानता, पडोसियों के प्रति प्यार, गरीबों के प्रति सहानुभूति और दलितों, कमज़ोरों, असहायों के प्रति करुणा की शिक्षा देते थे। जाति, धर्म, रंग, सामाजिक धार्मिक और आर्थिक स्थिति पर आधारित कोई भी भेद-भाव ईसा को बर्दाश्त नहीं है ।

जातीय भेद-भाव को मिटाने केलिए प्रेरित करने वाली एक घटना 'नया विधान' में चित्रित है । [२] पेंतकोस्त नामक एक पर्व में भाग लेने केलिए पृथ्वी भर के सब राष्ट्रों से आए हुए यहूदी, पारथी, मेदी, एलामीती, मेसोपोतामिया, कप्पदूकिया, पोंतुस, एशिया, मिस्र, रोम के यहूदी, क्रेत और अरब के निवासी आदि इकट्टे होते थे । पवित्रात्मा के आगमन के दिन तक प्रेरितों के मन में भेद भाव ही था । यहूदी

---

१. नया विधान प्रेरित-चरित १०:२८
२. वही २:१-१२

अपने को ऊँचे एवं अन्य देशों के लोगों को गैर एवं तुच्छ समझते थे । लेकिन जैसे ही प्रेरितों ने पवित्रात्मा को ग्रहण किया तो वे किसी से भी भेदभाव नहीं कर सके और वे भेद-भाव को तोडने केलिए एक दूसरे को आह्वान करने लगे । इस प्रकार के परिवर्तन आम लोगों में नहीं बल्कि स्वयं प्रेरितों में झलक उठा, जिन्हें वे गैर यहूदी समझते थे अब वे ही उन्हें ईश्वर के पुत्र-पुत्रेयों के रूप में दिखाई देने लगे। उन्होने यह महसूस कर स्वीकार किया कि ईश्वर का उनके प्रति कोई विशेष लगाव या घृणा नहीं है, वरन् प्रत्येक जन चाहे वह किसी भी देश या जाति का क्यों न हो, वह ईश्वर केलिए अपना है ।

प्राचीन भारतीय और बाइबिल के पूर्वकालीन पश्चिम एशियाई समाज समान रूप से कट्टर जाति-भेद को मानते थे । दोनों समाजों में ऊँची जाति के लोग नीच जाति को तुच्छ मानने के कारण उनसे कोई संबन्ध नहीं रखते थे । यहाँ कबीर-साहित्य एवं बाइबिल लोगों को सिखाते हैं कि भक्ति एवं विश्वास के आगे सब प्रकार के जाति-भेद एवं उससे उत्पन्न उच्च-नीच आदि लौकिक भेदभाव मिट जाते हैं । जाति-भेद से उत्पन्न आपसी घृणा, ईर्ष्या, स्वार्थता आदि भाव समाज की उन्नति केलिए नहीं अवनति के कारण बन जाते हैं । इनको मिटाकर सामंजस्य, आपसी सहयोग, परोपकार आदि में मन रखकर एक आदर्श समाज के निर्माण का आह्वान दोनों ग्रन्थ समान रूप से देते हैं ।

हिन्दू-मुस्लिम विरोध एवं उनके बीच एकता की स्थापना के प्रयत्न

कबीर का समय बडे संघर्ष और परिवर्तन का समय था । मुसलमान विजेता शासक के रूप में भारतवर्ष में प्रतिष्ठित हो रहे थे । वे अपने शासन के प्रभाव के द्वारा अपने धर्म और संस्कृति का भी प्रचार-प्रसार कर रहे थे । दूसरी ओर भारतीय

समाज पूरी शक्ति के साथ उनका प्रतिरोध करना चाहता था, परंतु उसकी शक्ति आन्तरिक संघर्षों के कारण क्षीण हो गई थी ।

मुसलमानों और हिन्दुओं की धर्म-संबन्धी मान्यताएँ प्रायः परस्पर विरोधी थीं। वे दो विरोधी संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करते थे । साथ ही भारतवर्ष में उन दिनों अनेक धार्मिक मतों एवं उनके नाम पर प्रचलित संप्रदायों एवं उपसंप्रदायों का बोलबाला था । हिन्दू, जैन, बौद्ध, नाथ, सिद्ध, शाक्त आदि अनेक मत मतान्तर अपनी अपनी ढफली बजा रहे थे, वे अपनी-अपनी धुन में मस्त थे और अपने अपने राग आलाप रहे थे । कहा जाता है कि तत्कालीन विभिन्न संप्रदायों की संख्या ९६ थी । यथा-

दस सन्यासी बारह जोगी, चौदह सेख बखान
अठारह ब्राह्मण,अठारह जंगम, चुबीस शेवडा जान । [१]

सर्वत्र दम्भ का बोलबाला था । प्रत्येक मत अपने मत के सामने अन्य मतों को हेय एवं त्याज्य बताता था । वे एक ओर मुसलमानों के विरोधी थे और दूसरी ओर एक दूसरे के भी विरोधी थे । इससे समाज में दम्भ, पाखण्ड, विश्रृंखलता एवं मिथ्याचार का बोलबाला हो गया था । कबीर की पैनी दृष्टि ने इस विश्रृंखलता के मूल में समाज के पतनकारी अज्ञान को देखा और उन्होंने उनका खुलकर सामना और डटकर विरोध किया । उन्होंने महसूस किया कि हिन्दू-मुस्लिम एकता और हिन्दुओं के बीच जातीय समानता की स्थापना की आवश्यकता है ।

हिन्दू और मुस्लिम दोनों में सदियों से चलते रहनेवाले विद्वेष को अध्यात्म

---

१. डॉ.शरत शर्मा कबीर दास पृ. ९५

के धरातल पर लाकर कम करने का प्रयास कबीर ने किया । उन्होंने कहा अल्लाह और परमेश्वर एक ही है । दोनों उसकी सन्तान हैं । इसलिए आपस में झगडना व्यर्थ है । हिन्दू जाति में जन्मे कबीरदास को हिन्दू-धर्म परिचित था और मुसलमान संस्कार में पले होने के कारण उसको मुसलमान धर्म का ज्ञान था । दोनों की बुराइयाँ और ढोंग वे भलीभाँति जानते थे । उनकी निरीक्षण शक्ति सूक्ष्म थी । हिन्दू और मुसलमान दोनों को इन्होंने फटकारा, उनके पाखण्डों की खिल्ली उडायी, ढोंग का उपहास किया और बाह्याचार का खण्डन किया । उनके हाथ में सदा विवेक-बुद्धि की तलवार थी । जिससे उन्होंने दोनों के बाह्याचार पर आघात किया । उनकी बुराईयों को हटाकर प्रेम और एकता की भावना की प्रतिष्ठापना की ।

मुसलमान एकेश्वरवादी थे और हिन्दू ब्रह्मवाद में विश्वास रखते थे । अनेक देवताओं की पूजा करते थे । कबीरदास ने प्रतिष्ठापना करके आपसी विद्वेष मिटाने का प्रयत्न किया । वे कहते हैं जोगी 'गोरख-गोरख' कहता है, हिन्दू राम नाम का उच्चारण करता है, मुसलमान एक ही खुदा को मानता है लेकिन ये सब एक तत्व के ही अन्यान्य नाम हैं । कबीर का परमेश्वर तो घट घट में समा गया है।[१] राम, रहीम, केशव, अल्लाह सब एक ही तत्व के नाम है । कबीरदास कहते हैं -

हमारे राम रहीम करीमा, केसो अलह राम सति सोई
बिसमिल मेटि बिसंमर एकै ओर न दूजा कोई ।[२]

यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर ही परमात्मा की खोज करने लगे, तो बाहरी भेद मिट जायेगा और मन को एकाग्रता और शान्ति प्राप्त होगी । इसी भाव को उन्होंने

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. २००
२. वही पृ. १०९

काजी को संबन्धित करते हुए कहा –

पढि करि काजी बंगनिवाजा, एक मसीति दसौं दरवाज़ा
मन करि मका, कबिला करि देही बोलनहार जगत गुरु येही
उहां न दो जग मिस्त मूकामां इहाही राम इहां रहिमानाँ । [१]

इस प्रकार सर्वत्र व्याप्त एक ही ईश्वर का उपदेश देकर कबीरदास ने हिन्दू-मुसलमानों के बीच की भिन्नता सुधार कर एकता स्थापित करने का परिश्रम किया और उस समय समाज में व्याप्त धार्मिक संघर्ष के बदले शांति फैलाने में लग गये। कबीरदास के इस उपदेश तथा प्रयास के फलस्वरूप अनेकों मुसलमान उनके शिष्य हुए और उन्होंने कबीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का प्रचार किया ।[२]

धार्मिक अव्यवस्था एवं सुधारात्मक प्रयत्न--कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में

कबीर के युग की परिस्थितियों के विवरण में उस काल की विभिन्न धार्मिक साधनाओं तथा उनके पारस्परिक विरोधो और उनके दुष्प्रभावों की ओर संकेत मिलता है । हिन्दू और मुस्लिम धर्म की टक्कर उस युग की सबसे बडी विभीषिका थी । इसके अतिरिक्त शाक्तों और वैष्णओं का, शैवों और वैष्णओं का विरोध भी हिन्दू जाति के बीच पल रहा था । बारहवीं शताब्दी से लेकर पंद्रहवीं शताब्दी तक भारत में अद्‌भुत धर्म-जागृति का समय था । संतों ने रूढिविकारों से धर्म को शुद्ध कर उसे नवीन आधार पर स्थापित किया । संत कबीर का विश्वास था कि सच्चे और पवित्र मन के द्वारा हृदय में सात्विकता के भाव उत्पन्न होते हैं और आपसी भेदभाव नष्ट हो जाता है । विश्व के सभी धर्मों में यदि कोई भेदभाव का मुख्य कारण रहा

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. १०७
२. गोरखनाथ गोरखवाणी पृ. ४

है तो वह है 'आचार' । ज्यों ज्यों उसका विस्तार हो जाता है त्यों त्यों भेदभाव और झगडे बढते जाते हैं ।

कबीर ने अपनी कविता में विभिन्न धर्मावलंबियों के नाम लिए हैं और उनके मतवाद की चर्चा की है । द्रष्टव्य यह है कि उन्होंने इनके पाखण्डों का उल्लेख विशेष उत्साह के साथ किया है । कबीर ने वैष्णओं, बौद्धो, शैवों, शाक्तों, जैनियों तथा मुल्लाओं के बाह्याचारों के प्रति डट कर विरोध प्रकट किया है । वैष्णव संप्रदाय को उन्होंने कुछ आदर की दृष्टि से देखा है तथा शाक्तों के प्रति विशेष रूप से घृणा प्रदर्शित की हैं । क्योंकि शाक्त लोग एकत्र होकर शक्ति की पूजा किया करते थे, माँस मदिरा का सेवन करते थे और फिर व्यभिचार करते थे । जब वे लोग इस व्यभिचारपूर्ण पूजा केलिए एकत्र होते थे तब वर्ण-भेद का भी विचार नहीं किया जाता था । सभी को समान समझा जाता था । शाक्तों के इन विलासपूर्ण व्यापारों में फंस कर अनेक व्यक्ति पतन की खाई में गिर पडते थे । कबीर ने शाक्तों की इन व्यभिचारपूर्ण लीलाओं का वर्णन किया है और उसके दुष्ट फल का चित्रण प्रस्तुत किया है ।

पापी पूजा बैसि करि भषैं मीष मद दोइ
तिनकी दष्या मुकति नहीं कोटि नरक फल होइ । [१]

याने पापी लोग सामान्य ढंग से माँस-मदिरा का सेवन करते ही हैं, किन्तु दुख इस बात का है कि वे पूजा में बैठकर भी देवी-देवता के नाम पर मांस-मदिरा का भक्षण करते हैं । ऐसे लोगों की कहीं मुक्ति नहीं देखी गई । उन्हें अपने दुष्कर्मों केलिए करोडों नरक का फल भुगतना पडेगा । धर्म के नाम पर जनता में बढते हुए इस

---

१. डॉ.जयदेव सिंह कबीर वाङमय खंड ३ साखी पृ. १८६

व्यभिचार का विरोध कर कबीर ने समाज का भारी उपकार किया और लोगों को उपदेश दिया कि वे शाक्तों से किसी प्रकार का संपर्क न रखें । यथा-

"कबीर साकत से सुकर भला, राखै अच्छा गाउ ।" [१]

एक और साखी में कबीर वैष्णवों से पूछते हैं –

बैसनों भया तौ का भया, बुझा नहीं विवेक
छापा तिलक बनाइ करि, दगध्या लोक अनेक ।" [२]

यदि तूने विवेक नहीं प्राप्त किया, सत्-असत् के अन्तर को नहीं पहचाना तो केवल वैष्णव मत में दीक्षित हो जाने से क्या लाभ? तू माथे पर तिलक और बाहुवस्त्रादि में रामनाम का छापा लगाकर अनेक भोले भोले लोगों को ठगता रहा और अपने कुकर्मों से पीडित करता रहा । धर्म के नाम पर चलने-वाली संकीर्णताओं और थोथी परंपराओं का पर्दाफाश करने में कबीर नहीं चूके ।

कबीर-वाणी में विभिन्न धर्मों और संप्रदायों के प्रति जो विरोध-भाव मिलता है, वह किसी मताग्रह या दुराग्रह के कारण नहीं । वस्तुतः उन्होंने रूढियों और लोक-शास्त्र की जकडबन्दियों का जो तिरस्कार किया है, उसके मूल में है -उनका आत्मविश्वास और अनुभव का बल । वह चाहे ब्रह्म की बात करते हो या माया की, हिन्दुत्व की चर्चा करते हों या मुसलमानत्व की, निर्गुण का प्रतिपादन करते हों या सगुण का खण्डन, सभी के मूल में उनका अखण्ड आत्मविश्वास झलकता है । उनके खण्डनों में आक्रोश की अपेक्षा विद्रोह अधिक है । आक्रोश और विद्रोह में

---

१. डॉ.रामकुमार वर्मा संत कबीर पृ. २६३
२. डॉ.जयदेव सिंह कबीर वाङमय खंड -३ पृ. १९६

अन्तर होता है । आक्रोश का अंत क्रोध में होता है और विद्रोह का नए मान-मूल्यों की स्थापना में । अतः आक्रोश निष्फल और दिशाहीन होता है जबकि विद्रोह मूल्य-संबन्ध ।[१] वस्तुतः कबीर ने जिस सत्य का साक्षात्कार किया था, वह उन्हें न वेदों में दिखाई पडा न कुरान में, उसका समाधान न पंडित के पास था न काजी-मुल्ला के पास, उसका स्वरूप न योगियों में था न सहजयानियों में । बल्कि वह सत्संग और साधना का फल था ।

बाइबिल के पाठ से भी स्पष्ट होता है कि उस काल में इस्राएली या यहूदियों के अतिरिक्त अनेक गैर यहूदी याने विभिन्न धार्मिक साधना करने वाले लोग भी रहते थे । इनमें प्रमुख थे कनानी, हित्ती, परिज्जी, यबूसी, अम्मोनी, मोआबी, मिश्री और अमोरी । ये बहुदेवोपासना करनेवाले एवं मूर्तिपूजक भी थे । उनके आपसी विरोध, बुरे आचरण एवं कुप्रभावों का संकेत भी कहीं से प्राप्त होते हैं । बाइबिल में मुख्य रूप से इस्राएली धर्मावलंबियों का चित्रण है । एकेश्वर पर विश्वास करनेवाले ये लोग अपने को श्रेष्ठ जाति समझते थे । धर्म-ग्रन्थ बाइबिल से जानते हैं कि सृष्टि के आरंभ से ही ईश्वर ने मानव जाति की मुक्ति की योजना की है । अतएव बाद में उसने इस प्रतीक्षा के साथ अब्राहम को बुलाया और कहा - तुम्हारे द्वारा सब राष्ट्रों का उद्धार होगा । तुम्हारे द्वारा पृथ्वी भर के वंश आशिर्वाद प्राप्त करेंगे ।''[२] इस्राएल के लोग दुनिया के सब लोगों की मुक्ति के साधन के रूप में चुन लिये गये थे । परंतु ये यहूदी ईश्वर से अपनाये जाने के कारण घमंड करके डींग मारने लगे। ईश्वर के प्रेम और करुणा को समझने में असमर्थ रहे । क्योंकि ईश्वर के प्रति उनका विश्वास परिपक्व नहीं था । वे ईश्वर के प्रति ईमानदार नहीं रहे साथ ही उन्होंने

---

१. राज सिंह आधुनिक कबीर पृ. १२
२. पुराना विधान उत्पत्ति-ग्रन्थ १२:४

व्यवस्थान से संबन्धित लोगों के समान जीवन नहीं बिताया । मिश्र देश के गुलामी के घर से रक्षा देनेवाले ईश्वर को इन्होंने पूर्ण रूप से भूलकर गैर यहूदियों के समान भोगविलास एवं बहुदेवोपासना का जीवन जीकर दिखावे केलिए उपहार एवं भेंट चढाकर ईश्वर की प्रीति पाने का परिश्रम किया । इसका विरोध करते हुए नबी आमोस द्वारा ईश्वर यों आक्रोश करते हैं -'' मैं तुम्हारे पर्वों से बैर और घृणा करता हूँ । तुम्हारे धार्मिक समारोह मुझे नहीं सुहाते । मैं तुम्हारे होम और नैवेद्य स्वीकार नहीं करता और तुम्हारे द्वारा चढाये हुए मोटे पशुओं के बलिदानों की ओर नहीं देखता । अपने गीतों का कोलाहल मुझसे दूर करो । मैं तुम्हारी सारंगियों की आवाज़ सुनना नहीं चाहता । इस्राएल के घराने ! क्या तुमने उन चालीस वर्षों में, मरुभूमि में कभी मुझे बलि और नैवेद्य चढाये थे ? कदापि नहीं । न्याय नदी की तरह बहता रहे और धार्मिकता कभी न सूखनेवाली धारा की तरह । [१] धर्म में पाखंड करनेवाले इस्राएली वंश के एफ्राईम गोत्र से होसिया नबी द्वारा ईश्वर का कोप यों प्रकट होता है -'' एफ्राईम ने अपनी वेदियों की संख्या बढायी, किन्तु वे उसके लिए पाप का कारण बन गयीं । मैंने उसे बहुत-से नियम लिख कर दिये हैं, किन्तु उसने उन्हें किसी अपरिचित के नियम माना है । वे अपनी ही इच्छा के अनुसार बलि चढाते हैं और बलिपशु का मांस खाते हैं, किन्तु प्रभु उन्हें स्वीकार नहीं करता । इस्राएल अपने सृष्टिकर्ता को भूल गया है और उसने अपने-अपने राजप्रासादों का निर्माण किया है ।'' [२]

इस्राएली बीच बीच में सत्य के मार्ग से भटककर अहंकार, स्वाभिमान एवं स्वार्थ की भावना के अधीन हो गये । अपने एकेश्वर को छोडकर देवी-देवताओं की पूजा एवं होमबलि चढने की क्रिया उनकेलिए एक साधारण बात बन गयी । पूरे

---

१. पुराना विधान आमोस का ग्रन्थ ५:२१-२५
२. वही होसिया का ग्रन्थ ८:११-१४

पुराना विधान की ओर दृष्टि डालने पर यह दृश्य देख सकते हैं कि ईश्वर ने इन लोगों की रक्षा की, उन्हें सभी प्रकार के दुख तकलीफों में संभाला और उनके साथ प्रेम का संबन्ध स्थापित किया । फिर भी लोग उनसे दूर भटक गये । किन्तु लोगों के इस प्रकार के व्यवहार से ईश्वर अप्रसन्न नहीं हुए बल्कि उन्हें सही राह दिखाकर पुनःस्वीकार किया है ।

नया विधान में भी यहूदियों की स्थिति इससे भिन्न नहीं है । ईश्वर द्वारा चुने गये यहूदियों से येशु ने ईश्वरीय राज्य का सुसमाचार सुनाया एवं उनके बीच में अनेक चमत्कार किये । लेकिन उन्होने न तो पश्चात्ताप किया और न ही उन पर विश्वास किया । अपने को धर्मी मानने वाले ये यहूदी लोग पूर्णरूप से बाह्य नियमों का पालन एवं नियमित रूप से धार्मिक कार्यों में भाग लेकर पुरस्कार पाने की इच्छा रखते थे । वे समझते थे कि जो कुछ वे करते हैं, सत्य है और वे उसी में बने रहना चाहते थे । उनकी कपटता का पर्दाफाश करते हुए खोराजिन एवं बेथसाइदा नामक अविश्वासी यहूदी नगरों को धिक्कार कहकर टयिर एवं सीदोन नामक गैर यहूदी नगरों को उनसे ज्यादा अच्छा दिखाकर ईसा ने कहा - '' धिक्कार तुझे, खोराज़िन! धिक्कार तुझे बेथ साइथा ! जो चमत्कार तुम में किये गये हैं, यदि वे टयिर और सीदोन में किये गये होते, तो उन्होंने न जाने कब से टाट ओढ कर भस्म रमा कर पश्चात्ताप किया होता । इसलिए न्याय के दिन तुम्हारी दंशा की अपेक्षा टयिर और सीदोन की दशा कहीं अधिक सहनीय होगी । [१] प्रस्तुत कथन के द्वारा ईसा समर्थन करते हैं कि बहुदेवोपासना एवं दुराचार में निरत गैर यहूदी लोग ईश्वर की वाणी सुनने एवं मनः परिवर्तन करने में इस्राएलियों से ज्यादा आगे हैं । लेकिन इस्राएली या यहूदी इन वाणियों को अनसुना कर मनमाने ढंग से जीवन बिताते हैं,

---

१. नया विधान संत लूक १०:१३-१४

उनकेलिए रक्षा या मोक्ष-प्राप्ति असंभव है ।

उस प्रदेश के गैर यहूदी -मोआबी लोग बाल देवता की पूजा करनेवाले थे। वे माँस मदिरा का सेवन कर व्यभिचार वृत्ति में निरत व्यक्ति थे । इसी प्रकार के लोगों से दूर रहने का आह्वान बार बार मिलने पर भी इस्राएली उनके यहाँ रहकर मोआबी स्त्रियों के साथ व्यभिचार करते थे । उन स्त्रियों ने उनको अपने देवताओं की पूजा में आमंत्रित किया । इस्राएलियों ने उनके देव-प्रसाद खाये और उनके देवताओं को दण्डवत् किया ।[१] नबी एशया बाबिलोन की देवमूर्तियों के पतन के बारे में यों बताते हैं -'' बाल देवता झुक गया, नबों देवता गिर गया । उनकी देवमूर्तियाँ लद्दू जानवरों पर रखी गयीं । जो मूर्तियाँ तुम जुलूस बना कर ले जाते हो, वे थके माँदे जानवरों का बोझ बन गयी हैं । वे देवमूर्तियाँ झुक कर गिर गयीं, वे अपने उपासकों को बचाने में असमर्थ हैं । आगे प्रभु पूछते हैं - '' तुम मेरी तुलना किससे करना चाहते हो । मुझे किसके बराबर समझते हो ? तुम मेरी उपमा किससे देना चाहते हो, मुझे किसके समान समझते हो ? [२]

इन वर्णनों से स्पष्ट है कि कबीर एवं बाइबिलकालीन समाज की धार्मिक व्यवस्था अव्यवस्थित एवं बहुत बुरी हालत में थी । इस स्थिति को दूर कर समाज में एकरूपता लाने केलिए कबीर-काल में स्वयं कबीर एवं. बाइबिल में नबी गण एवं ईसा कर्मनिरत थे ।

---

१. पुराना विधान गणना-ग्रन्थ २५:१-३
२. वही एशया का ग्रन्थ ४६:१-२,५

पारिवारिक संबन्धों में सुधार

परिवार समग्र मानवीय संगठनों की मूल इकाई है । परिवार को तीन अंगों में विभक्त किया जा सकता है -पति-पत्नी-सन्तान । इन तीनों के सम्मिलन से ही परिवार का निर्माण पूर्ण होता है । रक्त संबन्ध पर आधारित सबसे छोटी इकाई परिवार है । स्थूल दृष्टि से समाज के समग्र कार्य सामाजिक इकाईयों एवं विभिन्न सामाजिक संस्थाओं में बाँटकर चलते हैं । इन सामाजिक इकाईयों में परिवार, वंश, गोत्र एवं जन-जाति (ट्राइब) को लिया जाता है एवं सामाजिक संस्थाओं में विवाह, शिक्षा, संपत्ति, कानून, राज्य और धर्म को लिया जाता है । परिवार के छः कार्य बताये गये हैं-स्नेह अथवा प्रेम-संबन्धी, आर्थिक, मनोरंजन-संबन्धी, पालन-पोषण अथवा रक्षा-संबन्धी, धार्मिक एवं शिक्षा-संबन्धी । परिवार के अंतर्गत धर्म एवं शिक्षा संबन्धी कार्य समाज के ऊपर गहरा प्रभाव डालते हैं ।

मानव जीवन के चरम लक्ष्य तक पहुँचने केलिए सामान्यतः दो मार्ग स्वीकृत हैं-प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग । प्रवृत्ति मार्ग में पुरूष और स्त्री गृहस्थाश्रम का वरण कर आनन्दपूर्वक जीने लगते हैं । निवृत्ति मार्ग में व्यक्ति परिवार से संबन्ध छोडकर सांसारिकता से विरक्त होकर चरम लक्ष्य परब्रह्म की ओर अग्रसर होता है। कबीर साहित्य एवं बाइबिल में गृहस्थ एवं गृह-त्यागी का उल्लेख किया है । विशेषतः परिवार को समाज की एक आधारभूत इकाई के रूप में चित्रित किया गया है । अतः एक सुगठित समाज की स्थापना केलिए परिवार के सदस्यों का दायित्व भी सर्वाधिक है । पारिवारिक संबन्धों में सुधार को लेकर कई पंक्तियों कबीर साहित्य एवं बाइबिल प्रस्तुत की गयी हैं । कुल या परिवार से संबन्धित कबीर की प्रस्तुत वाणी विशेष उल्लेखनीय है

कबीर कुल सोई भला, जिहि कुल उपजै दास
जिहिं कुल दास न ऊपजै, सो कुल ढाक पलास ।'' [१]

याने जिस कुल में प्रभु-भक्त जन्म ले वही कुल सर्वोत्तम है । जिस कुल में कोई प्रभु-भक्त न उत्पन्न हो, वह मदार और ढाक के समान तुच्छ है । बाइबिल में कहीं बात यहाँ ध्यान देने योग्य है-उसके अनुसार जो व्यक्ति स्वर्गिक ईश्वर की इच्छा पूरी करता है वही उसका परिवार है और परिवार का सदस्य है । [२] यहाँ ईसा स्पष्ट करते हैं कि प्रभु भक्ति परिवार की नींव है, उसके बिना जितने अधिक स्नेह के साथ जीने पर भी वह यथार्थ जीवन नहीं होता । पारिवरिक जीवन का मर्म कबीरदास एवं बाइबिल यहाँ दिखाते हैं । मानव-जीवन का लक्ष्य मात्र सुखी जीवन बिताना है यही चिन्ता आज बहुसंख्यक पारिवारिक सदस्यों में प्रबल रूप में है । स्रष्टा को भूलकर सृष्टि से प्राप्त आनन्द को भोगने में यद्किंचित मानव आज उत्सुक है । उन्हीं को लक्ष्य करके कबीर-साहित्य एवं बाइबिल ने कई वाणियाँ दी हैं । कबीर मूलतः भक्त थे और भगवान को मालिक के रूप में देखते थे । उनके मत में ईश्वर का अनुग्रह ही सबसे बढकर था । भगवान शरणागतरक्षक हैं और अपने दास को सदा शरण देने-वाले हैं । तभी तो कबीर परिवार में भक्त का जन्म सर्वाधिक प्रमुख मानते हैं।

माता-पिता-पुत्र संबन्ध

मनुष्य मनुष्य के संगठन से परिवार और परिवार के संगठन से समाज बनता है । परिवार का गठन माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री आदि को लेकर होता है । भारतीय परंपरा में गृहस्थ अथवा परिवार को सदा विशिष्ट स्थान प्राप्त

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १५४
२. नया विधान संत मात्यु १२:५०

हुआ है । मनु के अनुसार गृहस्थ सभी आश्रमों केलिए उसी प्रकार आश्रय है जिस प्रकार समस्त् जीवों केलिए प्राणवायु । [१]

वह परिवार अत्यन्त सुखी होता है जिसमें माँ-बाप, भाई-बहन, छोटे-बडे, बाल-वृद्ध सब एक दूसरे के कल्याण के हेतु त्यागभाव से सत्कर्मों में संलग्न रहते हैं और उन्नति करते हैं । इसके बदले स्वार्थ भाव से कुटुम्ब बनने की इच्छा करें तो वह बुरा है तथा इस स्वार्थता के कारण दो परिवारों का संबन्ध भी विकृत हो जाता है। इसकी ओर संकेत करते हुए कबीरदास बताते हैं —

स्वार्थ कौ सब कोई सगा, जग सगला ही जांनि
बिन स्वारथ आदर करै, सो हरि की प्रीति पिछांनि ।'' [२]

संसारी जीवों का यही स्वभाव है कि सभी लोग स्वार्थवश प्रेम करते हैं। संपूर्ण जगत् का यही नियम है । जो बिना स्वार्थ के आदर करता है, यह जान लो कि उसके भीतर प्रभु केलिए प्रीति है । तभी वह सबको प्रभुभक्त समझकर उनका आदर करता है । बाइबिल भी दिखाते हैं कि बहुधा मनुष्य का प्रेम सीमित एवं स्वकेन्द्रित रहता है । जो मनुष्य ईश्वर की अपेक्षा धन-दौलत तथा परिवारवालों से प्रेम करते हैं, जो पूर्ण रूप से ईश्वर को समर्पित करने में वंचित रखते हैं वे ईश्वर केलिए योग्य नहीं। आत्मत्याग को अपनाने एवं स्वार्थता को छोडने का उपदेश देते हुए वे बताते हैं कि

जिसने अपना जीवन सुरक्षित रखा है वह उसे खो देगा और जिसने ईश्वर को पाने केलिए अपना जीवन खो दिया है, वह उसे सुरक्षित रख सकेगा ।'' [३] प्रेममय पिता की सन्तान होने के नाते, हमें ईश्वरीय प्रेम को प्रथमिकता देनी चाहिए, न कि

---

१. मनुस्मृति ३/७७
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १५९
३. नया निधान संत मात्यु १०:३७-३९

सांसारिक व्यक्तियों एवं वस्तुवों को । येशु के मूल्यों के अनुसार मनुष्य का स्वकेन्द्रित बनना स्वार्थता है, साथ ही वह अर्थहीन भी है ।

परिवार में स्त्री का स्थान महत्वपूर्ण होता है । बच्चे उसके ही संपर्क में अधिकतर परिपालित होते हैं । बाद में पिता, भाई-बहन आदि अन्य सदस्यों से । प्रत्येक माता-पिता को अपनी संतान को आदर्शवान, चरित्रवान, परोपकारी, विद्वान गुणसंपूर्ण बनाना चाहिए । भारतीय पारिवारिक संगठन में पति- पत्नी का संबन्ध अत्यन्त पवित्र एवं धर्मनिष्ठ माना जाता है । वैवाहिक जीवन का उद्धेश्य दाम्पत्य-जीवन को कल्याणकारी बनाना है । गृहस्थ-जीवन केवल भोग केलिए नहीं होता वरन् धर्म के हेतु होता है । कबीर कहते हैं कि सांसारिक घर जला देने पर अर्थात् विषय-वासना युक्त जीवन समाप्त कर देने पर वास्तविक घर बच जाता है । याने आध्यात्मिक स्थिति सुरक्षित हो जाती है । विषय वासना युक्त सांसारिक जीवन में लगे रहने पर आध्यात्मिक स्थिति का वास्तस्विक घर नष्ट भ्रष्ट हो जाता है । आध्यात्मिकता की ओर लगे रहते हुए सदा जागृत रहने का आह्वान बाइबिल देता है । सांसारिक जीवन (गृहस्थ जीवन) भोग विलास केलिए नहीं । प्रभु का दिन, रात के चोर की तरह आयेगा । इसलिए बाइबिल में संत पोल का आह्वान इसी प्रकार है -'' भाईयों ! आप सब ज्योति की सन्तान हैं । रात या अन्धाकर के नहीं। इसलिए दूसरों की तरह नहीं सोयें, बल्कि जागते हुए सतर्क रहें । जो सोते है, वे रात को सोते हैं । जो मदिरा पीते हैं, वे रात को मदिरा पीते हैं । जो दिन के है, विश्वास एवं प्रेम का कवच और मुक्ति की आशा का टोप पहनकर सतर्क बने रहें ।''[१] कबीर आगे बताते हैं-सामान्यतः काल मर्त्यजीव को खा जाता है, किन्तु यहाँ एक आश्चर्य देखा गया कि उल्टे मृतक ही काल को खा रहा है अर्थात् जो जीते-जी आप

---

१. संत पोल थेसलोनियों के नाम पहला पत्र ४:४-८

को त्यागकर मृतवत् हो जाता है, वह काल के जन्म-मरण-बन्धन से मुक्त हो जाता है ।

घर जारें घर ऊबरै, घर राखों घर जाइ
एक अचंभौ देखिया, मुआ काल कौं खाइ ।'' [१]

सांसारिक जीवन (गृहस्थ जीवन) के बारे में बताते हुए बाइबिल दिखाता है कि जड केलिए जीवित हो तो हम मृत हैं, लेकिन आत्मा की प्रेरणा से जड को निर्जीव करें तो हम जियेंगे । बाइबिल के अनुसार -'' जब यह नश्वर शरीर अनश्वरता को धारण करेगा, जब यह मरणशील शरीर अमरता को धारण करेगा, तब धर्मग्रन्थ का यह कथन पूरा हो जायेगाः मृत्यु का विनाश हुआ । विजय प्रप्त हुई । मत्यु! कहाँ है तेरी विजय ? मृत्यु ! कहाँ है तेरा दंश ? मृत्यु का दंश तो पाप है ।'' [२] कबीर बताते हैं कि समाज ऐसे मातृत्व का आदर किया करता है, जो माँ प्रेम, उदारता, सहनशीलता तथा त्याग-भावना के द्वारा संतान का पालन पोषण करके एक उच्च कोटि का संतान बनाती है उसका जीवन धन्य माना जाता है ।

कबीर धनि सों सुन्दरी, जिन जाया बैसनौं पूत
रांम सुमिरि निरभै भया, सब जग गया आऊत । [३]

यहाँ कबीर व्यक्त करते हैं कि वह स्त्री धन्य है जिसने हरिभक्त पुत्र को जन्म दिया है । वह राम के नाम का स्मरण करके निर्भय हो जाता है । स्त्री की महत्ता व्यक्त करते हुए बाइबिल बताता है कि -'' धन्य हैं वे, जो प्रभु पर श्रद्धा रखते और उसके

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २०७
२. संत पोल कुरिन्थियों के नाम पहला पत्र ४:४-८
३. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १५८

मार्गों पर चलते हैं ! तुम्हारी पत्नी तुम्हारे घर के आँगन में दाखलता की तरह फलती-फूलती है । तुम्हारी सन्तान जैतून की टहनियों की तरह तुम्हारे चौके की शोभा बढाती है ।'' [१] यहाँ स्पष्ट है कि इन दोनों रचनाओं ने स्त्री की महिमा दिखाकर उसको ऊपर उठाने का प्रयत्न किया है ।

संतान, प्रभु को प्राप्त करने के ज्ञान से युक्त हो, ऐसी मान्यता कबीर की है । इस विषय में उनके कथन सीधे और मर्मस्पर्शी हैं । यहाँ कोई समझौते की भावना नहीं, अपितु दृढ भाव से कथन है, जो उनके तद्-विषयक दृढ विचारों की अभिव्यक्ति हैं । वे आक्रोश करते हैं जिसमें राम-भक्ति नहीं है, वह पापी जन्मते ही क्यों न मर गया ? जिस कुल में ज्ञान का विचार करनेवाला पुत्र नहीं, उसकी माँ विधवा ही होती तो अच्छा होता । उसके विधवा रहने से सन्तान ही न होती । यदि ऐसी माँ गर्भवती हो गई तो गर्भ गिराकर वह बाँझ ही क्यों न हो गई ? भक्तिविहीन नर कलिकाल में सुअर के समान फिरता रहता है । कबीर कहते हैं कि कोई भी मनुष्य देखने में चाहे जितना सुन्दर और रूपवान क्यों न हों, किन्तु रामभक्ति के बिना वह मलिन और कुरूप ही समझा जायेगा ।

जिहि नर राम भगति नहीं साधी सो जनमत कस न मुओ अपराधी
जिहि कुल पूत न ग्यांन बिचारी, वाकी विधवा कस न भई महतारी
मुचि मुचि गरम भई किन बांझ । बुड़भुज रूप फिरै कलि मांझ
कहै कबीर नर सुंदर सरूप । रांम भगति बिनु कुटिल कुरूप ।'' [२]

बाइबिल में एक स्थान पर यों बताया गया है-'' छडी और डाँट-डपट से प्रज्ञा प्राप्त

---

१. पुराना विधान स्तोत्र-ग्रन्थ १२८
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ३७

होती हैं, किन्तु अनुशासनहीन नवयुवक अपनी माता का कलंक है ।'' [१] कबीर के मत के समान बाइबिल भी यही मत प्रकट करता है कि कुपूत के कारण माता की महिमा घट जाती है । इसलिए बाइबिल उपदेश देता है कि-'' पुत्र द्वारा सुख-संतोष एवं शान्ति मिलने केलिए पुत्र को शिक्षा देना और अनुशासन में रखना आवश्यक है नहीं तो तुम को उसकी दुष्ट्टता के कारण लज्जा होगी ।'' [२]

परिवार में पिता का भी अपना एक अलग स्थान है । कबीर के समय में समाज में अधिकतर पिता को प्रधानता दी जाती थी । पिता ही परिवार का मुखिया होता था । उनकी प्रतिष्ठा को धक्का देने वाला कोई काम परिवार के अन्य सदस्य न करते थे । गुणसंपन्न पुरुषों तथा सर्वगुणविभूषित स्त्रियों के घर में संतान भी सुसंस्कारवान हो जाती है । चरित्रवान एवं संयमवाली संतान से ही तो भावी समाज का विकास होता है । इसलिए माता, पिता और गुरु को संतान की शिक्षा-दीक्षा के प्रति सजग रहने का आह्वान भी कबीर साहित्य एवं बाइबिल देते हैं । संतान को सदा शिष्टाचारसंपन्न होना चाहिए । पुराना युग सभ्यता, शिष्टता, मधुर संवाद, विनम्र व्यवहार और उच्च शिष्टाचार का युग था । अभ्यागत का स्वागत करना, अपने से बडों का आदर करना, गुरुजनों के प्रति श्रद्धा दिखाना, परिवार की मर्यादा बनाये रखना आदि बातें पारिवारिक जीवन की मुख्याधार मानी जाती हैं । बाइबिल के मत में पिता की महत्ता पुत्र को अच्छे ढंग से परिपालन करने में है । उसमें बताया है -'' जो अपने पुत्र को प्यार करता है, वह उसे कोडे लगाता है, जिससे बाद में उसे पुत्र से सुख मिले । जो अपने पुत्र को अनुशासन में रखता है, उसे सन्तोष मिलेगा । यदि ऐसे पुत्र के पिता की मृत्यु हो जाती, तो भी वह मानो अब तक जीवित है, क्योंकि वह अपना प्रतिरूप छोड गया है ।'' [३] इन सभी बातों

---

१. पुराना विधान सूक्ति-ग्रन्थ २९:१५
२. वही प्रवक्ता-ग्रन्थ ३०:१३
३. वही ३०:१-४

पर ध्यान देने का आह्वान कबीरदास परिवारवालों को देते हैं -

जिहि घर साध न पूजिए, हरि की सेवा नाहिं
ते घर मरघट सारिखे, भूत बसैं तिन मांहि ।'' [१]

सज्जनों से आदर एवं सम्मान न दिखानेवाला घर, घर नहीं बल्कि वह श्मशान है। जिस घर में संतों का सम्मान नहीं होता और भगवान की पूजा नहीं होती, वह ठीक ही श्मशान के समान है और उसमें रहने वाले भूत के सदृश्य हैं याने जीवित ही मृत के समान हैं ।परिवार वास्तव में समाज का हृदय है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति प्यार का अनुभव करता है और उसका अर्थ समझता है । दूसरी ओर हम कई ऐसे टूटे परिवारों को देखते हैं, जहाँ परिवार के सदस्यों के बीच प्रेम एवं एकता का अभाव है । वे एक दूसरे के प्रति प्रेम दया और सहानुभूति सिर्फ बहुत विरले ही प्रकट करते हैं । पति-पत्नी, माता-पिता और बच्चे अपनी-अपनी रुचियों तथा आकांक्षाओं की पूर्ति में लगे रहते हैं, परंतु दूसरों की आवश्यकताओं के प्रति कोई चिन्ता नहीं करते। इस संदर्भ में संत पोल कलोसियों के नाम पत्र [२] में एक आदर्श पारिवारिक जीवन केलिए कुछ प्रायोगिक निर्देशों की विवेचना करते हैं । आदर्श परिवार वही है जहाँ ईश्वर परिवार का मुखिया है और जहाँ शांति, प्रेम, आनन्द, कृतज्ञता, अनुकंपा सहानुभूति, विनम्रता, कोमलता, सहनशीलता तथा परिवार के सदस्यों में एक दूसरे के प्रति कर्तव्यनिष्ठा पायी जाती है ।

अपने कुल पर गर्व करनेवाले लोगों की बाँस से तुलना करके कबीर दिखाते हैं कि ऊँचे कुल में उत्पन्न होने से बाँस अधिकता से ऊपर बढता चला जाता है परंतु

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १५३
२. संत पोल कलोसियों के नाम पत्र ३:१२-२१

उसमें चंदन की सुगन्ध नहीं होती उल्टे वह पारस्परिक रगड से अपने सारे वंश को जला देता है -

ऊँचा कुल कै कारनैं, बांस बढा असरार
चंदन बास भेदैं नहीं, जारा सब परिवार ।'' [१]

ऐसे ही केवल ऊँचे कुल में जन्म लेने से कोई बडा नहीं होता, जब तक कि उसके भीतर ज्ञान और अनुभूति न हो । बडप्पन की शान में ऐसे लोग पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष से नष्ट हो जाते हैं । बाइबिल में परिवार के महत्व के बारे में अनेक स्थलों पर संकेत मिलते हैं । स्वयं येशु ने बाइबिल में परिवार के महत्व को समझाया है । माता-पिता एवं सन्तान के आदर्श को इन्होंने व्यक्त किया है । परिवार में संतान को अपने माता-पिता का आदर करना और बुढापे में उनको संभालना चाहिए । संत पोल बताते हैं - '' पति अपनी पत्नी को इस तरह प्यार करे, मानो वह उसका अपना शरीर हो । कोई अपने शरीर से बैर नहीं करता । उलटे वह उसका पालन-पोषण करता है और उसकी देख-भाल करता रहता है ।'' [२] जो भी हो लोग अपनी पत्नी को अपने समान प्यार करे और पत्नी अपने पति का आदर करे -यही परिवारवालों से बाइबिल का आह्वान है ।

इस प्रकार कबीर साहित्य एवं बाइबिल आदर्श परिवार एवं संबन्धों का पाठ पढाते हैं जिस पवित्र वातावरण में पलती हुई संतान सच्चे नागरिकों के रूप में बढती रहती है और अपने समाज का, राष्ट्र का एवं लोक का ही मंगल करती रहती है । क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए इस का उपदेश दोनों ग्रंथ

---

१. पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २१७
२. संत पोल एफेसियों के नाम पत्र ५:२८-२९

बराबर देते रहते हैं । सुपुत्र ही समाज का एवं लोक का भला कर सकता है । वह हमेशा ईश्वरभक्त रहे, त्याग से युक्त रहे, तभी तो दूसरों के दुःख को समझते हुए परोपकार में लगा रह सकता है और 'स्व' पर के भेद से परे सबसे समान रूप के प्रेम कर सकता है । ऐसे आदर्श परिवार से संसार का भला कर सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं है । कबीर साहित्य एवं बाइबिल में ऐसे ही परिवारों की बात कही गई है।

गुरु-शिष्य-संबन्ध एवं व्यक्ति-सुधार

माता पिता द्वारा पालित पोषित संतान के जीवन में शिक्षा की अपनी महत्ता है । विद्यार्थी समाज का एक अभिन्न अंग है । क्योंकि यही विद्यार्थी भावी नागरिक, समाज सेवी एवं देश-भक्त बनता है । प्राचीन काल की शिक्षा जीवन की शिक्षा थी, जिसके द्वारा उनके जीवन का सार्वांगीण विकास होता था । आध्यात्मिक एवं मानवोचित दिव्य गुणों का विकास विद्यार्थी में करना ही शिक्षा का उद्देश्य था । 'गु' का अर्थ है अन्धकार एवं 'रू' का अर्थ है निरोधक अर्थात् अन्धकार या अज्ञान का निरोध करनेवाला व्यक्ति है गुरु ! दूसरे शब्दों में शिष्य के हृदय से अज्ञान के अन्धकर को हटाकर उसमें प्रकाश रूपी ज्ञान का संचार कर देना ही गुरु का दायित्व है । गुरु-शिष्य का संबन्ध सभी मानवीय संबन्धों उत्तम एवं पवित्रत माना जाता था। कबीरसाहित्य एवं बाइबिल का युग भी गुरु शिष्य के पवित्रतम संबन्ध को मानता था । शिष्य अपने गुरु के प्रति आदर एवं स्नेह का भाव अपने हृदय में रखता था । कबीर ने सच्चे गुरु का अपार गुणगान किया है -

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार
लोचन अनन्त उघाडिया, अनन्त दिखावणहार ।'' [१]

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १३७

सद्‌गुरु की महिमा अपार है । उसका उपकार असीम है । उसने अनंत दृष्टि खोलकर उस प्रभु को दिखलाने की कृपा की है, जिसका कोई आदि, अंत नहीं हैं । याने जो काल से परे है । गुरु को बाइबिल में भी ऊँचा पद दिया गया है । यहूदियों के बीच नियमों को सिखानेवाले नबियों को गुरु नाम से पुकारा जाता था । 'पुराना विधान' में राजा सोलमन ने यहूदियों को बुद्धि की शिक्षा दी । उनको ज्ञान-साहित्य का गुरु माना जाता है । इसी प्रकार नबी एशया, जरेमिया, एजकियेल, दानियेल आदि भी आदर्श शिक्षक थे । येशु 'नया विधान' में सबसे श्रेष्ठ गुरु थे । चार सुसमाचारों में प्रभु येशु की अमूल्य शिक्षायें प्राप्त होती हैं । बाइबिल बताता है कि सच्चा ज्ञान ईश्वर-प्रदत्त है । गुरु एवं ज्ञानियों को मार्ग दिखाने का कार्य ईश्वर ही करते हैं । प्रज्ञा-ग्रन्थकार लिखते हैं -'' ईश्वर ने मुझे यह कृपा दी कि मैं सही बातें बोलूँ और उसके वरदानों का मूल्य समझूँ क्योंकि वह प्रज्ञा का पथप्रदर्शक है और ज्ञानियों को मार्ग दिखाता है ।'' [१] बाइबिल के स्तोत्र ग्रन्थ में बताया है कि-

अपने भक्तों की मृत्यु से प्रभु को भी दुख होता है ।'' [२] यहाँ का मृत्यु शब्द अज्ञानान्धकार में पडकर जीवन के नष्ट होने का द्योतक है । साथ ही प्रस्तुत ग्रन्थ में यह भी कहा गया है कि सारे बन्धनों से मानव को मुक्ति देनेवाला प्रभु ही है । यथा-'' प्रभु तूने मेरे बन्धन खोल दिये ।'' [३] यहाँ कबीर साहित्य एवं बाइबिल स्पष्ट करते हैं कि ईश्वर से मिले ज्ञान से गुरु अपने शिष्यों के अज्ञानन्धाकर को दूर कर अनन्त ईश्वर का मार्ग दिखाते हैं ।

शिष्य के जीवन में एक अच्छे गुरु का प्रभाव बहुत अधिक रहता है । अनुभवहीन एवं अज्ञानी शिष्य गुरु का शिष्यत्व पाकर अनुभवी एवं ज्ञानी बन जाता

---

१. पुराना विधान प्रज्ञा-ग्रन्थ ७:१५
२. वही स्तोत्र-ग्रन्थ ११६:१५
३. वही ११६:१६

है । गुरु विशेषतः ईश्वर को भी दिखा देते हैं । इस अवस्था में शिष्य की स्थिति को कबीर यों प्रस्तुत करते हैं —

राम नाम के पटंतरे, देबे कौं कछु नाहिं
क्या लै गुरु संतोखिए, हौंस रही मन मांहि ।'' [१]

गुरु ने शिष्य को राम नाम दिया है । उसके बराबर बदले में संसार में देने को कुछ नहीं है । तो फिर गुरु को क्या देकर संतुष्ट करूँ ? कुछ देने की अभिलाषा मन के भीतर तीव्र रूप में रह जाती है । बाइबिल का एक वाक्य भी इससे मेल खाता है । ईश्वररूपी अनुग्रहदाता से मनुष्य हर दिन खूब कृपा पाते है । यहाँ प्रभु ईश्वर को अपने गुरु के रूप में समझकर शिष्य स्वयं पूछता है -'' प्रभु के सब उपकारों केलिए मैं उसे क्या दे सकता हूँ ? मैं मुक्ति का प्याला उठाकर प्रभु का नाम लूँगा। मैं प्रभु की सारी प्रजा के सामने प्रभु केलिए अपनी मन्नतें पूरी करूँगा ।'' [२]

अच्छे गुरु के मिलने पर शिष्य को ज्ञान प्रकाश मिलता है तथा सांसारिक मोहों से तथा बाह्याडंबरो से मुक्ति भी मिलती है । यदि सद्गुरु की कृपा न हुई होती तो औरों की भांति शिष्य भी पत्थर पूजते और अरण्य की नीलगाय के समान पशुवत् व्यवहार करते होते । परंतु उसपर सद्गुरु की कृपा हो गयी और उसने बाह्याचार-रूपी बोझ के अपने सिर से उतारकर फेंक दिया —

हम भी पाहन पूजते, होते बन के रोझ
सतगुरु की किरपा भई, जारा सिरतै बोझ ।'' [३]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १३५
२. वही पृ. १३५
३. वही पृ. २२६

बाइबिल भी सिखाता है कि धर्मान्धता एवं स्वार्थता मनुष्य को ईश्वर से दूर ले जाती है । धर्मान्ध एवं स्वार्थतायुक्त मनुष्य को उससे मुक्ति देना ही गुरु ईसा का भी लक्ष्य था । जैसे सद्‌गुरु से ज्ञान प्राप्त करके शिष्य गुरु को अपनी आत्मा में समेट कर रखता है, उसी प्रकार ईश्वरीय अनुभव शिष्य की अन्धता को दूर कर हृदय को ईश्वर के लायक बनाता है । संत पोल इस अटूट संबन्ध का अनुभव करते हुए रोमियों के नाम पत्र में कहते हैं -'' कौन हमको मसीहे के प्रेम से वंचित कर सकता है ? क्या विपत्ति या संकट ? क्या अत्याचार, भूख, जोखिम या तलवार ? ....मुझे दृढ विश्वास है कि न तो मरण या जीवन, न स्वर्गदूत या नरकदूत, न वर्तमान या भविष्य, न आकाश या पाताल की कोई शक्ति और न समस्त सृष्टि में कोई या कुछ हमें ईश्वर के उस प्रेम से वंचित कर सकता है, जो हमें हमारे प्रभु ईसा से वंचित कर सकता है ।'' [१] यहाँ भी स्पष्ट है कि गुरु एवं शिष्य में अटूट संबन्ध होने पर, गुरु द्वारा दी गयी शिक्षा के अनुसार जीने की हिम्मत शिष्य में होने पर वह शिष्य किसी भी प्रकार की गडबडी में, अन्धविश्वास या मूर्तिपूजा में नहीं फँसेगा । शिष्य होने का तात्पर्य है अपने जीवन में हर एक पल गुरु के पदचिह्नों का अनुसरण करना । गुरु के मुख से निकले हुए शब्दों को जो व्यक्ति सुने और उसके अनुसार चले वही वास्तव में सच्चा शिष्य है । गुरु वाणी ध्यान से सुनना और उसी के अनुसार आचरण करना आदर्श शिष्य का दायित्व है । गुरु वाणी में ईश्वर से संबन्धित रहस्य छिपा रहता है। वह बरसनेवाले प्रेम बादल के समान है उससे शिष्य भीग जाता है -

सत्‌गुरु हम सौ रीझि करि, कहा एक परसंग
बरसा बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग ।'' [२]

---

१. संत पोल रोमियों के नाम पत्र ८:३५-३८
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २२६

बाइंबिल भी व्यक्त करता हैकि ईश्वर एवं गुरु को पाकर शिष्य प्रज्ञा से पूर्ण हो जाता है, उसे विवेक के साथ जीने की शक्ति मिलती है । यथा - '' तुम प्रभु-भक्ति का मार्ग समझोगे तो तुम्हें ईश्वर का ज्ञान प्राप्त होगा, क्योंकि प्रभु ही प्रज्ञा प्रदान करता और ज्ञान तथा विवेक की शिक्षा देता है । वह धर्ममार्ग पर पहरा देता है और अपने भक्तों का पथ सुरक्षित रखता है ।'' [१] सर्वगुणसंपन्न सहनशील एवं आध्यात्मिक परिपूर्णता प्राप्त गुरु कबीर की दृष्टि में ब्रह्म के समान है । अपनी अहंता (खुदी) को मिटाकर कोई जीते ही मर जाय तो प्रभु का साक्षात्कार कर सकता है। जीव का अज्ञान की अवस्था में अहंता भाव ही जीवन है । शरीर में प्राण रहते ही मैं-मेरे का भाव समाप्त हो जाने पर ईश्वर साक्षात्कार संभव है —

गुरु गोविन्द तौ एक है, दूजा सब आकार
आपा मेटे हरि भजै तब पावै दीदार ।'' [२]

बाइबिल भी ईश्वर साक्षात्कार केलिए अहंभाव को छोडकर विनय को अपनाने पर बल देता है । ईश्वर वाणी श्रद्धा से सुनने को कहता है । [३] मानव मात्र को माया रूपी सांसारिक जाल से रक्षा देने का मूलमंत्र गुरु के मुख से ही प्राप्त होता है । ऐसे विरले ही शिष्य माया जाल से मुक्ति पाते हैं —

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि मांहि पडंत
कहै कबीर गुरु ग्यांन तैं, एक आध उबरंत ।'' [४]

---

१. पुराना विधान सूक्ति-ग्रन्थ २:५-९
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १३९
३. पुराना विधान एशया का ग्रन्थ ६६:२
४. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १३९

सात्विक गुरु की उपलब्धि केलिए शिष्य को अपना सर्वस्व न्यौछावर करनेवाला होना चाहिए –

" मेरा मुझ मैं किछु नहीं, जो किछु है तो तेरा
तेरा तुझकौ सौंपता, क्या लागै सो मेरा ।" [१]

बाइबिल की राय में सभी वस्तुएँ ईश्वरदत्त है । हमें उनपर गर्व नहीं करना चाहिए। ईश्वर को ही सौंपकर उस पर आश्रित होना ही उचित है । संत पोल बताते हैं कि- " मैं जो कुछ भी हूँ, ईश्वर की कृपा से हूँ और मुझे उससे जो कृपा मिली, वह व्यर्थ नहीं हुई ।" याने कबीर साहित्य एवं बाइबिल एकमत हैं कि शिष्य को अपने आपको पूर्णरूपेण सौंपना है और ईश्वरज्ञान की इच्छा करना चाहिए । कबीर के अनुसार शिष्य को गुरु के प्रति श्रद्धावान, निष्ठावान होना चाहिए । गुरु को अपने शिष्य को आत्मविकाससंबन्धी ज्ञान से विभूषित करना चाहिए । जिस ज्ञान से आत्मसाक्षात्कार अथवा आत्मविकास नहीं होता वह शिक्षा व्यर्थ ही है –

पोथी पढि पढि जग मुवा, पंडित भया न कोइ
एकै आखर प्रेम का, पढै सो पंडित होइ ।" [२]

कबीर साहित्य के अनुसार बाइबिल भी यही स्वीकार करता है कि प्रेमरहित सभी ज्ञान, सारी क्षमता निरर्थक है । संत पोल इसको यों बताते हैं -" मुझे भले ही भविष्यवाणी का वरदान मिला हो, मैं सभी रहस्य जानता होऊँ, मुझे समस्त ज्ञान प्राप्त हो गया हो, मेरा विश्वास इतना परिपूर्ण हो कि मैं पहाडों को हटा सकूँ, किन्तु मुझमें यदि प्रेम का अभाव है, तो मैं कुछ भी नहीं हूँ ।" [३] याने कबीर एवं बाइबिल-

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १६१
२. वही पृ. १६१
३. संत पोल कोरिनिथियों के नाम पहला पत्र १३:२

कालीन समाज में ऐसे पंडितों की भरमार थी जो पुस्तकीय ज्ञान को ही संबकुछ मानते थे । लेकिन उनके ज्ञान के अनुसार उनमें आत्मविकास नहीं था और भ्रातृप्रेम का पूर्ण अभाव था । यहाँ ये देनों साहित्य एक स्वर में बताते हैं कि प्राप्त ज्ञान के अनुसार जीने में ही मनुष्य की महिमा निहित है, शिष्य का विकास हो, अन्यथा पुस्तकीय ज्ञान व्यर्थ है । धर्मग्रन्थों का अध्ययन करने मात्र से कोई सच्चा ज्ञानी नहीं हो जाता । ग्रन्थों को पढ-पढकर संसार के प्राणी चले गये । किन्तु कोई भी उनके द्वारा ज्ञानी न बन सका । जिसने प्रियतम के एक अक्षर को जान लिया है वही वास्तविक ज्ञानी है ।

कबीर ने गुरु एवं शिष्य दोनों के सर्वोच्च, सर्वानियंत्रित, समदर्शी, आत्मदर्शी तथा सर्वकल्याणकारी स्वरूप का प्रतिपादन किया है । साथ ही शिष्य को अपने कर्तव्यों के प्रति सदैव सजग रहने का आह्वान भी इसमें अंतर्निहित है । उत्तमोत्तम गुणों से विभूषित गुरु के प्रति श्रद्धायुक्त वचन कहने के साथ साथ पथभ्रष्ट एवं पाखंडी गुरु की तो वे भर्त्सना करते हैं –

नां गुरु मिला न सिख मिला, लालच खेला डाव
दोनों बूडे धार मैं चढि पथार की नाव ।'' [१]

ज्ञानी गुरु एवं निष्ठावान शिष्य के अभाव में साधना सफल नहीं होती । वे दोनों भवसागर में वैसे ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे पत्थर की नाव पर चढनेवाले, नदी की धार में डूब जाते हैं ।

अज्ञानी गुरु एवं उसका आश्रय लेनेवाले शिष्य की शोचनीय स्थिति का

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १३८

वर्णन आगे की एक वाणी में कबीर यों देते हैं –

जाके गुरु है आंधरा चेला हैं जाचंध
अंधौ अंधा ठेलिया, दोन्यूं कूप परंत ।'' [१]

जिसका गुरु अंधा है अर्थात् अज्ञानी है उसका चेला तो और घोर अन्धा याने महाज्ञानी होगा । अन्धे को जब दूसरा अन्धा ढकेलकर आगे ले चलता है, तब दोनों कुएँ में जा गिरते हैं याने भवकूप में पडकर नष्ट हो जाते हैं । बाइबिल-कालीन समाज में ऐसे गुरुजनों की भरमार थी जो कहते हैं, पर करते नहीं अपने लिए एक चेला बनाने केलिए वे जल और थल लाँघ जाते थे और जब वह चेला बन जाता है, तो उसे अपने से दुगुना नारकी बना देते थे । उन्हें देखकर ईसा ने एक दृष्टान्त सुनाया -'' क्या अन्धा अन्धे को राह दिखा सकता है ? क्या दोनों ही गड्ढे में नहीं गिर पडेंगे ?'' [२] एक बार ईसा के कुछ शिष्य अकार ईसा से बोले कि फरीसी (जो अपने को पण्डित समझते हैं) आपकी बात सुनकर बहुत बुरा मान गये हैं । इसी वक्त ईसा ने उस पथभ्रष्ट एवं पाखंडी गुरु की भर्त्सना करते हुए कहा-'' जो पौधा मेरे स्वर्गिक पिता ने नहीं रोपा है, वह उखाडा जायेगा । उन्हें रहने दो, वे अन्धों के अन्धे पथप्रदर्शक हैं । यदि अन्धा अन्धे को ले चले, तो दोनों ही गड्ढे में गिर जायेंगे ।'' [३] गुरु के निष्ठावान, ज्ञानी, अनुग्रही होने मात्र से शिष्य के जीवन में परिवर्तन नहीं आयेगा । शिष्य को भी एकनिष्ठ एवं श्रद्धालु होना चाहिए । शिष्य में त्रृटि होने पर बेचारा गुरु क्या कर सकता हैं ? ऐसा शिष्य अपने पूर्वग्रहों एवं वासनाओं के कारण गुरु के उपदेश से मनमना अर्थ निकाल लेता है । जैसे वंशी में कोई इच्छानुसार राग बजा लेता है, वैसा ही यह शिष्य गुरु के उपदेश से मनचाहा

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १३६
२. नया विधान संत लूक ६: ३९
३. वही संत मात्यु १५:१२-१४

अर्थ निकाल लेता है । ऐसे होने पर गुरु का वास्तविक प्रभाव दोष ग्रस्त शिष्य पर नहीं पडता –

सतगुरु बपुरा क्या करै, जो सिखहि मांहै चूक
भावै त्यों परमोधिए, ज्यौं वांसि बजाइए फूंक ।'' [१]

बाइबिल में एक ऐसा प्रसंग है ईसा अपने शिष्यों के साथ यात्रा कर रहे थे कि रास्ते में किसी ने उनसे कहा -'' प्रभु मैं आपका अनुसरण करूँगा, परंतु मुझे अपने घरवालों से विदा लेने दीजिए । ईसा ने उत्तर दिया -'' हल की मूठ पकडने के बाद जो मुडकर पीछे देखता है, वह ईश्वर के राज्य के योग्य नहीं ।'' [२] यहाँ तात्पर्य तो यह है कि गुरु के आह्वान एवं उनकी वाणी सुनने के बाद भी जो शिष्य अपनी इच्छा एवं अपने रास्ते की ओर मुडकर जाते हैं उस शिष्य में गुरु का वास्तविक प्रभाव नहीं पडता बल्कि वे सांसारिक वासना में ग्रसित हो जात हैं ।

नारी-सुधार

नारी शब्द 'नृ' अथवा 'नर्' से बना है । ऋग्वेद में 'नृ' का प्रयोग वीरता का काम करने, दान देने और नेतृत्व करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । स्त्री का नारी नाम ही इन्हीं विशेषताओं के कारण पडा होगा । वे युद्ध तथा शिकार के वीरों की सहायिका होती थी और अतिथियों के सत्कार एवं भिक्षुकों के दान आदि का भार भी इन्हीं पर रहता था । गृह व्यवस्था एवं अन्यान्य सामाजिक व्यवहारों के परिपालन में स्त्रियों को हर प्रकार की स्वतंत्रता मिलती थी ।

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १३६
२. नया विधान संत लूक ९:६१-६२

स्नेह एवं ममता, करुणा और वात्सल्य, उ़स्सर्ग और त्याग की स्वभावगत विशेषताओं के कारण माता, पत्नी, पुत्री और भगिनी के रूप में समादरणीय है स्त्री । वैदिक काल में युवति कन्या को दुहिता की संज्ञा दी जाती थी । दुहिता का मुख्य कार्य दूध दुहना, दधि से नवनीत अलग करना आदि था । कन्या जब पत्नी बनकर अपने पति के गृह में प्रवेश करती थी, तब उसका कार्य अपने सास-ससुर की देख भाल और गृहकार्य का निरीक्षण एवं संयक् संपादन था । वैदिक काल में विवाहिता नारी गृह की मात्र सेविका ही नहीं, अपितु साम्राज्ञी भी कही गयी है । श्रृग्वेद में बताते हैं -'' वधू तुम सास, ससुर, ननद और देवरों की महारानी बनो । सबके ऊपर प्रभुत्व करो । तुम ऐसा व्यवहार करो कि सारा परिवार तुमसे प्रसन्न रहे ।

परिवार में पति-पत्नी के सहयोग पर जीवन में नारी की महत्ता विशेष उल्लेखनीय है । स्त्री अपने सौभाग्य को महत्वपूर्ण समझती थी तथा पति पर एकाधिकार चाहती थी । पति को भोजन कराना तथा उसकी सेवा करना पत्नी का प्रमुख कर्तव्य होता था । नारी का स्थान-उच्च माना गया है । गृहलक्ष्मी के बिना गृह सुनसान बताया गया है । मानव समाज गतिशील है उसमें समय समय पर परिवर्तन होते रहते हैं । पारिवारिक जीवन की शांति, व्यवस्था, सुख-स्मृति एवं प्रगति नारी के चरित्र-विकास पर निर्भर है । काल की कठोर गति में नारीत्व का यह उच्च आदर्श विलीन होता गया और एक समय आया जब नारी को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा और उसको अनेक प्रथाओं के द्वारा बंधन में बाँधकर हीनावस्था में बिठा दिया गया ।

पन्द्रहवीं शताब्दी के आरंभ में जब हिन्दी जगत् में निर्गुण सन्तों की वाणी सुनाई पडी, उस समय विजेता मुसलमान और विजित हिन्दुओं की संस्कृति का संगम हो रहा था । हिन्दू प्रजा मुसलमान शासकों की दमन नीति से कराह रही

थी । हिन्दुओं की दशा इतनी दयनीय हो गयी थी कि उनकी स्त्रियों को मुसलमानों के घर दासियों का काम करना पडता था । सैनिकों की बहादुरी नारी और कन्या अपहरण में ही दृष्टिगोचर हो रही थी । परिणामस्वरूप नारी की सुरक्षा केलिए उसे घर की चारदीवारी में बन्दी बना दिया गया । सुख-साधना की सामग्री के रूप में स्त्री को देखनेवाला कबीर युगीन स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार करने में असमर्थ रहा ।

आलोचकों का मत है कि कबीर ने स्त्री की निन्दा की है । यह आरोप वास्तव में निराधार है । संत होने के नाते कबीर ने स्त्री पुरुष सबमें एक ही परमतत्व की स्थिति को स्वीकार किया है । कबीर परम साधक होकर भी गृहस्थ थे । सहज मार्ग पर चलने वाले कबीर की दृष्टि में स्त्री निन्दित नहीं रही । प्रत्युत उन्होंने स्त्री में भी सर्वभूतस्थित परमात्मा का अस्तित्व स्वीकार करके उसके प्रति श्रद्धा ही रखी । कबीर में नारी भावना उच्चादर्श का द्योतक है । त्यागमूर्ति,गृहलक्ष्मी,पति-प्रेम में आनन्द रूपा, निष्ठावान नारी की कबीर ने प्रशंसा की है । उसे अपना सर्वस्व अपने प्रेमाधार पति को समर्पित कर देने की वाणी कबीर देते हैं –

इस तन का दीवा करौं, बाती मेलौं जीव
लोही खींचौ तेल ज्यौं, तब मुख देखौं पीव । [१]

बाइबिल ने भी स्त्री के महत्व को चित्रित किया है । सूक्ति-ग्रन्थों में बताया गया हैं -'' सच्चरित्र पत्नी किसे मिल जाती है, उसका मूल्य मोतियों से भी बढकर है । वह कभी अपने पति के साथ बुराई नहीं, बल्कि जीवन भर उसकी भलाई करती

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १४४

रहती है । [१] बाइबिल के अनुसार एक आदर्श पत्नी सदा अपने पति से प्रेम करती, अपने सत्कर्मों या सद्‌गुणों का अनुमोदन करते, बेहतर कार्य करने केलिए पति को प्रोत्साहन देती है, उसके अपराधों को क्षमा करती है, उसकी तकलीफों को ध्यान से सुन लेती है और बच्चों का पालनपोषण बडे प्यार से करती है । एक और पंक्ति द्वारा कबीर ऐसी स्त्री को धन्य पुकारते हैं जिन्होंने हरि-भक्त पुत्र को जन्म दिया है–

कबीर धनि सो सुंदरी, जिन जाया बैसनों पूत। [२]

बाइबिल में एक ऐसी घटना देख सकते हैं कि समाज की प्रगति केलिए काम करनेवाले, लोगों की भलाई केलिए उपदेश देने वाले को देखकर भीड में से कोई स्त्री ईसा की माँ, मरियम की ओर इशारा कर ईसा को संबोधित करते हुए उँचे स्वर से बोल उठी -'' धन्य है वह गर्भ जिसने आपको धारण किया और धन्य है वे स्तन, जिनका आपने पान किया है । यहाँ स्पष्ट है कि कबीर साहित्य एवं बाइबिल इस बात से सहमत हैं कि समाज की भलाई केलिए काम करनेवाले ईश्वर प्रेम से युक्त पुत्रों को जन्म देनेवाली स्त्री ज़रूर ही धन्य है कोई संदेह नहीं । नारी वास्तव में आदरणीय है । राज्य को संचालित करनेवाले सुयोग्य शासक, पराक्रमी सैनिक, बडे बडे विद्वान, साहित्यकार एवं कलाकार सन्तति को ज़न्म देकर वह सामाजिक श्रृंखला को सुदृढ बनाती है । परंतु नारी का यह सहज उदात्त स्वरूप वासना के कारण विकारग्रस्त हो जाता है । सन्त कबीर एवं बाइबिल ने नारी के इस स्वरूप का निदर्शन किया है । उन्होंने स्त्री के आकर्षण, प्रलोभन आदि की निंदा की है । कबीर की चेतावनी है कि स्त्री पाप की ओर साधक को प्रवृत्त करने वाली है । अतः

---

१. पुराना विधान सूक्ति-ग्रन्थ ३१:१०-१२

२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १५८

उससे प्रीति मत कर । उसने त्रिलोक को अपने जाल में फंसा लिया है । केशव के यहाँ कमला बनी, सिव के यहाँ भवानी, योगी के घर योगिन और राजा के घर रानी –

माया महा ढगिनी हम जानीं
केसव कै कंवला होइ बैठी सिव कै भवन भवानी

जोगी कै जोगिन होई बैठीं राजा कै घरि रांनी ।'' [१]

कबीर के अनुसार माया की प्रतिनिधि नारी ने ब्रह्म, विष्णु और महेश तक को वशीभूत कर उन्हें मनचाहा नाच नचाया । यहाँ तक कि नारी को साँपिन, बाघिन, विष की बोलि आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है । नारी काली सर्पिणी है जो त्रिलोक के विषयी जीवों को डस लेती है –

कांमिनी काली नागिनी, तीनिउं लोक मंझारि ।'' [२]

स्त्रियों की ऐसी आलोचना उनमें दिखाई पडनेवाले समाज के अहित करनेवाले तत्वों को दूर करने के हेतु हुई है इस दृष्टि से कबीर ने नारीसुधार का स्तुत्य कार्य किया है । पुराना विधान के प्रारंभ में देख सकते हैं कि पृथ्वी पर मानव जाति के फैलाने के उद्देश्य से ईश्वर ने स्त्री-पुरुष को चुन लिया । लेकिन बाद में स्त्री ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध वाटिका के बीचों बीच वाले वृक्ष का फल खाती है और पास खडे अपने पति को भी वह देती है । ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध स्त्री की इच्छा स्वीकारने में पुरुष विवश हो जाता है । यहाँ कबीर एवं बाइबिल समान रूप से दिखाते हैं कि

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ९५
२. वही पृ. २३२

स्त्री याने पत्नी मोहमाया का रूप धारण कर श्रेष्ठ मानव को भी वशीभूत कर उन्हें मनचाहा नाच नचाती है । उन्होंने नारी में सदाचरणशीलता के संबन्ध में उपदेशात्मक उक्तियाँ दी हैं । कबीर नारी जीवन में सतीत्व तथा पतिव्रत धर्म का पालन चाहते हैं । पत्नी केलिए पातिव्रत धर्म के निर्वाह को कबीर ने अनिवार्य माना है —

सोइ तिरिया जाकै पातिव्रत आग्यांकार न लोपै
और सकल ए कूकरि सूकरि सुंदरि नाउं न ओपै ।'' [१]

'पुराना विधान' के अनुसार विवाहिता स्त्री पति की अपनी संपत्ति है । और अविवाहिता कुंवारी पिता की । बाइबिल बताता है -'' जो अपनी पत्नी का परित्याग करता है और किसी दूसरी स्त्री से विवाह करता है वह-व्यभिचार करता है ।'' [२] पत्नी को पतिव्रता एवं महिमामय होकर जीना है, '' जिसमें न दाग हो, न झुर्री और न कोई दूसरा दोष, जो पवित्र और निष्कलंक हो [३] - यही आशा बाइबिल करता है । कबीर के युग में एवं बाइबिल कालीन समाज में परस्त्रीलोलुप कामी जन एवं व्यभिचारी लोग सर्वत्र व्याप्त थे । उन्होंने चरित्र-भ्रष्ट नारी की घोर निन्दा की है-

एक कनक अरु कामिनी, विखफल किया उपाइ
देखें ही तैं बिख चढै खाए तों मरि जाइ । ''[४]

याने कनक (सोना और धतूरा) तथा कामिनी ये दोनों विषफल के समान उत्पन्न किये गये हैं । इसके दर्शन मात्र से विष चढ जाता है अर्थात् मोह का नशा छा जाता

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १०२
२. नया विधान संत लूक १६:८
३. संत पोल तिमथियों के नाम पत्र ५:२७
४. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २३३

है और इनका स्वाद लेने से तो मनुष्य का विनाश ही हो जाता है । बाइबिल का तथ्य भी इससे भिन्न नहीं । सुसमाचार में ईसा अपने भाषण को सुनने केलिए आये लेगों से कहते हैं -'' तुम लोगों ने सुना है कि- व्यभिचार मत करो । परंतु मैं तुमसे कहता हूँ - जो बुरी इच्छा से किसी स्त्री पर दृष्टि डालता है, वह अपने मन में उसके साथ व्यभिचार कर चुका है ।'' [१]

कबीर वासनाग्रस्त स्त्री और स्वर्ण दोनों का आग की लपट से तुलना करते कहते हैं कि जिनके देखने ही से शरीर प्रज्वलित हो जाता है याने आकर्षण की उष्णता जाग उठती है और स्पर्श करने से तो मनुष्य विनष्ट ही हो जाता है --

एक कनक अरु कामिनी, दौड आगिन की झाल
देखें ही तै परजरै परसां है पैमाल ।'' [२]

'पुराना विधान' के प्रवक्ता ग्रन्थ की वाणी में स्त्रियों-संबन्धी परामर्श यों हैं -'' किसी वेश्या के निकट मत जाओ - कहैं ऐसा न हो कि तुम असके जाल में फंस जाओ । किसी युवती पर दृष्टि मत डालो कहीं ऐसा न हो कि उसका सौन्दर्य तुम्हारे पतन का कारण वन जाये ।'' [३] यहाँ कबीर के समान ही मुद्दा बाइबिल भी देता है कि युवती को देखने पर पुरुष में आकर्षण की उष्णता जाग उठती है और उससे मिलने पर पुरुष फंस जाता है और यह उसके पतन का कारण बन जाता है ।

कबीर ने अपने काव्य में अनेक बार परस्त्रीगमन की निन्दा की है । जो पराई स्त्री में अनुरक्त रहते हैं अथवा जो चोरी की कमाई से अपना निर्वाह करते हैं वे दो

---

१. नया विधान संत मात्यु ५:२७-२८
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २३३
३. पुराना विधान प्रवक्ता-ग्रन्थ ९: ३,५

चार दिनों अर्थात् अल्पकाल केलिए भले ही फले-फूलें, किन्तु अन्त में समूल नष्ट हो जाते हैं –

पर नारी राता फिरै, चोरी बिढता खाहिं
दिवस चारि सरमा रहै, अंति समूला जाहि ।'' [१]

पराई स्त्री में अनुरक्त होने में सब दोष-ही दोष हैं, अच्छाई कुछ भी नहीं । जिस प्रकार न जाने कितनी मछलियाँ नदियों के प्रवाह में बहकर समुद्र के खारे जल में पहुँच जाती हैं वैसे ही न जाने कितने लोग परनारी के मोह में पडकर दुखपूर्ण भवसागर में निमग्न हो जाते हैं । यथा –

नारी केरै राचनैं, औगुण है गुण नाहिं
खार समुद्र में माछली, केती बहि बहि जाहिं ।'' [२]

कबीर की राय में परनारी तो प्रत्यक्ष छुरी के समान है, स्वर्णनिर्मित होने पर भी नाश ही का कारण बनती है

परनारी परतखि छुरी, बिरला बांचै कोई
ना ऊ पेट संचारित, जौं सोने की होई ।'' [३]

सुन्दर स्त्री, वेश्या स्त्री एवं विवाहिता परस्त्री से दूर रहने का उपदेश देते हुए बाइबिल बताता है कि इसमें कुछ भी भलाई नहीं मिलेगी बल्कि यह अपनी विरासत खोने एवं वासनाग्रस्त व्यक्ति बनने का कारण बन जायेगा । यथा -'' वेश्याओं पर

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १३४
२. वही पृ. २३२
३. वही पृ. २३२

आसक्त मत हो, कहीं ऐसा न हो कि तुम अपनी विरासत धो बैठो । सुन्दर स्त्री से अपनी दृष्टि हटा लो और परायी सुन्दरी को मत निहारो । स्त्री के सौन्दर्य के कारण बहुतों का विनाश हुआ । वासना उसके कारण आग की तरह भडक उठती है ।''[१] कबीर की राय में परस्त्री से संबन्ध लहसुन खाने के समान है । जैसे लहसून को कितने ही कोने या एकान्त स्थान में बैठकर खाया जाय फिर भी उसकी गन्ध प्रकट हो जाती है वैसे ही पराई स्त्री से संबन्ध कितना ही छिपकर किया जाय अंत में उसकी जानकारी हो जाती है –

परनारी कौं राचनौं जस लहसुन की खांनि
कोनैं बैठे खाइए परगट होइ निदांनि ।'' [२]

बाइबिल के अनुसार व्यभिचारी की प्रवृत्ति छिपकर करने पर भी वह ईश्वर की एवं मानव की दृष्टि में साफ हो जाती है । इसी कारण वह सबों के सामने कलंकित होता है । इसके बारे में बाइबिल यो बताते हैं - '' जो व्यक्ति व्यभिचार करता और मन-ही-मन कहता है, मुझे कौन देखता है ? मेरे चारों ओर अँधेरा है, '' मुझे दीवारें छिपा रही हैं । मुझे कोई नहीं देख सकता । चिन्ता की बात ही क्या है ? सर्वोच्च् प्रभु मेरे पापों पर ध्यान नहीं देगा ।'' बाइबिल आगे बताता है कि वह नहीं समझता कि उसकी आँखें सब कुछ देखती हैं । और नहीं जानता कि प्रभु की आँखें सूर्य से कहीं अधिक प्रकाशमान हैं । वे मनुष्यों के सभी मार्ग देखतीं और गुप्त-से-गुप्त स्थानों तक पहुँचती हैं । ...व्यभिचारी को नगर के चौंकों पर दण्ड दिया जायेगा और वह उस समय पकडा जायेगा, जब उसे उसकी कोई आशंका नहीं ।'' [३] एक

---

१. पुराना विधान प्रवक्ता-ग्रन्थ ९:६,८,९
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २३१
३. पुराना विधान प्रवक्ता-ग्रन्थ २३:२५-३०

और स्थान में कबीर स्त्री को झूठन के समान चित्रित करते हैं –

जोरू जूठनि जगत की, भले बुरे का बीच
उत्तिम ते अलगा रहैं, मिलि खेलैं ते नीच ।'' [१]

उत्तम लोग जूठन से दूर रहते हैं, परंतु नीच जूठन को ही अपनाते है, वैसे ही उत्तम लोग परस्त्रीसंसर्ग से दूर रहते हैं और जो नीच हैं वे उसका संसर्ग ही जीवन का लक्ष्य समझते हैं । यहाँ बाइबिल के मत में व्यभिचारी को हर प्रकार भोजन, वह जूठन हो या न हो मीठा महसूस होता है । उसमें कहा गया हैं - '' व्यभिचारी को हर प्रकार का चारा मीठा लगता है वह तब तक उसे नहीं छोडता, जब तक वह नहीं मरता ।'' [२]

नारी को नरक का कुण्ड कहकर कबीर बताते है कि विरले ही व्यक्ति उस ओर जाने में नियंत्रणरूपी लगाम लगा पाते हैं याने इन्द्रियों पर नियन्त्रण कर पाते हैं। कम संयमी पुरुष उससे बच पाते हैं, अधिकांश लोग उसके पीछे लगकर विनाश को प्राप्त होते हैं ।

नारी कुंड नरक का, बिरला थांमै बागि
कोई साधू जन उबैर, सब जग मूवा लागि ।'' [३]

यदि व्यक्ति में प्रज्ञा निहित है तो वह विवेक एवं समझदारी से जीता है । ऐसा होने पर मनुष्य दुर्मार्ग की ओर न जा पायेंगे । इसलिए प्रज्ञा को अपनाने का उपदेश

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर ग्रन्थावली पृ. २३४
२. पुराना विधान प्रवक्ता-ग्रन्थ २३:२४
३. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २३३

बाइबिल देता है -'' प्रज्ञा तुम्हें दुष्टों के मार्ग पर चलने से रोकेगी - उन लोगों से जो कपटपूर्ण बातें करते हैं, जो सन्मार्ग से भटक कर अन्धकार के मार्ग पर चलते हैं, जो पाप करना पसन्द करते हैं और बुराई की दुष्टता का रस लेते हैं, जिनके मार्ग टेढे-मेढे हैं, जो कपटपूर्ण व्यवहार करते हैं । प्रज्ञा तुमको परस्त्री के जाल से बचाती है और व्यभिचारिणी के सम्मोहक वचनों से ।'' [१] एक और वाणी में कबीर पुरुष को यों चेतावनी देते हैं —

'' कबीर तासौं प्रीति करि, जो निरबाहै ओरि
बनिता विविधि न राचिए,देखत लागै खोरि ।'' [२]

अर्थात् उसी से प्रेम करना चाहिए, जो अन्त तक उसका निर्वाह करे । अनेक स्त्रियों से प्रेम नहीं करना चाहिए । ऐसा मनुष्य जो अनेक स्त्रियों की ओर देखता है, दोष का भागी होता है । परनारी में आसक्त पुरुष का परिणाम समूल नाश ही है । कबीर बताते हैं-सुन्दरी से शूली अच्छी है । शूली पर चढा हुआ व्यक्ति शायद बच भी जाय, किन्तु नारी में आसक्त पुरुष विनष्ट होने से बच नहीं सकता । आग में डाला हुआ अत्यन्त पुष्ट लोहा भी जलकर खाक हो जाता है । इसी प्रकार शक्तिसंपन्न पुरुष नारी के चंगल में फंसकर विनाश को प्राप्त होता है । प्रायः स्त्री और माया को पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया गया है । कबीर की वाणी ऐसी है —

माया की झलि जग जरै कनक कांमिनी लागी
कहु धौं किहिं विधि रीखिए, रुई लपेटी आगीं ।'' [३]

---

१. पुराना विधान सूक्ति-ग्रन्थ २:१२-१४
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २२०
३. वही पृ. २३५

कनक और कामिनी रूपी माया की ज्वाला में सारा संसार जल रहा है । वह रूई आग से लिपटी हुई है भस्म हेनेवाली है । माया से वशीभूत जीव आग से लिपटी हुई रूई के समान है । जब तक जीव माया के वश में है तब तक उसकी मुक्ति संभव नहीं । बाइबिल भी स्पष्ट करता है कि वासना का फल नाश ही है । वासना में आसक्त मनुष्य वह उसी आग में जलकर राख बन जाता है । प्रवक्ता-ग्रन्थकार बताते हैं -'' प्रबल वासना प्रज्वलित आग-जैसी है । वह भस्म हो जाने से पहले नहीं बुझती । जो मनुष्य अपना शरीर व्यभिचार को अर्पित करता है, वह तब तक नहीं संभलता, जब तक आग उसे जला न दे ।'' [१] कबीर-साहित्य एवं बाइबिल समान रूप से बताते हैं कि परस्त्री-गमन समाज एवं व्यक्ति के नाश का कारण बन जाता है । उस जाल में फंसे बिना जीना ही उत्तम व्यक्ति केलिए उचित है ।

आन्तरिक सुधार--व्यक्ति-सुधार

एक आदर्श समाज में, आदर्श परिवार में प्रत्येक व्यक्ति का क्या कर्तव्य होता है, उसकी अभिव्यक्ति कबीर-साहित्य एवं बाइबिल की वाणियों में विद्यमान है । कबीर के अनुसार व्यक्ति को निस्पृह, निरहंकार, निस्संग, निर्विषय एवं संत समान होना चाहिए । उनके विचार में सच्चा व्यक्ति समदर्शी, सर्वसमान एवं भगवद्भक्त है और वह भगवान का दास है । कबीर के शब्दों में —

निरबैरी निहकांमता, साँइ सेती नेह
विषय सो न्यारा रहै, संतनि का अंग एह ।'' [२]

किसी से वैर भाव न रखना, निष्काम रहना, प्रभु से स्नेह करना और विषयों से विरत

---

१. पुराना विधान प्रवक्ता-ग्रन्थ २३: २२-२३
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १८६

रहना यही संतों का लक्षण है । समाज में व्यक्ति को शत्रुतारहित शुद्ध मन से मानव एवं ईश्वर से व्यवहृत होकर निष्काम भाव से समाज के कल्याण केलिए निरत रहना चाहिए ।

पतित समाज के लोगों का पतित होना असाधारण बात नहीं हैं, क्योंकि व्यक्ति के आचार-विचारों के अनुरूप ही समाज का स्वरूप होता है । व्यष्टि और समष्टि समाज के दो अंग हैं । ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं और व्यष्टि व्यष्टि के मिलते ही समाज या समष्टि का संघटन होता है । व्यष्टि का सुधार जितना आवश्यक है समष्टि का सुधार भी उतना ही आवश्यक है । श्रेष्ठ व्यक्तियों से युक्त समाज श्रेष्ठ होते हैं तथा श्रेष्ठ समाज के व्यक्ति भी श्रेष्ठ होते हैं । जब तक व्यक्तियों में किसी प्रकार के दोष उत्पन्न नहीं होते तब तक समाज का स्वरूप सुन्दर एवं सुव्यवस्थित रहता है किन्तु व्यक्ति के अधःपतन से समाज का भी अधःपतन हो जाता है । व्यक्ति जितना ही छोटा हो यदि वह गुणवान है तो उसकी महिमा कबीर ने यों दिखायी है –

चन्दन की कुटकी भली, नां बबूर लखरांव ।'' [१]

चन्दन का एक छोटा - सा टुकडा, बबूल के पूरे बाग की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर है। इसी प्रकार व्यक्ति के छोटे होने से कोई बात नहीं बल्कि उसमें गुण का होना अनिवार्य है ।

कबीर का युग सामाजिक संगठन की दृष्टि से अस्तव्यस्तता, भिन्नता का युग था । उस समय व्यक्तिवाद का प्राबल्य था । समाज विभिन्न प्रकार के अंश -उपांशों

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १५८

में क्षिप्त-विक्षिप्त था । कबीर ने इस सामाजिक विश्रृंखलता के मूल व्यक्ति के सम्मुख उच्चादर्श उपस्थित किया । समाज की प्रथम इकाई व्यक्ति जब उच्चादर्शावान, चरित्रवान, सर्वगुण-संपन्न, परोपकारी होगा तो समाज का एक उच्चकोटि का होना स्वाभाविक है । कबीर के अनुसार व्यक्ति को गुणग्राही और आत्मज्ञानी होना चाहिए--

कबीर औगुण नां गहे, गुणही कौ ले बीनि
घट-घट महुं कै मधुप ज्यों, परमातम ले चीन्हि ।'' [१]

लोगों के अवगुण मत ग्रहण करो । उनमें विद्यमान गुणों को चुनकर ले लो । जिस प्रकार मधु मक्षिका पुष्प के अन्य उपादानों को छोडकर केवल सार रूप-मधु को ग्रहण कर लेती है, उसी प्रकार व्यक्ति केलिए भी जीवों में विद्यमान सार रूप (जो परमात्मा का अंश है) को ग्रहण कर अवशिष्टरूपी अवगुण को त्याग देना ही श्रेयस्कर है । अवगुण को अपनाकर जीनेवाले लोगों से उसे छोडने तथा सन्मार्ग पर आने का सन्देश बाइबिल भी देता है । बाइबिल का आह्वान है कि '' लोगों का प्रेम निष्कपट हो । आप बुराई से घृणा तथा भलाई से प्रेम करें ।'' [२] बाइबिल के अनुसार जो सच्चे मार्ग पर नहीं चलता है वह सत्य बातें कहने में सक्षम भी नहीं । इसके बारे में बाइबिल यों बताता है - या तो पेड को अच्छा मानो और उसके फल को भी, या पेड को बुरा मानो और उसके फल को भी । पेड तो अपने फल से पहचाना जाता है । अच्छा मनुष्य अपने अच्छे भण्डार से अच्छी चीजें निकालता है और बुरा मनुष्य अपने बुरे भण्डार से बुरी चीज़ें ।'' [३]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २०३
२. संत पोल रोमियों के नाम पत्र १२: ९
३. नया विधान संत मात्यु १२: ३३

कबीर एवं बाइबिलकालीन समाज में व्यक्ति सदाचरण में बहुत पीछे थे । सब लोग अहंग्रस्त होकर अपनी ही उन्नति में ध्यान देते थे । अपना धन, अपना समय एवं अपनी क्षमता दूसरों के हित केलिए व्यय करने के वे इच्छुक न थे । यह देखकर कबीर एवं बाइबिल के सुधारकों ने व्यक्ति को सदाचार की महिमा से अवगत कराने का प्रयास किया । उनकी राय में व्यक्ति को सदाचरणशील होना चाहिए क्योंकि उसी के आधार पर समाज की उन्नति और विकास संभव है । बाइबिल याद दिलाता है कि -'' तुम में कौन भरपूर जीवन, लंबी आयु और सुख-शान्ति चाहता है? तो तुम न अपनी जीभ को बुराई बोलने दो और न अपने होठों को कपटपूर्ण बातें। बुराई से दूर रहो, भलाई करो और शान्ति के मार्ग पर बढते रहो।''[१] कबीर की राय में व्यक्ति को आदर्शवान, परोपकारी, त्यावृत्तिवान एवं समाजहितू होना चाहिए । उनके शब्दों में –

तरवार तासु विलंबिए, बारह मास फलंत
सीतन छाया सघन फल पंखी खेली करंत ।'' [२]

ऐसे वृक्ष का आश्रय लेना चाहिए जो बारहों महीने फल देता है, जिसकी छाया शीतल है, जिसमें अत्यधिक फल लगे हैं और जिस पर पक्षी क्रीडा करतें रहते हैं । व्यक्तियों को भी इसी प्रकार दूसरों केलिए कल्याणकारी होना उचित है ।

समाज में ऐक्य स्थापित करनेवाला और समाज केलिए सर्वस्व उत्सर्ग करने वाला व्यक्ति ही व्यक्ति है । इसकी ओर लोगों का ध्यान दिलाते हुए कबीर बतातेहैं-

मानुख जन्म दुर्लभ है, होई न बारंबार
पाका फल जो गिरि परा, बहुरि न लागै डार ।'' [३]

---

१. पुराना विधान स्तोत्र-ग्रन्थ ३४:१३-१५
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २०३
३. वही पृ. १८५

सुन्दर अवसर अब मिला है उसको बरबाद न करके ठीक सा उपयोग करना ही उचित है क्योंकि मानव जन्म दुर्लभ है वह बार बार नहीं मिलता । जैसे एक बार जब फल वृक्ष से गिर पडता है, तब वह फल शाखा से पुनः नहीं जुड सकता । 'पुराना विधान' के जोव के ग्रन्थ में मनुष्य की मृत्यु की अनिवार्यता के बारे में याद दिलाते हैं और सत्कर्म कर जीवन बिताने का उपदेश भी देते हैं । धर्मानिष्ठ जोब बताते हैं - '' स्त्री से उत्पन्न मानव थोडे दिनों का है और कष्टों से घिरा है । वह फूल की तरह खिलकर मुरझाता है, छाया की तरह शीघ्र ही विलीन हो जाता है ।''[१] इसलिए कबीर के समान बाइबिल भी आह्वान करता है कि जो जीवन अब मनुष्य के पास है उससे कुछ भलाई की जानी चाहिए । मृत्यु के बाद मनुष्य कुछ न कुछ कर नहीं सकता, साथ ही यह जीवन कब तक होगा इसका भी पता नहीं ।

व्यक्ति के कुमार्गगामी हो जाने का प्रभाव समष्टि पर पडता है और इस प्रकार संपूर्ण समाज में दुर्व्यसन प्रतिबिंबित होने लगता है । समाज को ही नहीं अपने पारिवारिक जीवन को वे नरक बना ही देते हैं, सामाजिक स्थलों, स्थानों में भी अपने कुकृत्यों का प्रदर्शन करके समाज में अव्यवस्था उत्पन्न कर देते हैं । दुर्व्यसनों के फेर में पडकर मनुष्य का विवेक जाता रहता है । एक दुर्व्यसन दूसरे दुर्व्यसन का निर्माण करता रहतै है और इस प्रकर व्यक्ति दुर्व्यसन प्रतिबिंबित होने लगता है । समाज को ही नहीं अपने पारिवारीक जीवन को वे नरक बना ही देते है, सामाजिक स्थलों, स्थानों में भी अपने कुकृत्यों का प्रदर्शन करके समाज में अव्यवस्था उत्पन्न कर देते हैं । दुर्व्यसनों के फेर में पडकर मनुष्य का विवेक जाता रहता है । एक दुर्व्यसन दूसरे दुर्व्यसन का निर्माण करते रहते हैं और इस प्रकार व्यक्ति का दुर्व्यसन प्रतिबिंबित होने लगता है । कबीर ने दुर्व्यसन को समाज से दूर करने की बात

पुराना विधान जोब का ग्रन्थ १४: १-२

पर बल दिया है । क्योंकि दुर्व्यसन के कारण समाज का स्वरूप कलुषित एवं कुत्सित हो जाता है । अतएव व्यक्ति को समाज का सेवी होकर उनका उच्छेद करना ही चाहिए । इस संबन्ध में कबीर ने स्पष्ट रूप में कहा है –

काँमी लज्जा न करै, मन माँही आहलाद
नींद न माँगै सांथरा, भूख न माँगै स्वाद ।'' [१]

कामीजन को सामाजिक मर्यादा का ध्यान नहीं रहता । वह विषयभोग जन्य पूर्वानुभूत आनन्द की स्मृति से प्रेरित होकर काम के वश में हो जाता है । ऐसी अवस्था में उसे उचित अनुचित का ध्यान नहीं रह जाता । जैसे निंद्रा से आक्रान्त व्यक्ति किसी बिस्तर की अपेक्षा नहीं करता, वह कहीं भी सो जाता है तथा भूखा व्यक्ति स्वादिष्ट भोजन की अपेक्षा नहीं करता, उसे जो भी रूखा-सूखा मिल जाय उसे खा लेता है वैसे ही कामी व्यक्ति उचित अनुचित का ध्यान न रखते हुए केवल नारी का संसर्ग और उपभोग चाहता है ।

बाइबिल की राय में भलाई हमेशा ईश्वर से है । मानव की भलाई वास्तव में ईश्वरीय भलाई में भाग लेना है । प्रस्तुत भलाई की कमी के कारण ही बुराई का आगमन होता है । समाज में फैले दुराचरण के विरुद्ध आवाज़ उठाकर उसको दूर करना ही ईसा का आगमनोद्देश्य था । कुमार्ग को परास्त कर सन्मार्ग स्थापित करने के वे इच्छुक थे । बाइबिल ने बताया है - बुराई की नहीं, बल्कि भलाई की खोज में लगे रहे । इस प्रकार तुम्हें जीवन प्राप्त होगा और विश्वमंडल का प्रभु-ईश्वर तुम्हारे साथ होगा । बुराई से बैर करो, भलाई से प्रेम रखो और अदालत में न्याय बनाये रखो । [२] यहाँ कबीर -ाहित्य एवं बाइबिल समाज सुधार

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २०५
२. पुराना विधान आमोस का ग्रन्थ ५: १४-१५

में व्यक्ति के दायित्व पर बल देते हैं ।

सामाजिक जीवन में सभी व्यक्ति एक समान नहीं होते । प्रत्येक मानव में रुचि-भिन्नता पाई जाती है । समाज में यदि अधिकांश लोग चरित्रवान, संयमी, धार्मिक तथा सौहार्दपूर्ण होंगे वह समाज उतना ही श्रेष्ठ एवं भद्र होगा । इसके विपरीत जिस समाज में कुत्सित एवं दोषपूर्ण व्यक्तियों की संख्या अधिक होगी वह समाज भी उसी अनुपात में कुत्सित श्रेणी का होगा । मोहांध मनुष्य की स्थिति दिखाते हुए कबीर बताते हैं कि –

कबीर यहु जग आंधरा, जैसी अंधी गाई
बछरा था सो मरि गया, ऊभी चांम चटाई । [१]

याने जब गाय का बछडा मर जाता है तो ग्वाले उसकी खाल में भूसा भरकर उस आकृति को गाय के निकट रख देते हैं । गाय भ्रमवश उसे अपना वास्तविक बछडा समझकर चाटती रहती है । वास्तव में वह बाहरी खाल को ही बछडा समझती है। उसके भीतर की वास्तविकता का उसे पता नहीं रहता । इस प्रकार मोहांध जीव इस जगत् के भीतर निहित राम-रस रूपी सारभूत आनंद को न पहचानते हुए विषय वासना रूपी चाम में ही आसक्त रहता है । हमारे दिन प्रतिदिन से उदाहरण देकर कबीर ने कठिन से कठिन तत्वज्ञान को भी सरल से सरल बनाया आम जनता के लिए सुग्राह्य बना दिया है । गाय और बछडे का उदाहरण कोई भी अनपढ व्यक्ति आसानी से समझ सकता है । उसके द्वारा संसार की असारता एवं जीव पर पडे हुए माया के आवरण का सही ज्ञान सहजता के साथ दिलाने का कार्य कबीर ने किया ।

---

१. पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २०५

भोग-विलास में मग्न मोहान्ध व्यक्ति का विचार बाइबिल यों चित्रित करता है- फिर मैं अपने मन से बोला -''चलो, मैं सुख द्वारा तुम्हारी परीक्षा करूँगा, तुम भोग-विलास करो '' किन्तु मैंने अनुभव किया कि वह भी व्यर्थ है । हँसी मूर्खता है और भोगविलास से कोई लाभ नहीं होता । मैंने देखा कि यह सब व्यर्थ और हवा को पकडने के बराबर है । [१] यहाँ कबीर-साहित्य एवं बाइबिल व्यक्त करते हैं कि माया-मोह में फंसे व्यक्ति के द्वारा सामाजिक बुराई बढती ही रहती है । इसलिए ये उपदेश देते हैं कि विषय-वासना की व्यर्थता समझकर व्यक्ति का समाज की प्रगति केलिए लौट आना ही श्रेयस्कर है ।

समाज की प्रगति केलिए हरेक व्यक्ति को अपना दायित्व निभाना है । मनुष्य जब तक सामाजिक क्षेत्र में पिछडा रहेगा, तब तक उसका और समाज का जीवन सुखी नहीं बन सकता । व्यक्ति-जीवन की उन्नति समाज के बिना और समाज की उन्नति व्यक्ति के बिना असंभव है । हरेक की अपनी अपनी आकांक्षायें हैं। उसकी प्राप्ति केलिए कुछ हद तक प्रयत्न करना भी उचित है । कबीर व्यक्ति को याद दिलाते हैं कि दूसरों की न्यायपूर्वक बातों का खंडन करके अपनी स्वार्थपरक इच्छाओं की पूर्ति केलिए प्रयत्न करना कदापि उचित नहीं । क्योंकि यह आपसी संघर्ष एवं घृणाभाव उत्पन्न करेगा । प्रस्तुत पंक्तियों द्वारा कबीरदास इसको व्यक्त करते हैं -

खंभा एक गयंद दोइ, क्यों करि बंधसि बारि
मानि करै तौ पिउ नहीं, पीव तौ मानि निवारी । [२]

याने खम्भा एक ही है और हाथी दो हैं । दोनों हाथियों को एक साथ एक खम्भे से अपने द्वार पर तू कैसे बाँध सकेगा ? ठीक इसी प्रकार मन तो केवल एक है और

---

१. पुराना विधान उपदेशक-ग्रन्थ २: १,२,११
२. पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १९६

उसमें मनुष्य दो हाथियों-अहंभाव और ईश्वर को एक साथ ही बाँधना चाहता है । यह कैसे संभव है ? यदि मनुष्य अहंभाव में रहता है तो उसके साथ ईश्वर नहीं रह सकते। यह सर्वविदित बात है कि जहाँ ईश्वर को स्थान नहीं वहाँ वास्तविक मानव में प्रेम की भी कमी है । अतः यदि व्यक्ति अपने जीवन में ईश्वर को स्थान देना चाहता है तो व्यर्थाभिमान को दूर करना पडेगा । बाइबिल कालीन समाज में भी धनमोही लोग एवं धन के बल पर गर्व करनेवाले लोग बहुत थे । ये लोग केवल दिखावा केलिए प्रभु भक्ति को अपनाते थे । इनको देखकर सुसमाचार में येशु बताते हैं -'' कोई भी दो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकता । वह या तो एक से बैर और दूसरे से प्रेम करेगा, या एक का आदर और दूसरे का तिरस्कार करेगा । तुम ईश्वर और धन-दोनों की सेवा नहीं कर सकते । [१] यहाँ कबीर साहित्य एवं बाइबिल स्वर में स्वर मिलाकर बताते हैं कि ईश्वर प्रेम एवं व्यर्थभिमान (धन या अपनी किसी खूबी पर) दोनों एक साथ नहीं चलेंगे । किसी एक पर ही मनुष्य ध्यान दे सकते हैं ।

सांस्कृति वास्तविक स्वातंत्र्य का प्रतिफलन है । मानव की उन्नति ही संस्कृति का लक्ष्य है । इसके द्वारा व्यक्ति व्यक्ति में मानवीय मूल्य एवं चिन्तन शीलता का आविर्भाव होता है । ऐसी संस्कृति से युक्त समाज भी स्वार्थरहित होकर दूसरों के हित केलिए खडा रहता है ।

---

१. नया विधान संत मात्यु ६: २४

चौथा अध्याय

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में प्रतिबिंबित सुधारात्मक दृष्टि-२

गत अध्याय में हमने कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में प्रतिबिंबित सुधारात्मक दृष्टि पर विचार किया है जिसमें कबीर एवं बाइबिल कालीन सामाजिक दुरवस्था, वर्णाश्रम-धर्म, जाति-व्यवस्था, धार्मिक–अव्यवस्था, पारिवारिक संबन्धों में सुधार, गुरु-शिष्य-संबन्ध एवं व्यक्ति -सुधार, नारी-सुधार आदि का विवेचन किया है । इस अध्याय में हम बाह्याचार खण्डन, रीतियों का खण्डन, क्रिया-काण्ड एवं रूढियों का खण्डन, ढोंगी-पाखंडी संतों का खण्डन आदि पर विचार कर रहे हैं ।

बाह्याचार का खंडन एवं समाज सुधार

कबीरदास जी सर्वश्रेष्ठ समाज सुधारक माने जाते हैं और उनका सामाजिक कार्य महान है । उन्होंने बाह्याडंबर, अंधविश्वास, भ्रान्त धार्मिक काल्पनाएँ, ढोंग आदि का खंडन किया, उन की कडी आलोचना की और प्रेम की महत्ता, चारित्रिक उच्चता, अनुभवप्रामाण्य आदि तत्वों की स्थापना की । उस दृष्टि से उनका कार्य विधायक तथा विध्वंसक दोनों प्रकार का है । उनकी भाषा तीखी है लेकिन सोये हुए समाज को जगाने केलिए उनकी आवश्यकता थी । कर्मठ पंडितों का उपहास करके अनुभूति का महत्व बताया । उनमें दीन दलितों के उद्धार की चिन्ता थी ।

कबीर-साहित्य में व्यष्टि एवं समष्टि के हित-साधन का एक साथ स्तुत्य प्रयत्न किया गया है । धर्म, जाति, वर्ण, संप्रदाय आदि के नाम पर मानव-मानव में भेद उत्पन्न करने की जो प्रवृत्ति कबीरकालीन समाज में पायी जाती थी वह समष्टि-हित में बाधा थी । कबीर ने इन सभी स्तरों पर सुधार लाने का परिश्रम

किया । कबीर की प्रस्तुत समतापूर्ण दृष्टि को लक्ष्य करके डॉ.भगवत्स्वरूप मिश्र लिखते हैं -''कबीर को मानव मानव की मूलतः समानता और एकता में दृढ विश्वास है । उन्हें वर्गगत या जन्मजात ऊँच-नीच की भावना से तीव्र घृणा है । मानव की उच्चता का आधार जन्म अथवा संप्रदाय नहीं, नैतिकता और सदाचार है। '' जात-पांत, पूछे नहीं काई हरि को भजै सो हरि का होई में कबीर की पूर्ण निष्ठा है।''[१]

बाह्याचार तथा प्रदर्शन की भर्त्सना आदि खण्डनात्मक प्रवृत्ति का सही सही असर कबीरदास पर हुआ था । उन्होंने पाखण्डियों को फटकारा, अन्धानुकरण और रूढियों की खिल्ली उडायी, धर्म के ठेकेदारों की पोल खोली, पुस्तकीय ज्ञानवाले पंडितों की खबर ली । उस समय उन्होंने खण्डनात्मक पक्ष का ही आधार लिया। उनकी भाषा प्रखर एवं व्यंग्य चुभनेवाली थी । सुननेवाला तिलमिला उठता था पर जवाब नहीं दे सकता था । पंडित हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कबीरदास की इन व्यंग्यात्मक शैली का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है । वे कहते हैं -'' आज तक हिन्दी में कबीर जैसा जबर्दस्त व्यंग्य लेखक पैदा नहीं हुआ । उनकी साफ चोट करनेवाली भाषा, बिना कहे भी सब कुछ देनेवाली शैली और अत्यन्त सादी किन्तु अत्यंत तेज अभिव्यक्ति-भंगिमा अनन्य साधारण है । हमने देखा है कि बाह्याचार पर आक्रमण करनेवाले संतों और योगियों की कमी नहीं है । पर इस कदर सहज और सरस ढंग से चकनाचूर करनेवाली भाषा कबीरदास के पहले बहुत कम दिखाई दी है । व्यंग्य वह है, जहाँ कहनेवाला अधरोष्ठों में हंस रहा है और सुननेवाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहनेवाले को जवाब देना अपने को और भी अपहासास्पद बना लेना हो जाता है । कबीरदास ऐसे ही व्यंग्यकर्ता थे ।''[२] निम्न लिखित पद में मुसलमानों की अंध श्रद्धा की कैसे खिल्ली उडायी है ? हिन्दू भी उससे अछूते नहीं रहे ।

---

१. डॉ.भगवत् स्वरूप मिश्र कबीर-ग्रन्थावली पृ. १९९
२. पं.हज़ारी प्रसाद द्विवेदी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १६४

ना जाने तेरा साहब कैसा है । [१]

समाज में ऐसी अनेक रूढियाँ प्रचलित हो जाती हैं जिनके कारण समाज की दशा, स्थिति एवं प्रगति ठप हो जाती है । कबीर जैसे समाज सेवक इन रूढियों का निराकरण करके समाज की अव्यवस्था को सुव्यवस्थित करते रहते हैं । यहाँ पर कतिपय प्रमुख बाह्याचार एवं रुढियों के प्रभावादि विचार करना आवश्यक है ।

बाइबिल में भी ऐसे अनेक व्यक्तियों को देख सकते हैं जिन्होंने अपना जीवन पूर्णतया समाज की उन्नति केलिए आर्पित किया है । ये सब ईश्वर द्वारा चुने गये थे साथ ही अपने आपको संशुद्ध कर जीवन बितानेवाले भी थे । समाज में व्याप्त सारे अव्यवस्थित कर्मों को, विचारों एवं आचारों को व्यवस्थित एवं शुद्ध बनाने का स्तुत्य कार्य करना ही इनका मुख्य लक्ष्य था । इसको प्रवृत्तिपथ पर लाते वक्त जितनी अधिक वेदनाएँ एवं यातनायें भोगनी पडीं इससे वे भयभीत न हो गये । सच्चे रास्ते से फिसलकर स्वार्थता एवं घमंडरूपी निजी रास्ते पर चलनेवाले राजाओं, पुरोहितों एवं गर्विष्ठ पंण्डितों के विरुद्ध आवाज़ उठाने में वे कभी पीछे नहीं हटे । प्रभु ईसा एवं सारे के सारे नबीगण समाज में व्याप्त प्रेमरहित प्रवृत्ति के स्थान पर आपसी प्रेम रूपी अमूल्य मोती को सब कहीं बिखेरने में सजग हो गये । पूरे समाज के लोगों के अन्तर्गत समताभाव लाना, दीन-दुःखी एवं दलित-पीडित-गुलाम जैसे जीवन बितानेवाले लोगों को हाथ देकर ऊपर उठाना आदि लक्ष्य बाइबिल के सुधारकों के मन में मुख्य रूप से निहित है । उदाहरण के रूप में कहने पर संत मात्यु सुसमाचार में ईसा की वाणी यों देते हैं - थके-माँदे और बोझ से दबे हुए लोगों ! तुम सभीमेरे पास आओ । मैं तुम्हें विश्राम दूँगा । मेरा जुआ अपने ऊपर ले लो और मुझ से सीखो । मैं स्वभाव से नम्र और विनीत हूँ । इस तरह

---

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध कबीर-वटनावली पृ. १५४

तुम अपनी आत्मा केलिए शान्ति पाओगे, क्योंकि मेरा जुआ सहज है और मेरा बोझ हल्का ।'' [१] यहाँ येसु, थके-माँदे और बोझ से दबे हुए लोगों के रूप में समाज की आम जनता को दिखाते हैं जो फरीसी लोगों के अनगिनत एवं असहनीय नियमों के बोझ से दबे हुए थे । वे समाज की दृष्टि में तिरस्कृत, उपेक्षित एवं धार्मिक नेताओं की राय में निम्न स्तरीय हैं । मानव-निर्मित परंपरागत नियमों द्वारा जनता को दुख-क्लेश देनेवाले इन लोगों को विशेषतः फरीसी एवं शास्त्रियों को येशु यों धिक्कारते हैं -'' ढोंगी शास्त्रियों और फरीसियों धिक्कार तुम लोगों को! तुम मनुष्यों केलिए स्वर्ग का राज्य बन्द कर देते हो । तुम स्वयं प्रवेश नहीं करते और जो प्रवेश करना चाहते हैं, उन्हें रोक देते हो ।'' [२] यहाँ पीडित जनता का शोषकों के हाथ से उद्धार करने में निरत येशु को देख सकते हैं । और वे यह सिखाते हैं कि परंपरागत अर्थशून्य अनगिनत नियमों को नहीं एकमात्र नियम-प्रेम का नियम - को अपनाकर ईश्वर से वैयक्तिक संबन्ध रखकर जीने में ही वास्तविकता है । इसी प्रकार पूरे बाइबिल में भलाई की महत्ता का प्रतिपादन, धिक्कारी एवं पाखण्डी राजाओं की भर्त्सना, शुद्धाचरण करनेवाले पुरोहितों के दण्ड पाने का चित्र आदि देख सकते हैं । एक व्यवस्थायुक्त समाज एवं ईश्वरभक्त लोगों को ही बाइबिल लक्ष्य करता है ।

सिर-मुंडन

सिद्धि प्राप्त करने केलिए, मुक्ति पाने केलिए और भगवान को पाने केलिए कोई भी बाह्याचार उपयुक्त नहीं है । बल्कि कबीर एवं बाइबिलकालीन समाज में बुराईयों एवं त्रुटियों की भरमार थी । सिद्धि प्राप्त करने और पाप से छुटकारा पाने केलिए लोग मुंडन करते थे । कबीर ने हिन्दुओं से कहा –

---

१. नया विधान संत मात्यु ११:२८-३०
२. वही २३:१३

मुँड मुँडाये हरि मिले तो सब कोई लेइ मुँडाई
बार बार के मूँडते भेड न बैकुण्ठ जाय । [१]

सिर्फ सिरमुंडन से ईश्वरमिलन संभव है तो कबीर की राय में बार बार मुंडन में विवश होनेवाली भेड ही बैकुण्ठ का पहला अधिकारी है । केवल बालों के मुँडवाने से कुछ न बनेगा । यह दिखावा मात्र है उसका कोई फल न मिलनेवाला है । कबीर देखते हैं कि मनुष्य मन से बुरा काम करता है और मन का पाप नष्ट करने केलिए वह सिर का बाल काट डालता है । कबीर ऐसे लोगों को लक्ष्य कर कहते हैं-जब तुमने अपने मन को ही नहीं मुंडा तो केश मुंडाने से क्या होता है ? क्योंकि जो कुछ भी पाप-कर्म किया गया है वह मन के द्वारा किया गया है। फिर बेचारे सिर को व्यर्थ ही मुंडा गया --

कबीर मनु मुंडिया नहीं केस मुंडाए कांइ
जो किछु किआ सु मन कीआ मूंडा मूंडु अजांइ ।''[२]

कबीर ने देखा था कि कुछ तथाकथित साधु सिर मुँडन को नहीं बल्कि जटाओं को बढाने में ही धर्म मान बैठे हैं । वे ऐसे साधुओं से पूछते हैं कि आखिर केशों ने क्या बिगाड रखा है, जो तुम उन्हें बार बार मुँडवाते हो । बालों को मुँडवाने की अपेक्षा विषय-विकार ग्रस्त मन को मुँडवाना (नियंत्रित करना) अधिक श्रेयस्कर है ।

केसन कहा विगारिया, जो मूडे सौ बार
मन को काहे न मुडिये, जामै विषय विकार । ''[३]

---

१. डॉ.रामकुमार वर्मा संत कबीर पृ. ३३२
२. वही पृ. २५९
३. वही पृ. २१९

सिर मुंडन की और इशारा बाइबिल में भी देख सकते हैं । शोक मनाना वर्जित कहकर ईश्वर इस्राएलियों से बताते हैं - तुम लोग प्रभु, अपने ईश्वर की सन्तान हो । तुम किसी की मृत्यु के कारण न तो अपने शरीर में घाव करोगे और न अपने सिर के सामने के बाल कटवाओगे । कारण तुम प्रभु, अपने ईश्वर को अर्पित प्रजा हो । [१] प्रस्तुत वचन से स्पष्ट है कि उस देश में लोग किसी की मृत्यु पर शेकगीत करते वक्त सिर मुंडन भी कराया करते थे । लेकिन ईसा इसको मना करके उसे न अपनाने का उपदेश देते हैं । 'पुराना विधान' की एक और घटना में सिर मुंडन की बात है। [२] न्यायकर्ता सामसन के जन्म के पूर्व उसकी माँ से प्रभु का दूत यही सन्देश देता है -'' बालक के सिर पर उस्तरा नहीं चलाया जायेगा,क्योंकि वह अपनी माता के गर्भ से ईश्वर को समर्पित होगा । ''[३] बाद में इसके बारे में सामसन अपनी पत्नी से यों बताता है - अब तक मेरे सिर पर उस्तरा नहीं लगाया गया है ,क्योंकि जन्म से ही मैं प्रभु-समर्पित नाज़ीर हुँ । यदि मेरा मुण्डन हो जाये तो मेरी शक्ति जाती रहेगी और मैं सामान्य लोगों की तरह निर्बल हो जाऊँगा ।'' [४]

इन सारे वर्णनों से स्पष्ट है कि सिर मुंडन रूपी आचार बाइबिल में निषिद्ध था । कबीर ने समाज में ऐसे लोगों को भी देखा जो शिवलिंग धारण करते थे, कुछ जटाएँ बढाने में ही तत्पर रहते थे । कुछ लोग शरीर पर भस्म लगाते तो कुछ मौन व्रती थे ।

इक जंगम इक जटाधार, इक अंगविभूति करै अपार
इक मुनियर इक मनहूँ लीन, ऐसै होत होत जग जात खीन
इक आराधै सकति सीव, इक परदा देव जीव ।'' [५]

---

१. पुराना विधान विधिविवरण-ग्रन्थ १४: १-२
२. वही लेवी ग्रन्थ १०:६
३. पुराना विधान न्यायकर्ताओं का ग्रन्थ १३:५
४. वही १६:१७
५. डॉ.रामकुमार वर्मा संत कबीर पृ. १९६

कबीर ने देखा कि बाह्याचार अहंभाव का ही जनक होता है । उसी कारण इसी अहं से ग्रस्त कोई अपने को परम् ज्ञानी मान बैठा है और कोई त्यागी, किसी को इन्द्रियों को जीत लेने का अभिमान है तो किसी को योग-साधना का गर्व, कोई अपने को बहुत बडा दानी मान बैठा है, तो किसी को तपस्या का अभिमान है । वस्तुतः जिसने अहंभाव का त्याग नहीं किया, वह रोगी है और रोगी का कोई उपचार नहीं। पूजा-पाठ, दान, तीर्थ-यात्रा आदि बाह्याचार कर्ज के समान हैं, मूलधन नहीं । मूल धन है-अमरत्व ।

" कोई कहै मैं ग्यानी रे भाई, कोई कहै मैं त्यागी
कोई कहै मैं इन्द्री जीती अहं सभनि कौ लागी
कोई कहै मैं जोगी रे भाई, कोई कहै मैं भोगी
मैं तो आप दूरि न डारा, कैसे जीवै रोगी । [१]

तिलक, माला,एकादशी

कबीर ने हमेशा अपनी दिचारधाराओं को प्रतिपादित किया है, उनका प्रचार किया है और उनको फैलाने में कोई कसर उठा नहीं रखी है । इस विचारधारा में गोते लगानेवाले कई संत प्रचारक थे उन्होंने अपने अलग-अलग पंथ चलाए है परंतु कबीर को अवश्य मान्यता प्रदान की है । कबीरसाहब को इस काल में हिन्दू धर्म के अतिरिक्त अनेक प्रकार की साधनाएँ दिखाई पडती थीं जिन्हें प्रयोग में लानेवाले अपनी अपनी धुन में ही मस्त जान पडते थे । किसी एक केलिए दूसरे की ओर सद्भावना प्रकट करना इस काल में उचित नहीं जान पडता था । हिन्दू मन्दिरों में और मुसलमान मसजिदों में भगवान की आराधना करते थे । बाह्मण चौबीस

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. ३१५

एकादशी और काजी एक महीने तक रोजा रखते थे और फिर शेष ग्यारह मास क्या पाप करने केलिए ईश्वर ने बनाये है-कबीर ने पूछा । उन्होंने समझाया-तिलक लगाना, माला का जप करना, देवी देवता के नाम पर एकादशी आदि पर व्रत रखना अज्ञान है । उन्होंने इन सभी बाह्याचारों की भी निन्दा की है । उनके विचार से यदि मन पर नियंत्रण नहीं है तो विषयासक्त मन से माला फेरने से कोई लाभ नहीं। जो मनरूपी माला को घुमाता है अर्थात् मन को विषयों से विमुख कर ईश्वरोन्मुख करता है, वही सच्चा साधु है । सच्ची माला तो मन की है, गले में पडी हुई माला सांसारिक दिखावा मात्र है । यदि ऐसी माला धारण करने से प्रभु मिल सकते हैं तो ऐसी बहुत बडी माला रहट के गले में दिखाई पडती है, उसे ईश्वर की प्राप्ति अवश्य हो जानी चाहिए —

माला फेरे मनमुखी, तातै कछु न होइ
मन माला कौं फेरता, घट उजियारा होइ
कबीर माला मनहि की और संसारी भेख
माला पहर्‌या हरि मिलै, तो अरहट कै गलि देख ।'' [१]

इसी प्रकार काठ की माला फेरने से भी कुछ नहीं होता । मनुष्य को अपने मन को वश में रखना चाहिए । जब तक मन विषयों के पीछे भागता रहता है तब तक मनुष्य की उन्नति नहीं नहीं हो सकती । वे बताते हैं —

''माला पहर्‌याँ कुछ नहीं, गांठि हिरदा की खोइ
हरि चरनूँ चित राखिए, तौ अमरा पुर होइ ।''

जप और माला की ओर विरोध प्रकट करते हुए कबीरदास एक और स्थान पर

१. डॉ.रामकुमार वर्मा संत कबीर पृ. १८६

बतात हैं —

माला फेरत जुग भया पाया न मनका फेर
करका मनिका छाँडि दै मनका मनका फेर ।

लंबी जटा बढाकर, माथे पर तिलक लगाकर और हाथ में माला फेरकर घूमने फिरनेवालों को देखकर कबीर चेतावनी देते हैं कि प्रस्तुत व्यर्थभाव को छोड दो क्योंकि केवल ये बाहरी आचारों से साहब या ईश्वर को पाने की इच्छा करना मूर्खता है —

माला फेरी तिलक लगाया, लंबी जटा बढाता है
अंतर तेरे कुफर कटारी, यों नहीं साहब मिलता है ।''

कबीरकालीन समाज में तिलक लगाना, माला फेरना, एकादशी व्रत रखना आदि जो प्रथा प्रचलित थी वही बाइबिलकालीन समाज में भी देखने को मिलती है । प्रस्तुत आचरणों के द्वारा ईश्वरानुग्रह प्राप्त करना उनका लक्ष्य था । वे इसके द्वारा पाप से मुक्ति, शत्रुओं से रक्षा आदि की दुहाई भी करते थे । यूदित के ग्रन्थ में इसका एक चित्र देते हैं । याने अस्सूरियों के राजा नबुकदनेज़र के प्रधान सेनापति होलोफेरनाड़स के अत्याचारों से रक्षा पाने केलिए सभी इस्राएलियें ने आग्रहपूर्वक ईश्वर की दुहाई दी और ईश्वर के सामने दीन बन कर कठोर उपवास किया । वे, उनकी पत्नियाँ, उनके बाल बच्चे, उनके पशु, उनके सब प्रवासी, मज़दूर और दास-सब ने टाट ओढ लिये । येरुसालेम के प्रत्येक इस्राएली पुरूष, स्त्री और बच्चे सब ने मन्दिर के सामने दण्डवत् किया । उन्होंने अपने-अपने सिर पर राख डाली और अपने टाट के वस्त्र प्रभु के सामने फैला दिये ।[१] राजा अहश्वेरोश का दीवान हामान द्वारा

१. पुराना विधान यूदित का ग्रन्थ ४: ९-११

रचित षडयंत्रों से यहूदियों की रक्षा केलिए राजदरबार के सेवक एवं प्रतिष्ठित नागरिक मरदोकाय जो यहूदी वंशज था, को हामान के कुकृत्यों का पता चला, तो अपने वस्त्र फाड लिये, टाट ओढा और सिर पर राख डाली । यहाँ भी शत्रु से रक्षा मिलने केलिए उपवास एवं राख डालकर अपने आपको विनीत करनेवाले लोगों के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत व्यक्ति को देख सकते हैं । कबीर अपनी वाणी द्वारा तिलकधारी व्यक्तियों पर परिहास करते देखते हैं लेकिन बाइबिल में राख डालनेवाले व्यक्तियों के विरुद्ध कुछ शब्द नहीं के बराबर है । भारत में प्रचलित एकादशी-व्रत के समान बाइबिलकालीन लोग उपवास आदि करते थे । इस प्रथा के आरंभ में यह भक्ति एवं पाप मुक्ति का प्रतीक था लेकिन कालान्तर में बाहरी आचार एवं दिखावा मात्र बन गये ।

उपवास का अनुष्ठान लोग या तो हफ्ते में एक दिन या दिन में एक बार करते हैं एवं व्यक्ति अपनी मन पसंद चीज़ों से व्रत रखना भी उचित समझते हैं। लेकिन बाइबिल के अनुसार सच्चा प्रायश्चित भोजन में कटौती करने से पूर्ण नहीं होता । उसकेलिए व्यक्ति को अपने स्वार्थ, घमंड, ईर्ष्या आदि दुर्गुणों को त्यगना, विनम्र एवं क्षमाशील होना तथा सब के सब मेल-मिलाप करके रहना है । उपवास, व्रतानुष्ठान आदि अपने में अपूर्ण हैं । वे स्वयं लक्ष्य नहीं है । अगर मनुष्य तन-मन-धन से दूसरों की सहायता न करें, उनकी कठिनाईयों और दुखों को दूर करने का प्रयत्न न करें, तो मनुष्यों का उपवास, व्रत, प्रार्थना आदि निरर्थक हैं । कुछ अन्य बाहरी अनुष्ठानों को देखकर कबीर उनसे पूछते हैं –आत्मतत्व को नहीं पहचाना तो नग्न रहने अथवा मृगछाला धारण करने से क्या लाभ ? यदि नग्न रहने से मोक्ष प्राप्ति हो जाती है तो जंगल का कोई भी पशु मोक्ष को प्राप्त हो गया होता । यदि सिर मुँडाने से ही सिद्धि प्राप्त हो जाती तो भेड अवश्य ही सीधे स्वर्ग को पहुँच

जाती। यदि केवल वीर्य-रक्षा से मोक्ष प्राप्त हो जाता तो घोडा और बैल मोक्ष क्यों नहीं प्राप्त कर लेते ?

का नांगे का बाँधे चाम जाँ नहीं चीन्हसि आतमराम
नंगे फिरै जोग जौ होई, बन का मिरिग-मुकुति गया कोई
मुँड मुडाए सिद्धि होई, सरगहि भेड न पहुँच कोई
बिंदु राखि जौ तरिए भाई, तौ खुसरै क्यूँ न परमगति पाई
कहै कबीर सुनौ रे भाई, राम नाम बिनु किन सिधि पाई । [१]

तीर्थाटन

कबीर तीर्थों को विष-वल्लारी की अभिधा प्रदान करते हैं । सारे जगत् में यह वल्लरी छाई हुई है जिसका कोई मूल नहीं, जिसमें कोई सार नहीं । कबीर ने तो इसका मूलोच्छेदन कर दिया है क्योंकि वे इस हलाहल को, जो तीर्थों से मिलता है, स्वीकार नहीं करते ।

तीरथ वरत बिरख बेलडी सब जग मेल्हा छाइ
कबीर मूल निकंदिया, कौंन हलाहल खाइ । [२]

यदि मन में सच्चाई नहीं है,यदि हृदय के भीतर वासना की अग्नि भभक रही है तो तीर्थों के करने से कुछ नहीं होगा । जिस प्रकार ब्रह्म शरीर के भीतर है उसी प्रकार तीर्थ भी शरीर के भीतर है । शरीर के भीतर के तीर्थों को ही पवित्र रखना चाहिए। अतएव तीर्थों की मान्यता को ध्वस्त करते हुए कबीर अपने मन को मथुरा, दिल को

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. ९९
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २२५

द्वारिका और काया को काशी बतलाते हैं

मन मथुरा दिल द्वारिका काया कासी जांनि
दसवां द्वारा देहुरा, तामै जोति पिछानि । [१]

कबीर व्यक्त करते हैं कि दस द्वारों वाला देवालय रूपी शरीर तुम्हारे पास है । इसमें जो आत्मा- ज्योति है, उसे पहचाने और उसी की उपासना करो, बाहर व्यर्थ भटकते फिरते हो । इस्राएली लोग तीर्थाटक थे । वे कनान से मिश्र, मिश्र से फिर कनान देश में आकर बसते थे । ईसाई-धर्म में भी तीर्थाटन का महत्व है । इसके अनुसार मनुष्य सब ईश्वर के यहाँ (स्वर्ग) से भूमि पर आये हैं और मृत्यु के बाद ईश्वर के पास पहुँचना है । भूमि पर उनका जीवन एक तीर्थाटन ही है । कबीर के अनुसार बाइबिल भी सिखाता है कि मन की सच्चाई, वासना से मुक्ति, घृणा का अभाव भ्रातृभाव आदि के साथ ही हमारी भक्ति दिखाना है और बलि चढाना है - '' जब तुम वेदी पर अपनी भेंट चढा रहे हो और तुम्हें वहाँ याद आये कि मेरे भाई को मुझ से कोई शिकायत है, तो अपनी भेंट वहीं वेदी के सामने छोडकर पहले अपने भाई से मेल करने जाओ और तब आकर अपनी भेंट चढाओ । [२] यहाँ स्पष्ट है कि मन की पवित्रता, आपसी प्रेम आदि ही सब तीर्थ-व्रतों से श्रेष्ठ है । तीर्थाटन के विरुद्ध बाइबिल सीधे कुछ नहीं बताता ।

कबीर का दृष्टिकोण मध्यमार्गीय है । कबीर न हिन्दू है न मुसलमान है, न काबावादी है और न काशीवादी । वे काबा और काशी को एक समान देखते हैं, उसी प्रकार राम और रहीम को भी । कबीर का राम और रहीम सब बन्धनों और

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली प० पृ. २२६
२. नया विधान संत मात्यु ५:२३

सीमाओं से मुक्त है । वह मनुष्यमात्र का आराध्य है । सबका प्रभु एवं स्रष्टा है। हिन्दुओं को नहीं मुसलमानों को भी कबीर ने फटकारा है । जिस प्रकार कबीर ने काबा और काशी को थोथा समझा है उसी प्रकार हज और तीर्थ-यात्रा को। मुसलमान हज करने केलिए जाते हैं किन्तु उनके मन में भक्तिभावना का उदय नहीं होता । फिर उस हज काबे से क्या लाभ है । काजी मसजिद में तो यह कहता है कि ईश्वर एक ही है, और जब बकरी आदि को मारने लगता है तब अपने में और उसमें भेद करता है । फिर भला उन्हें शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है । इसलिए उन्होंने काजी को भी यहीं उपदेश दिया है कि वह अपने शरीर में ही मक्का और काबा करे । तामसी आचारों को दूर करके इन्द्रियों को वश में करो तभी कर्तव्य पूरा हो सकता है । कबीर भी इनको अज्ञान की सृष्टि मानते हैं । कबीर का यह दृष्टिकोण उनकी अनुभूतियों का परिणाम है । उन्होंने इन तीर्थों में-काशी और काबा में जो विषाक्त वातावरण अथवा हार्दिक संकीर्णता देखी उससे उनका हृदय तिलमिला उठा । इसलिए उन्होंने देखा कि काबा और काशी वे स्थान नहीं है जहाँ से आखण्ड मानवता उद्घोषित की जा सके ।

आन्तरिक पवित्रता के बिना बाहरी शुद्धि को सब कुछ समझकर गंगास्नान करनेवाले लोगों को देखकर कबीर को कहना पडा -

"मन मैला तीरथ न्हावै तिनि बैकुण्ठ न जाना
पाखण्ड करि करि जगत भुलाना नाहिन राम अयाना ।"[१]

इन्हीं सारे पाखण्डों में जगत् भूला हुआ था जिसके कारण उसके विकास का मार्ग अवरुद्ध हो गया था ।

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. १५३

परलोक पर विश्वास करनेवाले और बाह्य कर्म में ही रुचि रखनेवालों से कबीर ने कहा था कि मथुरा, द्वारिका तथा जगन्नाथ की यात्रा करनेवालों को मुक्ति नहीं मिलती । मुक्ति केलिए सज्जनों की संगति करनी चाहिए । समाज की सच्चे मन से सेवा करनी चाहिए, तीर्थाटन करना व्यर्थ है । भगवान की खोज करने केलिए तीर्थाटन करने ही आवश्यकता नहीं । कबीर कहते हैं-''मृग की नाभि में कस्तूरी की थैली होती है । उसकी सुगंध से उन्मत्त होकर मृग उसकी खोज में व्याकुल रहता है । और इस बात को नहीं जान पाता कि सुगन्ध उसके अपने में ही है —

''कस्तुरी कुंडली बसै, म्रिग ढूँढे बन मांहि
ऐसै घटि घटि रांम है, दुनिया देखै नांहि । [१]

इसी प्रकार विश्व के कण-कण में व्याप्त तत्व राम है, पर लोग उसे देख नहीं पाते। क्योंकि वे भ्रम में पडे हैं । इसलिए भगवान की खोज कहीं अन्य जगह करने लगते हैं ।

वेशभूषा

कबीर के समय में बहुत से लोग वेश-भूषा को ही धर्म मान बैठे थे । कुछ लोग माला धारण करते थे, कुछ शुभ वस्त्र धारण करते थे, कुछ मुंडाते थे और कुछ केश रखे थे । इस प्रकार नाना प्रकार के वेशों में लोगों ने धर्म का निवास मान लिया था । कबीर के मत में धर्म वेश में नहीं, कर्म और मन में है । इसलिए कबीर ने कहा —

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १६२

''स्वांग पहिरि सोरहा भया, खाया पीया खूंदि
जिहिं सेरी साधू गया, सो तौ मेल्ही मूंदी । [१]

ऊपरी वेष बनाकर तूने बहुत बडे साधु होने की ख्याति प्राप्त कर ली है, किन्तु तुमने खूब विषय-भोग किया है । जिस गली से साधु जाते हैं याने साधना का जो सच्चा मार्ग है, उसे तुमने अवरुद्ध कर रखा है । फिर तेरे स्वाँग से क्या लाभ ? इस प्रकार कबीर वेश-भूषा को महत्व नहीं देते क्योंकि वे मानवीय सच्चाई को पसंद करते हैं। साधना मन की होनी चाहिए, वेश की नहीं । बाइबिलकालीन समाज में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं थी जो दिखाने केलिए प्रार्थना करते थे । उस समय वे लंबे लंबे वस्त्र पहनते थे तद्वारा लोगों को यही ज्ञान देना चाहते थे कि वे ईश्वर से अटूट संबन्ध रखनेवाले यथार्थ भक्त हैं । पुरुष बाल बढाते थे और सिर पर सफेद टोपी धारण करते थे । स्त्रियाँ सिर ढके परदा धारण करती थीं । बिना परदे वाली स्त्री अपना तथा अपने पति का अनादर करती थी । संत पोल कहते हैं कि '' स्त्री को अपना सिर ढके प्रर्थना व भविष्यवाणी करनी चाहिए ।''[२] नियमों को सिखानेवाले ये शास्त्रीगण स्वयं नियम का पालन नहीं करते थे बल्कि दरिद्रों तक का शोषण करते थे । अपनी दुष्टता एवं अनीति को लंबी प्रार्थना द्वारा छिपाने का प्रयत्न वे करते थे । मात्र नया विधान में नहीं पुराना विधान में भी इसी प्रकार स्वयं धर्मी समझनेवाले कपटी धर्मनेताओं का चित्रण है । नबी एशया इनके बारे में यों बताते हैं -'' तेरे शासक विद्रोही एवं चोरों के साथी हैं। वे उपहार पसन्द करते हैं और रिश्वत के लोभी है । वे अनाथ को न्याय नहीं दिलाते और विधवाओं के मामले नहीं सुनते।'' [३] लंबे वेष पहनकर भक्ति में कपटता दिखानेवाले शास्त्रियों से दूर रहने

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २२३
२. संत पोल कोरिन्थियों के नाम पत्र ११:५
३. पुराना विधान एशया का ग्रन्थ १:२३

का उपदेश 'नया विधान' में ईसा अपने शिष्यों को देते हैं -'' शास्त्रियों से सावधान रहो । लंबे लबादो पहनकर टहलते जाना, बाज़ारों में प्रणाम-प्रणाम सुनना, सभागृहों में प्रथम आसनों पर और भोजों में प्रथम स्थानों पर विराजमान होना - यह सब उन्हें पसंद है । वे विधवाओं की संपत्ति चट कर जाते हैं और दिखावे केलिए लंबी-लंबी प्रार्थनायें करते हैं । उन लोगों को बडी कठोर दण्डाज्ञा मिलेगी । [१]

कबीर की राय में वेश-भूषा का आचरण से कोई संबन्ध नहीं है । यदि आचरण की परख देश-भूषा के आधार पर की जायेगी तो मनुष्य धोखा खा सकता है । जिस प्रकार सब कुछ जो चमकता है, सोना नहीं होता इसी प्रकार जो उज्वल और शुभ्रवस्त्र धारण किये फिरते हैं वे निर्मल आचरणवाले ही हों, इसकी ज़रूरत नहीं । इसलिए कबीर अपने दृष्टिकोण को बडी दृढता से व्यक्त करते हुए कहते हैं-

ऊजल देखि न धीजिए, बग ज्यौं मौड ध्यानं
घोरै बैठि चपेटही, यौं लै बूडे ग्यानं । [२]

अर्थात् केवल उज्जवल वेष देखकर किसी का विश्वास नहीं करना चाहिए । बगुला भी श्वेत वर्ण का होता है, किन्तु भीतर से वह मछली पर ही ध्यान लगाए रहता है। ऐसे ही दिखावटी साधु तुम्हारे पास बैठकर तुम्हें उसी प्रकार धर दबोचेंगे जैसे बगुला मछली को पकड लेता है । इस प्रकार वे तुम्हारे समस्त ज्ञान को ले डूबेंगे। कबीर का ज्ञान पुस्तकीय न रहकर अनुभवजन्य था । इसलिए उनके अधिकाँश उदाहरण इन्हीं अनुभवों के आधार पर विकसित रहे हैं । बगुले का उदाहरण प्रस्तुत सन्दर्भ में बहुत ही सार्थक रहा है, साथ ही तथ्य को भली भाँति समझने में अत्यन्त

---

१. नया विधान संत लूक २०:४५-४७
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १५७

समर्थ रहा है । दिन प्रतिदिन के जीवन से इसप्रकार के उदाहरण ग्रहणकर कबीर ने सामान्य जनता केलिए भी कठिन से कठिन तत्वों को सुग्राह्य बनाने का प्रयत्न किया है । यही उनकी शैली की विशेषता है ।

कबीर बताते हैं कि विभिन्न प्रकार वेश भूषा बनाने से भी परमतत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती । बाह्यवेश से साधु होने की ख्याति भले ही मिल जाती हैं । बल्कि

"कबीर भेष अतीत का, करतूति करै अपराध
बाहरि दीसै साधु गति, माँहै महा असाध । [१]

कबीर कहते हैं कि कुछ लोग विषयातीत विरक्तों का-सा वेष बनाये रहते हैं, परंतु उनके कार्य दोषपूर्ण होते हैं । क्योंकि वे बाहर से साधुओं जैसे दीखते हैं, किन्तु अन्तकरण से वे महान् असाधु ही हैं । कबीर की राय में गेरुआ वस्त्रादि धारण कर, तिलक लगाकर शरीर से तो अनेक लोग अपने को योगी के रूप में प्रदर्शित करते हैं, किन्तु ऐसे साधु विरले होते हैं जो मन को योगी बना सकें । हृदय में लालच एवं दुष्टता रखकर बाहरी शुद्धिकर, शुभ्रवस्त्रादि पहनकर दूसरों को दिखाने केलिए धूमने फिरनेवाले फरीसी एवं शास्त्री नेताओं से ईसा पूछते हैं -" मूर्खो ! जिसने बाहर बनाया क्या उसी ने अन्दर नहीं बनाया ? जो अन्दर है, उस में से दान कर दो और देखो, सब कुछ तुम्हारे लिए शुद्ध हो जायेगा । [२] आगे ईसा उन लोगों की तुलना उन कब्रों से करते हैं जो बाहरी रूप में साफ-सुथरे एवं देखने में सुन्दर हैं बल्कि कब्रों की अन्दर की स्थिति शोचनीय है और गन्दगी से भरी हुई है - "ढोंगी शास्त्रियों और फरीसियो ! धिक्कार है तुम लोगों को ! तुम पुती हुई कब्रों के सदृश

---

१. डॉ.जयदेव सिंह कबीर वाङ्मय खंड -३ पृ. २०७
२. नया विधान संत लूक ११:४०-४१

हो, जो बाहर से सुन्दर दीख पडती हैं, किन्तु भीतर से मुरदों की हडियों और हर तरह की गन्दगी से भरी हुई है । इसी तरह तुम भी बाहर से लोगों को धार्मिक दीख पडते हो, किन्तु भीतर से तुम पाखण्ड और अधर्म से भरे हुए हो । [१] वस्तुतः यह बाह्य वेश-भूषा भेद-भाव को बढाती है, प्रत्येक घट में विद्यमान एक ही परम सत्ता पर आवरण डाल देती है, रूप में वैभिन्य के कारण उसके एकत्व की प्रतीत नहीं हो पाती।

तन कौं दोगी रूब करै मन कौं बिरला कोइ
सब सिधि सहजै पाइए, जे मन जोगी होइ । [२]

यदि मन से योगी बना जाय तो सभी सिद्धियाँ सरलता से प्राप्त हो सकती हैं । कबीर कहते हैं घट-घट में एक ही प्रभु का वास है, किन्तु बाहरी रूप को परदा डाल रखा है वस्तुतः यह बाह्य वेश-भूषा भेद-भाव को बढाती है, प्रत्येक घट में विद्यमान एक ही परम सत्ता पर आवरण डाल देती है । रूप में वैभिन्य के कारण उसके एकत्व की प्रतीति नहीं हो पाती –

कबीर यहु तौ एक परदा दीया भेष
भरम करम सब दूरि करि, सबहीं मांहि अलेष।'' [३]

कबीर के समय में समाज में आये दिन दंगे चलते रहते थे । ऐसे समय में लोगों के मन में परिवर्तन लाने केलिए, उन्हें एकता के सूत्र में बांधने के लिए, उनको प्रेम के महत्व को समझाने केलिए इससे अच्छा उपाय दूसरा कोई भी नहीं था । कबीर

१. नया विधान संत मात्यु २३:२७-२८
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २२२
३. डॉ.जयदेव सिंह कबीर वाङमय खंड -३ पृ. १९७

का सामाजिक कुरीतियों को हटाने और एक स्वस्थ समाज की स्थापना करने का प्रयत्न स्थान स्थान पर देखा जा सकता है । अतः कबीरदास उपदेश देते हैं कि अज्ञान और भेद उत्पन्न करनेवाले कर्मों को दूर करें, सभी के भीतर विद्यमान प्रभु को देखना उचित है ।

बाह्य शुद्धि

आन्तरिक पवित्रता में रूचि न रखनेवाला कबीरकालीन समाज के लोग कपट भाव, भष्टाचार आदि व्यवहार करनेवाले थे और वे अपने शरीर को बार बार धोते रहते थे, साफ करते थे । वे शरीर के ऊपर का मैल साफ करते थे परंतु शरीर के भीतर का भरा हुआ मैल वैसे ही रहता था । लोगों की प्रस्तुत बाहरी चेष्टा एवं ढोंग देखकर कबीर दुखी होते हैं । अपवित्रता से युक्त अंतरमन के ज़रिए समाज के बहुसंख्यक वर्ग प्रस्तुत बाह्य क्रियाव्यापार में रुचि रखकर पवित्रता होने केलिए गंगा स्नान करते थे । काशी में गंगा नदी बहती है । उनका विचार था कि गंगा में स्नान करने से व्यक्ति स्वर्ग में जाता है । इससे यह सिद्ध हुआ कि काशी में रहनेवाले सभी स्वर्ग में जाते हैं, और जहाँ गंगानदी नहीं बहती वे सब नरक में जाते है । ये सभी कथायें कल्पित हो सकती हैं परंतु हृदय की पवित्रता पर इन्होंने प्रकाश अवश्य डाला है । कबीर की मान्यता है कि वास्तविक पवित्रता मानसिक विकारों का त्याग है, शेष सब दिखावा है । बाइबिल की बुलाहट मूलतः पवित्रता एवं शुद्धता की बुलाहट है । प्रत्येक व्यक्ति पवित्र एवं परिपूर्ण बनने केलिए बुलाया गया है । यह तभी संभव है, जब हम उनकी शिक्षाओं को गंभीरता से अपने जीवन में अमल करते हैं । मनुष्य ईर्ष्या, द्वेष, अशुद्धता एवं बुरी आदर्शों को त्याग कर अपने दिल को ईश्वर का पवित्र मंदिर बना सकते हैं । बाइबिलकालीन समाज में भी ऐसे लोगों की भरमार थी जो कपटता एवं भ्रष्टाचार में अधिक ध्यान देते थे लेकिन वे

बाहरी रूप में शुद्ध एवं सद्व्यवहार करनेवाले के रूप में दिखाई पडते थे । कुकर्म एवं मात्र बाहरी शुद्धता में ध्यान देनेवाले लोगों के बारे में उपदेशक ग्रन्थकार यों बताते हैं-''मनुष्य अपने हृदय में इसलिए बुरी योजनाएँ बनाते रहते हैं कि अपराधियों को तुरंत दण्ड नहीं दिया जाता । दुष्ट सैकडों कुकर्म करने के बाद भी बहुत समय तक जीवित रहते हैं । फिर भी मैं यह जनता हूँ -ईश्वर के भक्तों का कल्याण होगा। क्योंकि वे ईश्वर पर श्रद्धा रखते हैं । किन्तु दुष्ट का कल्याण नहीं होगा । वह छाया की तरह लुप्त होकर बहुत समय तक जीवित नहीं रहेगा, क्योंकि वह प्रभु पर श्रद्धा नहीं रखता ।'' [१]

मुसलमानी रीतियों का खण्डन

कबीर ने अपनी स्ष्टवादिता से काम किया है और जिसकी भी आलोचना करने का समय आया है उसकी आलोचना स्पष्ट शब्दों में कर डाली है । उन्होंने मुसलमानों को भी फटकारने की पूरी कोशिश की है । उनके मत में केवल मनुष्य का ही महत्व था । मनुष्य बनने केलिए उनके अनुसार कुछ मानदण्ड रहे थे जैसे, प्रेम, परोपकार, सत्य, अहिंसा आदि । हिन्दू या मुसलमान सच्चे मानव को पहचानने के मानदण्ड नहीं थे । यह धर्मगत एवं जातिगत विभाजन उनको मान्य नहीं था । उन्होंने नमाज़ पढने की कट्टर आलोचना की है कि ईश्वर कोई बहरा नहीं है जो मुल्ला होकर मुर्गे की तरह ज़ोर ज़ोर से बांग देता है ।

न जाने साहब कैसा है, मुल्ला होकर बाँग जो दैवे
क्या तेरा साहब बहरा है ।
कोडी के पग नेवर बाजे सो भी साहब सुनता है ।

---

१. पुराना विधान उपदेशक-ग्रन्थ ८:११-१३

कबीर का कहना है कि मुल्ला तू मसजिद की मुंडरे पर क्या चढता है और मुर्गे की तरह बाँग देता है । क्या अल्लाह बहरा है या वह बहुत दूर हैं । वह तेरे दिल में ही बैठा सब कुछ देख रहा है । तू मुर्गी और बकरी मारता है और हक-हक कहता है ? सभी जीव साईं के प्यारे हैं, फिर तू ऐसा करके किस प्रकार छुटकारा पा सकता है ? संत कबीर ज़ोर से करनेवाले भजन-कीर्तन में भी विश्वास नहीं करते । उनकी राय में भजन कीर्तन मन में ही करना चाहिए । वे बताते हैं –

सहजो सुमरिन कीजिए, हिरद माँहि छिपाय
होठ होठ कूँ ना हिलै, सकै नहीं कोई पाय ।

कई धर्मान्ध व्यक्ति ऐसा मानते हैं कि भजन कीर्तन से भगवान प्रसन्न होते हैं । संत कवि भजन कीर्तन को दिखावा मात्र मानते हैं । लेकिन नामजप या नामस्मरण वे बराबर मानते रहे हैं । यथा–

तूँ तूँ करता तू भया मुझ मैं रही न हूँ
वारी फेरी बलि गई जित देखौं तित तूँ । [१]

यहाँ कबीर अपना अनुभव व्यक्त करके बताते हैं कि 'तू तू' याद करते हुए मैं स्वयं 'तू' हो गया । मुझे मेरापन न रह गया अर्थात् अहंभाव समाप्त हो गया । मैं पूर्ण रूप से तेरे ऊपर न्योछावर हो गया हूँ और अब जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू दिखलाई देता है अर्थात् सारा जगत् ब्रह्ममय हो गया है । राम-नाम-स्मरण की महत्ता दिखाते हुए कबीर आगे भी बताते हैं–

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १४९

कबीर सुमिरन सार है, और सकल जंजाल
आदि अंत सब सोधिया, दूजा देखौं काल । [१]

उनके अनुसार प्रभु का स्मरण ही जीवन का सार है और सब बातें बन्धन में डालनेवाली हैं । मैं ने आदि अन्त सब कुछ छानकर देख लिया है । प्रभु के नाम के अतिरिक्त, अन्य सभी वस्तुएँ विनाशकारी काल ही हैं । फिर वे बताते हैं कि तीनों लोकों में श्रेष्ठ तत्व रामनाम है । भक्त कबीर ने अपने मस्तक पर उसको धारण कर लिया और इससे उनके जीवन में अपार शोभा आ गयी । यहाँ ' तिलक ' शब्द में यह व्यंजना है कि वह सर्वश्रेष्ठ है और सारे जीवन की शोभा भी उसी रामनाम से है । उसके बिना जीवन तुच्छ है ।

तत्त तिलक तिहूँ लोक मैं, रामनाम निज सार
जन कबीर मस्तक दिया, शोभा अधिक अपार । [२]

इन सारे उदाहरणों द्वारा कबीर स्थापित करते हैं कि ज़ोर से करने वाले नमाज़ एवं भजन-कीर्तन से ज्यादा अच्छा मन ही मन भक्ति करना है । इन्होंने मुसलमानों को आगे भी बुरी तरह फटकारा है —

दिन भर रोज़ा रखत है रात हनत है गाय
इधर खून उधर गन्दगी कैसे खुदा रिझाय ।

ये यज्ञोपवीत और सुन्नत दोनों को कृत्रिम संस्कार मानते थे । उन्होंने इस प्रकार दोनों धर्मों की कृत्रिम मान्यताओं और पूजा पद्धितयों की कटु आलोचना की है और

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १५०
२. वही पृ. १५०

उन्हें चेतावनी भी दी है । कबीर का कहना है कि मनुष्य को वेदों के चक्कर में नहीं पडना चाहिए । वे बताते हैं –

बाम्हन गुरु जगत का साधु का गुरु नाहिं
उरझि पुरझि करि मारि रहा, चरिउ वेदों माहि । [१]

यहाँ कबीर का मत हैं कि ब्राह्मण संसार का गुरु भले ही हो, किन्तु वह साधु का गुरु नहीं हो सकता, क्योंकि स्वानुभूतिरहित साधारण जन कोरे मर्महीन शब्दों की चकाचौंघ में भले ही आ जायँ, किन्तु साधु का आधार स्वानुभूति है । वह आत्मसाक्षात्कार को ही परम तथ्य मानता है । शब्दशास्त्री कोरे पंडित उसके गुरु नहीं हो सकते। जो कोरे शब्द शास्त्री है, वे वेदों के शब्दजाल में उलझ-पुलझकर मरते रहते हैं । उससे मनुष्य भ्रम में पड जाता है और हम अपने धर्म का निर्णय करते हुए धोखे में आ जाते हैं ।

श्राद्ध, तर्पण

कबीर के अनुसार सामाजिक संस्कार निरर्थक हैं । जब तक मन पवित्र नहीं है तब तक इनका कोई महत्व नहीं है । हिन्दू लोगों के द्वारा मृतकों की दाह-क्रिया तथा उनके निर्मल किये जानेवाला श्राद्ध-कर्म निरर्थक एवं ढोंग हैं । वे कहते हैं कि दाहकर्म द्वारा मृतक के शरीर को जला देते हैं और जिस पिता के प्रति उसके जीते जी कभी श्रद्धा प्रदर्शित न की थी उसका श्राद्ध क्रिया करते हैं । श्राद्ध द्वारा भी मृतक बिचारे को निर्जीव हो जाने के कारण कुछ भी लाभ नहीं पहुँचता और इधर उसकेलिए दिये गये पिंडदान को कौए और कुत्ते खा जाते हैं । जिस पिता को

---

१. डॉ.जयदेव सिंह कबीर वाङ्मय खण्ड ३ पृ. १६१

जीते-जी डंडे से मारते रहे और जिसे खाने को अन्न नहीं देते थे, प्रत्युत गाली तक सुना देते थे उसे मारने के पश्चात् गंगा-लाभ कराने अथवा पिण्ड देने से कुछ भी लाभ नहीं । ये सारी बातें खोखली और पाखंड हैं । कबीर बताते हैं कि मुझे तो यह आश्चर्य होता है कि कौए का खाया पितर लोग कैसे पाएँगे ? मृतकों केलिए प्रार्थना करने की रीति बाइबिलकालीन समाज में प्रचलित थी इसका चित्रण 'पुराना विधान' में मक्काबियों के ग्रन्थ से पता चलता है । शत्रु सेना के हाथों से मारे गये लोगों के शव को यहूदी धर्म के एक व्यक्ति यूदा पूर्वजों की कब्रों में अपने संबन्धियों के साथ दफनाने लगे, उस वक्त उन्होंने देखा कि प्रत्येक मारे हुए व्यक्ति के कपडों के नीचे यामिनिया नामक स्थान की देवमूर्तियों के तावीज़ थे, यहूदी नियम संहिता के अनुसार ऐसी वस्तुएँ अपने पास नहीं रख सकते थे । अब सब के सामने यह स्पष्ट हो गया कि वे इसी पाप के कारण मारे गये । इसके बाद उन्होंने प्रार्थना की और यह निवेदन किया कि उनके किये हुए अपराध पूर्णतः क्षमा कर दिये जायें । इसके बाद यूदा ने लगभग दो हज़ार रूपये का चन्दा एकत्र किया जिससे उनके पाप के प्रायश्चित के रूप में बलि चढ़ायी जाये । उसने पुनरुत्थान का ध्यान रखकर यह उत्तम तथा सराहनीय कार्य संपन्न किया । उसका उद्देश्य पवित्र तथा पुनीत था, क्योंकि वह जानता था कि प्रभु-भक्ति में मरनेवालों केलिए एक अपूर्व पुरस्कार सुरक्षित है । इसलिए उसने प्रायश्चित के बलिदान का प्रबन्ध किया, जिससे मृतक अपने पाप से मुक्त हो जायें ।[१] मृतकों की पापमुक्ति केलिए प्रार्थना आज भी क्रिस्तीय लोगों में प्रचलित है । लेकिन कबीर साहित्य में कहने के अनुसार बाइबिल में इसके विरुद्ध कुछ नहीं बताते हैं ।

अन्न छोडकर उपवास करनेवालों को भी कबीर पाखंडी पुकारते हैं और

---

१. पुराना विधान मक्कबियों का दूसरा ग्रन्थ १२:३९-४६

उनकी प्रस्तुत चेष्टा को भी बाह्याचार समझकर उन्होंने पाखंड की संज्ञा दी है । हिन्दू, ब्राह्मण चौबीस एकादशी का व्रत रखते हैं और काजी पूरे एक मास तक रोजा (उपवास) रखते हैं । किन्तु ये हिन्दू-मुस्लिम दोनों शेष ग्यारह महीने क्या करते हैं? कबीरकालीन समाज में हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्मों में उपवास का बोलबाला था । दोनों को कबीर ने फटकारा है । केवल हृदय में निराकार भगवान की भक्ति ही उन्हें ज्ञात थी । वे न पूजा करते थे न नमाज़ पढते थे । परंतु निराकार प्रभु को नमस्कार करते थे । निष्कर्ष रूप में वैष्णव धर्म पर संत कबीर की कोई आस्था नहीं । श्राद्ध,तर्पण आदि पर ये विश्वास नहीं करते थे । उपवास व्रत में उनका विश्वास नहीं था, मुक्ति प्राप्त नहीं होती । उनके मत में ऐसा करने से इन सबको संत कवि पाखंडवाद मानते रहे हैं ।

अन्धविश्वास

समाज में प्रचलित हानिकारक रूढियाँ, परंपराएँ एवं अन्धविश्वास भी समष्टि-हित में बाधा उत्पन्न करते हैं । संत काव्य में इनका विरोध किया गया है । कबीर के समय समाज में यह अवधारणा रही कि मानव निर्मित स्थान में जिसे लोग मंदिर या मस्जिद कहते हैं - ईश्वर निवास करता है । इस अंधविश्वास का खण्डन करते हुए कबीर ने लिखा है –

मसजिद भीतर मुल्ला पुकारे क्या साहिब तेरा बहिरा है ?

जिन विश्वासों और आस्थाओं की कच्ची या पोली भूमिका थी, कबीर उनका विरोध करते थे । काशी में मरने से स्वर्ग प्राप्त होता है प्रस्तुत अन्धविश्वास के उन्मूलन केलिए उन्होंने कहा --

'' चरन विरद कासी कों न देहूँ ,कहै कबीर भल नरकहि जैहूँ । [१]

कबीर ने अपनी आलोचनात्मक आवाज़ केवल धार्मिक अंधविश्वासों के उन्मूलन केलिए ही नहीं उठाई थी, वरन् सामाजिक कुरीतियों और कुप्रथाओं के निवारण केलिए भी उन्होंने इसका उपयोग किया था । कबीर की साधना का आधार प्रेम है। बाह्याचार प्रेम में बाधक होते हैं । इस कारण कबीरदास प्रत्येक प्रकार की उस संस्था का विरोध करते हैं जो प्रेम के मार्ग का रोडा बनती है । इसी कारण उन्होंने विभेदकारी भावनाओं का खुलकर और डटकर विरोध किया है । घूँघट-प्रथा के विरोध में उन्होंने कहा –

रहु रहु रो बहुरिया घूंघट जिनि काढ

घूँघट काढि गई तेरी अगै, उनकी गलै तोहि जिनि लागै । [२]

बेगार की प्रथा कबीर के समय में भी प्रचलित थी वह श्रमजीवियों केलिए बडी घातक थी । कबीर ने बेगार के संबन्ध में भी अपना विरोध व्यक्ति किया –

बैडि बैगारि बुराई थाकी, अनभै पद परकासा । [३]

बाइबिल के अनुसार अन्धविश्वास के द्वारा मनुष्य, ईश्वर की अनन्त शक्ति एवं परमाधिकार को त्यागकर अन्य शक्तियों पर आश्रय करते हैं तद्वारा अपने ही विश्वास को विकृत भी करते हैं । सभी शक्ति एवं भलाई का स्रोत ईश्वर को देने में जब मनुष्य अशक्त होते हैं तब वे अन्धविश्वास करनेवाले बन जाते हैं । 'पुराना

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. १८७
२. वही पृ. ३१९.
३. वही पृ. १८६

विधान' में यों निर्देश करते हैं -'' यदि कोई भूत-प्रेत साधनेवालों या ओझों के पास जायेगा तथा व्यभिचार करते हुए उनका अनुसरण करेगा, तो मैं उस पर अप्रसन्न हो जाऊँगा और उसका उसके समुदाय से बहिष्कार करूँगा । [१] इससे स्पष्ट है कि इस्राएली लोग भी गैर-इस्राएली लोगों के समान अविश्वास एवं अन्धविश्वास की ओर मुडते थे । उनको पत्थरों से मारने का दण्ड देने का उपदेश भी बाइबिल देता है- ''जो पुरुष और स्त्रियाँ भूत-प्रेत की साधना करते हैं या जादू-टोना करते हैं, उन्हें मार डाला जाये । वे पत्थरों से मारे जायेंगे-उनका रक्त उनके सिर पडेगा। ''[२] बाइबिल व्यक्त रूप में आगे भी बताता है कि अंधविश्वास करनेवाला ईश्वर की दृष्टि में घृणित है। [३] बेचारे लोगों को अंधविश्वास में फँसानेवालों से ईश्वर नबी एज़ेकिएल के द्वारा यों बताते हैं -''प्रभु-ईश्वर यह कहता है, उन स्त्रियों को धिक्कार है जो आत्माओं को फँसाने केलिए (बेचारे लोगों को) सबों की कलाइयों पर फीते बाँधती हैं और हर एक कद के लोगों के सिर केलिए पल्ले बनाती हैं ! क्या तुम लोग मेरी प्रजा की आत्माओं का शिकार करोगी ?.....मैं तुम्हारे फीतों के विरुद्ध हूँ जिनसे तुम आत्माओं को फँसाती हो । मैं तुम्हारे बाहों पर से उन्हें तोड दूँगा .....। ''[४] अपने जीवन में कबीर को जो संघर्ष करना पडा था, उसने कबीर की आलोचना को प्रकट बना दिया था । काजी ,मुल्ला, ब्राह्मण, पूजारी आदि अनेक लोगों ने कबीर के सत्योद्घाटन का विरोध किया था । किन्तु उनके स्थिर स्वभाव और अटूट व्यक्तित्व ने उनकी प्रतिभा का पूरा साथ दिया । इस विरोध का परिणाम यह हुआ कि धर्म और समाज के क्षेत्र में कबीर के अनेक बैरी हो गये थे, यह बात उनकी इस उक्ति से प्रामाणित होती है--

---

१. पुराना विधान लेवी-ग्रन्थ २०:६
२. वही २०:२७
३. वही एज़ेकिएल का ग्रन्थ १३:१८-२०
४. पुराना विधान विधविवरण ग्रन्थ १८:९-१४

'' जैसे तारे रैणि के, तेतें बैरी मुझ
घट सूली सिर कंगुरै, तऊ न विसारों तुझ । [१]

कबीर एवं बाइबिल लोगों को एकेश्वर पर विश्वास करने एवं मात्र उनके आगे नतमस्तक होने का आह्वान करते हैं । कबीर एवं बाइबिलकालीन समाज के लोगों ने धर्म का गलत अर्थ लगाया था । दोनों ग्रन्थों में ज्ञानहीन एवं रूढिग्रस्त व्यक्तियों की कटु आलोचना की है क्योंकि वे मानवता के मार्ग में उन्हें बाधक समझते हैं । इन बाधक तत्वों को मिटाकर समाज में भलाई की स्थापना करना ही दोनों ग्रन्थों का लक्ष्य था ।

क्रियाकाण्ड एवं रूढियों का खण्डन

कबीर स्वच्छन्द विचारक थे । उन्होंने अपने मत के समर्थन में धार्मिक सिद्धान्तों के साथ साथ सांसारिक जीवन में काम आनेवाले व्यावहारिक आचार-विचारों का भी आवश्यकतानुसार वर्णन किया है । इसके अतिरिक्त उन्होंने धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में जहाँ कहीं भी प्रगति को रोकनेवाली रूढियों का पालन होते देखा है वहीं उनका दृढता के साथ खंण्डन किया है । उन्होंने बाहरी आडंबरों को बढावा देनेवाले सभी धर्मों की खुलकर आलोचना की है । उन्होंने सभी धर्मों के ठेकेदार बनने का दम्भ करनेवाले पाण्डे-पूजारियों, ढोंगी साधु-फकीरों तथा मुल्लाओं को कस कर फटकारा है ।

भारतीय संस्कृति की एक विशेषता उसमें व्याप्त क्रियाकाण्ड और रूढियों में है । अनेक देवी देवताओं का अनेक प्रकार के क्रियाकाण्डों द्वारा पूजन, अर्चन और

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. २९

प्रसादन होता है । यह सुविदित है कि अध्यात्म-प्रधान भारतीय धीरे धीरे भयंकर क्रियाकाण्ड के आदी हो गए । क्रियाकाण्ड जो कभी मुक्तिसाधन के रूप में आरंभ हुआ था, आगे चलकर उसे ही साध्य मान लिया गया । अनेक प्रकार की रूढियाँ भी सामने आयीं ।

प्रस्तुत विषय पर कबीर ने हिन्दू और मुसलमानों को ही नहीं, योगियों को, कवियों को, व्रतधारियों को और पंडितों को भी फटकारा है क्योंकि उनकी चित्तवृत्तियाँ बहिर्मुखी होती हैं । वे माया मोह में पडे रहते हैं, कभी हृदय में ब्रह्म को ढूँढने का प्रयास नहीं करते । कबीर इनसे बताते हैं –

राम बिना संसार धंध कुहेरा

जे नर जोग जुगति करि जानैं, खोजें आप सरीरा
तिनकूँ मुक्ति का संसा नाही, कहत जुलाह कबीरा । [१]

आगे कबीर समझाते हैं कि 'हरि बिन छूठे सब व्यौहार ''- यदि जीवन में भगवान की भक्ति नहीं की तो अन्य जितनी भी साधना है वह सब व्यर्थ है । जप, तप, पूजा, अर्चना, वेदाध्ययन आदि सब व्यर्थ है –

हरि बिन झूठे सब व्यौहार, केते को ऊकरी गँवार
झूठा जप तप झूठा ज्ञान, रांमनांम बिन झूठा ध्यान । [२]

बाइबिल में भी ऐसे अनेक क्रियाकर्मों का वर्णन एवं उसके विरुद्ध बात देख सकते

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. १९५
२. वही पृ. १९९

हैं जो प्रारंभ में पापमुक्ति का मात्र साधना था बल्कि कालान्तर में वह साध्य के रूप में बदल गया । उपवास, गंभीर प्रर्थना आदि पश्चाताप की स्वीकृति के संकेत हैं। ये सभी ईश्वर की ओर मुडने के आंतरिक निर्णय के संकेत हैं । बाइबिल के अनुसार जब तक ये हमें अच्छे ईश्वरीय जीवन की ओर नहीं ले जाते, ये बाहरी आचरण, उपवास, पश्चाताप एवं लंबी प्रर्थनायें बेकार होगीं । येशु सिखाते हैं कि जरूरतमंदों की सहायता एवं दूसरों को प्रसन्न करके मानव को भलाई में अधिक ध्यान देना है । लेकिन वे चेतावनी देते हैं कि भिक्षा देना, प्रार्थना करना, पश्चाताप या जो भी अच्छा कार्य जब भी हम करते हैं, वह बाहरी दिखावे केलिए नहीं होना चाहिए और न ही दूसरों को प्रभावित करने केलिए । बल्कि ये सब सच्चे हृदय की उपज होनी चाहिए।

कबीरसाहित्य एवं बाइबिल क्रियाकांड एवं रूढियों का समान भाव से खंडन करते हैं । आन्तरिकता या आध्यात्मिकता को पूर्णतः भूलकर मात्र बाह्याचार पर बल देनेवाले, उस प्रकार की अर्थहीन बातें करके समय बरबाद करनेवाले लोगों को दोनें ग्रन्थ फटकारते हैं ।

पुस्तकीय ज्ञान का खण्डन

कबीर के समय में संस्कृत का बोलबाला था । धर्मग्रन्थ लिखने केलिए संस्कृत भाषा को ही उपयुक्त समझा गया था । लेकिन इसी कारण ज्ञान विशिष्ट लोगों तक ही मार्यादित रहा । ज्ञानप्राप्ति केवल ब्राह्मणों का ही एकमात्र अधिकार समझा जाने लगा । साधारण जनता धर्मज्ञान से दूर रही, अज्ञान की गहरी खाई में डूबती रही । अतः धर्म के ज्ञान पर गलत धारणाएँ प्रचलित हुई । अतः कुछ संतों ने संस्कृत छोडकर लोक-भाषाओं को अपनाया । अपने अपने उपदेश केलिए उन्होंने

लोक भाषाओं का अवलंब लिया । कबीर ने पुस्तकी विद्या नहीं पायी थी । पुस्तकीय ज्ञान की व्यर्थता के बारे में भी कबीर ने कहा है । कुछ लोगों की धारणा है कि कबीर पढे लिखे नहीं थे, उन्होंने ' मसि कागद ' का स्पर्श नहीं किया था, इसलिए उन्होंने शास्त्रों की निन्दा की है । प्रस्तुत आरोप तथ्यहीन है क्योंकि आत्मतत्व की उपलब्धि मात्र पुस्तकीय ज्ञान से संभव नहीं -यही बात कबीर ने कही थी । ईसामसीह के बारे में भी यहूदी लोग उनकी अशिक्षा के बारे में कहते हैं । एक पर्व के आधे दिन बीत जाने पर ईसा मन्दिर जाकर शिक्षा देते थे । यहूदी अचम्भे में पडकर कहते थे, ''इसने कभी पढा नहीं । इसे यह ज्ञान कहाँ से प्राप्त हुआ ? '' ईसा ने उन्हें उत्तर दिया '' मेरी शिक्षा मेरी नहीं है । यह उसकी है, जिसने मुझे भेजा । यदि कोई उसकी इच्छा पूरी करने का संकल्प करेगा, तो वह यह जान जायेगा कि मेरी शिक्षा ईश्वर की ओर से है अथवा मैं उसकी ओर से बोलता हूँ । जो अपनी ओर से बोलता है वह अपनेलिए सम्मान चाहता है, किन्तु जो उसकेलिए सम्मान चाहता है, जिसने उसे भेजा, वह सच्चा है और उसमें कोई कपट नहीं। ''[१] संसार की बुद्धिमानी और ईश्वरीय प्रज्ञा का विवेचन करते हुए आगे संत योकोब यों बताते हैं -'' आप लोगों में जो ज्ञानी और समझदार होने का दावा करते हैं, वह अपने सदाचार द्वारा, अपने नम्र तथा बुद्धिमान व्यवहार द्वारा इस बात का प्रमाण दें। यदि आपका हृदय कटु ईर्ष्या और स्वार्थ से भरा हुआ है तो डींग मार कर झूठा दावा मत करें । इस प्रकार की बुद्धि ऊपर से नहीं आती, बल्कि वह पार्थिव,पाशविक और शैतानी है । जहाँ ईर्ष्याऔर स्वार्थ है, वहाँ अशान्ति और हर तरह की बुराई पाई जाती है । किन्तु ऊपर से आई हुई प्रज्ञा मुख्यतः पवित्र है और वह शान्तिप्रिय, सहनशील, विनम्र, करुणामय, परोपकारी, पक्षपातहीन और निष्कपट भी है ।'' [२] उनकी राय में शास्त्र-ज्ञान में पारंगत व्यक्ति आत्म-लाभ नहीं कर सकता । आत्म-

---

१. नया विधा संत जोन ७:१४-१८

२. वही संत याकोब ३:१३-१७

लाभ पाने के उद्देश्य से कबीर सत्संगति करते थे । कबीर ने यद्यपि कुछ लिखा नहीं तो भी उन्होंने जो उपदेश दिया है वह लोकभाषा में ही दिया है । उनकी भाषा के बारे में डॉ.गोविन्द त्रिगुणायत जी लिखते हैं- '' कबीर ने किसी एक भाषा का प्रयोग नहीं किया है । उनकी बानियों में हिन्दी, उर्दू, फारसी आदि कई भाषाओं का सम्मिश्रण तो मिलता है । साथ खडी, अवधी, भोजपुरी, पंजाबी, मारवाडी आदि उपभाषाओं का भी प्रचुर प्रयोग किया गया है ।'' [१]

कबीर ने उपदेश केलिए देश, काल, परिस्थिति के अनुसार भाषा का प्रयोग किया है । उन्होंने लोक भाषा का आदर किया है । संस्कृत के बारे में तो कबीर का स्पष्ट मत था --

संसकिरत कूपजल कबीरा, भाषा बहता नीर ।''

सामान्य जन को लक्ष्य करके साधारण भाषा का प्रयोग करनेवाले कबीर के समान बाइबिल में देख सकते हैं कि ईसा भी आम जनता के आगे सरल भाषा का प्रयोग करते थे । सुसमाचार में बताते हैं - '' वह बहुत-से दृष्टान्तों द्वारा लोगों को उनकी समझ के अनुसार सुसमाचार सुनाते थे । वह बिना दृष्टान्त के लोगों से कुछ नही कहते थे, लेकिन एकान्त में अपने शिष्यों को सब बातें समझाते थे ।'' [२] याने ईसा ने साधारण जनता के सामने दीपक का दृष्टान्त, नाप का दृष्टान्त, बढनेवाले बीज का दृष्टान्त, राई का दाना बोनेवाले का दृष्टान्त आदि के द्वारा अपनी शिक्षा प्रस्तुत करने का प्रयास किया । [३]

---

१. डॉ.गोविन्द त्रिगुणायत कबीर की विचारधारा पृ. ३७२
२. नया विधान सन्त मरकोस ४:३३-३४
३. वही संत मात्यु ११:२५

कबीर के अपने समय में लोग पांडित्य का संबन्ध पुस्तक पाठ से जोडते थे । पुस्तक-पाठ विद्या पढने का समानार्थक समझा जाता था । विद्या अपने मौलिक अर्थ को खोकर उसका संबन्ध वाद-विवाद से भी जोड दिया गया था । जो लोग अनेक पुस्तकें पढ लेते थे और उन्हें जिह्वागत बना लेते थे उनको लोग विद्वान कहते थे। वे वाद-विवाद करने में अपना गौरव समझते थे । कबीर इस वाद विवाद के विरोधी थे । जो विद्या वाद-विवाद को जन्म देती है कबीर उसको कोई महत्व नहीं देते । उनको कबीर पागल समझते हैं । इसलिए वे कहते हैं –

विद्या न पढूँ वाद नहीं जानूँ
हरि गुण कहत सुनत बौरानूं । [१]

ईसा की वाणी सुनने या उनके कहे अनुसार व्यवहार करने में यहूदियों में अधिक लोग तैयार नहीं थे । ईसा की वाणी पश्चात्ताप की प्रेरणा देनेवाली थी । पंडितों एवं शास्त्रियों द्वारा तिरस्कृत प्रस्तुत सन्देश सुनने एवं अपनाने केलिए अनेक अशिक्षित, पापी एवं दरिद्र लोग आ गये । यह देखकर ईसा पिता ईश्वर की स्तुति करने लगे - पिता ! स्वर्ग और पृथ्वी के प्रभु ! मैं तेरी स्तुति करता हूँ, क्योंकि तू ने इन सब बातों (रक्षा का संदेश) को ज्ञानियों और समझदारों से छिपाकर निरे बच्चों के सामने प्रकट किया है । [२] यहाँ ईसा ने पुस्तकीय ज्ञान-प्राप्त पंडितों एवं धार्मिक नेताओं की ज्ञान की व्यर्थता दिखायी है और साथ ही बाह्य रूप से अनभिज्ञ होने पर भी इन दरिद्र मानवों के अन्तरिक इन्द्रियों या ज्ञानेद्रियों की महिमा भी दिखायी है।

पुस्तक-पाठ से कबीर को चिढ थी । क्योंकि उन्होंने यह देखा कि पुस्तकें

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. १३५
२. नया विधान संत मात्यु ११:२५

इधर उधर का ज्ञान दे सकती हैं वे प्रेम को जगाने में असमर्थ हैं । इसको वे भ्रम में डालनेवाला ज्ञान मानते थे । इन्हीं पुस्तकों के सहारे पंडितों ने अबोध जनता को अनेक प्रकार के अंधविश्वास और आचारों में फंसाकर अनन्त काल तक शोषण किया था । इसलिए कबीरदास बहुत स्पष्ट और जोरदार शब्दों में बराबर नसीहत देते हैं कि पढने के फेर में मत पडो । यह ज्ञान जीवन में उलझन पैदा करता है । इसलिए कबीर पुस्तक-पाठ के स्थान पर नाबन अक्षरों में से भी केवल ' ररा और ममा अर्थात् राम के ध्यान की आवश्यकता पर ही ज़ोर देते हैं —

कबीर पढिवा दूरि करि, पुस्तक देइ बहाइ
बावन आषिर सोधि करि, ररै ममै चित लाई । [१]

कबीर फिर कहते हैं कि सारा संसार पुस्तकें पढ पढ कर मर गया मगर कोई पंडित नहीं बन पाया परंतु प्रेम का ढाई ही अक्षर जिसने पढा है वह पंडित हो गया है -

पोथी पढि पढि जग मुवा पंडित भया न कोय
ढाई आखर प्रेम का पढे सो पंडित होय । [२]

कबीर ने पुस्तकों का अनुशीलन तो नहीं किया था, परन्तु निरन्तर घ्यानमग्न रहकर चित्त का शोध एवं भगवान को समझने की कोशिश अवश्य की थी । उनके अन्तर्मुखी शोध का ही सुफल है कि उन्होंने प्रेम के महत्व को बहुत कम शब्द में बहुत प्रभावनशाली ढंग से प्रस्तुत किया । वे प्रेम को ही सब कुछ मानते थे, जीवन का परम लक्ष्य एवं सफलता भी प्रेम में ही मानते थे । उनके अनुसार प्रेम ही भगवान था और वे मानते थे कि चूँकि भगवान व्यक्ति में रहता है, इसलिए व्यक्तिमात्र से प्रेम

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २४१
२. वही पृ. २४१

रखना अत्यन्त आवश्यक है ।

ब्रह्मतत्व केवल पुस्तक ज्ञान से जाना नहीं जा सकता । वैसा तो '' घर घर में पुस्तकें ढोनेवालों की कमी नहीं है । नगर नगर में बडे बडे महान् पंडितों की मंडलियाँ विद्यमान हैं, वन वन में तपस्वियों के झुंड पाये जाते हैं परंतु परब्रह्म को जाननेवाला और उसको पाने का प्रयत्न करनेवाला कोई नहीं पाया जाता ।[१] बाइबिल भी निस्सन्देह यही सिखाता है कि पुस्तकीय ज्ञान नही बल्कि प्रेम ही मुख्य है । जीवन में बाकी सब कुछ है लेकिन प्रेम का अभाव है तो इस ज्ञान से कुछ फायदा नहीं । जीवन में ज्ञान से श्रेष्ठ प्रेम ही है । संत पोल बताते है- '' मैं भला ही मनुष्यों तथा स्वर्गदूतों की सब भाषाएँ बोलूँ, किन्तु यदि मुझ में प्रेम का अभाव है, तो मैं खनखनाता घडियाल या झनझनाती झाँझ मात्र हूँ। मुझे भले ही भविष्यवाणी का वरदान मिला हो, मैं सभी रहस्य जानता होऊँ, मुझे समस्त ज्ञान प्राप्त हो गया हो....किन्तु यदि मुझ में प्रेम का अभाव है, तो मैं कुछ भी नहीं हूँ ।''[२] यहाँ संत पोल दिखाते हैं कि प्रेम समस्त ज्ञान से परे है ।

सभी संत कवि वेद शास्त्रों को झूठा मानते थे । कबीर स्वयं भी वेदों की पुस्तकें रटकर चलने में विश्वास नहीं करते । उनकी राय में वेद शास्त्र की पुस्तकें पढने से ज्ञान नहीं आता । एक और वाणी मे कबीर बताते हैं कि वे शास्त्र-पठन के विरुद्ध नहीं हैं। शास्त्रज्ञान अच्छा है । किन्तु यदि वह केवल बौद्धिक स्तर पर रह गया, जीवन का अंग न बन सका, साधना में अवतरित न हो सका तो वह किस काम का ? पढने से कहीं अधिक उपयोगी है -साधना । इसलिए कबीर राम-नाम से प्रेम करने का आह्वान करते हैं । इसके फलस्वरूप शायद लोग तुम्हें अनपढ समझकर

---

१. पं.हज़ारी प्रसाद द्विवेदी कबीर पृ. १६४

२. संत पोल कोरिन्थियों के नाम पहला पत्र १३:२

तुम्हारी निन्दा करते रहें । कबीर व्यक्त करते हैं कि अनपढ राम का भक्त, पढे हुए किन्तु भक्तिहीन, साधनाहीन व्यक्ति से कहीं अच्छा है । यथा–

मैं जानौ पढिबौ भलो, पढिबा तैं भल जोग
भगति न छोडौ रांम की, भावै निंदउ लोग । [१]

यह ज्ञान लोगों को अन्धा बना देता है । इसलिए कबीर कहते हैं –

सो ज्ञानी जो आप विचारे

कबीर वेद, कुरान किसी को नहीं मानते । इन सबको झूठा मानते हैं –

'' वेद कत्तेब दोइ फंद वारों ते फन्दे पर आप विचारा
ब्रह्मा, विष्णु महेसर कहिये, इन सिर लागी काई
इन्हीं भरोसे मत होइ रहियों, इनहुं मुक्ति न पाइ ।

कबीर ने जब वेद-कुरान का विरोध किया तो वह धर्म ग्रन्थों का विरोध न होकर विद्यावाद' का विरोध रहा । कबीर ने देखा था कि काजी, मुल्ला और पुरोहित केवल शब्दों के साथ खिलवाड करते हैं । वे लोग पांडित्य के अहंकार में समाज के अन्य वर्गों पर अपना श्रेष्ठत्व प्रतिपादन करने का प्रयास करते हैं । कबीर एक स्वतंत्र विचारधारा के व्यक्ति रहे । कबीर '' कागज़ की लिखी की जगह आँखन की देखी पर विशेष विश्वास करते हैं । कबीर ने सामाजिक और शास्त्रीय बन्धनों को हटाकर एक नए मानव-धर्म की स्थापना की है ।

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल, साधना पर इतना अधिक बल देते हैं कि उन्हें पोथियों को पढने से विरक्ति हो जाती है । पुस्तकों की सफलता इसी में है कि वे

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ.२४१

मनुष्य को कर्तव्य-पथ पर अग्रसर करें । और जो व्यक्ति स्वयं अपनी इच्छा-शक्ति के बल पर साधना में तल्लीन रह सकते हैं, उन्हें पुस्तकों की कोई ज़रूरत नहीं । अध्ययन के द्वारा मनुष्य अपनी मानसिक शक्तियों को उद्‌बुद्ध करने का प्रयास करता है और इन्द्रिय-संयम का अभ्यास करता है । जो निरंतर ईश्वर की भक्ति में लीन है उसकेलिए पोथियों का कोई उपयोग नहीं है ।

करनी बिना कथनी पर परिहास

लोग कबीर को अक्खड कहते हैं । इसके मुख्य दो कारण हैं । एक तो यह कि कबीर स्पष्टवादी हैं दूसरा कारण यह है कि वे जो कुछ कहते हैं अपने जीवन में कर दिखाते हैं । करनी और कथनी दोनों के संतुलन को वे आचरण की कसौटी मानते हैं । इसलिए तो वे कभी कोई गिडगिडानेवाली बात नहीं कहते या कोई लगी लिपटी बातें नहीं करते । उनकी स्पष्टवादिता उनकी वाणी को मुक्त कर देती है। वे जो बात कहते हैं वह सत्य पर आधृत, तीर सी-सीधी, किन्तु वैसी ही तीक्ष्ण भी हो सकती है । जो बात वे किसी सामान्य दुराचारी को कह सकते हैं वही किसी दुराचारी पंडित या राजा को भी कह सकते हैं और वही तीखी बात वे किसी मुल्ला और किसी काजी को भी सुना सकते हैं । स्पष्टवादिता के कारण उनकी बातें लगी-लिपटी नहीं होतीं । वे न तो ऐसी बातें कहते हैं जिनमें कोई घुमाव-फिराव या दुराव हो और न ऐसी कहते हैं जो करनी के घाट न उतर सके ।

याने करनी और कथनी का समझौता भी कबीर को अभिप्रेत है । आचरणहीन कथन व्यर्थ है । कबीर पूछते हैं –

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २४१

कथनी कथी तौ क्या भया, जौ करनीं नां ठहराइ
कालबूत के कोट ज्यौं, देखत ही ढहि जाइ । [१]

याने बडे बडे सिद्धान्तों की बातें और लंबे-लंबे उपदेश आदि से क्या लाभ, यदि उन्हें कार्यरूप में परिणत करके जीवन में चरितार्थ न किया जाय । कबीर के अनुसार वे कालबूत के ढेर के समान है, जो क्षण-भर में ही नष्ट हो जाते हैं । जीवन में उनका कोई उपयोग नहीं । बाइबिलकालीन समाज में ऐसे लोगों की भरमार थी जो बहुत कुछ कहते थे और उपदेश देते थे लेकिन अपने जीवन में इनका पालन नहीं करते थे । मनुष्य बहुधा आंतरिक परिवर्तन के विषय में भूल जाते हैं और बाह्य कार्यों में व्यस्त रहते हैं । बाहरी कर्म हृदय में कोई सुधार या परिवर्तन नहीं ला सकते । बाइबिल के अनुसार हृदय परिवर्तन के बिना किया जाने वाले सारे प्रयत्न निरर्थक ही हैं, दिखावा मात्र हैं । 'नया विधान' में कहा गया है -'' जो लोग मुझे प्रभु ! प्रभु ! कहकर पुकारते हैं, उनमें सब के सब स्वर्गराज्य में प्रवेश नहीं करेंगे । जो मेरे स्वर्गिक पिता की इच्छा पूरी करता है, वही स्वर्गराज्य में प्रवेश करेगा । उस दिन बहुत से लोग मुझ से कहेंगे, प्रभु क्या हमने आपका नाम लेकर भविष्यवाणी नहीं की ? आपका नाम लेकर अपदूतों को नहीं निकाला ? आपका नाम लेकर बहुत-से चमत्कार नहीं दिखाये ? तब ईसा ने उत्तर दिया - मैंने तुम लोगों को कभी नहीं जाना । कुकर्मियों मुझसे दूर हटो । [२] प्रस्तुत अवतरण के द्वारा ईसा यही दिखाते हैं कि मानवीय स्वार्थपरता, घमंड ,सांसारिक सुख सुविधाओं की चिन्ता छोडे बिना और परोपकार, दया, करुणा आदि भावों से लोगों की सेवा- शुश्रूषा किये बिना जो सदा प्रार्थना में निरत दिखाई पडता है उनकी प्रार्थना ईश्वर के आगे

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २४१
२. नया विधान संत मात्यु ७: २३

अस्वीकार्य है । जीवन में कथनी के अनुसार करनी पर भी बल देने का आदेश बाइबिल देता है । एक और वाणी द्वारा ईसा जनसमूह तथा अपने शिष्यों को यही उपदेश देते हैं -'' शास्त्री और फरीसी मूसा की गद्दी पर बैठे हैं, इसलिए वे तुम लोगों से जो कुछ कहें, वह करते और मानते रहों, परंतु उनके कर्मों का अनुसरण न करो, क्योंकि वे कहते तो हैं, पर करते नहीं । वे बहुत-से भारी बोझ बाँध कर लोगों के कन्धों पर लाद देते हैं, परंतु स्वयं ऊँगली से भी उन्हें उठाना नहीं चाहते''[१] यहाँ भी करनी बिना मात्र कथनी को महत्व देनेवाले नेता लोगों पर ईसा आक्रोश करते हैं और लोगों को चेतावनी भी देते हैं ।

जिन व्यक्तियों की कथनी-करनी में सामंजस्य नहीं है, वे वास्तव में मनुष्य नहीं है । कबीर की राय में उन लोगों की गति उस कुत्ते के समान है जो भौंकता बहुत है, किन्तु करता कुछ नहीं । वे अपने कर्मों के द्वारा बँधे हुए कालग्रस्त रहते हैं।

जैसी मुख तैं निकसै, तैसी चालै नांहि
मानुख नहीं ते स्वांन गति, बांधे जमपुर जांहि । [२]

इसलिए कबीर का उपदेश है कि 'कथनी और 'करनी ' में तालमेल होना चाहिए। वे दोनों के साम्य का प्रबल आग्रह रखते थे ।

कथनी और करनी में अन्तर देखकर ही उन्होंने पांडे, काजी और मुल्ला को अस्वीकार कर दिया था । पंडित को संबोधित कर अपने एक पद में वे कहते हैं कि ' पंडित , तुम्हें क्या कुबुद्धि लग गई है ? अरे अभाग ा! अगर राम को नहीं जप सका तो परिवारसहित भवसागर में डूब मरेगा । वेद- पुराण पढने से क्या लाभ ? गधे

---

१. नया विधान संत मात्यु २३:१-४
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २४२

की तरह चन्दन के बोझ का भागी बनकर तुमने क्या पा लिया ? जीवहत्या करते हो और उसे धर्म कहकर विज्ञापित करते हो। भाई, फिर अधर्म किसे कहोगे ? स्वयं को तो मुनिवर कह लेते हो, पर कसाई किसे कहोगे ?

''पंडिआ कवन कुमति तुम लागे
बूड़हुगे परिवार सफल सिउं, रांम न जपहु अभागे
वेद पुरांन पढे क्या गुनु खर चंदन जस मारा

रांम नांम की गति नहिं जांनीं कैसे उतरसि पारा
जीव बधहु सु धरमु करि थापहु काकौ कहौं सकाई ।'' [१]

हिन्दू धर्म में जो स्थान ब्राह्मण का है मुसलमानों केलिए मुल्ला इसी तरह की कथनी-करनी की दूरी देखकर वे मुल्ला से भी खुदाई-न्याय की बात पूछ लेते हैं - '' मुल्ला, तुम्हीं खुदाई-न्याय की बात बताओ । तुम लेखे के अनुसार तो सभी जीवों को एक मानते हो, पर व्यवहार में मुर्गी भी मारते हो और बकरी भी और अपने इस कर्म को उचित सिद्ध करने केलिए हक्क-हक्क (उचित) भी बोलते हो । भला बताओ तो जब सभी जीव साई के प्यारे हैं, फिर तुम्हारा उद्धार कैसे होगा ?

मुल्ला कहहु निआउ खुदाई
इहि बिधि जीव का भरम न जाई

कुकडी मारै बकरी मार हक्क हक्क करि बोलै
सबै जीव सांई के प्यारे उबरहुगे किस बौलै । [२]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ.१११
२. वही पृ.१०६.

कबीर के जीवन में बिलकुल आडंबर नहीं था । उनकी कथनी और करनी के मध्य कोई अंतर नहीं था । वह धर्म के नाम पर प्रचलित दंभ एवं कपट को देखकर दुखी होते थे । इसी कारण उन्होंने विविध संप्रदायों का खण्डन करके उन्हें सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया । कबीर को कथनी और करनी में जहाँ भी भेद दिखाई पडा, वे उसे बर्दाश्त नहीं कर सके । तीर्थ और व्रत, माला और तिलक, जप और तप कुछ भी हो अगर वह करनी के मार्ग में खडा होता है तो कबीर उसे अस्वीकार कर देते हैं । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल सिखाते हैं कि समाज की उन्नति कथनी में नहीं करनी पर निर्भर है । जो कहने में आगे है उसमें करने का भी दायित्व है ।

बहुदेवोपासना एवं सुधारात्मक विचार

संत-साहित्य के सभी संत प्रतिमा पूजने के घोर विरोधी थे । निर्गुण ब्रह्म की उपासना करनेवाले ये लोग भगवान की मूर्तियों में विश्वास नहीं रखते थे। जिस परमात्मा का कोई आकार नहीं, देशकाल का जिसके लिए कोई आधार नहीं, उसकी मूर्ति कैसी हो सकती है ? कबीर ने जगह-जगह पर मूर्तिपूजा के प्रति अपनी अरुचि प्रदर्शित की है । जितने मानव उतने देव की स्थिति समाज में थी। समाज की संपूर्ण स्थिति को कबीर ने देखा और परखा । लोग धोखे में न फंसे यही इच्छा कबीर को थी । इसलिए उन्होंने लोगों को स्मरण दिलाया कि पत्थर की पूजा निरर्थक है । धार्मिक बाह्याचार के कट्टर विरोधी कबीरदास ने जनता को भ्रमजाल से निकालने केलिए कहा है कि पत्थर को पूजने से क्या लाभ जो जीवन-पर्यन्त जबाब नहीं देता उससे आशा रखना तो अपनी ही शोभा कम करना है –

पाहन कौं क्या पूजि, जो जनमि न देइ ज्वाब
अंधा नर आसामुखी, यौंही खोवै आब । [१]

बाइबिल की दस आज्ञाओं (ten commandments) में एक आज्ञा इस प्रकार है-'' मैं प्रभु, तुम्हारा ईश्वर हूँ । मैं तुमको मिस्र देश से, गुलामी के घर से निकाल लाया। मेरे सिवा तुम्हारा कोई ईश्वर नहीं होगा । अपने लिए कोई देवमूर्ति मत बनाओ । उन मूर्तियों को दण्डवत् कर उनकी पूजा मत करो ।'' [२] लेकिन निर्गमन-ग्रन्थ में हम देखते हैं कि मिश्रियों के चंगुल से छुटकारा प्राप्त कर लेने के बाद मरुभूमि से होकर गुजरते वक्त इस्राएली अपने मुक्तिदाता परमेश्वर को भूल गये और उसके विरुद्ध हर तरह के पाप करने लगे । परमेश्वर ने मूसा नबी द्वारा समय समय पर इस्राएलियों को चेतावनी दी । परंतु इस्राएली कदम कदम पर परमेश्वर का तिरस्कार करके सियोन पर्वत के निकट एक सोने का बछडा बनाकर उसे अपना परमेश्वर मानकर उसकी आराधना करने लगे और बलि चढाकर कहा —'' इस्राएल यही तुम्हारा देवता है यही तुम्हें मिस्र से निकाल लाया। इस प्रकार उन्होंने अपने उद्धारकर्ता प्रभु - का तिरस्कार किया । [३] स्तोत्र-ग्रन्थकार भी पूछते हैं - '' राष्ट्रों की देवमूर्तियाँ चाँदी और सोने की हैं, वे मनुष्यों द्वारा बनायी गयी हैं । उनके मुख हैं, किन्तु वे नहीं बोलतीं, आँखें हैं, किन्तु वे नहीं देखतीं, उनके कान हैं किन्तु वे नहीं सुनतीं और वे साँस भी नहीं लतीं । जो उन्हें बनाते हैं, वे उनके सदृश बनेंगे और वे सब भी, जो उन पर भरोसा रखते हैं । [४] कबीर के समान बाइबिल में स्तोत्रग्रन्थकार भी पत्थर से बननेवाली देवमूर्तियों की निस्सहायता दिखाकर लोगों से यही अनुरोध करते हैं कि मानवनिर्मित इन मूर्तियों पर भरोसा रखकर उनके आगे नतमस्तक न हों । वह मूर्खता है ।

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २२५
२. पुराना विधान निर्गमन-ग्रन्थ २०:१-५
३. वही ३२:४ ४. पुराना विधान स्तोत्र-ग्रन्थ १३५:१५-१८

कबीर ने देखा कि लोग मूर्तियों को पत्थर न मानकर देव मान बैठे हैं अपनी अपनी इच्छा से अनेक देवों की कल्पना करके न केवल देव-एकता को नष्ट कर बैठे हैं, अपितु बहुदेवोपासना से सामाजिक एकता को भी खण्डित कर चुके हैं ।

सेवै सालिगरांम कौं, मन की भ्रांति न जा
सीतलता सुपिनैं, नहीं दिन दिन अधिकी लाइ।'' [१]

वे बताते हैं पत्थर के देवता के पूजन से मन की भ्रांति दूर नहीं होती । इससे मानसिक शान्ति की प्राप्ति के स्थान पर अशान्ति बढती है ।

कबीर ने मूर्तिपूजा का घोर विरोध बार बार किया है । वस्तुतः उनका ब्रह्म समस्त बन्धनों से परे था तथा मूर्तिपूजा उनके मन में आध्यात्मिक अनुभूति की प्राप्ति में सहायक नहीं हो सकती थी । कबीर स्पष्ट रूप में बताते हैं कि मैं जितनी भी आत्माओं को देखता हूँ, उतने ही शालग्राम अर्थात् विष्णु को देखता हूँ । मानव के भीतर जो ईश्वरांश, आत्मा विद्यमान है, वस्तुतः वही पूजनीय है । प्रत्यक्ष देव तो वह संत है जिसने उस आत्मा से अपना तादाम्य स्थापित कर लिया है । वह पूजनीय है । कबीर बताते हैं मेरी निष्ठा भी उसी में लगी हुई है । पत्थर से मेरा क्या प्रयोजन ?

जेता दीसै आतम, तेता सालिगराँम
साधू प्रतषि देव हैं, नहि पाथर सूँ काँम ।'' [२]

हिन्दुओं में व्याप्त मूर्तिपूजा की खोलकर भर्त्सना करते हुए कबीर बताते हैं

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २२६.१०
२. डॉ.जयदेव सिंह कबीर वाङमय खंड - २ पृ. १८९

कि निरंजन और निराकार ब्रह्म की मूर्ति गढ़ कर पूजा करने की बात सर्वथा अस्वाभाविक और असंगत है । एक पददलित पत्थर को ईश्वर मानना सर्वथा मूर्खता है । इस प्रकार निर्गुणवादी कबीर ने इन बहुदेववादियों से एकेश्वरवाद का संदेश सुनाया और बहुदेववाद का विरोध किया । निराकार ब्रह्म की मूर्ति गढ कर पूजा करने वालों के बारे में बाइबिल यों बताते हैं - अभागे हैं वे लोग, जिनकी आशा निर्जीव वस्तुओं पर आधारित है । जिन्होंने मनुष्य के हाथों की कृतियों को देवता माना है पशुओं की मूर्तियों को, सोने और चाँदी की कलाकृतियों को या प्राचीनकाल के गढे हुए पत्थर को । [१] इन निर्जीव मूर्तियों का निर्माण बढई किस प्रकार करते हैं इसके बारे में बाइबिल यों बताता है - कोई बढई उपयुक्त पेड चुनकर उसे गिरता, चतुराई से उसकी छाल उतारता और कौशल से उसे गढकर कोई घरेलू सामान बनाता है । वह लकडी की काट-छाट से भोजन पकाता और खा कर तृप्त हो जाता है । जो रद्दी बच गया वह उस में से एक टेढी गाँठदार लकडी उठाता है और फुरसत के समय चतुराई से काट-काट कर कोई रूप देता है- वह उससे मनुष्य की मूर्ति बनाता है या किसी तुच्छ पशु की प्रतिमा । वह उस पर गेरू लगाता, लाल रंग पोतता और उसका हर दोष छिपाता है । वह उसके लिए एक उपयुक्त निवास बनाता, उसे दीवार पर लगाता है और कील से ठोक देता है। फिर बाइबिलकार उस मूर्ति की निस्सहायता का परिहास करते हुए बताते हैं - '' वह सावधानी से उसे गिरने से बचाता है, क्योंकि वह जानता है कि वह अपने को संभाल नहीं पाती, वह मात्र मूर्ति है और उसे सहारे की आवश्यकता होती है । यदि मनुष्य संपत्ति, विवाह या सन्तोष कोलिए प्रार्थना करता है, तो उसे एक निर्जीव वस्तु को संबोधित करने में लज्जा का अनुभव नहीं होता । [२] मूर्तिपूजा की व्यर्थता दिखाने

---

१. पुराना विधान प्रज्ञा-ग्रन्थ १३:१०
२. वही १३:१६-१७

केलिए आगे भी प्रज्ञाग्रन्थकार बताते हैं- जो शक्तिहीन है, वह उससे स्वास्थ्य माँगता हैं, जो मृत है, वह उससे जीवन माँगता है, जो निस्सहाय है, वह उससे सहायता चाहता है, जो चल नहीं सकता, वह उससे शुभ यात्रा चाहता है । वह अपनी जीविका, अपने परिश्रम और अपने हाथों की सफलता केलिए एक ऐसी वस्तु से सहायता माँगता है, जिसके हाथ नितान्त शक्तिहीन है । [१] कबीरसाहित्य एवं बाइबिल से स्पष्ट हैं कि उस समय के समाज में मूर्तिपूजा की भरमार थी । मूर्ति का दिन-प्रतिदिन विकास होता रहता था । लेकिन दोनों ग्रन्थ सिखाते हैं कि मानव विकास केलिए मूर्तिपूजा को त्यागना है । मनुष्य की सेवा ही ईश्वर की पूजा है । मनुष्य की सेवा करने से समाज में मंगल संभव है । कबीर तो इन लोगों को व्यभिचारिणी स्त्री के समान बताते हैं जो अपने का जारों पर आसक्त रखती हैं–

नारि कहावै पीव की, रहै और संग सोइ
जार मीत हृदया बसै, खसम खुसी क्यों होइ ।'' [२]

जिस प्रकार पत्नी का व्यभिचार पति को पसंद नहीं होता, उसी प्रकार अन्य भक्ति परमात्मा को प्रिय नहीं होती । इसलिए कबीर ने हिन्दू-मुसलमान दोनों को सावधान किया है और केवल राम की पूजा करने का आदेश दिया है ।

''कहै कबीर एक राम जपहुरे हिन्दू तुरक न कोइ
हिन्दू तुलक कर्ता एकै तागति लखि न जाई ।

आगे भी वे बताते हैं–

---

१. पुराना विधान प्रज्ञा-ग्रन्थ १३:१८-१९
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १७५

''पाहन पूजै हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहार
ताते यह चाकी भली पीस खाय संसार । [१]

पत्थर की पूजा से क्या लाभ जिससे किसी का हित-साधन न हो सके । उपयोगिता एक आवश्यक गुण है, जो पूजित मूर्ति से अधिक किसी चक्की के पत्थर में पायी जाती है । क्योंकि यह पीसने के काम आती है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल ने अनेक बार मूर्तिपूजा की कटु आलोचना की है । पत्थर की मूर्ति की पूजा करने में समय नष्ट करने के बदले जीवित प्राणियों की सेवा करने से सामाजिक प्रगति हो सकती है । मानव सेवा ही समाज-सेवा और वही ईश्वर-पूजा है । मनुष्य की सेवा से समाज संगठन हो जाता है पत्थर की पूजा से कोई समस्या हल नहीं होती ।

पंडितों की पवित्रता का ढोंग

कबीर यह देखकर अत्यन्त क्षुब्ध थे कि धर्म के नाम पर पूरा समाज पाखण्ड और बाह्याडंबर से ग्रस्त था । हिन्दू-धर्म में अनेक पाखण्ड जुड गये थे । इन कर्मकाण्डों के संचालक पण्डित थे पांडे, जो जनता को अनेक तंत्रों के आकर्षण से मुग्ध करते थे । इन कर्मकाण्डों की एक पुरानी प्रथा थी जिसका निर्वाह करना सामाजिक प्रतिष्ठा की बात थी । इसलिए सबको उन रीति-रिवाजों में चलना पडता था । ये पण्डित दूसरों से परसेवा, पर-उपकार, दान, पुण्य आदि की बातें करते थे और इस प्रकार की शिक्षा देते थे पर स्वयं इससे दूर रहते थे । [२]

पंडित सेती कहि रहा भीतरि भेदा नांहि
औरों कौं परमोधतां, गया मुहरका मांहि । [३]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २२५
२. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. २९
३. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २१५

बाइबिलकालीन समाज की स्थिति इससे भिन्न नहीं थी । वहीं की यहूदी जाति में पाखण्डता की अधिकता थी । वे भी कबीर कालीन पण्डित, पांडों के समान लोगों को विविध प्रकार की शिक्षा देते थे लेकिन उनके अनुसार जीवन बिताने में असमर्थ थे । सुसमाचार में ईसा फरीसियों एवं शास्त्रियों के साथ कटु वाद-विवाद में व्यस्त देख सकते हैं । नियमों के विस्तृत ज्ञान के कारण उन्हें स्वयं पर गर्व था तथा अपनी कर्तव्य-निष्ठा एवं आज्ञाकारिता के कारण ईश्वर द्वारा बचाये जाने का वे दावा करते थे । उनकी प्रस्तुत चेष्ठा देखकर येशु फरीसियों एवं शास्त्रियों से सावधान रहने तथा उनके पाखंड का अनुसरण न करने की चेतावनी देते हैं । क्योंकि जो कुछ भी वे करते थे दिखावे केलिए ही करते थे । वे हमेशा उत्तम आसनों पर बैठने की इच्छा रखते हैं उन्हें भोजों में प्रथम स्थान पर बैठना तथा बाजारों में प्रणाम-प्रणाम सुनना पसंद था । जो कुछ भी शिक्षा वे लोगों को देते थे उसका ज़रा भी पालन वे नहीं कर सके ।

यहाँ कबीर बताते हैं कि पंडित को अनेक प्रकार से उपदेश दिया । बल्कि उसके हृदय में उपदेश का मर्म प्रवेश न कर सका । परिणाम यह हुआ कि वह सदा शब्दजाल में ही पडा रहा । वह औरों को तो जगाने केलिए उपदेश देता रहा, किन्तु उसने स्वयं मर्म को समझने की चेष्टा न की । परिणाम यह हुआ कि वह केवल ऊपरी नेतागिरी में ही रह गया और उसी के कारण विनाश को प्राप्त हो गया। इसलिए कबीर ने इन ब्राह्मणों के पाखण्ड को देखते हुए कहा था कि ब्राह्मण जगत का गुरु है साधु नहीं, क्यों वह चारों देवों के अध्ययन में उलझ पुलझ कर रह जाता है । [१] इन पंडितों में पवित्रता का ढोंग बहुत था पर दैनिक जीवन के व्यापार से वे उतरे हुए थे । ये पण्डित पानी तो छान कर पीते थे पर पडोसियों से रूठे रहते थे । प्रेम मात्र को सत्य माननेवाले कबीर जो मात्र प्रेमरूपी भगवान पर विश्वास

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २११.४

करते थे के लिए पंडितों का यह आचरण किसी भी हालत में शुद्ध नहीं रह सकता था । ऐसे दूसरों को उपदेश देकर अपनी जीविका चलाने वाले समाज में गुरु बहुत थे । पर सही ज्ञान देनेवाला कोई नहीं था ।

उसी समाज के योगी योग में ध्यान लगाकर उन्मत्त थे, पण्डितों को पुराण का अहंकार था, तपस्वी तप के अहंकार में डूबे थे, सन्यासियों को अहं की सिद्धि का गर्व था, मुल्ला को कुरान पढने का ही नशा था और काजी को न्याय का गर्व था । वस्तुतः सभी मोहग्रस्त थे, सन्मार्ग से भटक गए थे । सारा समाज मिथ्या प्रपंच में अनुरक्त था । कोई सत्य सुननेवाला नहीं था, उनका झूठे वचनों और आश्वासनों में ही विश्वास था । कबीर ने ऐसे लोगों को देखा था जो नियम और धर्म का आडंबर करते थे, नित्य प्रातः उठकर स्नान करते थे, किन्तु चैतन्य आत्मा का तिरस्कार करके निर्जीव पत्थर की पूजा करते थे । उनमें केवल ऊपरी कर्मकाण्ड था, भीतर से वे शून्य थे । कुछ लोग धर्म के नाम पर विशेष प्रकार की टोपी पहनते थे, माला धारण करते थे और शरीर पर छापा तथा मस्तक पर तिलक लगाते थे । कहने का तात्पर्य यह है कि कबीर साहित्य एवं बाइबिल ने जिस समाज को देखा था वह अहंकार, अज्ञान, आत्म-प्रदर्शन, अंध-श्रद्धा, पाखंड, धूर्तता आदि में आकण्ठ मग्न था। अतः उन्होंने इस जर्जर सामाजिक व्यवस्था पर निर्ममतापूर्वक प्रहार करते हुए मानवीय मूल्यों पर खरी उतरनेवाली सर्वकालिक और सार्वभौमिक शिक्षा दी । उनमें जो खण्डनात्मक वृत्ति मिलती है, उसकेलिए तत्कालीन परिस्थितियाँ ही उत्तरदायी हैं । अनैतिक व्यक्ति में आध्यात्मिक शक्ति वहन करने की क्षमता नहीं होती ।

ढोंगी-पाखंडी संतों का खंडन

कबीरकालीन समाज में जो संत के नाम पर समाज को लूट लेते थे, झूठ

बोलकर अपना उल्लू सीधा करते थे ऐसे पाखंडी लोगों पर कबीर ने जबरस्त प्रहार किया है । बनारस के ढोंगी संतों को उन्होंने ठग कहा है और वे कहते थे, उनको ऐसे संत अच्छे नहीं लगते जो टोकरे भर भर के पेडा गटक खाते हैं –

अैसे संत न मो कउ भावहि
डाला सिउ पेडा गटकावहि ।'' [१]

बर्तन माँझकर वे खाना खाते हैं, क्योंकि कहीं किसी की भोजन पर छाया न पड़ जाय और लकडी धोकर जलाते हैं ।

बासन मांजि चराबहि काठी धोइ जलाबही । [२]

बाइबिल में भी ऐसे पाखण्डी शास्त्रियों और फरीसियों को देख सकते हैं । इनको देखकर ईसा उनको पुकारकर कहते हैं -'' ढोंगी शास्त्रियों और फरीसियों ! धिक्कार है तुम लोगों को ! तुम प्याले और थाली को बाहर से तो माँजते हो, किन्तु भीतर वे लूट और असंयम से भरे हुए हैं । अन्धे फरीसी ! पहले भीतर से प्याले को साफ कर लो, जिससे वह बाहर से भी साफ हो जाये ।'' [३] वे पापी, अपराधी बने हुए सदा यहाँ से वहाँ घूमते रहते हैं और मुख से ही वे एक दूसरे को अछूत कहते हैं अर्थात् किसी का मुख देखकर वे छूत मान लेते हैं और स्नान करते हैं । इस प्रकार ये दुभिमानी, हमेशा फिरते हैं और अपने सारे कुटुम्ब को अपने साथ ही पाप में डूबाते हैं –

---

१. डॉ.रामकुमार वर्मा संत कबीर पृ. ९१
२. वही पृ. ९१
३. नया विधान संत मात्यु २३:२५-२६

ओइ पापी सदा फिरहि अपराधी मुखहु अपरस कहावहि
सदा सदा फिरहि अभिमानी सगल कुटुंब डुबावहि ।''[१]

कबीर ने देखा कि धर्म के नाम पर पूरा समाज पाखण्ड और बाह्याचार से ग्रस्त है। इसमें वे सुख-संतोष का अनुभव करते थे । आत्माचिंतन और आन्तरिक पवित्रता में लोगों की रुचि न थी । समाज में एसे साधुओं की भीड थी, जो अध्यात्म-चिन्तन केलिए विरक्त नहीं हुए थे, अपितु मठाधीश बनकर शिष्यों की अपार मण्डली बनाकर ऐश्वर्य-भोग में ही लिप्त रहते थे ।

स्वामी हूता सेंत का, पैकाकार पचास
राम नांम काँठै रहा, करै सिखां की आस । [२]

कबीर कहते हैं कि ऐसे दिखावटी साधु प्रायः सडकों पर तसला और टोकरी (भिक्षा पात्र) लिए घूमते रहते थे । राम-नाम से उनका कोई परिचय नहीं था । वे पीतल के बर्तनों और सिक्कों की लालसा में ही लगे रहते थे । उनकी सारी चतुराई सांसारिक भोग तक ही सीमित थी ।

कबीर तष्टा टोकनी, लीए फिरै सुभाइ
राम नांम चीन्है नहीं, पीतलि ही कै चाइ । [३]

सामान्य जन को प्रभावित करने केलिए वे नाना प्रकार की साधनाएँ करते थे । कोई वेद-पाठ में लीन रहता था, कुछ लोग उदासीन बनकर भ्रमण करते थे, कुछ लोग

---

१. डॉ.रामकुमार वर्मा संत कबीर पृ. ९१
२. वही पृ. ९६
३. वही पृ. ९७

कायायोग से अपने शरीर को क्षीण करते रहते थे, कुछ फकीर बनकर दान माँगते थे तो कुछ दानी बनते थे । कुछ साधु मयूरपिच्छ धारण करते थे और कुछ मस्ती केलिए सुरापान करते थे, कुछ तन्त्र-मन्त्र के चक्कर में रहते थे । कुछ तीर्थ-व्रत करके काया को वश में करना चाहते थे तो कुछ लोग पंचाग्नितप से काया को काला कर रहे थे ।

बाइबिलकालीन समाज में नियमों एवं धर्म विधियों का बाहरी तौर पर पालन कर उसको धर्म समझनेवाले पाखंडी फरीसियों एवं शास्त्रियों की भरमार थी। उनकी प्रार्थना तथा नियमों का पालन सिर्फ धर्मविधि की पूर्ति तथा बाहरी दिखावा था । वे अपने हृदयों में शत्रुता, कटुता, घमण्ड, मनमुटाव आदि रखकर धर्म को बाहरी दिखावे के समतुल्य समझते थे । ईसा इनको देखकर ऐसा आक्रोश करते हैं -'' ढोंगी शास्त्रियो और फरीसियो ! धिक्कार है तुम लोगों को ! तुम पुती हुई कब्रों के सदृश हो, जो बाहर से तो सुन्दर दीख पडती हैं किन्तु भीतर से मुरदों की हड्डियों और हर तरह की गन्दगी से भरी हुई हैं । इसी तरह तुम भी बाहर से लोगों को धार्मिक दीख पडते हो, किन्तु भीतर से तुम पाखण्ड और अधर्म से भरे हुए हो।''[१]

भूखे पेट की भक्ति करनेवाले ढोंगी साधुओं की कबीर ने खिल्ली उडाई है। कबीर भूख 'भगति' नहीं करना चाहते । हाथ में माला नहीं पकडना चाहते । वे संतों की चरण-धूल लेना चाहते थे ।

भूखे भगति न कीजै । यह माला अपनी लीजै ।'' [२]

बाईबिल में उपवास के संबन्ध में कही गयी बातें कबीरसाहित्य की प्रस्तुत वाणी के

---

१. नया विधान संत मात्यु २३:२७-२८
२. डॉ.रामकुमार वर्मा संत कबीर पृ. १४०

संदर्भ में विशेष ध्यान देने योग्य हैं । उपवास का मतलब सिर्फ भोजन का त्याग करना ही नहीं है, परंतु प्रतिदिन पश्चात्ताप करके अपने प्रेममय ईश्वर के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना है । दूसरों की निन्दा न करना, परोपकार द्वारा उसकी सेवा करना आदि बातों पर मनुष्य को अधिक ध्यान देना है । लेकिन फरीसी लोग अपने कुछ सिद्धान्तों पर अडिग थे । वे अन्य महत्वपूर्ण सिद्धान्तों से असहमत थे । वे सिर्फ अपने ही सिद्धान्तों को सर्वश्रेष्ठ मानते थे, जो स्वार्थमय एवं अर्थहीन थे । वे नियमों का दृढतापूर्वक पालन तो करते थे, किन्तु मानव-मूल्यों की अवहेलना भी करते थे। संत मरकोस अपनी लेखनी द्वारा इस प्रकार के लोगों का पर्दाफाश करते हैं । कुछ लोग लेखनी द्वारा इस प्रकार के लोगों का पर्दाफाश करते हैं । कुछ लोग ईसा के समक्ष एक प्रश्न रखते हैं, " योहन के शिष्य और फरीसी उपवास कर रहे हैं । आपके शिष्य उपवास क्यों नहीं करते ? [१] इस प्रश्न के द्वारा फरीसी लोग ईसा को अप्रत्यक्ष रूप से यह बतलाना चाहते थे कि ईसा द्वारा दीं गयी शिक्षा निर्मूल एवं अर्थहीन है । इसका उत्तर देने केलिए येशु अपने आपकी एक दूल्हे से तुलना करते हैं और कहते हैं कि जब तक विवाह-मंडप में दूल्हा रहता है, तब तक लोगों में आनन्द एवं खुशी बनी रहती है ।" [२] प्रस्तुत कथन से येशु यह समझाना चाहते हैं कि जिसकी प्रतीक्षा वे वर्षों से करते आ रहे थे उसका आगमन दूल्हे के रूप में इस धरती पर हो चुका है । उनके आगमन से नई विधि एवं रीति-रिवाज़ का उदय हुआ तथा पुरानी रीति-रिवाज़ों तथा विधानों का महत्व क्षीण हो गया ।

फरीसी लोग आडंबरयुक्त सिद्धान्तों पर सीमित थे, जिसकी वजह से वे येशु की शिक्षाओं का सही अर्थ नहीं समझ पाये । इसलिए वे ईश्वरीय प्रेम, शांति एवं सच्ची खुशी को अनुभव करने में असमर्थ रहे । योहन के शिष्य एवं फरीसी प्रारंभ

---

१. नया विधान संत मरकोस २:१८
२. वंही २:१९

से ही मूसा के नियमानुसार उपवास करते चले आ रहे थे । 'पुराना विधान' में मूसा के नियमानुसार, यहूदियों को साल में एक बार उपवास करना था ताँकि लोग अपने पापों पर सच्चा पश्चात्ताप कर ईश्वर की दया के पात्र बन सके । परंतु फरीसी लोग अपने को धर्मी एवं ईश्वर-भक्त सिद्ध करने केलिए, हफ्ते में दो बार उपवास करने लगे। उनके उपवास करने का उद्देश्य मात्र दिखावा था । वे अपने को दूसरों की नज़रों में श्रेष्ठ बनाना चाहते थे । लेकिन ईसा उनके इस आडंबरपूर्ण व्यवहार का कडा विरोध करने में नहीं हिचकिचाये । ईसा फरीसियों द्वारा किए जानेवाले उपवास को गलत ठहराते हैं । वास्तव में उनके विचार धार्मिक कार्यों द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करना नहीं, बल्कि धार्मिकता का ढोंग रचकर लोगों को प्रसन्न करना था। ईसा उन्हें धिक्कारते हैं, क्योंकि वे धार्मिक रीतियों का प्रयोग अपने स्वार्थ एवं आत्मसम्मान केलिए करते हैं । कबीर के समय में योग का प्रचलन जोरों पर था। योग मार्ग को अपनाते हुए लोग आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढना चाहते थे । लेकिन योग का प्रचलन सच्चे अर्थों में न होकर ढोंगी मार्गों को अपना कर रहा था । कबीर ने गुरु का घोर विरोध किया और ऐसे दिखावटी योगियों की भी निन्दा की है जो योग के नाम पर महादेव का पंथ चलाते थे तथा नाना प्रकार के वेश बनाकर भस्म रमाकर, त्रिशूल लिए हुए अपनी पूजा करवाते थे तथा बडे भारी महन्त कहलाते थे। कबीर ने देखा कि ऐसे तथाकथित योगी समाज पर अपना आतंक जमाने केलिए खुले बाज़ार में बैठकर समाधि लगाते थे और लोगों को अपनी सिद्धियाँ दिखलाकर आकृष्ट करते थे । ये लोग प्रायः हाथ में परशु माला, त्रिशूल, तलवार, बन्दूक आदि लेकर झुण्ड के झुण्ड किसी मेले में अथवा तीर्थ-स्थान में लोगों पर प्रभाव ज़माने केलिए जुलूस निकालते थे । कबीर के अनुसार सच्चे योगी को अस्त्र से कोई संबन्ध नहीं है । ये नासमझ लोग धर्म और संप्रदाय के नाम पर बराबर संघर्ष करते हैं । कबीर संदेह करते हैं कि ऐसे लोग वस्तुतः गुणातीत सिद्ध योगी हैं या तरकस

बाँधनेवाले फौजी सिपाही ? ऐसे लोग दिखावे में वैरागी बने हुए हैं, किन्तु उनके अन्तर्मन में लोभ का साम्राज्य हैं । वे राग के शिकार बने हुऐ हैं । वे बाहर से वैरागी हैं, भीतर से रागी । वे लोग स्वर्णाभूषण धारण कर संत-वेश को लज्जित करते हैं। कुछ लोग अपने साथ योगिनी स्त्री भी रखते हैं । कबीर पूछते हैं क्या साधुओं के साथ सुन्दरी स्त्री शोभा देती है ?

भये विरक्त लोभ मन ठाना, सोना पहिरि लजावै बाना
तिय सुन्दरी न सोहई, सनकादिक के साथ
कबहूँक दाग लगावै, कारी हौडी हाथ ।'' [१]

कबीर की राय में साधु को कम से कम व्यय करना चाहिए । आडंबर और दिखावट से परे रहना चाहिए । कबीरकालीन समाज में साधु बनकर लोगों को वश में करनेवाले लोगों से कबीर को घृणा थी । समाज में संपन्नता हो तो भी हर आदमी को विशेषतः साधूजनों को अपनी रहन-सहन में सादगी का पालन करने का उपदेश कबीर देते हैं । कबीर कहते हैं कि '' ऐसे पाखंडी संतों को छोडकर जो सद्‌गुरु से भेंट करता है वह फिर जन्म लेने केलिए संसार में नहीं आता ।'' [२]

समाज को विशुद्ध बनना हो तो समाज का नेतृत्व करनेवाले का चरित्र शुद्ध रहना चाहिए । ब्राह्मण, काजी, योगी एवं संत कबीरकालीन समाज को आगे बढानेवाले थे । यदि ये लोग मार्गभ्रष्ट रहे तो सामान्य जनता की क्या ? कबीरकालीन समाज को कबीर ने दिशा दिखाई । सत् संगति मनुष्य के आत्म-संयम में सहायक होती है । जो जैसी संगति में रहता है उसी के अनुसार उसका चरित्र बन जाता है । संगति के प्रभाव से मनुष्य जैसे कर्म करता है उसी के अनुसार

१. डॉ.रामकुमार वर्मा संत कबीर ९९
२. वही ९१

उसे फल भी भोगना पडता है –

"जो जैसी संगति करै, तो तैसे फल खाई ।" [१]

समाज का मार्ग-दर्शन करनेवाला संत यदि आदर्श व्यक्ति हो तो समाज भी आदर्श बनेगा । साधु को अल्प-संतुष्ट व्यक्ति होना चाहिए । वे सिर्फ दो सेर आटा, पाव भर घी के साथ थोडा सा नमक और आधा सेर दाल की अपेक्षा करते थे । दो वक्त का भोजन, सोने केलिए चार पैर की खाट, सिरहाने केलिए एक तकिया और एक रूई का दोहरा कपडा, ओढने केलिए एक कंबल, इन चीज़ें से वे संतृप्त थे । [२]

इन्द्रियों की निन्दा एवं वासना पर नियंत्रण

मन की निन्दा के साथ ही साथ कबीर ने इन्द्रियों को भी कुचल देने की आवश्यकता बताई है । इन्द्रियों का सुख व्यक्ति की आध्यात्मिक चेतना के नाश का कारण बनता है । जब तक इन्द्रियाँ मनमानी करने में लगी हुई हैं, तब व्यक्ति-सुधार एवं तद्वारा समाज सुधार भी संभव नहीं । पंचेन्द्रियों द्वारा मनुष्य की दुर्गति का चित्र कबीरदास इस प्रकार देते हैं –

कागद केरी नाव री, पांनी केरी गंग
कहै कबीर कैसे तिरुं, पंच कुसंगी संग । [३]

कबीर व्यक्त करते हैं कि यदि कोई सरिता जल से लबालब भरी हुई हो और उसे कोई कागज़ की नाव से पार करना चाहता हो, साथ ही उस नाव में पांच दुष्ट

---

१. डॉ.रामकुमार वर्मा संत कबीर पृ. १४०
२. वही पृ. १४०
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २३०

मनोवृत्तिवाले साथी बैठे हों, जो थोडा-सा भी अवसर मिलने पर डूबो लेने केलिए तैयार हों, तो फिर कोई उस सरिता को कैसे पार कर सकता है ? ठीक इसी प्रकार यह भवसागर मायारूपी जल से परिपूर्ण है और पंच महाभूतों के भंगुर शरीर की नाव है, साथ ही इस शरीर रूपी नौका के भीतर ही पंचेन्द्रियाँ अथवा काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि पांच दुष्ट साथी नीचे की ओर धकेलने के अवसर की ताक में बैठे हुए हैं, तो भला इस भव-सागर को कैसे पार किया जा सकता है ? यहाँ कबीर का आह्वान है कि मनुष्य को सचेत रहकर सावधानी के साथ इस दुनिया में जीना है अन्यथा बुराई उन्हें निगलेंगी । रूपक के ज़रिये कबीर ने एक सत्य को सामने लाने का प्रयत्न किया है । प्रभावात्मक ढंग से किया गया यह वर्णन सामान्य से सामान्य व्यक्ति केलिए भी सुग्राह्य हो सकता है । व्यक्ति का सुधार ही समस्त सुधार का प्राथमिक कार्य है ।पवित्र बाइबिल के अनुसार स्त्रीस्तीय बुलावा (जन्म) मूलतः पवित्रता और शुद्धता का है । प्रत्येक व्यक्ति स्वर्गीय पिता ईश्वर की तरह पवित्र एवं परिपूर्ण बनने केलिए बुलाया गया है । ईसा सुसमाचार में बताते हैं -'' तुम पूर्ण बनो जैसे तुम्हारा स्वर्गिक पिता पूर्ण है ।'' [१] लेकिन बाइबिलकालीन समाज इन्द्रिय सुख का इच्छुक एवं वासना ग्रस्त था । फलस्वरूप व्यक्ति के साथ ही समाज की स्थिति शोचनीय थी। मनुष्य ईर्ष्या, द्वेष, अशुद्धता एवं बुरी आदतों में फंसे थे । इन्द्रियसुख एवं वासना रूपी जाल में फंसे लोगों को उससे मुक्त करने का खूब काम पूरा बाइबिल करता है । संत पॉल लोगों से अनुरोध करते हैं कि — जो भोग-विलास का जीवन बिताते हैं, वे जीते हुए भी मर चुके हैं ।'' [२] यहाँ कबीर की राय में भोगासक्त व्यक्ति संसार रूपी सागर में डूबकर मर जाता है और बाइबिल बताता है कि वासनाग्रस्त व्यक्ति जीते हुए भी जड के समान है । दोनों ग्रन्थों में इन्द्रियवासना की बुराई समान भाव से दिखाई गई है ।

---

१. नया विधान संत मात्यु ५:४८

२. संत पोल तिमथी के नाम पहला पत्र ५:६

कबीरदास वासनाओं पर नियंत्रण रखने का आदेश देते हैं । समाज का अधःपतन वासनाओं के कारण हो जाता है । आधुनिक मनुष्य भौतिक सुखों के पीछे जाकर अपने आपको नष्ट-भ्रष्ट करते हैं । ऐसे लोगों को योग्य दिशा दिखाने का प्रयास कबीर ने आपनी वाणी में किया है । लोभ, अति-भोग आदि दुर्गुणों से पाप की निर्मिति होती है । इससे मात्र व्यक्ति की नहीं समाज की भी दुर्गति होती है । इसलिए इन्द्रियों पर नियंत्रण करने का उपदेश कबीर-साहित्य में प्राप्त होता है । कबीरदास वासनाओं के नाश के बारे में यों बताते हैं –

आगि जु लागी नीर महिं कांदौ जरिया झारि
उत्तर दखिन के पंडिता, मुए बिचारि बिचारि । [१]

यह कबीर की उलटबाँसी है। इसका भाव यह है कि जब ज्ञान विरह की आग मानस रूपी नीर में लगती है, तब उसमें निहित विकार या वासनाएँ (कीचड) पूर्णतया भस्म हो जाती हैं। कीचड के जलने में एक व्यंजना यह भी है कि जैसे कीचड जल में सबसे नीचे रहता है वैसे ही मानस के सबसे नीचेवाले तल अर्थात् अवचेतन में जो दूषित संस्कार और वासनाएँ रहती हैं, वे भस्म हो जाती है । उत्तर -दक्षिण अर्थात् चारों ओर के शास्त्री लोग जिनका ज्ञान केवल पोथी तक सीमित है, सोच में रहे, किन्तु इसका मर्म उनकी समझ में न आया । आगे भी वे बताते हैं–

पांनी मांही परजली, भई अपरबल आगि
बहती सरिता रहि गई, मच्छ रहे जल त्यागी ।'' [२]

यहाँ कबीरदास विषयासक्त मानस के प्रज्वलित होने की बात बताते हैं । जब गुरु

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १४२
२. वही पृ. १४८

ने ज्ञान की आग लगाई तो प्रबल ज्वाला उठी और विषयासक्त मानस प्रज्वलित हो गया । इन्द्रियों का कार्य समाप्त हो गया और जीवात्मारूपी मत्स्य ने विषय-वासना रूपी जल को छोड दिया ।

विषयासक्त लोगों में ज्ञान का आगमन होने पर कैसा परिवर्तन होता है - इसके बारे में भी कबीर अपना मत प्रकट करते हैं —

समुन्दर लागी आगि, नदियाँ जलि कोइला भई
देखि कबीरा जागि, मछी रूखा चढि गई ।''

अर्थात् विषयासक्त मानस में ज्ञान-विरह की आग लग गई, फलतः नदीरूपी इन्द्रियाँ भी, जो कि विषयों को लाकर मानस-सागर में प्रविष्ट करती हैं, उस मानससागर के जलने पर, स्वयं जलकर भस्म हो गईं । कबीर कहते हैं कि सचेत होकर देख, जीवात्मा अब सहस्रदल कमल पर पहुँच गया अर्थात् उसका ब्रह्म से मिलन हो गया। उसकी भौतिकता नष्ट हो गयी । 'नया विधान' में संत पीटर लोगों को यों चेतावनी देते हैं - आप संयम रखें और जागते रहें । आपका शत्रु शैतान, दहाडते हुए सिंह की तरह विचरता है और ढूँढता रहता है कि किसे फाड खाये । आप विश्वास में दृढ होकर उसका समना करें । [१] सन्त याकोब का कथन भी इस संदर्भ में श्रेष्ठ दिखाई पडता है - कपटी और बेइमान लोगो ! क्या आप यह नहीं जानते कि संसार से मित्रता रखने का अर्थ है ईश्वर से बरै करना ? जो संसार का मित्र होना चाहता है, वह ईश्वर का शत्रु बन जाताहै । .....शैतान का सामना करें और वह आपके पास से भाग जायेगा । [२] यहाँ ससार से तात्पर्य इन्द्रियसुख एवं वासना से परिपूर्ण संसार से है और शैतान ही इसके रूप में मनुष्य के पास आकर बुराई की

---

१. नया विधान संत पीटर ५:८-९
२. वही संत याकोब ४:४,७

प्रेरणा देता है ।

यहाँ अपनी वाणी द्वारा कबीर-साहित्य एवं बाइबिल ने समाज में प्रचलित वासनारूपी बुराई को दूर करने की ओर इशारा किया है । उनकी राय में इन्द्रियसुख पर आसक्ति एवं वासना में इच्छा के कारण लोग भौतिकता के अधिक निकट आते हैं । फलस्वरूप आध्यात्मिकता एवं ईश्वरीय स्मरण से बहुत पीछे पडते हैं । इससे सामाजिक कल्याण या भलाई संभव नहीं । प्रस्तुत कुकृत्य को समाज से दूर करने का प्रयत्न इन दोनों ग्रन्थों ने अपनी वाणी द्वारा किया । आसक्ति से मुक्त रहने का आह्वान देते हुए बाइबिल का उपदेश है कि - हम न तो इस संसार में कुछ अपने साथ ले आये और न यहाँ से कुछ साथ ले जा सकते हैं । यदि हमारे पास भोजन-वस्त्र हैं, तो हमें इससे संतुष्ट रहना चाहिए । जो लोग धन बटोरना चाहते हैं, वे प्रलोभन और फन्दे में पड जाते है और ऐसी मूर्खतापूर्ण तथा हानिकारक वासनाओं के शिकार बनते हैं, जो मनुष्यों को पतन और विनाश के गर्त में ढकेल देती हैं । [१]

कुसंग की निन्दा एवं सत्संग का महत्व

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । अन्य व्यक्तियों के बीच में रहने की मनुष्य की इच्छा स्वभावजन्य है । एकान्त जीवन उसकेलिए असह्य है । जन्म से लेकर अंत तक मनुष्य अनेक व्यक्तियों से संबद्ध रहता है, उससे प्रभावित होता है और अपनी ओर से दूसरों को प्रभावित करता है । समाज में अच्छे मनुष्य भी रहते हैं और बुरे भी । व्यक्ति जैसे मनुष्यों का संसर्ग करता है उसका स्वभाव भी वैसा ही होता है । सज्जन व्यक्तियों का प्रभाव निर्मल और दुष्ट व्यक्तियों का प्रभाव दूषित

---

१. संत पोल तिमथी के नाम पहला पत्र ६:७-९

करनेवाला होता है । समाज के लोग कुसंग की निन्दा एवं सत्संग की महत्ता समझ लेने से व्यक्ति-सुधार एवं समाज-सुधार आसानी से संभव है ।

कबीर ने कुसंग की निन्दा की है । कबीर आह्वान करते हैं कि मूर्खों का कभी संग नहीं करना चाहिए । एक स्थान पर कबीर उनके बारे में बताते हैं –

शीतलता के कारनैं, नाग बिलंबे आइ
रोम रोम बिख भरि रहा, अंम्रित कहां समाइ ।'' [१]

अर्थात् शीतलता की प्राप्ति केलिए सर्प आकर चन्दन के वृक्ष पर लिपटता है किन्तु उसके रोम-रोम में विष भरा होने के कारण चन्दन का शीतल प्रभाव उसके भीतर नहीं समा सकता । कबीर बताते हैं कि इसी प्रकार स्वभाव से ही दुष्ट होने वाले सत्संग की शरण पाने पर भी अच्छे गुण से वंचित रहते है । कुसंग के जाल में न पडने का उपदेश नौजवानों को देते हुए सूक्तिग्रन्थकार लिखते हैं -'' जो बुद्धिमानों का सत्संग करता है, वह बुद्धिमान बनेगा,किन्तु जो मूर्खों से मेल-जोल रखता है, वह संकट में पडेगा । [२] यहाँ सुक्तिकार बताते हैं कि मूर्ख सत्संगति में आने पर भी बुराई का मार्ग छोडना नहीं चाहता । कबीर निस्संदेह बताते हैं कि दुष्ट व्यक्ति भवसागर में डूब जायेंगे –

मूरिख संग न कीजिए, लोहा जल न तिराइ ।'' [३]

इसलिए मूर्ख का संग नहीं करना चाहिए । कबीर के अनुसार दुष्ट या कुबुद्धिवाला व्यक्ति लोहे के समान जड है । जैसे लोहे के आश्रय से कोई भी नदी पार नहीं कर

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २१७
२. नया विधान सुक्ति-ग्रन्थ १३:२०
३. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २२०

सकता, वैसे ही मूर्ख की संगति से भवसागर नहीं पार किया जा सकता । कबीर ने दुर्गुणों की एक लंबी सूची भी प्रस्तुत की है । उनमें प्रमुख हैं-संशय, कपट, स्वार्थ,अहंकार, मोह, मद, मत्सर, काम, हिंसा, लोभ, तृष्णा, परनिन्दा, कुवचन, द्वेष, घृणा, पाखंड, असत्य, दुराचारण इत्यादि । उन्होंने बार बार यही कहा है कि –

निरमल बूँद आकास की, पड गई भोमि विकार
मूल बिनंडा मानई, बिन संगति भठछार । [१]

याने जैसे मेघों से बरसनेवाला निर्मल जल भूमि पर गिरते ही विकृत हो जाता है उसी प्रकार निर्मल स्वभाववाला व्यक्ति भी कुसंग के कुप्रभाव में आकर दूषित हो जाता है । उच्च कुल का व्यक्ति भी अपने कुकर्मों के कारण बुरा ही कहा जायेगा। बाइबिल के सूक्तिग्रन्थकार लोगों को प्रज्ञा स्वीकारने एवं कुबुद्धि एवं दुर्गुणवाले लोगों से सावधान रहने का उपदेश देकर कहते हैं कि - दुष्टों के मार्ग में प्रवेश मत करो, कुकर्मियों के पथ पर मत चलो । उससे दूर रहो उस पर पैर मत रखो उससे कतरा कर आगे बटो । वे पाप किये बिना सोने नहीं जाते । यदि उन्होंने किसी को पथभ्रष्ट नहीं किया, तो उन्हें नींद नहीं आती । वे अधर्म की रोटी खाते और हिंसा की मदिरा पीते हैं । [२] कबीर साहित्य एवं बाइबिल यही अनुरोध देते हैं कि संसर्ग के फलस्वरूप जो ज्ञान मिलता है वही जीवन के मार्ग में प्रकाश के समान है । विधर्मियों के अन्धकारयुक्त मार्ग में पडकर ठोकर न खाने केलिए सद्‌गुणी एवं धर्मी लोगों के साथ रहना और उनके मार्ग पर चलना अनिवार्य है । भक्त को चाहिए कि वह दुर्गुणों एवं दुर्जनों को त्याग दे एवं सगुण तथा सज्जनों को स्वीकार करें । कबीर ने आडंबर युक्त मनुष्यों को कपटी, अपराधी एवं खल कहा है । उनके अनुसार

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर -ग्रन्थावली पृ. २१८
२. पुराना विधान सूक्ति ग्रन्थ ४:१४-१७

उससे भी दूर रहना उचित है । समाज में कोई मूर्ख अथवा दुर्गुणी मिले तो उससे वादविवाद करना ठीक नहीं । उसे टालना ही बेहतर है । मनुष्यों को कुछ उपदेश लेने या कुछ वैचारिक लाभ प्राप्त करते है तो संतों से या साधु से कुछ कहना सुनना चाहिए वरना मूर्ख से कुछ संघर्ष हो जाता है, बुराई बढती जाती है । वे बताते है साधु संगति ही उचित है –

कबीर संगति साधु की, कदे न निरफल होइ
चंदन होसी बावनां, नींब न कहसी कोइ ।'' [१]

उनका अनुरोाध है कि असंत की सगति में कभी मत जाना । अच्छे लोगों के साथ रहना और सत्संगति करना उचित है । उनकी राय में साधु की संगति कभी व्यर्थ नहीं जाती है । साधु बाहरी आकार-प्रकार में चाहे जितना साधारण प्रतीत होता हो, किन्तु आन्तरिक आध्यात्मिकता के कारण उसकी संगति से लाभ होता है । यह चन्दन वृक्ष के समान है, चाहे वह वृक्ष कितना भी छोटा क्यों न हो, फिर भी उसकी सुगन्ध चारों दिशाओं में फैलती रहती है और उसे कोई नीम नहीं कह सकता है । बाइबिल ने समझदार लोगों के साथ व्यवहार करने और कुसंगति से दूर रहने की चेतावनी दी है । बाइबिल के प्रवक्ता ग्रन्थ में यों कहा गया है -''समझदार लोगों की संगति करो और सर्वोच्च प्रभु की आज्ञाओं की ही चर्चा करो । [२] याने कबीर साहित्य एवं बाइबिल एकसमान दिखाते हैं कि सत्य के मार्ग पर चलनेवाले लोगों से संसर्ग करने से कुछ बुराई नहीं भलाई ही संभव है । बाइबिल के तोबित की पुस्तक में तोबित अपने पुत्र को सत्संग का उपदेश देकर कहते हैं - जो समझदार है, उससे सलाह लो और किसी भी सत्यपरामर्श की उपेक्षा नहीं करोगे । [३] यहाँ

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १५५
२. पुराना विधान प्रवक्ता-ग्रन्थ ९:२२

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल दिखाते हैं कि सत्संग द्वारा सामाजिक सुधार की समस्या सुलझ जाती है । लोगों में सद्बुद्धि जागरित होती है तथा उनका जीवन आदर्श बन जाता है । संसार में अच्छाई और बुराई विद्यमान हैं । परंतु अन्ततः अच्छाई की विजय निश्चित है । इसलिए इन दोनों ग्रन्थों में बताया गया है कि अच्छे मूल्यों की उपलब्धि केलिए कुसंग की निन्दा एवं सत्संग को स्वीकारना अनिवार्य है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर साहित्य एवं बाइबिल में तत्कालीन समाज का चित्र यथार्थ रूप में खींचा गया है । समाज में व्यक्ति का कर्तव्य, परिवार के सदस्यों का दायित्व, गुरु-शिष्य संबन्ध, नारी, जाति, बाह्याडंबर, मूर्तिपूजा आदि के बारे में कबीर एवं बाइबिल ने अपनी व्यक्त धारणा दी है । उन्होंने समाज का स्वतंत्र निरीक्षण किया और वहाँ उन्होंने क्या देखा उनको लिपिबद्ध करने की प्रेरणा दी । समाज से अनुभव सत्यों को उन्होंने वाणी दी । ये वाणियाँ अधिकांशतः बहुत समानताएँ दिखाती हैं। सुगठित, सभ्य एवं कल्याणकारी समाज केलिए किन किन स्तरों पर सुधार आवश्यक है इसका इन दोनों ग्रन्थों में समान रूप से वर्णन किया गया है । इनको प्रस्तुत करने केलिए कबीर, ईसामसीह एवं नबीगणों ने खंडनात्मक प्रक्रिया को ही अपनाया । प्रस्तुत खण्डनात्मक वृत्ति से तत्कालीन धार्मिक जगत् में खलबली मच गयी । उन्होंने समरसता को प्रमुखता देकर भिन्नता, भेद-बुद्धि, वर्णविचार, अर्थविचार इन सबको समान धरातल पर देखना चाहा ।

****

पाँचवाँ अध्याय

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में लोकमंगल के विधायक तत्व-१

' लोकमंगल' शब्द दो शब्दों के योग से बना है - 'लोक' और 'मंगल' अर्थात् समस्त लोक का मंगल । लोक का अर्थ समस्त सृष्टि माना जा सकता है । लेकिन यहाँ पर मानव मात्र के कल्याण को ही लक्ष्य बनाया गया है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में मानव-कल्याण-संबन्धी कई बातें प्रतिपादित की गई हैं । कबीर-साहित्य या बाइबिल ही नहीं संसार का समस्त प्राचीन साहित्य इसी लक्ष्य से लिखा जाता था । विशंषतः भक्ति-साहित्य में इस बात पर ज्यादा ध्यान दिया जाता था । भक्ति का अर्थ है ईश्वर के प्रति प्रेम । ईश्वर घट-घट वासी बताया गया है और ईश्वर के प्रति प्रेम मानव मानव के प्रति दिखाया जानेवाला प्रेम होता है । इसीलिए काव्य-मर्मज्ञ काव्य-रचना का प्रयोजन बहुधा आनन्द अथवा लोकमंगल बतलाते हैं । इनका कहना है कि आनन्द का भाव किसी कवि के हृदय में, अपनी सुन्दर अभिव्यक्ति के कारण, आपसे आप उठता रहता है । लोकमंगल की भावना स्वभावतः केवल तभी होती है जब कि उसकी कृति के अन्तर्गत निहित उत्तम आदर्शों की प्रेरणा से सर्वसाधारण का कल्याण संभव हो जाता है । हिन्दी के मध्यकालीन कवि गोस्वामी तुलसीदास ने भी आनन्द एवं मंगल की चर्चा की है और अपने प्रसिद्ध काव्यग्रन्थ 'रामचरितमानस' की रचना करते समय, उन्होंने एक ओर जहाँ उनका ग्रन्थ 'स्वान्तःसुखाय' निर्मित किये जाने की बात कही है, वहाँ दूसरी ओर सत्काव्य का आदर्श ठहराते हुए, यह भी बतलाया है कि उनका पवित्र ग्रन्थ सुरसरि वा गंगानदी के समान सब केलिए हितकारी है, कल्याण करनेवाला है ।[१] प्लेटो जैसे प्राचीन पण्डितों ने काव्य का उद्देश्य प्रधानतः नैतिक शिक्षा प्रदान करना तथा आधुनिक

---

१. गोस्वामी तुलसीदास रामचरित मानव, बालकाण्ड पृ. २.७

टालस्टाय जैसे मनीषियों ने उसका जीवन-सुधार परक होना माना है ।

लोकमंगल की भावना एवं जीवन-मूल्य

पहले कहा गया है कि 'रामचरितमानस' की रचना लोकहित केलिए हुई है। इसमें जीवन-मूल्यों को अत्यधिक महत्व दिया गया है । कबीर साहित्य एवं बाइबिल की रचना के मूल में भी यही उद्देश्य रहा है । एक साखी में कबीरदास यों बताते हैं —

हरि जी यहै विचारिया, साखीं कहौ कबीर
भौसागर मैं जीव है, सुनिकै लागै तीर ।'' [१]

यहाँ वे व्यक्त करते हैं कि प्रभु ने यह निश्चय कर प्रेरणा दी कि हे कबीर ! तुमने जो प्रत्यक्ष अनुभव किया है उसे साखी द्वारा व्यक्त करो । जीव भव-सागर में पडा हुआ है । वह तुम्हारी वाणी सुनकर भव-सागर के किनारे लग जायेगा । यहाँ कबीर स्पष्ट करते हैं कि मोहमायारूपी संसार सागर में पडे लोगों को उससे रक्षा देकर पार कराना ही अपनी वाणी द्वारा उनका प्रमुख उद्देश्य है । याने उनकी रचना का उद्देश्य लोकहित एवं सामाजिक भलाई ही है । बाइबिल के 'नया विधान' के प्रकाशना ग्रन्थ के कर्ता सन्त योहन को लिखने की प्रेरणा किस प्रकार मिली है ? ज़रा देखिए -'' मैं प्रभु के दिन आत्मा से आविष्ट हो गया और मैं ने अपने पीछे तुरही-जैसी वाणी को उच्च स्वर से यह कहते सुना- तुम जो देख रहे हो, उसे पुस्तक में लिखो और उसे सात कलीसियाओं को भेज दो-एफेसुस, स्मुरना, पेरगमोन, थुआतिरा, सारदैस, फिलदेलफिया और लौदीकिया को ।'' [२]

---

१. डॉ.जयदेव सिंह साखी पृ. २३४
२ संत जॉन प्रकाश ग्रन्थ १:१०-११

इन सात कलीसियाओं के बारे में कहने पर यहाँ के कई लोग अपना पहला धर्मोत्साह छोडकर शैतान के अनुयायी बनकर, गलती बातें स्वीकार कर, विश्वास त्यागकर, देवताओं को अर्पित मांस खाकर, व्यभिचार कर जीवन बरबाद करने वाले थे । इन लोगों से पश्चात्ताप कर लौट आने का आह्वान देने एवं जो अच्छे ढंग से जीते हैं उनको इन बुरे जाल में फंसे बिना सदा जागरूक रहने का आह्वान देने केलिए ही इसकी रचना हुई है । याने पूरे देश में मंगल लाना ही बाइबिल रचना का मुख्य उद्देश्य है । एक और वाणी में कबीरदास यों भी बताते हैं –

कबीर कहता जात हैं सुनता है सब कोई
राम कहें भल होइगा, नहीं तर भला न होई । [१]

कबीरदास सदा कहता ही रहता हैं और सभी उनकी बात सुनते भी हैं, किन्तु उनके उपदेश के अनुरूप कोई आचरण नहीं करता । फिर वे बताते हैं कि भलाई या कल्याण प्रभु स्मरण से ही होगा, और किसी प्रकार से कल्याण नहीं हो सकता । यहाँ भी वे व्यक्त करते हैं कि लोग ईश्वर-स्मरण कर अपनेलिए और समाज केलिए भलाई करने वाले हों - यही उनकी रचना का मुख्य उद्देश्य है । 'पुराना विधान' में नबी एशया बाइबिल की हर वाणी की क्या महत्ता है एवं उसका उद्देश्य क्या है इसका यों वर्णन करते हैं - '' जिस तरह पानी और बर्फ आकाश से उतर कर भूमि सींचे बिना, उसे उपजाऊ बनाये और हरियाली से ढके बिना बीज बोनेवाले को बीज और खाने वाले को अनाज दे सके, उसी तरह मेरी वाणी मेरे मुख से निकलकर व्यर्थ ही मेरे पास नहीं लौटती ।'' [२] 'नया विधान' में भी संत पोल स्थापित करते हैं कि बाइबिल रचना का मुख्य उद्देश्य मानव जीवन में सुधार एवं तद्वारा समाज में

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १८८

मंगल लाना ही है । यथा - ईश्वर की प्रेरणा से लिखा गया प्रस्तुत ग्रन्थ शिक्षा देने केलिए, भ्रान्त धारणाओं का खण्डन करने केलिए, जीवन के सुधार केलिए और सदाचरण का प्रशिक्षण देने केलिए उपयोगी है।'' [१]

इस संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का लोकमंगल संबन्धी विचारों का विश्लेषण करना अस्थान पर नहीं होगा । वे साहित्य केलिए तुलसीदास के द्वारा प्रतिपादित लोकमंगल के आदर्श को स्वीकार करते हैं । चाहे साहित्य की सैद्धान्तिक चर्चा हो अथवा साहित्य की रचनाओं का विवेचन हो 'लोकहित' अर्थात् लोगमंगल की यह भावना सदा उनकी दृष्टि में प्रमुख रही है। उन्होंने चाहे काव्य की परिभाषा की हो, चाहे रचना-प्रक्रिया पर विचार किया हो अथवा किसी रचनाकार या रचना-विशेष का मूल्यांकन किया हो, उनके सामने यह आदर्श सदा रहा है । यह उनकी प्रतिभा की क्षमता और सीमा दोनों का निर्देशन करने वाला तत्व है । शुक्लजी प्रारंभ से ही यह स्वीकार करते हैं कि मनुष्य जब सांसारिक भावों, विचारों और व्यापारों के सामने अपनी पृथक सत्ता की धारणा से मुक्त होकर अपने को भूलकर-विशुद्ध अनुभूति में स्थित होता है, तब वह मुक्त हृदय हो जाता है और यह हृदय की मुक्तावस्था अर्थात् रसदशा है । [२] इस प्रकार काव्य मनुष्य के हृदय को व्यक्तिगत स्वार्थ-भाव से ऊपर उठाकर लोकसामान्य की भावभूमि पर प्रतिष्ठित करता है । अनुभव के इस स्तर पर अपने 'स्व' की भावना से मुक्त हो जाने के कारण जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार होता है । इस अनुभूति योग के अभ्यास से समाज के मनोविकारों का परिष्कार होता है और समस्त सृष्टि के साथ उसका रागात्मक संबन्ध स्थापित होता है । यह रही साहित्यास्वादन की बात । साहित्य ही नहीं, जीवन में भी हृदय की इस मुक्तावस्था के दर्शन

---

१. संत पोल तिमथि के नाम दूसरा पत्र ३:१६

किये जा सकते हैं । इसकेलिए '' वसुधैवकुटुम्बकम् की भावना को लेकर जीना होता है । जब मानव सत्य, अहिंसा, परोपकार आदि जीवन-मूल्यों का कट्टरता के साथ पालन करता है तो यह भावना आसानी से विकसित हो जाती है । व्यक्ति व्यक्ति में विकसित यह भावना समाज में भी फैलती है और कुल मिलाकर आनन्द एवं मंगल का वातावरण छा जाता है । यों तो साहित्य समाज का दर्पण होता है और जब जीवनमूल्यों का पालन समाज में होता है तो साहित्य में भी उसका प्रतिबिंब देखा जा सकता है । जब साहित्य में इन मूल्यों का वर्णन होता रहता है तो आस्वादकों का मन इन मूल्यों की ओर आकृष्ट होता रहता है और इनका अनुकरण अनजाने ही किया जाता है । कबीर यह अच्छी तरह जानते थे । इसलिए उनके साहित्य में इन मूल्यों का वर्णन किया गया है । बाइबिल की बात भी इससे अलग नहीं है । वहाँ भी मानव मानव के बीच के प्रेम को जीवन का लक्ष्य चित्रित किया गया है ।

भक्ति-भावना एवं लोकमंगल

भक्ति ' प्रेमस्वरूपा' है । ईश्वर से किया गया प्रेम ही भक्ति है । भक्ति में भक्त अपने इष्टदेव में आदर्श-पूर्णत्व मानता है । अतः वह आप ही आप आदर्श की ओर खिंचा चला जाता है । इस प्रकार भगवान के प्रेमी भक्त समाज केलिए आदर्श खडा करते हैं । भगवद्गीता में कहा गया है कि श्रेष्ठ व्यक्तियों को आदर्श बनाकर लोग उनका अनुकरण करते हैं ।[१] भागवत में भक्त के द्वारा होनेवाले लोकमंगल का वर्णन अनेक स्थलों पर मिलता है । भागवत के एकादश स्कंध में भगवान कहते हैं कि मेरे भक्त अपने महत्वपूर्ण आचरणों से दुनिया को पवित्र करते हैं ।[२] भागवतकार

---

१. भगवद्गीता ३:२१
२. वही ११:१४.२४

ने भक्तों को तीर्थों को भी पवित्र करने वाला बताया है ।[१] जिनके हृदय में साक्षात् भगवान् का वास है, वे ही तीर्थों में पवित्रता की सृष्टि करते हैं ।[२] भागवत के भक्तोत्तम प्रह्लाद तो असहायों केलिए अपनी मुक्ति को भी त्याग देने केलिए तैयार थे । लोकमंगल की भावना से प्रेरित होकर वे भगवान से कहते हैं कि- '' बडे बडे ऋषि मुनि तो प्रायः अपनी मुक्ति केलिए निर्जन वन में जाकर मौन व्रत धारण करते हैं और दूसरों की भलाई केलिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं करते । पर मेरी दशा तो दूसरी है । मैं इन असहाय दरिद्रों को छोडकर अकेला मुक्त होना नहीं चाहता ।''[३]

नारदभक्तिसूत्र भी भक्त के द्वारा होनेवाले लोकमंगल का उल्लेख करता है । ' भक्त महिमा' नामक चतुर्थ अध्याय में गद्गद्कण्ठ, रोंमांच एवं हर्षाश्रु से युक्त भक्त परस्पर वर्तालाप करते हुए अपने कुल एवं पृथ्वी को पवित्र करते हैं ।[४] भक्तों के सान्निध्य से पुण्यतीर्थों की सृष्टि होती है, उनके कर्म जनता को सत्कर्म सिखाते हैं और भक्तों की अनुभूति आध्यात्मिक शास्त्रों की सत्यता प्रामाणित करती है ।[५] आध्यात्म रामायण के अनुसार भगवद्भक्त संपूर्ण लोक को भागवत-धर्म के अमृत वर्षण से पवित्र कर देते हैं ।[६] इस प्रकार सिद्ध होता है कि भक्ति सदा लोकमंगल से युक्त रहती है ।

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में लोकमंगल की भावना

साधारणतया भक्त जन लोक और बाह्य जीवन के प्रति उदासीन रहते हैं ।

---

१. भगवद्गीता ४:३०.३७
२. वही १:१३.१०
३. वही ७:९.४४
४. नारदभक्तिसूत्र ६८
५. वही ६९
६. आध्यात्म रामायण १:७.४३

वे एकांत में बैठकर ईश्वर-भक्ति में विलीन होकर परमानंद का अनुभव करते रहते हैं। वे अपनी आत्मा का कल्याण तो चाहते हैं और कर भी लेते हैं । और लोक कल्याण के कार्यों में वे उदासीन रहते हैं । लेकिन कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में ऐसी उदासीनता नहीं है । भक्त कवि कबीरदास निर्गुण ब्रह्म में लीन तो रहते ही थे । फिर भी लोककल्याण के कार्यों में वे सदा सजग थे । कबीरदास उच्चकोटि के भक्त कवि थे और इस नाते निर्गुण ब्रह्म में लीन तो रहते ही थे । कबीर ने अपने आपको ईश्वर में खो दिया था । वे परम योगी थे, परंतु साथ ही जागतिक उत्तरदायित्व के प्रति उदासीन नहीं थे । वे ब्रह्म लीन थे, परंतु अद्वैतवादियों के समान संसार को मिथ्या या निरर्थक नहीं मानते थे । उन्होंने कथनी और करनी को एक माना। परब्रह्मा का उल्लासमय साक्षात्कार उनकी व्यक्तिगत साधना का सुफल था । फिर भी लोककल्याण के कार्यों में वे सदा सजग थे । उन्होंने व्यक्तिगत साधना पर ही बल नहीं दिया, उन्होंने 'राम-राम' की उपासना की बात करके धार्मिक एवं सामाजिक विषमताओं के उन्मूलन का उपदेश दिया । उनका साधना-क्षेत्र यह समस्त दृश्यमान जगत् था, केवल इष्टदेव मन्दिर अथवा गोलोक नहीं —

कबीर खोजी राम का, गया जु सिंघलदीप
राम तौ भीतरि रमि रहा, जौ आवै परतीत । [१]

ईश्वर की खोज में दूर दूर तक जाने वाले लोगों को लक्ष्य करके कबीर प्रस्तुत पंक्तियाँ बताते हैं । उनकी राय में लोग ईश्वर को पाने के उद्देश्य से समुद्र पार दूर देश जाने का प्रयत्न करते हैं । उन्हें पता नहीं कि राम तो सभी के हृदय में रम रहे हैं । यदि दृढ विश्वास हो और अन्तःचक्षु से उसे देखने का प्रयत्न करें तो प्रत्येक व्यक्ति उसका साक्षात्कार कर सकता है । कबीर का उपदेश है कि इस ईश्वर को

---

१. डॉ.जयदेवसिंह कबीर वाङमय खण्ड -३ पृ. ३१८

पाने केलिए मन्दिर या अन्य पुण्य स्थानों में जाने की ज़रूरत नहीं । वे जन जन के हृदय में वास करते हैं । इसलिए अपने समान दूसरे लोगों को भी मान लें और दूसरों का दुख अपना दुख मानकर आगे बढें। बाइबिल में भी यही बात बताई गई है - क्या आप लोग यह नहीं जानते कि आपका शरीर पवित्र आत्मा का मन्दिर है ? वह आप में निवास करता है और आप को ईश्वर से प्राप्त हुआ है । आपका अपने पर अधिकार नहीं है क्योंकि आप लोग कीमत पर खरीदे गये हैं । इसलिए आप लोग अपने शरीर में ईश्वर की महिमा प्रकट करें ।'' [१] यहाँ बाइबिल भी स्पष्ट रूप से बताता है कि ईश्वर का वासस्थान हमारा अपना हृदय ही है । इसलिए उनकी खोज करके बाहरी जगह घूमना-फिरना मूर्खता की बात है । इसलिए कबीर-साहित्य एवं बाइबिल मानव से एक ही विनती करते हैं कि मनुष्य को पहले पहल अपने अन्तर्मन की ओर देखना चाहिए ।

कबीर ने अत्यन्त विषम परिस्थितियों में जन्म लिया और उनसे उत्पन्न सभी प्रकार की विषमताओं के निराकरण केलिए संघर्ष किया । विषमताओं का निराकरण कर एक शुभ मानवकल्याणकारी और सर्व-जन सुलभ धर्म-मार्ग का प्रवर्तन कर मानव-जाति के कल्याण का प्रयत्न किया । कबीरकालीन समाज एवं बाइबिल के समाज में दो तत्व दिखाई देते हैं - अच्छा और बुरा । वे अच्छे तत्व की प्रशंसा करते हुए बुरे से बचने का उपदेश देते हैं । उनकी प्रेरणा किसी व्यक्ति को सुधारने केलिए नहीं है, बल्कि समाज को पतन से बचाने केलिए है । इन दोनों ग्रन्थों की दृष्टि सदैव लोक-कल्याण पर केन्द्रित रहती थी । आत्म-परिष्कार तथा समाज सुधार का मार्ग प्रशस्त करने केलिए कबीर एवं बाइबिल ने अपने विचारों को निर्भीकतापूर्वक व्यक्त किया और साथ ही कटुतापूर्ण ध्वंसात्मक शैली को अपनाया । इन दोनों

---

१ संत पोल कोरिन्थियों के नाम पहला पत्र ६.१९-२०

ग्रन्थों में हम देख सकते हैं कि इन्होंने जीवन के सभी स्तरों में क्रान्ति के रमणीय बीज बोए, उन्हें सींचा और उन्हें पल्लवित भी किया । इन बीजों से अनेक विराट वृक्षों क जन्म हुआ जिनकी अनुभूति की छाया में आज भी अनेक पथभ्रष्ट आत्माएँ आलोक की किरणें देखती हैं और अवसादमयी भूमिका से ऊँचा उठकर आनन्दमयी भूमिका में पहुँचती हैं । यह ठीक है कि इन्होंने जनता में नई शक्ति का शंखनाद भर दिया, जनता की सुप्त चेतना को आन्दोलित कर उसे जाति-पांति के बन्धन से ऊपर उठने केलिए ललकारा ।

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल की दृष्टि मानवीय थी । मानवीय दृष्टि साहित्यकार को ही नहीं प्रत्येक युग के लोकनायक की निजी संपत्ति होती है । यह वह दृष्टि है जो चिन्तन और जीवन के प्रत्येक संचरण को लोकहित की दृष्टि से देखती है, जो धर्मों के विद्वेष को मिटाकर संसार में सुख और शांति की वर्षा करती है, जो पाप के नाश केलिए क्रोध की चिनगारियों की माला पहनती है, जो सृजन के प्रेम में आँसुओं के मोती बरसाती है । कबीर ने जातियों तथा धर्मों के विनाशकारी संघर्ष को भी दूर करने का प्रयास किया-उनके समन्वय का नहीं । यह संभव था जब दोनों अपने-अपने पूर्वग्रहों को त्यागकर मनुष्यता के धर्म पर चलें, बाह्याचार की अपेक्षा हृदय की पवित्रता को महान समझें, घृणा के स्थान पर प्रेम को मन में बसाएँ और सबको एक ही ईश्वर के समान पुत्र समझें ।

सदाचार और लोकमंगल

कबीर साहित्य एवं बाइबिल ने जीवन में सदाचारसंबन्धी नियमों का पालन आवश्यक बतलाया है । उनके अनुसार जब साधना सत् में लीन हो जाती है तब व्यक्ति के विचार और उसका जीवन एक नई करवट लेते हैं । व्यक्ति के विचार

व्यापक और उदारवादी हो जाते हैं । उसके व्यवहार में और जीवन में संकीर्णता नहीं रह जाती । वह सदैव आनन्द में मग्न रहता है । उसका मार्ग विश्व-कल्याण का मार्ग होता है । परोपकार उसका 'कर्म' हो जाता है । वह विचार द्वेष, ईर्ष्या और पक्षपात से ऊपर उठ जाता है । रहनी-कहनी और कथनी-करनी समान हो जाती है । बाह्याडंबर लुप्त हो जाता है । कबीर यहाँ व्यक्त करते हैं –

हज काबै ह्वै ह्वै गया, केती बार कबीर
मीराँ मुझमें क्या खता मुखाँ न बोलै पीर ।'' [१]

यहाँ कबीर साधारण साधक के प्रतिनिधि के रूप में कह रहे हैं कि मैं साधना का लोकमान्य मार्ग अर्थात् तीर्थ, व्रतादि कर चुका हूँ । मैं न जाने कितनी बार हज हो आया और काबा भी गया । मैं सभी अभिज्ञात साधनों का अवलंब ले चुका हूँ । अब मुझमें क्या दोष रह गया कि फिर भी गुरु मेरे प्रति उन्मुख नहीं होते । यहाँ व्यंजना यह है कि ईश्वर बाह्याचार से संतुष्ट नहीं होता और गुरु बाह्याचार को महत्व नहीं देते । वे केवल व्यक्ति की आन्तरिक निष्ठा और नम्रता पर ही रीझते हैं और आकृष्ट होते हैं। बाह्याचार में मग्न एवं उसमें संतुष्ट लोगों पर बाइबिल भी आक्रोश करता है । अशुद्ध एवं कुटिलतापूर्ण हृदय वाले सोदोम एवं गोमोरा के लोग अपनी आत्मशुद्धि की बातों पर ध्यान दिये बिना ईश्वर की प्रीति पाने केलिए बलिदान करते हैं तो ईश्वर की यह वाणी सुनते हैं - '' तुम्हारे असंख्य बलिदानों से मुझको क्या? मैं तुम्हारे मोढों और बछडों की चारबी से ऊब गया हूँ ।'' [२] यहाँ भी स्पष्ट है कि ईश्वर लोगों के बाह्याचारों पर ध्यान नहीं देते । लोगों का जीवन विकार रहित, सात्विक, आत्मानन्द और मंगल चिन्तन से परिपूर्ण होना चाहिए । कपट, स्वार्थ,

---

१. डॉ.जयदेवसिंह कबीर वाङमय खंड -३ पृ. २३०
२. पराना विधान एशया का ग्रन्थ १:११

सांप्रदायिकता, जातीयता का बहिष्कार हो जाना है । मानव को स्वानुभूति, विचार-स्वतंत्रता, सदाचरण, कर्तव्य, अनुशीलन, आत्मनिष्ठा आदि का महत्व जानना चाहिए । इन्हीं समस्त आदर्शों पर कबीर-साहित्य एवं बाइबिल ने बल दिया है । वे समाज का सुधार करना चाहते हैं और उस समाज का आधार है व्यक्ति । अतः व्यक्ति उनके सुधार एवं विकास का केन्द्र था । ये दोनों रचनायें व्यक्ति को सदाचारी बनाना चाहते हैं तद्वारा लोकमंगल का एक उपकरण भी । उनके अनुसार सदाचार केलिए अनुभव की आवश्यकता है और अनुभव के अनुसार आचरण में प्रवृत्ति की ।

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल--बहुजन हिताय

कबीर-साहित्य एवं 'बाइबिल का निर्माण 'बहुजन हिताय' 'बहुजन सुखाय' केलिए हुआ है । उदाहरण केलिए एक साखी में कबीर यों बताते हैं —

दाता तरवर दया फल, उपगारी जीवंत
पंखी चले दिसावराँ, बिरषा सुफल फलंत ।'' [१]

अर्थात् वृक्ष दाता होता है । उसके फल सभी के निमित्त होते हैं । वह परोपकार, 'बहुजन हिताय' 'बहुजन सुखाय' केलिए ही जीवित रहता है । वह जिन पक्षियों को फल देता है, यदि वे उसे छोडकर अन्यत्र चले भी जायें तो भी वृक्ष फल देता ही रहता है । कबीर का जीवन भी इससे भिन्न नहीं । सुभाषितों में कही गई बातें कबीर ने अपने जीवन में करके दिखाई हैं । '' परोपकारर्थमिदं शरीरम् ।'' यह तो प्रमाण है । कबीर अपना शरीर परोपकार के लिए ही बनाये रखते थे । वे हमेशा दूसरों

---

१ डॉ. रामदेवसिंह, कबीर ग्रंथावली, खंड १, पृ. २०२

का उपकार करते थे । फल पाने के बाद लोग कबीर को छोडकर चले जायें या उनके विरुद्ध हो जायें तो भी उनको शिकायत नहीं थी । शिकायत किये बिना वे अपरों के हित में निरत ही रहते थे । बाइबिल भी परोपकार के महत्व का गान स्थान स्थान पर करता रहता है । स्वयं को नष्ट करके लोगों के काम आनेवाले गेहूँ के बीज का उदाहरण लेकर बाइबिल में कहा गया है - '' मैं तुम लोगों से यह कहता हूँ - जब तक गेहूँ का दाना मिट्टी में गिर कर नहीं मर जाता, तब तक वह अकेला ही रहता है, परंतु यदि वह मर जाता है, तो बहुत फल देता हैं ।'' [१] प्रस्तुत वचन द्वारा ईसा यह व्यक्त करते हैं कि उनका जीवन अपनेलिए नहीं दूसरों की भलाई केलिए है । दूसरों की भलाई केलिए आत्मत्याग करने केलिए भी वे तैयार होते हैं। यहाँ भी 'बहुजन हिताय' वाली बात सार्थक कही जा सकती है ।

कबीर के काव्य एवं बाइबिल का उद्देश्य कीर्ति पाने, धनार्जन व व्यवहार के निमित्त अमंगल का निवारण करने, तात्कालिक परमानंद प्राप्त करने अथवा कांता के समान उपेदश देने के लिए नहीं है ।। उनका लक्ष्य काव्य को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधन भी नहीं बनाना था । काव्य का प्रयोजन आनंद भी माना जाता है। ब्रह्मनन्द और ब्रह्मास्वाद भी उनका लक्ष्य न था । उनके काव्य में लोकमंगल की भावना को ही विशिष्ट स्थान दिया गया है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल दोनों रचनाओं का लक्ष्य भी महाकाव्य का निर्माण करके यश की कीर्ति का संपदन नहीं था । इनमें लौकिक यश, सुख और धन के प्रति पूर्ण उपेक्षा भाव है । बाइबिल की वाणी है - '' क्या आप यह नहीं जानते कि संसार से मित्रता रखने का अर्थ है ईश्वर से वैर करना ? [२] उनका लक्ष्य किसी एक राजा या आश्रयदाता को संतुष्ट करना कदापि नहीं रहा । उनके सामने जनता-जनार्दन का हित था । उनकी रचनाएँ

---

१. नया विधान संत जॉन १२:२४
२. वही संत याकोब ४:४

तुलसी के समान स्वान्तःसुखाय' केलिए भी नहीं कही जा सकतीं । वे लौकिक ऐश्वर्य के पीछे नहीं पडे थे । काव्य रचना उनका लक्ष्य नहीं था । फिर भी उनके प्रमुख मत एवं शुद्ध हृदय से जो भी वाणी निकली वही काव्य बनी और वह 'बहुजन हिताय' रही जो आज भी प्रासंगिक है ।

स्वानुभाव एवं लोकमंगल के तत्व

मानव कल्याण केलिए कबीर को सहज रूप से जो अनुभूत सत्य प्राप्त हुआ था उसी पर वे विश्वास करते थे । वे अंधानुकरण के कट्टर विरोधी थे । बिना जाने, बिना देखे, बिना परखे किसी चीज़ पर विश्वास नहीं करते थे । वे सोच समझकर पाँव उठाते थे । मनुष्य जब आत्मनिर्भर नहीं होता तब वह किसी पर भी भरोसा कर बैठता है । गलत हो या सही किसी के आकर्षण में खिंच जाता है। उसमें स्वयं सोच विचार करने की कुछ शक्ति ही नहीं होती । तब वह समाज में प्रचलित देखा-देखी ग्राह्यता को ग्रहण करता है । जिन चीज़ों को आत्मज्ञान तथा अनुभूति से जाना जाता है उन्हें वह नहीं जान पाता । लक्ष्य का पूर्ण परिचय न होने के कारण वह आगे चल नहीं पाता —

देखादेखी पकडिया, जाइ अपरचै छूटि [१]

कबीर के समय समाज में ऐसे बहुत से लोग थे जो देखा-देखी माला, तिलक के साथ भक्ति करते थे । इनके बारे में कबीर बताते हैं -

देखादेखी भगति का, कदे न चढई रंग
विपति पडे यौं छांडिहै,ज्यौ केंचुली भुवंग ।'' [२]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २२०
२ वही पृ. २२०

अर्थात् जिसमें पूर्ण निष्ठा नहीं है, जो अनुकरण मात्र से भक्ति-मार्ग पर चल पडा है, उसकी भक्ति कभी सुदृढ नहीं हो सकती । साधना की कठिनाई से वह उसे उसी प्रकार छोड देता है, जैसे सर्प केंचुली छोड देता है ।

कबीर का स्वानुभव परिपक्व था । उनका स्वानुभव समाज में रहकर जगा था। कबीर की भक्ति बनावटी न थी, दिखावट न थी; वे ढोंगी भक्तों से नफरत करते थे । वे बिना फूल-माला के, बिना चंदन-तिलक के, बिना मंदिर गये मन से हृदय में निराकार को नमस्कार करते थे । कबीर मानवता के पूजारी थे । पत्थर के मन्दिर में जाकर पत्थर की मूर्ति की पूजा करना उन्हें पसंद नहीं था । यथा –

पाहन कौं क्या पूजिए, जो जनमि न देई ज्वाब
अंधा नर आसामुखी, यौंही खोवै आब ।'' [१]

यहाँ कबीर मानव से पूछते हैं कि पत्थर की पूजा से क्या लाभ, जो जीवन-भर अनुनय विनय का जवाब भी नहीं देता । अभिलाष-ग्रस्त व्यक्ति अंधा हो जाता है। वह व्यर्थ में अपनी मर्यादा खोता है । पत्थर पूजन की व्यर्थता समझनेवाले कबीर को पत्थर की बनी हुई मसजिद में जाकर नमाज़ पढने वालों के प्रति नफरत थी । निर्गुण निराकार की वे मन में पूजा करते थे । अपने शरीर में जो आत्मा है उसे वे जान सकते थे । इस पर बल देकर कबीर यों बताते हैं –

कबीर दुनिया देहुरै, सीस नवावन जा
हिरदै भौतरि हरि बसै, तूं ताहि सौं त्यों लाइ ।'' [२]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २२५
२. वही पृ. २२५

कबीर की राय में संसार के लोग मंदिर में भगवान के सामने नतमस्तक होते हैं । हे साधक ! तुम्हारे हृदय के भीतर ही आत्मरूप में हरि विद्यमान है । वे पूछते हैं - हे मनुष्य ! उसे क्यों बाहर खोजते फिरते हो ? उसी से अपना लौ लगाओ । उसी में सुरती लगाओ । कबीर कहते हैं कि क्या समझकर पूजा करते हो ? आत्मा ही ईश्वर है, दूसरा कोई ईश्वर नहीं है —

कौन बिचारि करत हौ पूजा, आतम राँम अवर नहीं दूजा ।'' [३]

अपने अंदर में बसे ईश्वर को विस्मृत कर ईश्वर को बाहर देखने की इच्छा से भटकनेवाले लोगों को बाइबिल के द्वारा समझाते हुए संत पोल पूछते हैं -'' क्या आप यह नहीं जानते कि आप ईश्वर के मंदिर हैं और ईश्वर की आत्मा आप में निवास करती है ? यदि कोई ईश्वर का मंदिर नष्ट करेगा, तो ईश्वर उसे नष्ट करेगा, क्योंकि ईश्वर का मंदिर पवित्र है और वह मंदिर आप लोग हैं ।'' [२] यह संसार उन निर्गुण सत्ता की ही अभिव्यक्ति अथवा सगुण स्वरूप है । उसकी सेवा करके उस अव्यक्त सत्ता का साक्षात्कार संभव है । यही कारण है कि भक्तजन विश्व-प्रेम, लोक-सेवा पर बल देते आये हैं । यहाँ कबीर इस बात पर बल देते हैं कि बाहरी आचारानुष्ठानों को नहीं अनुभूत सत्य को महत्व देकर उसके अनुसार जीना ही उचित है ।

साहित्य का उद्देश्य लोकमंगल है

वर्सफोल्ड नामक समालोचक का कथन है कि '' Literature is the brain of humanity [3] अर्थात् साहित्य मानव समज का मस्तिष्क है । उसमें मानव

१. डॉ.जयदेव सिंह कबीर वाङमय खंड - २ पृ. ११२
२. संत पोल कोरिन्थियों के नाम पहला पत्र ३ :१६-१७
३. श्री.अयोध्यासिंह ज्योतिषि साहित्य संदेश,नवंबर १९५२

जाति के समस्त अनुभवों और विचारों का भण्डार सुरक्षित रहता है । जिन पुस्तकों का संबन्ध मानव के ज्ञान-भाव से हुआ करता है वे साहित्य के अंतर्गत नहीं रखी जा सकतीं । इसके अन्दर उन्हीं कृतियों का समावेश होता है जिनमें मानव जीवन के दुख तथा संकटों को क्षण भर भुलाने की तथा भावनाओं के सुन्दर लोक में भ्रमण कराने की शक्ति रहती है ।

इस प्रकार देखा जाय तो साहित्य और समाज में अन्योन्याश्रित संबन्ध है । साहित्य के द्वारा समाज को अनुपम शक्ति मिलती है और समाज द्वारा साहित्य का भण्डार सदैव रत्नों और मणियों से जगमगाता रहता है तथा उसका विस्तार नित्य प्रति बढता जाता है । अतः साहित्य में लोकहित या लोकमंगल की भावना का होना नितान्त वांछनीय है । जो साहित्यकार लोकहित की भावना से दूर हटकर केवल कल्पना लोक में ही विचरण करते रहते हैं वे सफल कलाकार नहीं बन जाते । इसका कारण यही है कि उनकी भावना जनसाधारण से दूर रहती है और इसलिए जो साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित संबन्ध रहता है, टूट जाता है । साहित्य का चरम उद्देश्य आनन्द प्रदान करना है । साहित्यकार को रचना करते वक्त ज़रूर ही यह मान लेना चाहिए कि कला में लोकहित की भावना का रहना नितान्त आवश्यक है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साहित्य के व्यापक उद्देश्य के प्रसंग में लोकमंगल की बात कहते हैं, पर साहित्य की विकास प्रक्रिया के संदर्भ में जनता को महत्व देते हैं, जिसके अंतर्गत समाज के उच्च-नीच सभी वर्ग आ जाते हैं । शुक्लजी ने धर्म शब्द का प्रसंग भी किया है जो सांप्रदायिक संकीर्णता से मुक्त कर उसे जन जीवन के कल्याण से जोडकर देखते हैं-धर्म जितने ही अधिक विस्तृत जनसमूह के सुख-दुख से संबन्ध रखनेवाला होगा, उतना ही उच्च श्रेणी का माना जायेगा । धर्म के

स्वरूप की उच्चता उसके लक्ष्य की व्यापकता के अनुसार समझी जाती है ।[१] शुक्ल जी धर्म उसी को मानते हैं जो लोक से संबद्ध हो - '' धर्म का विकास इसी लोक के बीच हमारे परस्पर व्यवहार के भीतर होता है ।''[२] शुक्लजी ने धर्म की विविध भूमियों के निरूपण द्वारा अपनी धर्मसंबन्धी मान्यता स्पष्ट की है । वे हैं - गृह धर्म, कुल धर्म, समाज धर्म, लोक धर्म और विश्व धर्म या पूर्ण धर्म । शुक्लजी किसी सीमित वर्ग के कल्याण से संबन्ध रखनेवाले धर्म की अपेक्षा विस्तृत जनसमूह के कल्याण से संबन्ध रखनेवाले धर्म को श्रेष्ठ मानते हैं ।

कबीर साहित्य और बाइबिल में मुख्य रूप से भक्ति का प्रतिपादन हुआ है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्ति भावना को जगत् के आनन्द मंगल के विभूति के साक्षात्कार के समान भक्तों के हृदय में भगवान के साक्षात्कार को माना है ।[३] इस दृष्टि से देखा जाय तो कबीर साहित्य एवं बाइबिल में निस्संदेह लोकमंगल ही चित्रित है । रामचन्चद्र शुक्ल ने इसके बारे में कहा है-'' यद्यपि मूसाइयों और उनके अनुगामी ईसाइयों की धर्म-पुस्तक में आदम को खुदा की प्रतिमूर्ति बताया गया, फिर भी लोक के बीच नर में नारायण की दिव्य कला का सम्यक दर्शन और उसके प्रति हृदय का पूर्ण निवेदन भारतीय भक्तिमार्ग में ही दिखायी पडा ।''[४] लोक में आनन्द या तज्जन्य मंगल हमेशा छिपा रहता है । इसे बाहर लाकर जनता के सामने प्रकट करना सज्जनों का कार्य है । लोक की पीडा, बाधा, अन्याय, अत्याचार आदि के बीच दबा पडा आनन्द लोकमंगल के रूप में ही अपना प्रकाश फैलाता है । कबीर साहित्य एवं बाइबिल में यही हुआ है । काव्य में लोकमंगल के लक्ष्य की स्वीकृति आचार्य शुक्ल की संस्कृतिपरक समीक्षा की व्यापक आधार शिला रही है । उनकी

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि भाग १ पृ. २११
२. वही पृ. २०९
३. वही पृ. १४६

दृष्टि में वही कवि पूर्ण है जो अपनी कृति द्वारा लोकरंजन और लोकमंगल का समन्वित संदेश दे सके । लोक के आनंद-मंगल की दृष्टि से उन्होंने काव्य के दो विभाग किए हैं-आनन्द की साधनावस्था या प्रयत्नपक्ष को लेकर चलनेवाले,आनन्द की सिद्धावस्था या उपयोग पक्ष को लेकर चलने वाले । प्रथम के भीतर पीडा, बाधा, अन्याय, अत्याचार आदि के दमन में तत्पर शक्ति के संचरण तथा दूसरे के भीतर सुरा-सौन्दर्य, माधुर्य, उल्लास, प्रेम व्यापार आदि की रमणीयता विशेष रूप से अभिव्यक्त होती है ।[१] जीवन की अनेक परिस्थितियों में लोकमंगल के सौन्दर्य का साक्षात्कार शुक्लजी की दृष्टि से एक पूर्ण कवि का वैशिष्ट्य है जो वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और तुलसी जैसे कवियों में प्राप्त होता है । कबीर साहित्य एवं बाइबिल में भी यही प्रवृत्ति लक्षित होती है । प्रेम केलिए पीडा, बाधा, अन्याय, अत्याचार आदि को सहने में तैयार होकर कबीर-साहित्य में ''कबीर यह घर प्रेम का'',बताया गया हैं और ''प्रेम सहनशील और दयालु है'' प्रेम का कभी अन्त नहीं होगा'' प्रेम ही सबसे महान है'' आदि बातें बाइबिल भी बताता है । अपने प्रति अपकार, अत्गाचार, पीडा आदि करनेवाले के साथ उपकार एवं सद्व्यवहार कर उस शत्रु को परास्त कर व्यक्ति व्यक्ति एवं समाज को मंगल एवं भलाई से पूर्ण करने का आह्वान भी ये दोनों ग्रन्थ देते हैं । कबीर यों कहते हैं --

जो तोको कांटा बुवे, ताहि बोवै तू फूल ।''[२]

याने जो हमारे जीवन के रास्ते में पीडा, दुख-दर्द आदि बाधारूपी कांटे डालकर हमारी विपत्ति चाहते हैं हम उसकी प्रतिक्रिया बुराई के रूप में न करके भलाई करें, कांटे के बदले फूल को ही लौटा दें । बाइबिल का आह्वान भी इससे मिलता

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि पृ. १४७

२. डॉ. पद्मनाभ तिवारी कबीर ग्रन्थावली पृ.

जुलता है-'' अपने शत्रुओं से प्रेम करो और जो तुम पर अत्याचार करते हैं, उनकेलिए प्रार्थना करो ।'' [१] जीवन की विभिन्न परिस्तिथितियों में कबीर-साहित्य एवं बाइबिल लोकमंगल के सौन्दर्य का साक्षात्कार ही चाहते हैं जो शुक्लजी की राय में भी पूर्ण कवि एवं विशिष्ट साहित्य का लक्षण है । इन सबका चित्रण कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में यह दिखाने केलिए हुआ है कि अत्याचार जैसे दुर्गुणों के रहने से समाज नष्ट हो जाता है और लोकमंगल का विधान अमंगल में परिणत हो जाता है ।

लोकमंगल की व्यवस्था, अभ्युदय की सिद्धि को आचार्य शुक्लजी ने धर्म कहा है । अन्यथा यह अधर्म है । अधर्म को हटाने में धर्म का परिपालन अत्यन्त आवश्यक है । धर्म मंगल का और अधर्म अमंगल का प्रतीक है । धर्म की हमेशा विजय होती है और अधर्म की पराजय । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में इसी का चित्रण किया गया है । धर्म के अनुवर्तन केलिए इन दोनों साहित्यों में कुछ अनिवार्य तत्वों की ओर संकेत मिलता है और इनमें यह समान रूप से किया गया है । इन तत्वों के पालन से भीतरी और बाहरी सौन्दर्य कायम हो जाता है । ये प्रमुख तत्व हैं सत्य, अहिंसा, परोपकार, समभाव, दया, भक्ति एवं प्रेम, विश्वास, सारग्रहण और सहिष्णुता, कथनी और करनी का सामंजस्य, अस्तेय, निष्काम कर्म, अपरिग्रह, क्षमा भाव, सत्संग आदि।

चूँकि कबीरदास आत्मा को महत्व देते थे, उसकी अपार शक्ति को मानते थे और घर घर में उसके अस्तित्व को गुहराकर कहते थे इसलिए उनका साहित्य भी इसी का प्रचार करने में सक्षम था । उनके ये स्वानुभव साहित्य में भी उतरकर आए थे । वे सत्य ही मानते थे --

---

१. नया विधान संत मात्यु ५:४४

पोथी पढि पढि जग मुआ पण्डित भया न कोय
ढाई आखर प्रेम का पढा सो पण्डित होय ।''

कितना सत्य वचन है ! प्रेम का जादू अपार है । प्रेम व्यक्ति व्यक्ति को मिलाता है। प्रेम ही ईश्वर है । प्रेम से एक आत्मा दूसरी आत्मा की ओर आकृष्ट होती है । लोकमंगल के मूल में प्रेम के सिवा और क्या हो सकता है । कबीरदास इसे भली भाँति जानते थे तभी तो पग पग पर उन्होंने प्रेम का महत्व गाया –

कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नांहि
सीस उतारै हाथ सौ, तब पैठे घर मांहि । [१]

अर्थात् प्रभु के यहाँ केवल प्रेम से प्रवेश हो सकता है । जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपनी मौसी के घर अधिकारपूर्ण ढंग से प्रवेश कर सकता है, वैसा यहाँ संभव नहीं है । वही व्यक्ति इस गृह में प्रवेश करने का अधिकारी है जो अपने अहंभाव को सर्वथा मिटा देता है । प्रेम की महत्ता के बारे में बाइबिल खूब बताता है । विशेषतः प्रेम में अहंभाव को ज़रा भी स्थान नहीं, है यह भी बाइबिल बताता है । संत पोल भ्रातृप्रेम का गुणगान करते हुए बताते हैं कि '' प्रेम सहनशील और दयालु है । प्रेम न तो ईर्ष्या करता है, न डींग मारता, न घमण्ड करता है ।'' [२] फिर कबीर बतातेहैं-

प्रेम न बारी ऊपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ
राजा परजा जेहिं रुचै, सीस देइ लै जाइ ।'' [३]

यहाँ कबीर बताते हैं कि प्रेम किसी वाटिका में उत्पन्न नहीं होता, जिसे इच्छानुसार

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १८३
२. संत पोल कोरिन्थियों के नाम पहला पत्र १३:४

इच्छानुसार लाया जा सके और न तो वह बाज़ार में ही बिकता है जिसे मूल्य देकर खरीदा जा सके । वह धनवान या वैभवशाली व्यक्ति के अधीन में नहीं है । उसकी प्राप्ति का एक ही उपाय है-अहंभाव का सर्वथा त्याग । जो ऐसा कर सकता है - वह धनी हो या निर्धन, राजा हो या रंक, शासक हो या शासित, उसे प्राप्त कर सकता है ।

इस प्रेम को बनाये रखने केलिए व्यक्ति को अपने जीवन में कुछ उदात्त तत्वों का अनुसरण करना होता है । वे हैं -सत्य, अहिंसा, अस्तेय, परोपकार, समभाव, दया, विश्वास, निष्काम कर्म, अपरिग्रह, समर्पण भाव, मधुर भाषण,क्षमा, विनयशीलता, आत्मशुद्धि, सत्संग, सहिष्णुता इत्यदि । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल इसे भली-भाँति जानते थे और इसी कारण इन दोनों ग्रन्थों में स्थान स्थान पर इनका महत्व गाया है ।

सत्य के अनुवर्तन से लोकमंगल

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल के अनुसार सत्य का अनुवर्तन परमावश्यक है । असत्य-भाषण से व्यक्ति और तद्वारा समाज पर बहुत दूषित प्रभाव पडता है । जैसे समुद्र में उठने वाली लहरें समग्र समुद्र के जल को प्रभावित कर सकती हैं वैसे ही समाज के प्रत्येक व्यक्ति के कार्य अन्य व्यक्तियों को भी प्रभावित करते हैं । डॉ.भगीरथ मिश्र के अनुसार -'' सत्य के प्रति इतनी अधिक सामाजिक चेतना चाहिए कि जिसके प्रकाश-प्रवाह में असत्य के विकार की आती हुई पर्तें बराबर बह-धुलकर साफ हो जायें और एक के बाद दूसरी तहें न जमने पावें । इसलिए सत्य को ग्रहण करना समाज के प्रत्येक व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य है ।''[१] सत्य की आवश्यकता और उसके

---

१ डॉ.भगीरथ मिश्र साहित्य साधना और समाज प ८

महत्व पर प्रायः सभी धर्मों के अन्तर्गत प्रकाश डाला गया है । संस्कृत साहित्य एवं उससे पूर्व वैदिक साहित्य के अन्तर्गत सत्य-भाषण के महत्व को स्पष्ट करनेवाले असंख्य कथन हैं। वाल्मीकि -रामायण में सत्य को धर्म की पराकाष्ठा और सबका मूल कहा गया है –

धर्मःसत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते ।'' [१]

सत्य ही जगत् में ईश्वर है, सदा सत्य के ही आधार पर धर्म की स्थिति रहती है, सत्य ही सबका मूल है, सत्य से बढकर दूसरा कोई परम-पद नहीं । [२] मनु सत्य तथा प्रिय-भाषण का मार्ग स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सत्य बोले, प्रिय बोले, सत्य भी अप्रिय न बोले और प्रिय भी असत्य न बोले यही सनातन धर्म है । [३] कबीरकालीन समाज में सत्य का हनन हो रहा था और झूठ का प्रचार हो रहा था। तभी तो कबीर ने कहा –

साँचै मारै झूठ पढि, काजी करै अकाज । [४]

यहाँ पाँच बार नमाज पढनेवाले काजी को देखकर कबीर पूछते हैं क्या तू कुरान की आयतों के अनुसार आचरण भी करता है ? यदि तू केवल तोते के समान उन आयतों का पाठ-मात्र करता है तो तेरी यह वंदना झूठी है । यंत्रवत् वाचिक प्रार्थना से तू तत्व को नहीं पहचान सकता । शब्दों के जाल में फँसे रहने से सत्य की हत्या ही होगी और तू अपनी ही अकाज करेगा अर्थात् जिस लक्ष्य की प्राप्ति केलिए तू वंदना करता है, उससे च्युत हो जाएगा । तू अपनी ही हानि करेगा ।

---

१. वाल्मीकी रामायण अयो १०९.१२
२. वही १०९.१३
३. मनुस्मृति ४.१३८

झूठनी झूठ साँच करि जाना । झूठनि में सब साँच लुकाना ।[१]

याने झूठ को लोग सत्य समझा रहे थे और उसी असत्य में सत्य तिरोहित हो गया था । सत्य के तिरोहित होने से इस प्रकार समाज का नाश होता रहता है बाइबिल के समाज में भी यही देखा गया । इस प्रकार समाज को नाश से बचाने केलिए बाइबिल में भी सत्य की महान गाथा गायी है । सत्य शब्द से तात्पर्य यहाँ ईमानदारी से है । सत्य साक्षात् ईश्वर है - कथन का अर्थ है ईश्वर ईमानदार है । बाइबिल में सत्य ईसा द्वारा प्रकट किए हुए ईश्वर के वास्तविक स्वरूप की ओर संकेत करता है । वह सत्य मनुष्यों को स्वतंत्र बना देता है ।[२] बन्धन या अस्वतंत्रता हमेशा अमंगल है जो मानव को नाश की ओर ले जाता है । स्वतन्त्रता इसके ठीक उलटे मानव को विकास की ओर अग्रसर करती है और इससे समाज का और व्यक्ति का मंगल हो जाता है । येशु सत्य के विषय में साक्ष्य देने आये । येशु ने कहा मार्ग, सत्य और जीवन मैं हूँ ।[३] बाइबिल के अनुसार, जिसका आचरण निर्दोष है, जो सदा सत्कार्य करता है, जो हृदय से सत्य बोलता है वही ईश्वर के शिविर में प्रवेश करता है ।[४] सत्य या ईमानदारी की महत्ता दिखाते हुए सूक्ति-ग्रन्थ में बताया गया है -'' प्यार और ईमानदारी को अपने से अलग नहीं करो । उन्हें अपने गले में बांध-लो, अपने हृदय के पटल पर अंकित कर लो ।''[५] सत्य का वाहक व्यक्ति हमेशा दूसरों की मंगलकामना करता है ।

कबीर अपनी आत्मा के पूजारी थे और वे जानते थे कि सत्य दो नहीं हो

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. १७४
२. नया विधान संत जॉन ८:३२
३. वही १४:६
४. पुराना विधान स्तोत्र-ग्रन्थ १५:३
५. वही सक्ति -ग्रन्थ ३:३

सकते । इसलिए उन्होंने किसी सत्य का कभी विरोध नहीं किया । जो सत्य नहीं वह धर्म भी नहीं हो सकता । आत्मा के सच्चे सेवक होने के कारण कबीर ऋषियों से भिन्न स्तर के न थे और दिव्य आत्माओं की अनुभूतियाँ प्रायः एक सी होती हैं क्योंकि अनुभूति पवित्र अन्तःकरण की ध्वनि होती है । कबीर का काव्य इसका ज्वलन्त प्रमाण है । कबीर का परम आराध्य या कथ्य का केन्द्रबिन्दु परमतत्व ही था । वे कहते हैं –

कबीर जिनि जिनि जांनिया, करता केवल सार
सो प्रांनीं काहे चलै, झूठे कुल की लार । [१]

यहाँ कबीर का तात्पर्य तो यह है कि जो लोग समझदार हैं वे यह जानते हैं कि केवल कर्ता (स्रष्टा) अर्थात् ब्रह्म ही जीवन का सार है । ऐसे समझदार प्राणी झूठे जग के साथ क्यों चलेंगे अर्थात् वे तुच्छ वस्तु के पीछे क्यों पडेंगे ? वह परमात्मा ही परमसत्य है क्योंकि वास्तव में 'सत्य' वह है जो तीनों कालों (भूत, भविष्य, वर्तमान) से बाधित न हो । उस परमतत्व के प्रति आस्था ही वास्तविक रूप से सत्य के प्रति आस्था है । बाइबिल के अनुसार यह सर्वविदित बात है कि पृथ्वी की प्रत्येक वस्तु का अपना एक धर्म है इस वस्तु धर्म को ही सत्य कहा जाता है । सत्य जीवन की यथार्थता है और वह व्यक्ति का श्रेष्ठ धर्म भी है । व्यक्ति की, सामजंस्य से युक्त कथनी एवं करनी द्वारा उसका सच्चाआचरण व्यक्त होता है । वचन और कर्म द्वारा जो सत्य भाव प्रकट होता है वही मानव का आधारभूत धर्म है । इसलिए प्रवक्ता ग्रन्थ में यों कहा गया हैं -'' सत्य का विरोध मत करो । [२] पुराना विधान में नबी ज़करिया लोगों को ईश्वर की ये वाणी देते हैं -'' तुम्हारे ये कर्तव्य हैं, एक दूसरे से

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २१४
२. पुराना विधान प्रवक्ता-ग्रन्थ ४:३०

सत्य बोलना तुम्हारे न्यायालयों के निर्णय से शान्ति की स्थापना हो जाये, एक दूसरे के प्रति दुर्भावना न बनाये रखना, झूठी शपथें न खाया करना, इन सबों से मुझे घृणा है । [१] एफेसियों के लोगों ईश्वरोन्मुख करने के उद्देश्य से संत पोल जो आह्वान देते हैं वह भी ध्यान देने योग्य है -'' हम प्रेम से प्रेरित होकर सत्य बोलें और इस तरह मसीह की परिपूर्णता प्राप्त करें । इसलिए आप लोग झूठ बोलना छोड दें और एक दूसरे से सच ही बोलें, क्योंकि हम एक दूसरे के अंग हैं । [२]

कबीर का जीवन एक ऐसा जीवन था जो हमेशा सत्य की खोज में लगा रहा। किसी भी वस्तु में क्या सत्य है कबीर सही निरूपण किया करते थे । उनका जीवन सत्य से युक्त जीवन था और वे पूरे समाज को भी सत्य से युक्त देखना चाहते थे । वे सत्य के व्याहर्ता और पक्षपातरहित समीक्षक थे । सत्य का विचार और आचार उनके जीवन का साक्षात्कृत अभिनव तथ्य था । वे बताते हैं –

लेखा देनां सोहरा, जौ दिल सूचो होइ
उस सांचै दीवांन मैं, पला न पकडै कोइ ।'' [३]

याने जिसका दिल सच्चा हो, उसकेलिए हिसाब देना बहुत ही सरल है । जिसने सच्चाई के साथ जीवन व्यतीत किया है, उसका प्रभु के निर्मल एवं खुले दरबार में कोई पल्ला नहीं पकड सकता अर्थात् उसका दमन पकडकर कोई रोक नहीं सकता। इसलिए उनकी राय यह है कि –

---

१. पुराना विधान ज़करिया का ग्रन्थ ८:१६-१७
२. संत पोल एफेसियों के नाम पत्र ४:१५,२५
३. डॉ.पारसनाथ तिवारी, कबीर ग्रन्थावली, पृ. २१०

जैसी मुख तैं नीकसे, तैसीं चालै नाहिं
मानुख नहीं ते, स्वांन गति, बाँधे जमपुर जांहि ।'' [१]

अर्थात् जिन व्यक्तियों की कथनी-करनी में सामंजस्य नहीं है, वे वास्तव में मनुष्य नहीं है । कथनी के अनुसार सत्याचरण करना ही मनुष्य का धर्म है । जो व्यक्ति इसी प्रकार का सत्याचरण नहीं करता है उनकी गति उस कुत्ते के समान है जो भौंकता बहुत है किन्तु करता कुछ नहीं । कबीर की राय में वे अपने कर्मों के द्वारा बँधे हुए कालग्रस्त जीव हैं । बाइबिल के अनुसार सत्य में समस्त धर्मों का अन्तर्भाव हो जाता है । इसके अनुवर्तन से धार्मिक झगडे और तज्जन्य समस्यायें समाप्त हो जाती हैं । सत्य हमें स्वतत्र करता है । याने सत्य में सदा ही एक मुक्त करनेवाली शक्ति रहती है । लेकिन हमेशा सत्य कहनेवालों के प्रति मनुष्य अपनी आँखें, अपने कान और अपना मन बन्द कर देते हैं । उनका घात भी करते रहते हैं, उनको सताया जाता है तो भी सत्य सत्य ही रहता है । येशु का पूरा जीवन और उनकी मृत्यु इसका सच्चा उदाहरण है । येशु सत्य के विषय में साक्ष्य देने आये । येशु ने उस समय के राज्यपाल पिलातुस से कहा - मैं इसलिए जन्मा और इसलिए संसार में आया हूँ कि सत्य के विषय में साक्ष्य दूँ । जो सत्य के पक्ष में है, वह मेरी सुनता है ।''[२] मसीह की श्रेष्ठता के बारे में संत जोन यों कहता है - जो ऊपर से आता है, वह सर्वोपरि है, जो पृथ्वी से आता है, वह पृथ्वी का है और पृथ्वी की बातें बोलता है । जो स्वर्ग से आता है, वह सर्वोपरि है । उसने जो कुछ देखा और सुना है, वह उसी का साक्ष्य देता है, किन्तु उसका साक्ष्य कोई स्वीकार नहीं करता। जो उसका साक्ष्य स्वीकार करता है, वह ईश्वर की सत्यता प्रामाणित करता है ।''[३]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २४२
२. नया विधान संत जॉन १८:३७
३. वही ३:३१-३३

याने येशु सत्य का साकार रूप है और आज तक विद्यमान है । भले ही प्रत्येक मनुष्य झूठा निकल जाये, किन्तु ईश्वर सत्यप्रतिज्ञ है । जैसा कि लिखा है-'' तेरे निर्णय सही प्रमाणित होंगे और इनकी जाँच होने पर तू विजयी होगा ।'' [१] ईश्वर की सत्यप्रतिज्ञता के बारे में स्तोत्र ग्रन्थकार यों बताते हैं -'' प्रभु ! तेरा प्रेम स्वर्ग तक फैला हुआ है, आकाश की तरह ऊँची है तेरी सत्य प्रतिज्ञाता ।'' [२] आगे वे बताते हैं -'' ओह ! ईश्वर कितना भला है ! उसका प्रेम चिरस्थायी है । उसकी सत्यप्रतिज्ञता युगानुयुग बनी रहती है ।'' [३] तेरी सत्यप्रतिज्ञता पीढ़ी-दर-पीढ़ी बनी रहती है ।'' [४] सत्यमेव जयते ! सत्य की ही विजय होती है । यह कथन पूर्णतः सत्य है । जीवन में जो व्यक्ति सत्य से चलता है अन्ततः उसकी विजय होती है । वह अपना तथा दूसरों का याने पूरे संसार का भला करता रहता है । व्यक्त है, लोकमंगल केलिए सत्य का अनुवर्तन सर्वाधिक आवश्यक है । कबीर और येशु यह अच्छी तरह जानते थे । इसलिए उनके साहित्य में इसका महत्व स्थान स्थान पर गाया गया है ।

सत्य के ज्ञान के बिना आचरण करना यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है । कबीर ने ब्रह्म को अपने अन्तःकरण में आविर्भूत कर, सत्य का कवच पहनकर, कटु सत्यों का प्रहार करते हुए उन्होंने समाज के सब अधार्मिक ठेकेदारों को झाडकर, फटकार कर और समझाकर अपना कर्तव्य निभाया । वे मानव को याद दिलाते हैं –

---

१. संत पोल रोमियों के नाम पत्र ३:४
२. पुराना विधान स्तोत्र ग्रन्थ ३६:६
३. वही १००:५
४. वही ११९.९०

''कबीर पूंजी साहु की, तू जनि खोवै ख्वार
खरी बिगुरचनि होइगी, लेखा देती बार ।'' [१]

अर्थात् वे मानव से बताते हैं हे मानव ! यह जीवन प्रभु रूपी महाजन के द्वारा एक पूँजी के समान दिया गया है । तू इसको विषयासक्ति और कुकर्मों से बुरी तरह नष्ट न कर, अन्यथा प्रभु को हिसाब देते समय तुझे भारी अडचन का सामना करना पडेगा। काजी और मुल्ला की प्रवृत्ति देखकर कबीर अपना आक्रोश प्रकट करते हैं-

काजी मुल्ला भरमियाँ, चला दुनीं के साथि
दिल तैं दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि ।'' [२]

काजी और मुल्ला जो औरों को भ्रम से हटाकर धर्म का उपदेश देते रहते हैं, स्वयं भ्रम के शिकार हो गये । कबीर साफ साफ व्यक्त करते हैं कि ये काजी और मुल्ला जब हाथ में छुरी लेकर हलाल करते हैं, तब वे जिसको उपदेश देते थे, उसी के साथ चलते रहते हैं, उसके समान आचरण करने लगते हैं और धर्म को हृदय से भुला देते हैं । 'धर्मो रक्षति रक्षितः।' जो धर्म का अनुसरण करता है, धर्म उसकी रक्षा केलिए तैयार रहता है । जो धर्म का पालन नहीं करता उसका नाश अवश्यंभावी है । कबीर इसे भली भांति जानते थे। इसीलिए सत्य के मार्ग याने धर्म के मार्ग पर चलने की शिक्षा देते हैं । सत्य धर्म का पालन जीवन में मंगलप्रदायक होता है ।

किसी भी सिद्धान्त का अन्धानुकरण सत्यशोधक को स्वीकार्य नहीं होता । कबीर अंधानुकरण के घोर विरोधी हैं । कबीर का कबीरत्व इसी में है कि उन्होंने केवल 'अनुभौ सांच' को ही अभिव्यक्त किया । इसलिए कबीर के कथन में सत्य का

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २१३

बल, वाणी का ओज, भाषा की सरलता और सादगी, जिन्दगी की सच्चाई, ज्ञान का प्रकाश, बौद्धिकता का विकास, समाज का कल्याण है और इनसे भी बढकर, जीवन का अमर सन्देश-एकमात्र सत्य से तादात्म्य । कबीर अपने युग की विषमता का संकेत करते हुए कहते हैं कि सत्य का कहीं सम्मान नहीं पर झूठ का सर्वत्र आदर है । वे स्पष्ट करते हैं –

झूठे को झूठा मिलै, दूनाँ बधै सनेह
झूठे को साँचा मिलै, तब ही तूटै नेह ।'' [१]

जैसे कि संसार के मिथ्या बंधनों में लिप्त मनुष्य को जब वैसा ही दूसरा संसारी पुरुष मिलता है तो दोनों में दुगुना स्नेह हो जाता है । यह स्नेह केवल मायाजनित है। किन्तु मिथ्या वस्तु के अनुरागी व्यक्ति को यदि सद्‌गुरु मिल जाय तो मायाजनित स्नेह तथा विषयानुराग नष्ट हो जाते हैं । कबीर के मतानुसार मानव अपने जीवन में पवित्रता लाने केलिए अनेक प्रयत्न करता है परंतु सत्य के समान कोई तपस्या नहीं है । वही सब कर्मों के ऊपर है । असत्य से बढकर कोई पाप नहीं है । जिसके हृदय में सत्य हैं उसके हृदय में भगवान स्वयं वास करते हैं ।

सांच बरोबरि तप नहीं, झूठ बरोबरि पाप
जाकै हिरदै सांच है, ताके हिरदै आप ।'' [२]

सत्य वही है जो हमेशा एक जैसा रहता है । अनुकूल और प्रतिकूल अवस्थाओं में सत्य का रूप एक ही रहता है । उसमें परिवर्तन नहीं होता । इसलिए मानव को चाहिए कि वह सत्य से अटूट नाता रखे । भले ही इससे अच्छा फल मिले या बुरा।

---

१. डॉ.जयदेवसिंह कबीर वाङमय खंड- ३ पृ. १८७
२ डॉ पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली प १८।७

यहाँ फल से कोई मतलब नहीं क्योंकि फल हमेशा मीठा नहीं रहता । सत्य का यही वैशिष्ट्य है कि वह पहली दृष्टि में मीठा भी कडवा दिखाता है । लेकिन अन्ततोगत्व सत्य का फल मीठा ही रहता है । विद्वान लोग इसे अच्छी तरह जानते हैं इसीलिए सत्य का महत्व हमेशा गाते रहते हैं । बाइबिल भी यही आह्वान करता है कि मानव अपनी अनुकूल एवं प्रतिकूल अवस्था में सत्य के प्रति प्रतिबद्ध होना है। संत पोल बताते हैं कि आप सत्य का कमरबन्द कस कर धार्मिकता का कवच धारण करें ।'' [१] हर परिस्थिति में ईश्वर के योग्य सेवक की तरह आचरण करना है । और स्तोत्र ग्रन्थकार ईश्वर से यों प्रार्थना भी करते हैं -'' प्रभु ! मुझे अपना मार्ग दिखा, जिससे मैं तेरे सत्य के प्रति ईमानदार रहूँ । [२] संत पोल हिम्मत के साथ लोगों से बताते हैं कि सम्मान तथा अपमान,प्रशंसा तथा निन्दा चाहे जो भी हो हमको सत्य बोलना चाहिए । कारण, हम सत्य के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते, हम सत्य का समर्थन ही कर सकते हैं । [३] सूक्ति ग्रन्थों में कहा गया है प्रभु को झूठ बोलने वालों से घृणा है, किन्तु वे सत्य बोलने वालों पर प्रसन्न है ।''[४] प्रभु धर्म और सच्चाई से ही संसार के राष्ट्रों का न्याय करेंगे । [५]

धर्म के लक्षणों में सत्य का सर्वप्रथम एवं सर्वोच्च स्थान है । लौकिक व्यवहार में सत्य मन का सात्विक गुण कहा जाता है । जबकि आध्यात्मिक परिधि में वह सत्यस्वरूप ब्रह्म है । व्यावहारिक दृष्टि से मन, वचन एवं कर्म से व्यक्ति को सत्यशील होना चाहिए । वह सत्य ही विचारे, सत्य ही बोले और सत्य कर्म ही करे। सत्य शब्द का तात्पर्य है स्थिर, सदैव विद्यमान जिसका कभी अभाव न हो ।

---

१. संत पोल एफेसियों के नाम पत्र ६:१४
२. पुराना विधान स्तोत्र-ग्रन्थ ८६:११
३. संत पोल कोरिन्थियों के नाम दूसरा पत्र १३:८
४. पुराना विधान सूक्ति-ग्रन्थ १२:२२

कबीर ऐसे साधक को मुक्त कहते हैं जो सत्य ही कहता है, सत्य को ग्रहण करता है, असत्य का परित्याग कर देता है । उनके शब्दों में –

सांच ही कहत और सांच ही गहत है
कांच कूं त्याग कर सांच लागा । [१]

सत्य की अनुभूति केलिए निरन्तर अभ्यास, वैराग्य, इन्द्रियनिग्रह तथा अन्य यम-नियमों का पालन करना साधक केलिए अनिवार्य है । कबीरदास मानव को सत्य का पालन करने केलिए कहते हैं कि सांई (स्वामी) को सत्य ही प्रिय है । इस भाव से युक्त होकर फिर चाहे सिर मुंडा लो या जटा बढा लो –

साई से साचा रहौ, साई साच सुहाय
भावै लम्बे केस रखु, भावै छोट मुंडाय । [२]

कबीर का अनुभवजन्य सत्य सबके लिए हितकारी एवं प्रिय रहता है । उनके अनुसार झूठ बोलने वाला व्यक्ति सदा झूठ में ही उलझकर रह जाता है । यदि मनुष्य अन्दर से सत्य का पालन करता है तो उसे बाहर दिखाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उसकी आन्तरिक सत्यता तो जाननेवाला जान ही जायेगा । कबीर चेतावनी देते हैं कि झूठे कर्मों से भगवान की प्राप्ति नहीं हो सकती । सत्य मार्ग पर दृढ रहने वाले को ही भगवान अपने स्वरूप के दर्शन कराते हैं –

कूडी करणीं राम न पावै, साच टिकै निज रूप दिखावें ।'' [३]

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. २४८
२. कबीर सन्तावाणी संग्रह, भाग दो बेलवेडियर प्रस पृ. ४६
३. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली प्र.११७

सत्य के बल पर ही समाज टिका हुआ है । सत्य थोडा सा दुर्बल पडता है तो समाज अस्तव्यस्त होता है एवं उसमें अराजकता बढ जाती है । जो सत् है, उसका नाश कौन कर सकता है । संत पोल सत्य से विचलित कुमार्ग को अपनाकर जीनेवाले गलातिया के लोगों से पूछते हैं -'' आप लोग अच्छी प्रगति कर रहे थे। आपको किसने सत्य के मार्ग पर आगे बढने से रोका ?'' याद रखें थोडा-सा खमीर सारे सने हुए आटे को खमीर बना देता है । आगे वे बताते हैं जो व्यक्ति सत्य के विरुद्ध बातें कर समाज में अशान्ति उत्पन्न करता है, वह चाहे जो भी हो, ईश्वर का दण्ड भोगता है । बाइबिल में एक अनुभवजन्य चिरपरिचत सुन्दर उदाहरण से सत्य की महत्ता स्पष्ट की गई है । थोडा सा खमीर जिस प्रकार सारे आटे को खमीर बना देता है वैसे ही झूठ की एक चिनगारी सबको जलाने में समर्थ रहती है। स्पष्ट है कि

काजल की कोठी में कैसोहु जयानो जाय
एकलीक काजल की लागी है पै लागी है ।''

यही सत्य और असत्य का भेद है सत्य जितना अधिक हो उसका फल देर से ही मिलता है । झूठ थोडा ही सही उसका फल उतना ही गहरा होता है । पहला सर्जनात्मक रहता है तो दूसरा नाश्वान रहता है । पहला मंगलदायक रहता है तो दूसरा अमंगल का वाहक होता है । कबीर के विचार में समाज में फैले भय, माया, मोह आदि का कारण भी सत्यज्ञान का अभाव है । झूठ के कारण जीव झूठी आशा में भटकता रहता है । जैसे ज्येष्ठमास की तपती गर्मी में मृग मरु-मरीचिका के फेर में पडकर तृषित ही रह जाता है, वैसे ही झूठ के बन्धन में फँसा मनुष्य सदैव अतृप्त रहता है ।

झूठ देखि जीव अधिक उराई, बिना भुवंगन इसी दुनियांई
डॉ.झूठै झूठ लागी रही आसा, जेठ मास जैसे क़ुरंग पियासा ।'' [१]

आगे कबीर व्यक्त करते हैं कि --

सांच सोई जै थिरह रहाई, उपजै विनसै झूठ ह्वै जाई ।'' [१]

याने सत्य कभी विकृत नहीं होता, जहाँ विकार एवं विनाश है वहीं सत्य नहीं है । इसी प्रकार की विभिन्न त्रृटियों से युक्त समाज की रक्षा करके उसे मंगलमय बनाने की कोशिश कबीर ने की । क्योंकि कबीर जानते थे कि सत्य व्यक्तिगत जीवन का सद्‌गुण ही नहीं बल्कि सामाजिक जीवन का भी उन्नायक है । असत्य, शोषण एवं उत्पीडन से युक्त समाज की कल्पना तक नहीं की जा सकती । ऐसे समाज में विकास अपने आप रुक जाता है । अर्थात् झूठ जैसी अहितकर बातें समाज में बाधा उत्पन्न करती हैं। जो सत् है उसका नाश कोई नहीं कर सकता । अतः सत्य के बल पर ही समाज टिका हुआ है । सत्य से तात्पर्य सत्य बोलना मात्र नहीं है। उसी केलिए हमारा हर एक काम, हर एक प्रवृत्ति हो । इस सत्य को समझनेवालों केलिए जगत में और कुछ जानने को नहीं रहता, क्योंकि समूचा ज्ञान उसी में समाया हुआ है, उसी में सच्चा आनन्द है । मानव अगर इसका अनुवर्तन करना सीखे तो तुरंत मालुम हो जायेगा कि कौन सा कार्य करने लायक और कौन सा छोडने लायक है ? इसी प्रकार का विवेक अपनाने पर व्यक्ति व्यक्ति में प्रगति एवं तद्‌द्वारा समाज की उन्नति भी होती है । इसकी स्थापना केलिए ही कबीर ने अपना जीवन व्यतीत किया ।

इस प्रकार कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में सत्य के महत्व को बताते हुए सत्य बोलने पर बल दिया गया है । सत्य का प्रकटन वाणी द्वारा ही संभव है । इसलिए बोलने में सावधान होने का आह्वान भी कबीर एवं बाइबिल देते हैं । सच्ची वाणी

---

१. डॉ.श्यामसुनादर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. १७७

की महत्ता व्यक्त करते हुए कबीरदास यों बताते हैं --

ऐसी बांनी बोलिए, मन का आपा खोइ
अपनां तन सीतल करै, औरां कौं सुख होइ ।'' [१]

कबीर कहते हैं कि अपने मन का अपनत्व और अहंकार छोडकर मनुष्य को सीधी और सत्य वाणी बोलनी चाहिए । इससे बोलनेवाला स्वंय आनन्द एवं शीतलता प्राप्त करता है और सुनने वाले उस वाणी से सुख का अनुभव करते हैं । लोकमंगल का साधन इससे बढकर क्या हो सकता है । सत्य की उपेक्षा लोकमंगल में बाधा उत्पन्न करती है । बाइबिल में सूक्तिकार बताते हैं - मनुष्य के मुख से निकलनेवाली वाणी गहरा जल, उमडती नदी और प्रज्ञा का स्रोत है ।'' [२] सत्यवादी की वाणी पर बल देते हुए आगे भी वे बताते हैं -'' सत्यवादी का कथन सदा बना रहता है, किन्तु मिथ्यावादी की वाणी क्षणभंगुर है । [३] अविचारित शब्द कटार की तरह छेदते हैं किन्तु ज्ञानियों की वाणी मरहम - जैसी है ।'' [४] यहाँ कबीर साहित्य एवं बाइबिल में सच्ची वाणी की महिमा भी दिखायी गयी है । उनके अनुसार सत्य का अर्थ केवल सत्य बोलना ही नहीं है । सत्य केलिए ही हमारी हर एक प्रवृत्ति हो। मानव का हर सांस सत्य के साथ लेकर चले । व्यवहार एवं बोलने में सच्चाई को बरतना ही कबीर-साहित्य एवं बाइबिल के अनुसार सत्य है ।

अहिंसा

सत्य साध्य है तो अहिंसा उसकी प्राप्ति का साधन है । सत्य को साधना

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १९५
२. पुराना विधान स्तोत्र-ग्रन्थ १८:४
३. वही १२:१९
४. वही १२:१८

अहिंसा के बिना असंभव है । सब प्रकार से सब काल में सभी प्राणियों के साथ वैरभाव का परित्याग कर, प्रेम के साथ व्यवहार करना तथा किसी भी सचेतन प्राणी को मनसा, वाचा, कर्मणा एवं शरीर से किसी भी प्रकार का कष्ट न देना अहिंसा कहलाता है । अहिंसा को भारतीय समाज में परम धर्म माना गया है, 'अहिंसा परमो धर्मः'। कबीर-काव्य के अध्ययन से पता चलता है कि वे अत्यन्त करुण प्रकृति के व्यक्ति थे । वे सभी जीवों के प्रति आत्मीयता रखते थे । वे धार्मिक थे और अहिंसा उनका परम धर्म था । कबीरकालीन समाज में धर्म के नाम पर बडी हिंसा होती थी । यह हिंसा हिन्दू, मुसलमान, पाँडे और काजी सबों के घर की जाती थी । ये पाँडे कसाई से कम नहीं थे –

पांडे कौन कुमति तोहि लागी
जीव वधत अरु धरम कहत हौ अधरम कहां है भाई
आपन तौ मुनिजन है बैठे कासनि कहौं कसाई ।'' [१]

प्रस्तुत पंक्तियों द्वारा कबीरदास ने पाँडे लोगों की हिंसा-वृत्ति पर विचार किया है । ये लोग जीवों की हिंसा करते हैं और इस कर्म को धर्म का नाम भी देते हैं । इसलिए कबीर संदेह प्रकट करते हैं कि उनकी दृष्टि में अधर्म से क्या तात्पर्य है ? किसी का कार्य करने के बाद भी पाँडे अपने आपको मुनिजन कहते हैं तब कबीर का संदेह है कि मुनिजन एवं कसाई में क्या अन्तर है ? प्रस्तुत पंक्तियों द्वारा कबीर यही स्थापित करना चाहते हैं कि हिंसा-वृत्ति अधर्म है और यह करनेवाला मुनि नहीं कसाई ही है । कबीर की दृष्टि में मुल्ला की भी यही अवस्था थी जो मुर्गी, बकरी आदि जीवों की हिंसा करते थे ।

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. ७८

मुल्ला कहहु निआउ खुदाई
इहि विधि जीव का भरम न जाइ
कुकडी मारै बकरी मारे हक्क हक्क करि बोलै
सबै जीव सांई के प्यारे उबरहुगे किस बोलै । [१]

कबीर कहते हैं कि मुल्ला ! तुम ही ईश्वरीय न्याय, सच्चा न्याय कर दो । तुम्हारे इस प्रकार के बाह्याचार से जीव का भ्रम नहीं जा सकता । तुम ईश्वर के नाम पर मुर्गी और बकरी का वध करते हो । सभी जीव प्रभु को समान रूप से प्रिय हैं । फिर तुम जीव-हिंसा करके किस मुँह से निस्तार पाओगे । यह मुसलमानों के आचारों पर घोर प्रहार है जिसमें हिंसा का विधान है । कबीर मुसलमान होते हुए भी ऐसे आचारों से घृणा करते थे ।

बाइबिल में प्रारंभ से लेकर अंत तक हत्या को एक बहुत बडी बुराई के रूप में चित्रित किया है । बाइबिल की दृष्टि में मानव जीवन अमूल्य है । ईश्वर ने मनुष्य को अपना प्रतिरूप बनाया । पुराना विधान के अनुसार जो किसी मनुष्य पर ऐसी चोट करे कि वह मर जाये, तो उसे प्राणदण्ड दिया जाये । उत्पत्ति-ग्रन्थ में बताया गया है - जो मनुष्य का रक्त बहाता है, उसी का रक्त भी मनुष्य द्वारा बहाया जायेगा, क्योंकि ईश्वर ने मनुष्य को अपना प्रतिरूप बनाया है ।'' [२] बाइबिल के उत्पत्ति ग्रन्थ के चौथे अध्याय में मानव इतिहास में घटित पहली हत्या का वर्णन है । कायेन ने आबेल पर आक्रमण किया और उसे मार डाला । [३] इस प्रकार ईश्वर का वरदान रूपी मानव जीवन के विरुद्ध मानव का ही हाथ उठाता है । 'पुराना विधान' के ग्रन्थों में हिंसा-वृत्ति में अंतर्निहित बुराई को दिखाया है । नबी एशया

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १०६
२. पुराना विधान उत्पत्ति-ग्रन्थ ९:६
३. वही ४:८

पूछते हैं - यह साध्वी नगरी (जरुसलेम) कैसे वेश्या बन गयी है ? जहाँ पहले न्याय और धार्मिकता का निवास था, वहाँ आज हत्यारे ही पाये जाते हैं । [१] आगे नबी होसिया बताते हैं- इस्राएली लोगो ! प्रभु की वाणी सुनो, क्योंकि प्रभु इस देश के निवासियों पर दोष लगा रहे हैं । देश में सच्चाई और करुणा तथा ईश्वर-भक्ति लुप्त हो गयी है । लोग वचन के पक्के नहीं होते, रक्तपात, डाके और व्यभिचार, बलात्कार और नृशंस हत्यएँ हो रही हैं । [२] बाइबिल हमेशा हत्या के विरुद्ध बोलता रहा है क्योंकि हत्या हिंसा है । हत्या से समाज का मंगल नहीं अमंगल होता रहता है । अहिंसा विकासपथ की ओर ले जानेवाली है । हिंसा इसके ठीक विपरीत नाश की ओर ले चलनेवाली है । बाइबिल का उद्देश्य ही लोकमंगल रहा है । इसलिए बाइबिल हमेशा हिंसा के विरुद्ध ही बोलता रहता है । कबीर के पदों में बार बार इस बात की पुनरावृत्ति हुई है कि हिंसा नहीं करनी चाहिए चाहे वह हिंसा मन से हो, कर्म से हो अथवा वाणी से हो । तत्कालीन समाज में प्रचलित हिंसा को देखकर वे बहुत ही बेचैन थे क्योंकि मनुष्य अपने मनुष्यत्व को भूलकर पशुत्व का कर्म कर रहा था । ऐसे दुष्कर्मों के प्रति कबीर के मन में बडा दुख था। वे कभी यह नहीं चाहते थे कि मनुष्य का मनुष्य के साथ ऐसा दुर्व्यवहार हो । सभी जीवों के प्रति उनमें बडी आत्मीयता थी । वे बताते हैं –

काली मुलां भ्रामियां, चल्या दुनीं के साथि
दिल थैं दींन बिसरिया, करद लई जब हाथि ।'' [३]

याने काजी और मुल्ला दोनों भ्रम में पडे हुए सामान्य दुनियादरी में ही फंसे रहते हैं, जिस समय पशु को मारने केलिए हाथ में छुरी लेते हैं, उस समय उनके हृदय में

---

१. पुराना विधान एशया का ग्रन्थ १:२१
२. वही होसिया का ग्रन्थ ४:१-२

धर्म केलिए कोई स्थान नहीं रह जाता - वे धर्म को भूल जाते हैं ।

अहिंसा का अर्थ है किसी जीव को कष्ट न देना, न सताना और यहाँ तक कि ऐसे शब्दों का प्रयोग भी न करना जिनसे किसी व्यक्ति को मानसिक क्लेश हो । बाइबिल में सूक्ति ग्रन्थकार बताते हैं -'' प्रभू छः बातों से बैर रखता है और सात बातों से घृणा करता है - घमण्ड-भरी आँखें, झूठ बोलनेवाली जिह्वा, निर्दोष रक्त बहानेवाले हाथ, कपटपूर्ण योजनाएँ बनानेवाला हृदय, बुराई की ओर बढनेवाले पैर, असत्य बोलनेवाला झूठा साक्षी और भाईयों में झगडा लगानेवाला व्यक्ति ।'' [१] ये सब व्यक्ति एवं समाज का अमंगल करनेवाले हैं । 'पुराना विधान' के अनुसार मात्र निरपराध एवं धर्मी लोगों के जीवन का हनन करना हत्या है । शत्रु एवं दुष्टों की हत्या को वे पाप नहीं समझते थे । स्तोत्र-ग्रन्थकार याद दिलाते हैं कि रक्त-पिपासु और कपटी मनुष्य अपनी आधी आयु भी पूरी नहीं करेंगे । [२] सूक्ति-ग्रन्थ में बताते हैं रक्तपात का दोषी कब तक मारा मारा-फिरता रहेगा-उसे कोई न रोके। [३] नबी जरेमिया की चेतावनी हैं कि '' तुम प्रभु की वाणी सुनो । प्रभु यह कहता है- न्याय और सदाचरण करो । जो लुट रहा है, अत्याचारी के हाथ से उसकी रक्षा करो । विदेशियों, अनाथों और विधवाओं के साथ अन्याय मत करो, उन पर अत्याचार मत करो और इस स्थान पर निर्दोष रक्त मत बहाओ । [४]

'पुराना विधान' में चार प्रकार की हत्या के बारे में बताया गया हैं-उनमें एक है जानबूझकर की जानेवाली नरहत्या, जिसका बाइबिल में शक्तिपूर्वक विरोध देख सकते हैं । इसके बारे में गणना-ग्रन्थ में यो कहा गया हैं -'' यदि कोई द्वेष से किसी

---

१. पुराना विधान सूक्ति-ग्रन्थ ६:१६-१९
२. वही स्तोत्र-ग्रन्थ ५५:२४
३. वही सुक्ति-ग्रन्थ २८:१७

पर चोट करे या जान कर किसी पर कुछ फेंक और वह मर जाये, या बैर से उसे मुक्का मारे और वह मर जाये, तो मारने-वाले का वध किया जायेगा, क्योंकि वह हत्यारा है ।'' [१] हत्यारे के जीवन की रक्षा केलिए रुपया स्वीकार नहीं करोगे, उसे मृत्युदण्ड देना है । [२] दूसरी है आकस्मिक हत्या जिसका पूर्ण उत्तरदायित्व मारनेवाले व्यक्ति को नहीं रहता । इनके बारे में बाइबिल यों कहता हैं -'' यदि कोई बैर से नहीं, बल्कि संयोग से किसी व्यक्ति पर चोट करे या अनजाने किसी व्यक्ति पर कुछ फेंके, जिससे उसकी मृत्यु हो सकती है तो समुदाय मारनेवाले को प्रतिशोधी से बचायेगा ।'' [३] तीसरी प्रकार की हत्या है जानवरों के द्वारा होनेवाली हत्या । इसके बारे में बाइबिल में यों बताते हैं - '' यदि कोई बैल किसी पुरुष या किसी स्त्री को सींग से मार डाले, तो उस बैल को पत्थरों से मार डाला जाये । बैल का मालिक निर्दोष माना जायेगा परंतु यदि वह बैल पहले से ही सींग मारता रहा हो और उसके मालिक को चेतावनी देने पर भी उसने उसे बाँधा न हो, तो वह बैल पत्थरों से मार डाला जाये और उसके मालिक को भी प्रणदण्ड दिया जाये ।'' [४] चौथा है न्यायसंगत हत्या जिसके अनुसार आत्मरक्षा केलिए प्रतिशोधी को मारना पाप नहीं। बाइबिल में बताया गया है - '' यदि कोई चोर सेंध मारने पकडा जाये और उसे कोई इतनी मार मारे कि वह मर जाये तो, इसे हत्या नहीं समझा जायेगा ।'' [५] शत्रुओं से युद्ध करते वक्त होनेवली हत्या को भी इस्राएली लोग पाप नहीं समझते थे क्योंकि इन्हें वे दायित्व के रूप में लेते थे । [६]

यहाँ पर अन्याय से होनेवाली हत्या का विरोध एवं न्याय से होनेवाली हत्या

---

१. पुराना विधान गणना ग्रन्थ ३५:२०-२१
२. वही ३५:३१
३. वही ३५:२२
४. वही निर्गम ग्रन्थ २१:२८-२९
५. वही २२:१

का पक्ष ग्रहण किया गया मिलता है । लेकिन 'नया विधान' में आते हुए येशु 'पुराना विधान' के नियमों को नया अर्थ देते हैं और बताते हैं -'' तुम लोगों ने सुना है कि पूर्वजों से कहा गया है-हत्या मत करो । यदि कोई हत्या करे, तो वह कचहरी में दण्ड के योग्य ठहराया जायेगा । परंतु मैं तुम से कहता हूँ-जो अपने भाई पर क्रोध करता है वह कचहरी में दण्ड के योग्य ठहराया जायेगा । यदि वह अपने भाई से कहे, रे मूर्ख ! तो वह महासभा में दण्ड के योग्य ठहराया जायेगा और यदि वह कहे, रे नास्तिक ! तो वह नरक की आग के योग्य ठहराया जायेगा ।'' [१] 'पुराना विधान' के नियमों का उन्मूलन करना यहाँ येशु का लक्ष्य नहीं वल्कि उन्होंने इन नियमों को स्नेह के आधार पर पूर्णता दी है । अनजाने या जान बूझ कर होनेवाली हत्या में उनकी दृष्टि में कोई भिन्नता नहीं । मात्र शारीरिक हत्या को नहीं बल्कि स्नेह के विरुद्ध होनेवाली हरेक चेष्टा को भी वे हत्या के रूप में चित्रित करते हैं । उनके अनुसार भाई से गुस्सा करनेवाला भी दण्ड भोगने योग्य है क्योंकि क्रोध मानव को आपसी घृणा एवं हत्या तक की प्रेरणा देता है । इसलिए बाइबिल में इसी प्रकार बताते हैं -'' जो अपने भाई से बैर करता है, वह हत्यारा है और किसी भी हत्यारे में अनन्त जीवन नहीं होता । [२]

येशु के अनुसार हत्या एवं अन्य बुराई मानव-हृदय में स्थित बुरी चिन्ता का फल है । क्योंकि बुरे विचार, हत्या, परगमन, व्यभिचार, चोरी, झूठी गवाही और निन्दा ये सब मन से निकलते हैं ।''[३] ये सब ईश्वरीय नियम के विरुद्ध हैं । [४] इससे स्पष्ट है कि बाइबिल के अनुसार अहिंसा का अर्थ है किसी मानव को कष्ट न देना, न सताना और यहाँ तक कि ऐसे शब्दों का प्रयोग भी न करना जिनसे किसी व्यक्ति

१. नया विधान संत मात्यु ५:२१-२२
२. सन्त जॉन पहला पत्र ३:१५
३. नया विधान संत मात्यु १५:१९
४. वही १९:१८

को मानसिक क्लेश हो । इसी प्रकार देखने पर कबीर-साहित्य एवं बाइबिल अहिंसा को प्रमुखता देते हैं । क्योंकि अहिंसा द्वारा आपस में विश्वास की वृद्धि होती है । साथ ही मन से या वचन से किसी का बुरा न सोचने का आह्वान भी ये दोनों ग्रन्थ देते हैं । अहिंसारूपी भलाई अपनाने से व्यक्ति में और समाज में बदलाव आते हैं। वैरभाव से उत्पन्न ईर्ष्या, द्वेष, शत्रुता के स्थान पर प्रेम, सहानुभूति, सहकारिता, सहिष्णुता, भाईचारा संबन्ध आदि का आविर्भाव है । तद्वारा समाज में खुशी एवं हर्षोल्लास का उद्भव भी होता है । लोग ईश्वरोन्मुख हो जायेंगे और इससे वे दूसरों के जीवन में बाधा न उत्पन्न करेंगे । समाज के लोग भयरहित होकर आपसी विश्वास एवं आत्मविश्वस के साथ जीने लगेंगे । इसी प्रकार सुधाररात्मक समाज में भलाई एवं लोकमंगल संभव हैं ।

अस्तेय

धार्मिक गुणों में अस्तेय का विशेष महत्व है । अस्तेय के अनुसरण से स्वार्थ नष्ट हो जाता है और त्याग की भावना बढती है जिससे लोकमंगल संभव होता है। जो पदार्थ अपना नहीं है, उस पदार्थ को बिना उसके स्वामी की आज्ञा के ले लेना चोरी कहलाता है । चोरी धन, वस्त्र आदि स्थूल पदार्थों की तो होती है, लेकिन विचारों की चोरी भी अस्तेय धर्म में वर्जित है । आत्मसाक्षात्कार की साधना में रत व्यक्ति को अस्तेय का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है । इसके पालन से साधक में विरक्ति एवं त्याग की भावना की उत्पत्ति होती है । कबीर का मत है कि जगत् के सभी पदार्थों पर भगवान् का अधिकार है । वही सबको आवश्यकता के अनुकूल देता है । जिस व्यक्ति केलिए न्यायपूर्वक जितना निर्धारित है उतना ही उसे मिलता है और उतने ही में उसे संतोष करना चाहिए । कबीर बताते हैं –

जाकौ जेता निरमया, ताकौं तेता होइ
राई घटै न तिल बढै, जौ सिर फूटे कोई । [१]

याने जिसकेलिए प्रभु ने जितना भोग रचा है उसको उतना ही मिलता है । उसमें तृण मात्र भी अन्तर नहीं आ सकता, चाहे कोई कितना ही प्रयत्न क्यों न करे । बाइबिल में भी अस्तेय के महत्व को लेकर बहुत कहा गया है । बाइबिल का भी यही विचार है कि ईश्वर हर एक को जितना चाहिए उतना ही दे देते हैं । यहाँ पर ऐसा एक प्रसंग है जिसमें बताया गया है कि इस्राएलियों से उनके नेता मूसा ने कहा - '' यह वह रोटी है, जिसे प्रभु तुम लोगों को खाने केलिए देता है । प्रभु की आज्ञा है, तुम में से प्रत्येक मनुष्य जितना खा सके, उतना उसमें से ले लो ।'' [२] इस्राएलियों ने ऐसा ही किया । किसी ने अधिक, किसी ने कम बटोरा । किन्तु जब उन्होंने उसे ओमर से नापा, तो जिसने अधिक बटोरा था, उसके पास अधिक नहीं था और न उसके पास कम था, जिसने कम बटोरा था । इससे स्पष्ट है कि हरेक को जितना चाहिए उतना ही ईश्वर देते हैं । इसलिए कबीर एवं बाइबिल यही बताते हैं कि मनुष्य को स्वार्थ छोडकर ईश्वर में अतुल विश्वास रखते हुए निश्चिंत रहना चाहिए । किसी की वस्तुओं की चोरी नहीं करनी चाहिए । प्रभु सर्वशक्तिमान है। मनुष्य ही नहीं पशु, पक्षी और जीव-जन्तुओं को भी उनकी आवश्यकता के अनुसार प्रभु ने सब कुछ दे रखा है । लेकिन मनुष्य समझता है कि वह सर्वशक्तिमान है, अपने प्रयत्न से बहुत कुछ कर लेगा । किन्तु कबीरदास कहते हैं कि यह संभव नहीं। मनुष्य को अन्य जीवियों की ओर देखना चाहिए । उनकेलिए किसने संपदा एकत्र कर रखी है ? जो उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है वही तेरे लिए भी करेगा—

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २४१
२. पुराना विधान निर्गमन-ग्रन्थ १६:१६

चिंता छांडि अचिंत रहु, साई है समरत्थ
पसु पंखरेन जीव जन्तु, तिनकी गांठी किया गरत्थ ।'' [१]

इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि मनुष्य को स्वार्थ एवं अत्याग्रह को बढावा नहीं देना चाहिए । ईश्वर जितना देते हैं उसमें संतोष पाना चाहिए । यह अस्तेय पालन का ही मार्ग है । जब स्वार्थ कम होता है और त्याग बढता है तो मनुष्य का चरित्र सुधर जाता है । बाइबिल में भी इस तत्व पर ज़ोर दिया गया है । वहाँ कहा गया है कि '' मैं तुम लोगों से कहता हूँ, चिन्ता मत करो- अपने जीवन-निर्वाह की, कि हम क्या खायें और न अपने शरीर की, कि हम क्या पहनें । क्या जीवन भोजन से बढकर नही? आकाश के पक्षियों को देखो । वे न तो बोते हैं, न लुनते हैं और न बखारों में जमा करते हैं । फिर भी तुम्हारा स्वर्गिक पिता उन्हें खिलाता है । क्या तुम उनसे बढकर नहीं हो ? खेत के फूलों को देखो । वे कैसे बढते हैं ! वे न तो श्रम करते हैं और न कातते हैं । फिर भी मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि सोलमन अपने पूरे ठाट-बाट में उन में से एक की भी बराबरी नहीं कर सकता था ।'' [२] यहाँ व्यक्त है कि कबीरदास एवं बाइबिल लोगो से यही अनुरोध करते हैं कि मनुष्य अपना स्वार्थ छोडकर सर्वशक्तिमान ईश्वर पर भरोसा करें । यही अस्तेय के पालन का प्राथमिक पाठ कहा जा सकता है । कल की चिन्ता कर अकुलानेवाले लोगों की चेष्टा और अधिकाधिक वस्तुएँ बटोरकर उनको अपने अधीन में रखने की मानव की इच्छा उचित नहीं है । इसी इच्छा के कारण लोग एक दूसरे की वस्तुओं को चुराते हैं, उनको कष्ट देते रहते हैं । अस्तेय के पालन का महत्व यहीं प्रबल रहता है जिसके पालन से व्यक्ति एवं संसार का कल्याण हो जाता है ।

छल-कपट से धनार्जन करना, दूसरों की वस्तुओं का लालच करना, अपनी

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २३९
२. नया विधान संत मात्था ६:२५-२९

आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का उपयोग करना चोरी है । इससे समाज में बुराई बढती है, भलाई नहीं । भौतिक आवश्यकताओं को निरन्तर घटाते जाना और कम करना अस्तेय का पालन करना है । इसी तत्व का, कबीर अपने वैयक्तिक जीवन में पालन करते थे । जीविका चलाने केलिए बहुत कम वस्तुओं का उपयोग वे करते थे और लोगों को आह्वान भी देते थे । कबीर ने देखा कि समाज के स्वार्थी ठेकेदार श्रमजीवी लोगों को लूट कर धन-संचय करने में मग्न थे । वे इस धन-संचय से नफरत करते थे । उनका कहना है, सुकृतरूपी धन संचय करो जो भावी जीवन में काम आये । प्राण निकलते समय धन साथ नहीं जाता । वह पृथ्वी पर ही पडा रहता है । किसी को धन की गठरी परलोक तक ले जाते अभी तक देखा नहीं । यथा –

कबीर सो धन संचिए, जो आगां कौ होइ
मूड चढाए पोटली, लै जात न देखा कोइ ।'' [१]

कबीर की ये पंक्तियाँ संस्कृत के निम्नलिखित सुभाषित से समानता रखती हैं जिसमें कहा गया है कि मरते समय सांसारिक वस्तुएँ व्यक्ति का साथ नहीं देती । प्राणों को अकेले छूटना पडता है । शरीर तक साथ नहीं देता । केवल कर्म ही साथ चलते हैं ।

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे भार्या गृहद्वारि जनः श्मशाने ।
देहश्चि तायां परलोकमार्गे कर्मानुगो गच्छति जीव एकः ।''

इस तत्व को मन में रखते हुए मनुष्य को चाहिए कि वह पाप न करे । चोरी करना पाप है । इससे हमेशा दूर रहे । यही अस्तेय के पालन की प्रेरणा है ।

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली प. २३७

मृत्यु के समय हम सारी संपत्ति यहाँ ही छोडकर चले जायेंगे । इसके बारे में बाइबिल में कही बात कबीर-साहित्य एवं ऊपर कही हुई संस्कृत-सूक्ति से मेल खाती है। निर्दोष एवं निषकपट जोब नामक एक व्यक्ति का चित्र पुराना विधान में है जो ईश्वर पर श्रद्धा रखता था और बुराई से दूर रहता था । उस धनी जोब की सारी संपत्ति एक के बाद एक होकर नष्ट होती है और अंत में एक भीषण आँधी के मारे घर उसके पुत्र-पुत्रियों पर गिर कर वे मर जाते हैं । यह सुनकर जोब की प्रतिक्रिया उल्लेखनीय है -उसने सिर मुंडाया और मुँह के बल भूमि पर गिरकर यह कहा- ''मैं नंगा ही माता के गर्भ से निकला और नंगा ही पृथ्वी के गर्भ में लौट जाऊँगा । प्रभु ने दिया था प्रभु ने ले लिया ।'' [१] बाइबिल के 'नया निधान' में ईसा मसीह के अग्रदूत, नबी जोन बपतिस्ता अपने भाषण में लोगों से आह्वान करते हैं कि जिनके पास दो कुर्ते हों, वह एक उसे दे दे जिसके पास कुर्ता नहीं है और जिसके पास ज्यादा भोजन है, वह भी ऐसा ही करे ।'' [२] यहाँ नबी जोन बपतिस्ता का आह्वान, आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का उपयोग न करना ही नहीं बल्कि अपनी आवश्यकताओं को निरन्तर कम करना भी रहा है । जेरीखो नगर के प्रमुख एवं धनी नाकेदार जकेवुस जो बेइमान एवं पापी था पश्चाताप-विवश होकर ईसा से कहता है - प्रभु ! देखिए मैं अपनी आधी संपत्ति गरीबों को दूँगा और मैं ने जिन लोगों के साथ किसी बात पर बेइमानी की है, उन्हें उसका चौगुना लौटा दूँगा ।''[३] प्रस्तुत वर्णन द्वारा नया विधान यही दिखाना चाहता है कि छल-कपट से धनार्जन करना, दूसरों की वस्तुओं का लालच करना, चोरी है जो अस्तेय-धर्म के विपरीत है। कबीर-साहित्य एवं बाइबिल के कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज के अन्तर्गत व्याप्त असमानता और वैषम्य के कारण जो अमंगल सर्वत्र व्याप्त है उसको

---

१. पुराना विधान जोब का ग्रन्थ १:२१
२. नया विधान संत लूक ३:११

अस्तेय-धर्म के पालन करने से मिटाया जा सकता है । सांसारिक भिन्नताओं का लोप होना आध्यात्मिक एकता का प्रतिष्ठापन होना है । इसलिए कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में अस्तेय-धर्म के पालन की सीख दी गई है ।

परोपकार

परोपकार के मुख्यतः दो निश्चित प्रभाव हैं - (क) प्रत्येक व्यक्ति परोपकार करे तो मानव समाज का कल्याण सुगम हो जाता है । (ख) सामाजिक स्तर पर उच्चतर मूल्यों की स्थापना संभव हो जाती हैं । सभी धर्म मुख्य रूप से सह-अस्तित्व की भावना पर अधिक बल देते हैं । प्रस्तुत सह-अस्तित्व की भावना की स्वीकृति का आधार यही है कि अन्य पुरुष भी हमारे ही समान महत्वपूर्ण हैं ।

सर्वे सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामाया
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ।''

यही भारतीय संस्कृति की अभ्युक्ति हैं । परोपकार-संबन्धी परंपरागत भावों का मनुष्य की नैतिक प्रवृत्ति पर निश्चित प्रभाव पडता है । जब मनुष्य सर्वाधिक स्वभूलक (self regarding) होता है तब उसका 'स्व' से दूर होना आवश्यक रहता है । जब 'व्यक्तिगत' भावनाओं का त्याग कर, स्व-अस्तित्व को भुलाकर समाज के अन्य मनुष्यों के साथ संबन्ध होता है तब वह अपने वास्तविक रूप का परिचय प्राप्त कर 'आत्मा' का ज्ञान प्राप्त करता है । इस प्रकार मानव भावनाओं के उच्चतर सोपान पर परोपकार का भाव स्वतः जागृत एवं विकसित होता है । विद्वानों ने परोपकार को आत्मा के शक्तितत्व के रूप में स्वीकार किया है । यह तो धर्म ही है एवं इसका आधार प्रेम-तत्व है । कबीर ने इसी प्रेम-तत्व पर बल दिया है ।

समाज में यदि परोपकार और शुद्ध आचरण का प्रसारण हो जाय तो स्थिरता आ जाती है । शान्ति स्थापित हो जाती है । देश की उन्नति होती है । व्यक्ति-व्यक्ति में संबन्ध जुडता रहता है । यही लोकमंगल की भावना है । परोपकारी मनुष्य अपने घर में भी चुप नहीं बैठ सकता । वह कर्म-क्षेत्र में ही रमता है ।

कबीरकालीन समाज में भी आज का भला-बुरा दृश्य दिखाई देता था । भ्रष्टाचार, व्यभिचार, बलात्कार आदि दुर्गुण मानव के मन के पाप हैं । मनुष्य को यह जान्म बार-बार नहीं प्राप्त होता । इसलिए इस जन्म में ही इस शरीर को समाज केलिए अर्पण करना चाहिए –

मानुख जनम दुर्लभ है होइ न बारंबार
पाका फल जो गिरि परा, बहुरि न लागै डार ।'' [१]

एक बार जब फल वृक्ष से गिर पडता है, तब वह फल शाखा से पुनः नहीं जुड सकता, वैसे ही एक बार मानव शरीर के पतन हो जाने पर वह पुनः नहीं प्राप्त हो सकता । इसलिए कबीर कहते हैं कि इस सुन्दर अवसर से न चूके । इस शरीर के रहते हुए परोपकार एवं दूसरों की भलाई में लग जाना चाहिए अपने को दूसरों की सेवा में लगा देना चाहिए । समाज में सबके साथ सच्चाई का व्यवहार करना चाहिए । कबीर ने अपना जीवन परहित साधना केलिए अर्पित किया था । इसमें कोई शंका नहीं कि सामाजिक दृष्टि से कबीर का महत्व सबसे अधिक इस बात में है कि तत्कालीन समाज में जो विषमता व्याप्त थी उसका उन्होंने प्राणपण से मूलोच्छेद करने का प्रयास किया । उसी प्रकार उन्होंने पूर्णतः अपने जीवन को परहितार्थ व्यतीत किया । उन्होंने जो कुछ कहा था अपने जीवन में करने के बाद

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १८५

ही कहा । उनकी कथनी एवं करनी में सामंजस्य था । उदाहरण केलिए, अहंभाव से पूर्णतः मुक्ति प्राप्त कबीरदास अपनी वाणी द्वारा समाज में व्याप्त अहंभाव को मिटाने का प्रयास करते हैं –

प्रेम न बारी ऊपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ ।
राजा परजा जेहिं रुचै, सीस देइ लै जाइ ।'' [१]

यहाँ अहंकार को त्यागने का कबीर का आह्वान है । वे बताते हैं कि प्रेम किसी वाटिका में उत्पन्न नहीं होता है जिसे इच्छानुसार लाया जा सके और न तो वह बाजार में ही बिकता है जिसे मूल्य देकर खरीदा जा सके । वह धनवान या वैभवशाली व्यक्ति के अधीन भी नहीं है । उसकी प्राप्ति का एक ही उपाय है - अहंभाव का सर्वथा त्याग । उनके अनुसार जो ऐसा कर सकता है - वह धनी हो या निर्धन, राजा हो या रंक, शासक हो या शासित उसे प्राप्त कर सकता है ।

बाइबिल परोपकार को प्यार के सक्रिय भाग के रूप में बताते हैं । ईश्वर ने मनुष्य को सामाजिक प्राणी के रूप में जन्म दिया क्योंकि मानव परोपकार एवं आपसी सहकारिता के साथ जीना ही उनकी इच्छा थी । अपरों की सहायता पाये बिना मानव जीवन असंभव है । अपने किसी स्वार्थ के बिना दूसरों की भलाई करनेवाले और दूसरों की भलाई चाहनेवाले को सब लोग पसंद करते हैं । बाइबिल के एशया ग्रन्थ में प्रत्येक व्यक्ति अपने साथी की सहायता करते रहने का आह्वान करता है ।[२] परोपकार में निहित मंगलभावना समझाते हुए प्रवक्ता ग्रन्थकार का उपदेश है कि अत्याचारी के हाथों से उत्पीडित को छुडाओ और न्याय करने में आगे-

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २८३
२. पुराना विधान एशया का ग्रन्थ ४१:६

'' कबीर आप ठगाइए, और न ठगिए कोइ
आप ठगे सुख ऊपजै, और ठगे दुख होइ ।'' [१]

कबीर कहते हैं कि आपा को लुट जाने दो, नष्ट हो जाने दो । दूसरे किसी को धोखा देने की चेष्टा न करो । कबीर की राय में आपा लुट जाने से सुख उत्पन्न होता है । दूसरों को ठगने या लूटने से केवल दुख प्राप्त होता है । यहाँ स्पष्ट है कि अपरों के प्रति सद्भावना से युक्त मनुष्य के जीवन में आनन्द का अनुभव है । इस रहस्य को जानने वाले 'स्व' के स्थान पर 'पर' के कल्याण को प्राथमिकता देंगे।

शुद्ध आचरण रखकर मानव-सेवा में अपना जीवन अर्पण करने वाले परोपकारी संत के कबीर चरण धोना चाहते हैं और अपने सिर पर चँवर फेरना चाहते हैं । इतना ही नहीं वे संतों के दरबार के कुत्ते बनना चाहते हैं –

संता मानउ जूता डानउ इहु कुटवारी मेरी
दिवस रैनि तेरे पाउ पलोसउ केस चवर करि फेरि
हम कूकर तेरे दरबारि भउकहि आगै बदनु पसारि ।'' [२]

कबीर ने वृक्ष की परोपकारी भावना का उल्लेख किया है । वृक्ष बारह महीने फल देता है जिसका उपभोग करके सभी सुख का अनुभव करते हैं । उसकी शीतल छाया में बैठकर सुख पाते हैं । और उसके ऊपर अनेक पक्षी घोंसला बनाकर रहते हैं । वृक्ष का संपूर्ण शरीर परहित-साधना में ही लगा रहता है –

तरवर तासु बिलंबिए, जो बारह मास कलंत
सीतल छाया गहिर फल, पंखी केली करंत ।'' [३]

---

१. डॉ.जयदेव सिंह कबीर वाङमय खण्ड -३ पृ. ३२२
२. डॉ.रामकुमार वर्मा संत कबीर पृ. १७९

एक दूसरे की निन्दा छोडकर दोष निकालते न रहकर अगंर परहित साधन में अपना सर्वस्व लगाये तो समाज शुद्ध, कल्याणकारी बन-जायेगा । यहाँ पर भारतीय संस्कृति का मूलाधार रूपी निम्नलिखित श्लोक अप्रासंगिक नहीं रहेगा ।

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः
परोपकाराय दुहन्ति गावः
परोपकाराय वहन्ति नद्याः
परोपकारार्थमिंद शरीरम् ।''

आजकल देखा जा सकता हैं कि दूसरों की भलाई करने के विपरीत स्वार्थी मनुष्य अन्यों की परिश्रमजन्य उन्नति को देखकर ईर्ष्या की आग से जलने लगता है। इन लोगों को संत पोल का आह्वान अनुकरणीय है —'' कोई भी बुराई के बदले बुराई नहीं करे । आप सदैव एक दूसरे की और सब मनुष्यों की भलाई करने का प्रयत्न करें । [१] प्रत्यक्ष मनुष्य की सेवा के ज़रिए ही अप्रत्यक्ष ईश्वर-प्रेम की संभावना पर बल देकर संत जोन बताते हैं -'' ईश्वर को किसी ने कभी नहीं देखा। यदि हम एक दूसरे को प्यार करते हैं, तो ईश्वर हम में निवास करता है । यदि कोई यह कहता हैं कि मैं ईश्वर को प्यार करता हूँ और वह अपने भाई से वैर करता है, तो वह झूठा है । यदि वह अपने भाई को, जिसे वह देखता है, प्यार नहीं करता, तो वह ईश्वर को, जिसे उसने कभी देखा नहीं, प्यार नहीं कर सकता ।'' [२] संत याकोब के पत्र में बताया गया कि '' हमारे ईश्वर और पिता की दृष्टि में शुद्ध और निर्मल धर्माचरण यह है-विपत्ति में पडे हुए अनाथों और विधवाओं की सहायता करना और अपने को संसार के दूषण से बचाये रखना ।'' [३]

---

१. संत पोल तेसलेनियों को नाम पत्र ५:१५
२. संत जॉन का पहला पत्र ४:१२, २०
३. संत याकोब का पत्र १:२७

ईसा का जीवन परोपकार केलिए हुआ है । उन्होंने अपने पास आये सभी लोगों को रोगों से मुक्त कर दिया, अन्धे एवं गूँगे को चंगा कर दिया । इस के बाद उन्होंने यही उपदेश दिया - तुम एक दूसरे को प्यार करो। जिस प्रकार मैंने तुम लोगों को प्यार किया, उसी प्रकार तुम भी एक दूसरे को प्यार करो।'' [१] परोपकार को मोक्ष प्राप्ति के अनिवार्य अंग के रूप में भी बाइबिल चित्रित करता है । संत मात्यु के सुसमाचार में लिखा है कि परोपकारी से न्याय के दिन ईश्वर कहेगा कि '' कृपा पात्रो ! आओ और मेरे राज्य के अधिकारी बने....मैं तुम लोगों से यह कहता हूँ- तुमने मेरे इन भाईयों में से किसी एक केलिए, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हे, जो कुछ किया, वह तुमने मेरे लिए ही किया ।'' [२] यह वही तत्व है जिसके बारे में तुलसीदास कहते हैं 'अंतरयामी ते बड बाहिर जामि'।

उपकार करना मात्र मित्रों को नहीं शत्रुओं को भी करने का आदेश बाइबिल देता है । शत्रुओं को यों सहायता दो कि यदि तुम अपने शत्रु के बैल या गधे को इधर-उधर भटकता पाओ, तो उसे उसके पास पहुँचा दो । यदि तुम अपने विरोधी के गधे को बोझ से दबा हुआ पाओ, तो तुम उसे अकेला मत छोडो, उसे उठाने में उसकी सहायता करो ।'' [३] सूक्ति-ग्रन्थकार यों बताते हैं -'' यदि तुम्हारा शत्रु भूखा है, तो उसे खिलाओ, यदि वह प्यासा है तो उसे पिलाओ और प्रभु तुम्हें उसका बदला चुकायेगा ।'' [४] बाइबिल यही सिखाता है कि हमारे प्रेम तथा सहायता मित्रों को देने के ज्यादा शत्रुओं को देने में ही हमारी भलाई निहित है । ईसा पूछते हैं -

यदि तुम उन्हीं से प्रेम करते हो, जो तुम से प्रेम करते हैं, तो पुरस्कार का दावा कैसे कर सकते हो ? क्या नाकेदार भी ऐसा नहीं करते ? और यदि तुम अपने

---

१. नया विधान संत जॉन १३:३४
२. वही संत मात्यु २५:३४,४०
३. पुराना विधान निर्गमन-ग्रन्थ २३:४-५
४. वही सूक्ति-ग्रन्थ २५:२१-२२

भाईयों को ही नमस्कार करते हो, तो क्या बडा काम करते हो ? क्या गैर-यहूदी भी ऐसा नहीं करते ?'' [१] इसलिए ईसा का आह्वान यह है कि अपने शत्रुओं से प्रेम करो और जो तुम पर अत्याचार करते हैं, उनकेलिए प्रर्थना करो ।'' [२] बाइबिल के प्रवक्ता ग्रन्थ में परोपकार और परोपकार में विवेक संबन्धी कई उपदेश प्राप्त होते हैं। '' दयालु मनुष्य को दान दो और दीन का उपकार करो ।'' [३] '' उदार व्यक्ति संपन्न होता जाता है, जो दूसरों को पिलाता है उसे भी पिलाया जायेगा [४] स्तोत्र ग्रन्थ बताता है -'' धन्य है वह, जो दरिद्र की सुधि लेता है ! विपत्ति के दिन प्रभु उसका उद्धार करता है ।'' [५]

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल के मत में परोपकार द्वारा लोकमंगल की वृद्धि होती है । क्योंकि परोपकार के द्वारा आपसी प्रेम बढता है । प्रेम के फैल जाने के साथ ही साथ सब कहीं शान्ति का वातावरण उत्पन्न होता है । आपसी शत्रुता की भावना मिट जाती है । परोपकारी होने पर प्रेम, दया, त्याग आदि सत्गुण सबों में विकसित होते हैं जिसके द्वारा मानव आत्मा का विस्तार भी होता है । आपस में लेन-देन की प्रक्रिया में मानव निरत हो जाते है । यही पारस्परिकता भलाई की संपूर्णता है जिसको कबीर साहित्य एवं बाइबिल प्रमुखता देते हैं ।

समभाव

समाज में अनेकत्व के सृजन की वृद्धि को रोकने केलिए समभाव एक उपयुक्त एवं उपयोगी भाव है । मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार के विषय में आत्मैक्य भाव का नियम अत्यन्त सुलभ, व्यापक, सुबोध और सर्बश्रेष्ठ है । प्राणिमात्र में आत्मा की

---

१. नया विधान संतु मात्यु ५:४६-४७
२. वही ५:४४
३. पुराना विधान प्रवक्ता-ग्रन्थ १२.६
४. पुराना विधान सूक्त-ग्रन्थ ११:२५
५. वही स्तोत्र-ग्रन्थ ४१:२

एकता को पहचान कर आत्मवत् दूसरों के साथ व्यवहार करते जाना, कल्याणकारी होता हैं । पारिवारिक जीवन से यह पाठ प्रारंभ होता है और संपूर्ण जगत् के प्रति इस भाव का विस्तार करना आत्मसाक्षात्कार की दिशा में अग्रसर होना है ।

समता की उपलब्धि सहजकार्य नहीं है । अनेक ज्ञानी अपनी साधनावस्था में समता के मार्ग से बहक जाते हैं । कबीर का विचार है कि इस लोक में ज्ञानियों के विविध रूप दिखाई पडते हैं । अपने को ज्ञानी कहनेवाले पुरुष भ्रांति के पथ पर बडे वेग से चले जा रहे हैं । वे या तो तप-तीर्थ की भावना में उलझे हुए हैं या सम्मान की कामना करते हैं या फिर अस्मि से पीडित हैं । कुछ ऐसे भी हैं जो कहते तो ज्ञान की बातें है किन्तु भ्रम से मुक्त नहीं है । कबीर समता को दृष्टिकोण मानते हैं जिसका उदय समदर्शिता से होता है । यह दृष्टिकोण अन्तदृष्टि की एक बडी भारी उपलब्धि है जो श्रद्धा और विश्वास के अभाव में नहीं हो सकती । ये दोनों मिलकर एकाग्रता और अनन्यता का भाव उत्पन्न करते हैं, मन की बहक समाप्त हो जाती है और समता की स्थिति में मेरे-तेरे का भेद मिट जाता है ।

समता मन की एक अवस्था है जिसके अभाव में विषमता पीडित करती है । अथर्ववेद में आदेश है -'' समानी प्रपा सह वोन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।'' अर्थात् तुम लोगों का पानी समान हो, अन्न समान हो, तुम सबको समान बंधन में बांधता हूँ । तुम एक दूसरे के साथ संबन्धित रहो । कबीर ने भी इसी भाव से साम्य रखते हुए विचारों की अनेक स्थलों पर अभिव्यक्ति की है । यथा-

हम तो एक एक करि जांनां
दोई कहैं तिनहीं कौं दो जग जिन नाहिंन पहिचांनां
एकै पवन एक ही पांनी एकै जोति समांनां
एकै खाक गढे सब भौडै एकै कोंहरा सांनां ।'' [१]

---

१. डॉ. पारसनाथ तिवारी - कबीर ग्रन्थावली - पृ. ४१०

अर्थात् हमने छानबीन करके भलीभांति समझ लिया है कि परम तत्व एक ही है । जिन्होंने परमार्थ को नहीं पहचाना है और द्वैत की भावना रखते हैं, उन्हीं का पतन होता है । संसार में एक ही पवन, एक ही जल और एक ही ज्योति सर्वत्र व्याप्त है (एक ही मिट्टी से संसार के सभी पदार्थ बनाए गए हैं और उन सबका बनानेवाला कुम्भकार भी एक है अर्थात् सारी सृष्टि का निमित्त और उपादान कारण एक ही ईश्वर है) ।

कबीर बताते हैं कि यहाँ सबकुछ एकत्वपूर्ण है, सब सर्वात्म है फिर द्वेष, वैर, घृणा, कलह का व्यवहार करके अपना एकत्वपूर्ण जीवन दुखमय बनाना मूर्खता ही है । उनकी राय में समता को त्यागकर भेदभाव को अपनाने का आग्रह निकम्मा है। इस बात की भर्त्सना उन्होंने बार बार की है –

हम सब मांहि सकल हम मांहि, हम थे और दूसरा नाहिं ।''

वे बताते हैं कि मैं और तू का भेद समाप्त होना है । क्योंकि संसार में सर्वत्र ही आत्मतत्व ही दिखाई पडने लगता है । सारा विश्व ही जब उसकी अभिव्यक्ति है तब प्राणी उससे अलग कैसे हो सकता है । फलतः सभी को समभाव एवं समदर्शितापूर्ण व्यवहार करते हुए लेकमंगल की ओर बढना चाहिए । जाति-भेद, वर्ण-भेद, रंग-भेद आदि के कारण भेदभाव का व्यवहार करना मूर्खता ही नहीं सर्वनाश का कार्य है । एकत्वपूर्ण जीवन सभी के कल्याण का हेतु है । सामाजिक प्राणी होने के नाते समाज में एक साथ रहने केलिए ही व्यक्ति की सृष्टि की गयी है । समाज से अलग रहना उसका कर्तव्य नहीं । मैं और मेरे परिवारवाली चिन्ता से जो व्यक्ति समाज के अन्य परिवारवालों से अलग रहने की चिन्ता करता है उसके जीवन में वास्तविक प्रगति एवं यथार्थ आनन्द कभी नहीं होते । कबीर दास एक पंक्ति में यों बताते हैं

कौनैं परां न छुडिहै, सुनि रे जीव अबूझ ।'' [१]

याने कबीर अज्ञानी मनुष्यों को संबोधित करते हैं -हे अज्ञानी जीव ! ध्यानपूर्वक सुन। संसार और समाज से पूर्णतया अलग रहकर, एक कोने में कुटिया बनाकर तपस्या और साधना करने से तेरी वास्तविक मुक्ति नहीं हो सकेगी । मनुष्य को एक साथ रहकर आपसी सहायता कर मोक्षभागी होना ही उचित है । समाज से लेना और समाज को देना - अपनी क्षमता, अपना समय आदि-तभी व्यक्ति व्यक्ति की प्रगित संभव है । इसी से समाज लोकमंगल से युक्त बन जायेंगे । इसके अभाव में समाज स्वार्थपूर्ण अहंभाव से युक्त लोगों का भीड मात्र होंगे जहाँ स्नेह, दया, सहानुभूति आदि सद्गुणों का अभाव ही देखेंगे । इसलिए कबीर चेतावनी देते हुए कहते हैं

आज कहै हरि काल्हि भजौंगा, काल्हि कहै फिरि काल्हि
आजुहिं काल्हि करंत रे, औसर जाई चालि ।'' [२]

अर्थात् मनुष्य आज कहता है कि वह अमुक कार्य कल से प्रारंभ करेगा और कल आने पर फिर अगले दिन केलिए टाल देगा । इस प्रकार आजकल करते हुए सारा अवसर ही समाप्त हो जायेगा, कोई भलाई भी नहीं होगी । इसलिए जो कुछ पुण्य या परोपकार दूसरों को अपने सगे संबन्धी समझकर करना है वह आज ही करना है । पराया भाव छोडकर समता भाव स्वीकारना चाहिए तभी सब कहीं मंगल होगा ।

समभाव को बनाये रखने केलिए बाइबिल का आह्वान विषेश ध्यान देने योग्य है। सन्त याकोब का आह्वान है कि भाईयों ! आप लोग हमारे महिमान्वित प्रभु ईसामसीह में विश्वास करते हैं इसलिए भेदभाव और चापलूसी से दूर रहें ।''[३]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १७९ ३. नया विधान संत याकोब २:१
२ वही प २०१

बाइबिल की राय में व्यक्ति होने के नाते सब मानव आदर के पात्र हैं और दूसरों का आदर करना हमारा दायित्व भी है । लेकिन यदि कोई अन्यों द्वारा अधिकाधिक आदर की प्राप्ति की इच्छा करते हैं तो वह आपत्ति का कारण बन जाती है । संत पोल याद दिलाते हैं कि मनुष्य यदि ईश्वर का कृपापात्र बनने के बदले मनुष्यों का कृपापात्र बनने की कोशिश करें तो वह ईश्वर से अलग हो जाता है, उसके जीवन में पराजय भी संभव है ।[१] दूसरों से आदर पाने की इच्छा छोडकर दूसरों को पक्षपात-रहित आदर देने का आह्वान बाइबिल करता है । सूक्ति-ग्रन्थकार बताता है कि पक्षपात करना अनुचित है ।''[२] 'नया विधान' बताता है कि '' यदि आप पक्षपात करते हैं, तो पाप करते हैं और संहिता के अनुसार दोषी हैं ।''[३]

सूक्ति-ग्रन्थ में बताया गया है कि मानव धनवान हो या दरिद्र, प्रभु की दृष्टि में समान है । अमीर और गरीब में यही समानता है कि प्रभु ने दोनों की सृष्टि की है ।''[४] प्रवक्ता-ग्रन्थ में ऊँच-नीच भाव छोडकर सबको समान भाव से सम्मान देने केलिए मालिकों को यही उपदेश देते हुए कहते हैं कि '' यदि तुम्हारे एक नौकर हो, तो उसे अपने-जैसा समझों, क्योंकि तुमको अपनी-जैसी उसकी आवश्यकता है। यदि तुम्हारे एक नौकर हो, तो उसके साथ भाई-जैसा व्यवहार करो ।''[५] संत पोल यजमानों से यही अनुरोध करते हैं कि आप, जो स्वामी है, दासों के साथ ऐसा ही व्यवहार करें । आप धमकियाँ देना छोड दें, क्योंकि आप जानते हैं कि स्वर्ग में उनका और आपका एक ही स्वामी है, और वह किसी के साथ पक्षपात नहीं करता।''[६] बाइबिल में शुरु से लेकर अंत तक यही दिखाते हैं कि ईश्वर निष्पक्ष है। वह धनी हो या दरिद्र, पण्डित हो या मूर्ख, सच्चा हो या पापी-सबको एक प्रकार देखते हैं और पालन करते हैं। संत मात्यु का वर्णन यहाँ उचित है -''वह भले

---

१. संत पोल गलातियों के नाम पत्र १:१०
२. पुराना विधान सूक्ति-ग्रन्थ २८ :२१
४. पुराना विधान सूक्ति-ग्रन्थ २२:२
५. यही प्रवक्ता ग्रन्थ ३३:३१

और बुरे ,दोनों पर अपना सूर्य उगाता तथा धर्मी और अधर्मी, दोनों पर पानी बरसाता है।''[१]

समता पर समर्थन करते हुए पक्षपातरहित ईश्वर का चित्रण पुराना विधान में अनेक स्थानों पर मिलता है । प्रज्ञा-ग्रन्थ में कहते हैं -'' सर्वेश्वर पक्षपात नहीं करता और बडों के सामने नहीं झुकता, क्योंकि उसी ने छोटे और बडे, दोनों को बनाया और वह सबों का समान ध्यान रखता है ।''[२] आगे-'' वह महान शक्तिशाली तथा भीषण ईश्वर है । वह पक्षपात नहीं करता और घूस नहीं लेता ।''[३] पक्षपात-रहित ईश्वर-महत्ता पर विश्वास करनेवाले लोगों से संत पीटर का आह्वान है कि

यदि आप उसे 'पिता' कहकर पुकारते हैं, जो पक्षपात किये बिना प्रत्येक मनुष्य का उसके कर्मों के अनुसार न्याय करता है, तो जब तक आप यहाँ परदेश में रहते हैं, तब तक उस पर श्रद्धा रखते हुए जीवन बितायें ।''[४]

समभाव पर बल देते हुए बाइबिल लोगों से अनुरोध करते हैं कि '' तुम न्याय करते समय पक्षपात मत करो । तुम न तो दरिद्र का पक्ष लो और न धनी का मन रखो । तुम निष्पक्ष होकर अपने पडोसी से न्याय करो ।''[५] विधि-विवरण-ग्रन्थ द्वारा यही आह्वान है कि '' न्याय करते समय किसी का पक्ष मत लो । छोटे-बडे, सब के सामने समान भाव से सुनो । किसी से नहीं डरो, क्योंकि न्याय ईश्वर का है ।''[६]

आज मनुष्य काम से जी चुराने की कोशिश करता है, लेकिन जो भी कार्य मनुष्य करते हैं, वे सब पवित्र हैं । दुर्भाग्यवश मानव अपने समाज में कार्य-विशेष

---

१ नया विधान संत मात्यु ५:४५
२. पुराना विधान प्रज्ञा-ग्रन्थ ६:७
३. वही विधि-विवरण-ग्रन्थ १०:१७
४. संत पीटर का पहला पत्र १:१७
५. पुराना विधान लेवी-ग्रन्थ १९:१५
६. वही विधि-विवरण-ग्रन्थ १:१७

के आधार पर भेदभाव जताते हैं । कुछ लोग नौकरों को दास से भी नीचा समझते हैं, तथा अपनी मर्जी के अनुसार उनसे कार्य करवाते हैं । परंतु लोगों को सदैव स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने स्थान पर महत्वपूर्ण है, चाहे वह किसी भी पद का कार्य करता हो । काम मानव जीवन का एक अभिन्न अंग है । बाइबिल सिखाता है - तुम छः दिन परिश्रम करते हुए अपना सारा काम-काज करो ।'' [१] बाइबिल का आह्वान यह है कि काम में कुछ भेदभाव तो नहीं काम जो भी हो उसको सिखाने वाला ईश्वर ही है - क्या किसान हर समय हल चलाता और हेंगा फेरता रहता है ? क्या वह जमीन बराबर करने के बाद उस में सौंफ और जीरा नहीं लगाता ? क्या वह उनकी अपनी- अपनी जगह पर गेहूँ, जौ और बाजरा नहीं बोता और किनारे पर घटिया अनाज ? उसे यह शिक्षा ईश्वर से प्राप्त है, जो उसे काम का सही ढंग सिखाती है ।'' [२]

कर्मण्यता

जीवनयापन केलिए विभिन्न प्रकार के क्रिया-कलापों का संपादन किया जाता है, जिन्हें श्रम की संज्ञा दी जाती है । प्रत्येक प्राणी और विशेषतः मानव को ईमानदारी से यथाशक्ति अनवरत कर्म-साधना की इच्छा होनी चाहिए । बिना शरीर श्रम के उपभोग्य पदार्थों को उत्पन्न नहीं किया जा सकता और बिना पदार्थों के जीवन ही नहीं चल सकता । अपने उपभोग केलिए तो शरीर श्रम आवश्यक है । जो स्वयं शरीर श्रम नहीं करता वह समाज के प्रति अन्याय करता है । कर्म को सुकर्तव्य मानकर करना चाहिए । कर्म से ही जीवन की महानता का उद्‌भव होता है । सत्कर्म से जीवन निर्मल होता है । आत्मविश्वास का उदय होता है, अकर्मण्यता

---

१. पुराना विधान विधि विवरण ग्रन्थ ५:१३
२. वही एशया का ग्रन्थ २८:२५-२६

और आलस्य का क्षय होता है । कर्म सच्चे सुख का प्रथम और अनिवार्य सोपान है। किसान, विद्वान और राजा तथा साधु, श्रम सभी केलिए अनिवार्य है । जो बिना श्रम के अन्न खाता है और सुख भोगता है वह आत्मद्रोही, धर्मद्रोही और अन्तत राष्ट्रद्रोही है । शरीर-श्रम न करना परतंत्रता की निशानी है ।

कर्म कैसा हो, किसकेलिए हो, यह भी विचारणीय है । वही काम प्रशंसनीय है जो अन्तःकरण से किया गया है और महान उद्देश्य से परिचालित भी है । यदि हम कर्म दूसरों केलिए न कर सकें तो कम से कम स्वयं केलिए तो करें । उत्कृष्ट श्रम वही है जो जीवमात्र की हितकामना से किया जाता है । यदि प्रत्येक व्यक्ति सच्चे और नियमित कर्म को जीवन में अपना ले तो फिर मानव जाति के दुखी होने का कोई कारण ही नहीं रहेगा । याने समाज के सभी लोग श्रम करें तो समाज संतुलित रह सकता है । उलटे समाज के सारे मनुष्य श्रम का त्याग कर दें तो समाज का संतुलन नष्ट हो जायेगा । कर्म के संदेश के आगे शोषण, अनाचार और धार्मिक ठेकेदारी सर्वथा अवांछनीय और अनुचित है ।

लेकिन मध्यकालीन समाज में श्रेष्ठ-कनिष्ठ का भेद फैल हुआ था । समाज क्षत-विक्षत बन चुका था । बुद्धिजीवी और श्रमजीवी के रूप में समाज का विघटन हुआ था । शासक शोषक बना था । वह श्रम करनेवाले श्रमजीवी का शोषण करने में ही संतुष्ट रहता था । बुद्धिजीवी स्वयं को श्रेष्ठ कहता था । श्रम करने वाले को हीन समझता था ।

एक ओर समाज के अधिकांश लोग इस प्रकार धन की प्रतिष्ठा करते थे वहाँ कबीर और दूसरे संत साधक थे, जिनके समीप धन का कोई कृत्रिम मूल्य नहीं था। उन्होंने केवल उतना ही अपने लिए पर्याप्त समझा जितने से उदरपूर्ति हो सके ।

उन्होंने समाज के सामने श्रम का आदर्श रखा । सभी प्रकार का श्रम समान है और पवित्र है । किसी श्रम को तुच्छ कहना गलता है । वर्ण में, सेवा में, श्रम में श्रेष्ठ-कनिष्ठ भाव नहीं रहता । कबीर साहब ने समाज की आर्थिक व्यवस्था के संबन्ध में स्थान-स्थान पर अपने विचार प्रकट किये हैं । वे निर्धन एवं धनवान दोनों को भाई भाई समझते हैं । कबीर संतोषपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करना चाहते हैं । उनकी राय में भजन करनेवाले व्यक्ति को भोजन केलिए दूसरे पर आश्रित नहीं रहना चाहिए । भीख माँगने में कबीर को पसंद नहीं था –

'मांगन मरन समान है' [१]

किसी से कुछ मांगने पर अपना स्वाभिमान समाप्त हो जाता है । लोकमंगल केलिए अपने अपने धर्म का पालन अत्यन्त आवश्यक है । गीता में भगवान ने स्पष्ट कहा है--

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः''

गीता का वचन यहाँ खरा उतरता है । कबीर इसे शतप्रतिशत मानते थे । कबीर कर्मयोग के हिमायती थे । उन्होंने अपने पैतृक व्यवसाय को अपनाया । बडी ही आस्था के साथ अपने पारिवारिक धंधे को आत्मसात् किया । उनकी जीविका का आधार भिक्षा मांगना नहीं था अपितु निर्वाह केलिए जुलाहा कर्म करते हुए परिवार का भरण-पोषण करना था । साथ में साधु-सेवा भी उनका लक्ष्य था । कबीर ने बडे यथार्थवादी ढंग से कहा है कि भूखे पेट भक्ति नहीं हो सकती। भूखा माला नहीं संभाल सकता । उसे वह दूर फेंक देगा । इतना अवश्य है कि ये किसी के ऋणी नहीं । अतःउन्हें किसी को कुछ देना भी नहीं है और किसी से कुछ याचना ही करनी है।

भूखे भगति न कीजै, यह माला अपनी लीजै
हौ माँगों संतन रे ना, मैं नहीं किसी का देना ।'' [१]

चित्त को भगवान में लगाते हुए भी संत कबीर ने हाथों से कार्य नहीं रोका था । उन्होंने सत्कर्म के द्वारा जीव को कर्म ही नहीं, सत्कर्म करने की प्रेरणा प्रदान की। सभी कर्म समान भाव से युक्त बता दिया और श्रम के महत्व को उचित मान्यता भी दी ।

बाइबिल के अनुसार मानव को अपने माथे का पसीना बहाकर अपनी रोटी कमानी चाहिए । काम के द्वारा मानव अपने स्रष्टा का ही अनुकरण करते हैं । बाइबिल में बताते हैं -'' सातवें दिन ईश्वर का किया हुआ कार्य समाप्त हुआ । उसने अपना समस्त कार्य समाप्त कर, सातवें दिन विश्राम किया ।'' [२] बाइबिल के दृष्टिकोण से कर्म का एक धार्मिक महत्व भी है क्योंकि जब स्त्री और पुरुष अपने लिए और परिवार केलिए कमाई करते हुए अपने समुदाय की सेवाशुश्रूषा में लगे रहते हैं तो उन्हें निश्चय ही अपने इन कार्यों को ईश्वरीय सृष्टि कार्य का दीर्घीकरण और इतिहास में दैनिक योजना की पूर्ति हेतु अपना व्यक्तिगत योगदान समझ सकते हैं । अर्थात् जो परिश्रम करता है वह ईश्वर के सृजन एवं पुनर्सृजन कार्य में सहभागी होता है । कर्म ईश्वर से संबन्ध स्थापित करने एवं उससे संयुक्त होने का साधन है। स्वयं येशु ने नाज़रेत में जीते वक्त अपने हाथों से कार्य करके श्रम को परिष्कृत करके यश प्रदान किया और दिखाया कि जो कर्म प्रत्यक्ष रूप से बेकार एवं कम लाभदायक है वे भी काफी महत्वपूर्ण है । इसलिए बाइबिल सिखाता है कि मानव के सभी कार्यों को जो कितना भी छोटा क्यों न हो उनको सावधानी से करते हुए ईश्वरीय सृष्टि एवं मुक्ति-योजना में सहभागिता का दर्जा देना है ।

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. ३१४
२ पराना विधान उत्पत्ति-ग्रन्थ २:२

'' पृथ्वी पर फैल जाओ और उसे अपने अधीन कर लो ''[१] आदिम नर और नारी को दी गयी ईश्वर की प्रस्तुत वाणी में सभी प्रकार के प्रयत्नों का संदेश अंतर्निहित है । आदम से ईश्वर ने कहा -'' तुम जीवन भर कठोर परिश्रम करते हुए उससे अपनी जीविका चलाओगे।'' [२] कर्म के माध्यम से मनुष्य न केवल प्रकृति एवं समाज को परिवर्तित करता है वरन् स्वयं को एक पूर्ण मानव बनाता है । काम ईश्वरीय योजना का एक भाग है क्योंकि बाइबिल ईश्वर के सृष्टिकर्म को मानव मेहनत के प्रतिबिंबों के द्वारा वर्णन करता है । उदाहरण केलिए कुम्हार के समान मानव की सृष्टि करनेवाले - याने '' प्रभु ने धरती की मिट्टी से मनुष्य को गढा''[३]

मैं तेरे बनाये हुए आकाश को देखता हूँ, तेरे द्वारा स्थापित तारों और चन्द्रमा को..... [४] ईश्वर का चित्र बाइबिल में देखते हैं । ईश्वर के कर्म को मानव ज़ारी रखते हैं । स्तोत्र-ग्रन्थ में बताते हैं -'' मनुष्य अपने काम पर जाता है और शाम तक परिश्रम करता है ।'' [५]

अच्छे ढंग से किए जानेवाले कामों की बाइबिल प्रशंसा करता है। [६] साथ ही आलसों की कटु भर्त्सना भी करता है -'' आलसी ! तुम चींटी के पास जाओ ! उसके आचरण पर विचार करो और प्रज्ञ बनो। उसका न तो कोई स्वामी है, कोई निरीक्षक और न कोई शासक । वह समय पर अपने रसद का प्रबन्ध-करती और फसल के समय अपना भोजन संचित करती है । [७] सूक्ति ग्रन्थ आलसी के विरुद्ध बताता है और परिश्रमी को आशीष भी देता है -'' आमसी की आशा व्यर्थ है किन्तु परिश्रमी की इच्छा पूरी होगी । [८] '' जो परिश्रम करता है, उसकी योजनाएँ सफल

---

१. पुराना विधान उत्पत्ति-ग्रन्थ १:२८
२. वही ३:१७
३. वही २:७
४. वही स्तोत्र-ग्रन्थ ८:४
५. पुराना विधान स्तोत्र-ग्रन्थ १०४:२३
६. वही प्रवक्ता-ग्रन्थ ३८:२५-३१
७. वही सूक्ति-ग्रन्थ ६:६-८
८. वही १३:४

हो जाती हैं । जो उतावली करता है, वह दरिद्र हो जाता है ।''[१] प्रवक्ता-ग्रन्थ आलसी को बहुत नीच दिखाते हैं -'' आलसी कीचड में पडे हुए पत्थर जैसा है । सब कोई उसके कलंक की निन्दा करते हैं । आलसी मल के टुकडे-जैसा है सब कोई उसे छूकर हाथ झटकारते हैं ।''[२]

कर्म की महत्ता पर बल देकर प्रवक्ता ग्रन्थ में यों बताया गया है - इनके बिना कोई भी नगर नहीं बसाया जा सकता.....किन्तु ये ईश्वर की सृष्टि बनाये रखते हैं । इनका काम ही इनकी प्रार्थना है ।'' [३] 'नया विधान' भी काम को श्रेय मानते हैं । एक श्रमिक के बेटे के रूप में पालित ईसा भी एक श्रमिक थे- क्या वह बढई का बेटा नहीं है ?''[४] क्या यह वही बढई नहीं है-मरियम का बेटा'' [५] ईसा के प्रारंभिक शिष्य सब श्रमिक थे - '' वे समुद्र में जाल डाल रहे थे, क्योंकि वे मछुए थे ।'' [६] संत पोल भी एक तम्बू बनाने वाले थे और कडी मेहनत करते थे-

पोल उनसे मिलने गया और उनके यहाँ रहने तथा काम करने लगा, क्योंकि वह एक ही व्यवसाय करता था-वे तम्भू बनाने वाले थे ।'' [७] संत पोल श्रमिक के रूप में गर्व करते थे -'' आप लोग जानते हैं कि मैंने अपनी और अपने साथियों की आवश्यकताएँ पूरी करने केलिए अपने इन हाथों से काम किया ।'' [८] वे एफेसुस के अध्यक्षों को कठिन परिश्रम करने का आह्वान देते हुए उनसे कहते हैं कि परिश्रम करते हुए दुर्बलों की सहायता करनी चाहिए । संत पोल ने थेसलनीकियों के बीच में जाकर सुसमाचार का प्रचार किया, तब भी वे दिन-रात कार्य करते रहे, ताकि वे किसी पर भार न बनें । कार्य के महत्व को बताते हुए वे कहते हैं '' जो काम करना

---

१. पुराना विधान	सूक्ति-ग्रन्थ	२१:५	५. नया विधान	संत मारक	६:३
२. वही	प्रवक्ता-ग्रन्थ	२२:१-२	६. वही	संत मात्यु	४:१८
३. वही		३८:३६-३९	७. वही	प्रेरित-चरित	१८:३
४. नया विधान	संत मात्यु	१३:५५	८. वही		२०:३४

नहीं चाहता उसे भोजन करने का अधिकार नहीं है ।'' [१] संस्कृत में एक सुभाषित इस प्रकार है -'' उद्यमेनैवहि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः'' अर्थात् बिना परिश्रम के लक्ष्यप्राप्ति संभव नहीं है ।

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल दिखाते हैं कि मानव को काम को स्वधर्म के रूप में स्वीकार कर अपने लिए तथा समाज की उन्नति केलिए निरत रहना चाहिए। इन दोनों के अनुसार कर्म के माध्यम से मनुष्य न केवल प्रकृति एवं समाज को परिवर्तित करता हैं वरन् स्वयं को एक पूर्ण मानव बनाता है । वह अपने कर्मों से सीखता, अपनी ज्ञानेन्द्रियों का विकास करता और अज्ञान से विमुख होकर ईश्वरत्व की ओर अग्रसर होता है । कर्म के द्वारा ही मानव का विकास एवं समाज-कल्याण संभव है। काम के द्वारा मानव अपनी क्षमताओं का एहसास करता है और स्वयं को समोन्नत बनाता हैं । मानव को अपनी उन्नति तथा समाज के मंगल केलिए हर काम को सहर्ष स्वीकार करना होता है । उसे कोई भी काम करने में लज्जित होने की कोई आवश्यकता नहीं ।

दया

समाज के व्यक्ति जब निर्वैरता को अपना लेते हैं तब समाज का स्वरूप मंगलमय हो जाता है । वैररहित व्यक्ति को संसार का प्रत्येक प्राणी अपना दिखाई देता है । इससे समदृष्टि उत्पन्न होती है, जो मानसिक शीतलता के साथ साथ सामाजिक शान्ति का सूत्रपात भी करती है । निर्वैरता ही दया की जननी है । जब मनुष्य विश्व के समग्र प्राणियों को एक-स्वरूप मान लेता है तो उसके हृदय में दया जागृत हो जाती है । दया के अभाव में धर्म की स्थिति भी संदिग्ध है । दया से

---

१. संत पोल थेसलोनियों के नाम दूसरा पत्र ३:१०

विहीन धर्म, धर्म न होकर अधर्म कहलाता है । जब व्यक्ति के मन में दया की भावना उद्‌भूत होती है तब हिंसा पाप-तुल्य दिखाई देती है । तब मन में व्याप्त अहिंसा के द्वारा मानव किसी का अहित नहीं कर सकता । ईश्वर घट-घट-व्यापी है । जब व्यक्ति उसकी सर्वव्यापकता को हृदयंगम कर लेता है, तब किसी प्राणी के प्रति पाप करने से वह दूर रहता है । दया से समाज में सद्‌भावना का प्रसरण होता है, मानव सुखी होता है और चतुर्दिक विश्वास का वातावरण फैलता है, तदनुरूप समाज कल्याणप्रद बन जाता है ।

संत कबीर के मतानुसार संसार के सभी जीव उस परब्रह्म के बनाये हुए हैं, चाहे स्थूलाकार हाथी हो अथवा चींटी, दोनों को बनानेवाला ईश्वर एक है । अतएव मानव को हमेशा अपने हृदय में दया-भाव रखना चाहिए —

दया दिल में रखिये, तूँ क्यों निरदइ होय
सांई के सब जीव है, कीडी कुंजर सोय ।'' [१]

कबीर के अनुसार जिन व्यक्तियों के हृदय में दया-भाव का अभाव है, उन व्यक्तियों का वास निश्चित रूप से नरक में ही होता है ।

दया भाव हिरदे नहीं, ज्ञान कथै बेहद
ते नर नरकहिं जाहिंगे, सुनि सुनि साखी सबद ।''[२]

सन्त कबीर समाज को परिष्कृत और निर्दोष देखना चाहते थे, इसलिए उन्होंने

---

१. कबीर, सन्तावानी संग्रह भाग १ वेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स पृ. ४८
२. वही पृ. ५२

प्रत्येक जीव एवं वस्तु के प्रति दयालु होने का उपदेश दिया, कबीर की दया का प्रसार तो वृक्ष पक्षी तथा संसार के जड-चेतन सभी के प्रति हुआ है । कबीर ने निर्दयता और अकरुणा के ऊपर सहृदयता और दया को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की है —

पाती तोरै मालिनी पाती पाती जोउ ।'' [१]

यदि जीव-हत्या को धर्म कहा जाता है तो फिर अधर्म किसको कहेंगे ? यदि जीव-घातक को मुनि कहा जाता है तो कसाई भला किसे कहा जायेगा —

जीव बधहु सुधरम करि थाबहु, अधरम कहहु कत भाई
आपस को मुनिवर करि छाबहु, काकहु कहीं कसाई ।'' [२]

संत कबीर ने ब्राह्मण-धर्म की बलिवेदी पर देवी-देवताओं के सम्मुख निरीह भेड-बकरियों का रक्त बहते देखा था । ब्रह्म की सर्वव्यापकता के कारण ये जीव-हत्या सहन न कर सके । कर्मकाण्डी पण्डित हत्या करके भी समाज केलिए पूज्य थे । मुसलमान भी बलपूर्वक जीव हत्या करते थे और उनको स्वधर्म सम्मत बताते थे । कबीर ने सारी स्थिति को देखा और उन्हें स्पष्ट बता दिया कि यह चेष्टा अन्याय है और अमंगल है ।

इस प्रकार संत कबीर ने दया को केवल पवित्र भावनाओं तक ही सीमित नहीं रखा, अपितु इसके उन लाभप्रद प्रयत्नों का विवेचन भी किया है, जो पराये कष्टों के निवारणार्थ किये जाते हैं । दया मानव को एक असीम शक्ति के साथ कार्य करने

---

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर ग्रन्थावली पृ. २३२

की क्षमता प्रदान करती है । संत कबीर समाज को परिष्कृत एवं निर्दोष देखना चाहते थे इसलिए उन्होंने प्रत्येक जीव के प्रति दयालु होने का उपदेश दिया है । इसके द्वारा एक अखण्ड एवं मंगलमय समाज की स्थापना की कोशिश उन्होंने की। सारी सृष्टि जब दया का पात्र बन जाती है तो लोग बिना भय से समाज में जी सकते हैं । जहाँ भय नहीं वहाँ संतोष एवं स्वातंत्र्य है, रक्षा का मंत्र है । व्यक्ति में संतोष होने पर, असकी रक्षा के स्थिर हो जाने पर उसका प्रकाश समाज में अपने आप फैलता है। वह समाज पूर्ण रूप से मंगल-भावना से युक्त रहता है । इसके विपरीत समाज के दया-विहीन होने पर संतोष के स्थान पर अशान्ति रहती है । शान्तिरहित समाज से मंगल की नहीं, अमंगल की प्रतीक्षा करना ही उचित है ।

मानव को दया से परिपूर्ण होने का आह्वान बाइबिल में आदि से अंत तक देखा जा सकता है । परिवार वही स्थल है जहाँ दया अधिक मात्रा में हम अनुभूत करते हैं । परिवार के सदस्यों को आपस में जिस प्रकार स्नेह एवं दया का भाव दिखाना है इस पर पुराना विधान बल देता है । साथ ही मानव प्रेम एवं दया, सीमित परिवार के दायरे से बाहर आकर पडोसवालों, अपरिचितों विशेषकर शोषित एवं पीडितों के प्रति हो, इसका आह्वान भी बाइबिल में है -'' वे दुहाई देनेवाले दरिद्रों और निस्सहाय पददलितों का उद्धार करेंगे । वे दरिद्र और दुर्बल पर दया करेंगे ।'' [१] यहाँ ईश्वर से लोग एक ऐसे राजा को प्रदान करने की प्रर्थना करते हैं जो नीतिनिष्ठा, सारी प्रजा पर सहानुभूति एवं समता भाव रखने वाले सर्वसम्मत व्यक्ति हैं । प्रवक्ता-ग्रन्थ के अनुसार-'' जो अपने पडोसी को उधार देता है, वह दयालु है । जो उसकी सहायता करता है, वह आज्ञाओं का पालन करता है । पडोसी को ज़रूरत हो, तो उसे उधार दो ।'' [२]

---

१. पुराना विधान स्तोत्र-ग्रन्थ ७२:१२-१३
२. वही प्रवक्ता-ग्रन्थ २९:१-२

नया विधान में येशु का आह्वान है कि -'' अपने स्वर्गिक पिता-जैसे दयालु बनो । [१] येशु में दया, प्रेम, सहानुभूति एवं परोपकार की भावना विद्यमान थी । इसलिए जब कभी भी येशु ने गरीबों, बीमारों एवं बेसहारों को देखा, तो उनमें उन लोगों के प्रति प्रेम एवं सहानुभूति की भावना उमड पडी । येशु यह जानते थे कि लोगों को उनकी ज़रूरत है, क्योंकि उस समाज के शास्त्री, फरीसी और यहूदी नेता लोगो की भलाई करने के बजाय उन्हें धोखा देते थे । वे स्वयं नियमों का पालन नहीं करते परंतु नियम के नाम पर लोगों को सताते थे । पवित्र सुसमाचार हमें यह अवगत कराता है कि येशु को लोगों की दुर्दशा देखकर उन पर दया आयी । '' ईसा ने नाव से उतर कर एक विशाल जनसमूह को देखा । उन्हें उन लोगों पर तरस आया, क्योंकि वे बिना चरवाहे के भेडों की तरह थे ।'' [२] ईसा की दया अन्धों को दृष्टि देने, [३] कोढी को स्वास्थ्यलाभ देने, [४] मुर्दे को जिलाने, [५] भूखों को भोज देने आदि केलिए उत्तेजित करती है । मानव को उनकी अपनी कमी एवं पाप के साथ संपूर्ण बनाने में येशु की दया सक्षम हो जाती है । यहाँ येशु अपनी प्रवृत्ति द्वारा व्यक्त करते हैं कि दया की परिपूर्णता किसी को दुखी देखकर सहानुभूति के कारण केवल दुखी होने में नहीं है, अपितु यथाशक्ति उसको कष्ट से छुडाने की क्रिया में है । इसी कारण दयालु व्यक्ति द्वारा समाज में कल्याण होता है । येशु अपनी वाणी द्वारा यह भी स्थापित करते हैं कि जिसको दया है उसको भी ईश्वर से दया मिलेगी । जिसमें दया-भाव नहीं है उससे ईश्वर भी अपनी दया नहीं दिखायेंगे । [६] इसलिए संत पोल का अनुरोध है कि '' एक दूसरे के प्रति दयालु तथा सहृदय बनें ।'' [७] दया पाने से बेचैन दिल को शीतलता मिलती है जिससे ज्यादा संतोष के साथ जीने की इच्छा उत्पन्न होती है । याने दया-भाव मानवकल्याण का एक अभिन्न अंग है। इसलिए

---

१. नया विधान संत लूक ६:३६
२. वही संत मारक ६:३४
३. वही संत मात्यु २०:३४
४. वही संत मारक १: ४१
५. नया विधान संत लूक ७:१५
६. वही संत मात्यु १८:३२
७. संत पोल एफेसियों के नाम पत्र ४:३२

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में इसकी आवश्यकता पर बल दिया गया है । मानव मन में, निहित बेताबी अव्यवस्था एवं दुखदर्द को मिटाने की शक्ति दया-भाव में व्याप्त है । मानव-जीवन की अव्यवस्था, संकोच, दुखदर्द आदि दूर होने पर परिवार, समाज एवं संसार की गतिविधि में परिवर्तन आता है और यह लोकमंगल का कारण बन जाता है । अपने मकान की चारदीवारी तक सीमित दरिद्रों की पुकार, चीत्कार और संत्रास को सुनने की क्षमता जब मालिक वर्ग अपनाता है तब ये शोषित वर्ग सोचेंगे कि वे भी इस दुनिया में आवश्यक हैं । उनके दुख के बदले संतोष पूरे समाज में फैलेंगे । एक विशेष प्रकार का अपनत्व भाव सबके दिल पर शासन करेगा । इसी प्रकार के एक समाज को देखने की इच्छा कबीर-साहित्य एवं बाइबिल करते है ।

प्रेम का महत्व

कबीर एवं बाइबिल का मुख्य संदेश प्रेम का है । परिवार के अन्तर्गत पति, पत्नी और पुत्र को एक सूत्र में बांधनेवाला तत्व है -'प्रेम भाव'। यही प्रेमभाव विकसित होकर व्यक्ति और समाज के संबन्धों का आधार बनता है । भक्त और प्रभु के संबन्धों का मुख्य आधार भी प्रेम है । प्रेम से सहृदयता का जन्म होता है । इन दोनों के संबन्ध से मित्रतारूपी बहुमूल्य रत्न उत्पन्न होता है । प्रेम का महत्व केवल धर्म से संयुक्त होने में ही नहीं है अपितु यह अधर्म का सामना करने केलिए भी है । प्रेम के अभाव में व्यक्ति-जीवन 'स्व' तक सीमित हो जाता है, पर दूसरों के प्रति प्रेम-भावना युक्त व्यक्ति परोपकार केलिए जीवन तक का उत्सर्ग कर देते हैं ।

कबीर के व्यक्तित्व की सबसे बडी विशेषता यह है कि वे मानवमात्र के प्रेमी थे । उनका यह प्रेम मनुष्यगत है और मनुष्य केलिए है । एक तरफ मनुष्य के हितों

की बात सोचते सोचते उनके मन की करुणा अत्यन्त द्रर्वीभूत हो गयी थी और दूसरी तरफ सामाजिक भ्रष्टाचारों एवं धार्मिक पाखण्डों को देखकर उनका मन तिलमिला उठा था । उन्होंने मानव-हित की बातों को ध्यान में रखकर राजा तथा प्रजा के बीच प्रेम का प्रचार किया था । प्रेम एक ऐसी चीज़ है जिससे राजा-प्रजा समान धरातल पर मिल सकते हैं । प्रेम से ही ऊँच-नीच का भेद मिटाया जा सकता है और प्रेम से ही मनुष्य परस्पर जुडता है । प्रेम पर किसी का एकाधिकार नहीं है । उसे राजा भी पा सकता है और रंक भी । पर उसकेलिए त्याग आवश्यक है । बिना त्याग के प्रेम निर्बल है । बिना त्याग के प्रेम की मधुरता खो जाती है। मानव-मानव अथवा जीव-जीव का उचित संबन्ध ही प्रेम है । कबीर ने मनुष्य के प्रेम संबन्धों को अनेक रूपकों के माध्यम से व्यक्त किया है । परिवार एवं समाज का संगठन प्रेम संबन्धों के आधार पर होता है । इसलिए प्रेम मानवजीवन की मूल्यवान निधि है । इस धरती पर प्रेम के समान कोई धन नहीं है । सभी तत्वों में प्रेम-तत्व प्रधान है । इसलिए कबीर ने ढाई आखरवाले 'प्रेम' पर अधिक ज़ोर दिया है । प्रेम के सामने सारा पोथी-ज्ञान झूठ है । क्योंकि प्रेम से ही सारे शास्त्र पैदा होते हैं। इसलिए प्रेम का स्थान जीवन में सर्वोच्च है । सच कहा जाय तो कबीर ने जीवन-जाग्रति केलिए प्रेम की क्रान्ति की थी । उनके सारे कथनों में प्रेम के विविध रूप मिलते हैं । उनकी सारी धार्मिक बातों में प्रेम की ही पुकार है । वस्तुतः वे समाज के एक सच्चे प्रेमी थे ।

कबीर के व्यक्तित्व में प्रेम की कमी नहीं है । मानव प्रेम के अतिरिक्त ब्रह्म के प्रति जब वे अपने प्रेम को व्यक्त करते हैं तो वे प्रेम की उन सारी अवधारणाओं, सारे स्वरूपों को उस ब्रह्म पर आरोपित और घटित कर देते हैं जो मनुष्यसमाज में पति-पत्नी के रूप में, माता-पुत्र और स्वामी-सेवक के रूप में तत्कालीन समाज में

स्वीकृत थे । कबीर की साखियों में प्रेम का व्यापक वर्णन पाया जाता है । यह प्रेम जल और मीन, स्वाति और चातक के रिश्ते का है इसका नशा मदिरा से भी अधिक मतवाला बना देनेवाला है । लेकिन यह प्रेम समर्पण माँगता है, अहं और मेरे-तेरे की भावना से ऊपर उठना चाहता है । इसलिए कबीर ने इस प्रेम-मार्ग को कहीं भी सहज-सरल न कहकर अगम, अगाध और जोखिम-भरा कहा है इसका आनन्द प्राप्त करने केलिए सिर उतारना पडता है अर्थात् जो स्वयं अपने अहंभाव को सर्वथा मिटा दे, वही प्रेम के आस्वादन का अधिकारी है -

कबीर निज घर प्रेम का, मारग अगम अगाध
सीस काटि पग तर धरै, तब निकटि प्रेम का स्वाद ।'' [१]

कबीर ने परमात्मा को पति का दर्जा देकर मध्यकालीन विलासिता के स्थान पर प्रेम के महत्व की स्थापना की और उन्होंने कहा कि यह प्रेम बिकता नहीं है, न इस प्रेम की खेतीं की जा सकती है, बल्कि अहं त्याग कर इस प्रेम को राजा और प्रजा-सामान्य जन कोई भी प्राप्त कर सकता है —

प्रेम न बारी ऊपजै, प्रेम न हाटि बिकाई
राजा परजा जेहिं रुचै, सीस देइ लै जाइ ।''[२]

कबीर में ऐसे अनेक कथन उपलब्ध है जिनमें शीश उतार कर प्रेम-मार्ग पर चलने की बात दोहराई गई है —

कबीर भाठी प्रेम की, बहुतक बैठे आई
सिर सौपे सोई पिअै, नातर पिया न जाइ ।'' [३]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १८१
२. वही पृ. १८३
३. वही पृ.

याने कलालरूपी गुरु के पास बहुत से मदिरा-प्रेमी रूपी शिष्य आकर बैठे हैं । किन्तु जो गुरु को अहंकाररूपी सिर समर्पित कर सकता है, वही इस प्रेम रूपी मदिरा को पीने का अधिकारी है, अन्यथा कोई भी यह मदिरा न पी सकेगा ।

कबीरदास प्रमे से इतने अधिक प्रभावित हैं कि वह प्रेमी जीव की खोज करते हैं परंतु उन्हें 'प्रेमी' कोई नहीं मिलता । यदि प्रेमी से प्रेमी का मिलन हो जाए तो सब 'बिख' 'अम्रित' में परिवर्तित हो जाए । याने जीवन की कटुता आनंद में परिणत हो जाय ।

प्रेमी ढूंढत मैं फिरूँ, प्रेमी मिले न कोइ
प्रेमी सौं प्रेमी मिलै, तो सब बिख अम्रित होइ ।'' [१]

प्रेम के अभाव में इस विश्व में जन्म लेना वृथा है । सूने घर का अतिथि जैसा आता है वैसा ही लौट जाता है, प्रेमविहीन व्यक्ति इस संसार से ऐसे ही अतिथि के समान जाता है । उसे न कुछ खाने को मिलता है, न उसका स्वागत-सत्कार होता है । उसी प्रकार जो ईश्वर से प्रेम नहीं करता है, वह इस संसार में जैसे आया है वैसे ही चला जाता है । मानवजीवन से कुछ लाभ नहीं उठाता ।

कबीर प्रेम न चाखिया, चाखि न लीया साव
सूनै घर का पाहुनां, ज्यौ आवौं त्यौं जाव ।'' [२]

तरह तरह के उदाहरणों से कबीर प्रेम के महत्व को प्रकट करते हैं । जितना भी प्रेम के बारे में कहा जाय, अपूर्ण ही है क्योंकि प्रेम ऐसी एक भाषा है जिसमें पूर्णता है । प्रेम ही ईश्वर है, प्रेम ही आनन्द है । जहाँ प्रेम है वहँ ऐश्वर्य है, विकास है,

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १६०

मंगल है । कबीर इसे जानते थे । इसीलिए वे कहते हैं कि जब मनुष्य को प्रेम का प्रकाश प्राप्त हो जाता है, तब उसमें अनन्त ज्योति का प्रकाश भर जाता है । उसका संशय छूट जाता है । संशय ही समाज की सारी अमंगलकारी बुराई का मुख्य कारण है । जब मानव-मानव में प्रेम प्रकाश उदित होता है तब वहाँ की सारी बुराईयाँ दूर होकर समाज मंगलयुक्त बन जाता है । एक और स्थान पर भी कबीर का कथन है कि शरीर रूपी पिंजडे में प्रेम का प्रकाश हाने से अन्तस् में उजाला हो जाता है –

पंजरि प्रेम प्रकासिया, अंतर भया उदास ।'' [१]

लोकप्रसिद्ध उक्ति, जा घट प्रेम न संचरै, ता घट जान मसान'' (जिस शरीर में प्रेम नहीं है वह श्मशान के समान है) - कबीर के प्रेम-विषयक दृष्टिकोण को स्पष्ट कर देती है । वास्तव में कबीर-साहित्य अपूर्व साहस एवं निर्भीकता का साहित्य है। एक आलोचक के अनुसार इसमें अन्याय के साथ रत्ती-भर भी समझौता नहीं किया गया है, हिन्दू और मुसलमानों के बीच द्वेष, घृणा और हिंसा के विष को दूर कर दोनों के बीच प्रेम और स्नेह के परम मधुर और स्निग्ध संबन्ध की प्रतिष्ठा की गयी है । मनुष्य और मनुष्य के बीच संप्रदाय, धर्म, जाति अथवा विचार के कृत्रिम भेद को सर्वथा तुच्छ मानकर उन्होंने सबके अंतराल में प्रवाहित होने वाले विश्व-प्रेम और सौहार्द-भाव को देखा और पहचाना और उसको उन्होंने अपनी बानियों में व्यक्त किया । मानवमात्र के कल्याण और इस लौकिक और पारलौकिक सिद्धि केलिए इन अशिक्षित, पुस्तक ज्ञान से वंचित संतों की वाणी सदैव ही आदर की अधिकारिणी रहेगी ।'' [२]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १७०
२ डॉ.मोतीसिंह निर्गुण साहित्य सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पृ. २२९

बाइबिल के अनुसार प्रेम मानव-जीवन का केन्द्र है । बाइबिल बताता है - '' प्रिय भाइयो ! हम एक दूसरे को प्यार करें, क्योंकि प्रेम ईश्वर से उत्पन्न होता है। जो प्यार करता है, वह ईश्वर की सन्तान है और ईश्वर को जानता है । जो प्यार नहीं करता, वह ईश्वर को नहीं जानता क्योंकि ईश्वर प्रेम है ।'' [१] सुसमाचार में प्रभु येशु मानव को एक नयी आज्ञा देते हैं जो सभी आज्ञाओं में श्रेष्ठ है - अपने पडोसी को अपने समान प्यार करो [२] और इस आज्ञा का अनुपालन निःसन्देह मानव में प्रेम का भाव जाग्रत करता है । संत जोन के सुसमाचार द्वारा प्रभु येशु कहते हैं - '' जिस प्रकार मैंने तुम लोगों को प्यार किया, उसी प्रकार तुम भी एक दूसरे को प्यार करो ।'' [३] उनकी राय में यह प्यार दो दिनों का संगम नहीं, यह प्यार बहुमूल्य वस्तुओं के प्रति लालसा नहीं, परंतु यह प्यार मानव को मानव के प्रति भ्रातृत्व तथा सहानुभूति की अभिलाषा जाग्रत करता है ।

आपसी प्रेम की महत्वपूर्ण आज्ञा देने के बाद ईसा मसीह मानव केलिए एक कठिन मगर सबसे महत्वपूर्ण आज्ञा देते हैं । वे कहते हैं कि हमें सिर्फ मित्रों को ही प्यार करना पर्याप्त नहीं है, हमें अपने शत्रुओं को भी प्यार करने केलिए तैयार रहना है । प्रभु येशु ने अपने जीवन के उदाहरण द्वारा इस असंभव कार्य को संभव कर दिखाया जब वे क्रूस पर लटके एक दर्दनाक और तिरस्कारपूर्ण मृत्यु का सामना कर रहे थे तब भी अपने शत्रुओं केलिए उनके मुख से कोई भी द्वेषपूर्ण बात नहीं निकली। अपने जीवन के अंतिम क्षणों में भी उन्होंने अपने शत्रुओं से प्रेम किया और अपने शत्रुओं को माफ किया ।

संत पोल के कोलेसियों को लिखे पत्र द्वारा [४] स्नेह का एक दूसरा स्वरूप देखने को मिलता है । संत पोल के प्रबोघनों से पता चलता है कि मानवीय जीवन

---

१. नया विधान :संत जॉन का पहला पत्र ४:७ ३. नया विधान संत जॉन १३:३४

का सर्वश्रेष्ठ एवं अंतिम ध्येय मानवमुक्ति एवं ईश्वरीय राज्य में प्रवेश करना है । इस उद्देश्य को हासिल करने की प्रक्रिया में संत पोल को असंख्य कष्टों एवं दुखों का-सामना करना पडा किन्तु मानवीय स्नेह से ओत-प्रोत हृदय एवं मानव-उद्धार के प्रति दृढ निश्चय के कारण इन दुखों एवं कष्टों के बीच भी संत पोल ने अपने आप में तृप्ति एवं आनन्द का अनुभव किया । अतः स्नेह सिर्फ दूसरों की सहायता करने तक ही सीमित नहीं है । अतः संत पोल का यही आह्वान हैं कि हमें हर दुख-कष्टों को सहते हुए भी अपने भाईयों के उद्धार केलिए कार्य करना चाहिए । प्रेम वह भाव है जिसके द्वारा निष्काम भाव से परोपकार किया जाता है । इसमें दूसरों केलिए अपने जीवन का बलिदान करना भी रहता है ।

प्रेम अनिवार्य वस्तु है । सब चाहते हैं कि उन्हें प्यार मिले । संसार की अधिकांश व्यक्तिगत पीडाओं का मूल कारण यह है कि जब कोई व्यक्ति अपने को प्यार से वंचित और लोगों द्वारा तिरस्कृत समझता है । बाइबिल की शिक्षा में सबसे प्रमुख बात यह है कि ईश्वर हर व्यक्ति को जैसा वह है उसी रूप में उसे प्यार करता है । येशु ने मानव केलिए अपना जीवन अर्पित किया । यह शर्तहीन प्रेम है । मानव की गरीबी, उनकी असफलता, बलहीनता, उनकी पापमयता आदि उनके प्रति ईश्वर के प्रेम में बाधा नहीं डालतीं । येशु के सांसारिक जीवन पर मनन करते हैं तो एक बात पर हमारा ध्यान आकर्षित होता है । वह है मानव के प्रति प्रेम, विशेषकर गरीबों और ज़रूरत-मंदों के प्रति । यहूदियों ने येशु पर यह आरोप लगाया कि वे नाकेदारों और पापियों के मित्र हैं । उन्होंने भूखों के प्रति सहानुभूति करके उन्हें रोटी खिलाई । अपने मित्र लाज़रस के मरने पर पहुत दुखी होकर उन्होंने आँसू बहाये । दलितों और पीडितों को उन्होंने निमंत्रण दिया -'' थके-माँदे और बोझ से दबे हुए लोगों ! तुम सबके सब मेरे पास आओ, मैं तुम्हें विश्राम दूँगा।''[१]

---

१ नया विधान संत मात्य ११:२८-२९

अंत में उन्हेंने अपना पीडानुभव और मृत्यु द्वारा मानव के प्रति अपना असीम प्रेम दिखाया। ईश्वर से प्रेम करने का अर्थ है उनके द्वारा दिये नियमों का पालन करना और दूसरों से प्रेम करने का अर्थ है उनकेलिए अपना जीवन बलिदान करना । इस तथ्य का प्रमाण येशु सूली पर मृत्यु द्वारा देते हैं । इस प्रकार सूली प्रेम की भाषा के रूप में खडी होती है ।

सच्चा प्रेम सिर्फ ग्रहण करने या आनन्द लूटने में निहित नहीं है बल्कि वह दूसरे को देता है, दूसरे के साथ बांटता है और प्यार बांटने की वजह प्यार देने में आनन्द का अनुभव करता है । आत्मदान एवं निस्वार्थता के बिना सच्चा प्रेम संभव नहीं है । प्रेम सभी मुसीबतों एवं कठिनाईयों को सहन करता है तथा सभी प्रकार के संघर्षों से जूझने में सक्षम होता है । पुराना विधान में प्रेम की विशेषता यों दिखायी है -'' न तो समुद्र की लहरे प्रेम को बुझा सकतीं और न बाढ की जलधाराएँ उसे बहा सकती हैं । यदि कोई प्रेम को खरीदने केलिए अपने घर की सारी संपत्ति अर्पित करे, तो उसे तिरस्कार के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलेगा ।''[१] भ्रातृप्रेम से प्रेरित होकर सब कुछ करने का आह्वान संत पोल देते हैं ।[२] आगे भी वे यों आह्वान देते हैं-'' तो आप लोग एक चित्त, एक हृदय तथा एकमत होकर प्रेम के सूत्र में बँध जायें.....।''[३]

स्नेह की महत्ता दिखाते हुए किसी शायर ने ठीक ही कहा-स्नेह वह मानवीय भाव है, जो प्रत्येक मानव केलिए उतना ही आवश्यक है, जिस प्रकार मकान केलिए छत की, अन्धे और लंगडे केलिए लाठी की, कुएँ केलिए जल की, दीप केलिए तेल की, उपदेशक केलिए श्रोताओं की और लेखक केलिए लेखनी की

---

१. पुराना विधान सोलमन का सर्वश्रेष्ठ गीत ८:७
२. संत पोल कोरिन्थियों के नाम पहला पत्र १६:१४
३. वही फिलिप्पियों के नाम पत्र २:२

आवश्यकता होती है । 'नया विधान' के अनुसार यदि मानव प्रेम-भाव की सच्ची जिज्ञासा उत्पन्न हो जाये तो निश्चय ही वह दिन दूर नहीं, जब मानव बाइबिल के अंतिम ग्रन्थ प्रकाशना-ग्रन्थ पर अमल करते हुए कहेंगे -'' मैं ने एक नया आकाश और एक नयी पृथ्वी को देखा है । [१] संसार के मानव को चारों दिशाओं में नवीनता का अनुभव होगा और पुरानेपन एवं पाप की कालिमा अपने आप लुप्त हो जायेगी । तब मानव को इस पृथ्वी पर स्वयं ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव प्रत्यक्ष रूप से होने लगेगा । बाइबिल के अनुसार फिर समाज में न शोक होगा, न विलाप और न ही कोई दुख होगा, क्योंकि ईश्वर मानव के आँसुओं को स्वयं पोंछ डालेगा ।'' [२] ईसामसीह के जीवन के द्वारा बाइबिल दिखाते हैं कि प्यार में दूसरों को नवजीवन प्रदान करने की क्षमता है । मसीह ने हमें इतना प्यार किया कि उन्होंने हमारे लिए अपने को बलि चढाया । ईश्वर का प्रेम अतुल्य है । यह माँ-बच्चे के बीच के प्यार से कई गुना अधिक है । ईश्वर चाहते हैं कि हम भी आपसी प्रेम में बंधे रहें क्योंकि यदि हममें प्रेम का अभाव है तो हम खनखनाता घडियाल अथवा झनझनाती झाँझ मात्र हैं ।'' [३]

संक्षेप में, कबीर साहित्य एवं बाइबिल का मुख्य विषय प्रेम ही है । क्योंकि उनकी राय में स्नेह के अभाव में भलाई संभव नहीं । आजकल दुनिया में जितनी अधिक हानियाँ होती हैं उन सबका एकमात्र कारण स्नेह शून्यता ही है । समस्त

---

१. नया विधान प्रकाशना-ग्रन्थ २१:१
२. वही २१:४
३. संत पोल कोरिन्थियों के नाम पहला पत्र १३:१

ज्ञान, पहाडों को हटाने तक का परिपूर्ण विश्वास आदि के रहते हुए भी प्रेम का अभाव है तो वह मानव कुछ भी नहीं । प्रेम सहनशील एवं दयालु है । प्रेम न तो ईर्ष्या करता है, न डींग मारता है, न घमण्ड करता है बल्कि दूसरों को अपनाने की शक्ति उसमें है । जहाँ प्रेम है वहाँ सच्चाई है, भलाई है और वह समाज कल्याण से युक्त है । प्रेम युक्त समाज सबकी भलाई ही चाहता है । इसलिए कबीर साहित्य एवं बाइबिल कभी न अन्त होने वाले प्रेम को अपनाने का आह्वान करते हैं ।

छठा अध्याय

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में लोकमंगल के विधायक तत्व-२

गत अध्याय में हमने कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में लोकमंगल के विधायक तत्वों पर विचार किया है जिसमें लोकमंगल की भावना एवं जीवनमूल्य, भक्ति एवं लोकमंगल, कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में लोकमंगल की भावना, सदाचार और लोकमंगल, कबीर-साहित्य एवं बाइबिल-बहुजन हिताय, स्वानुभव एवं लोकमंगल के तत्व, साहित्य का उद्देश्य-लोकमंगल, लोकमंगल के विभिन्न तत्व-सत्य, अहिंसा, अस्तेय, परोपकार, समभाव, कर्मण्यता, दया, प्रेम का महत्व आदि का विवेचन किया। इस अध्याय में हम विश्वास, सारग्रहण और सहिष्णुता, कथनी और करनी का सामंजस्य, निष्काम कर्म, अपरिग्रह, गुरु का महत्व, आत्मनियंत्रण, निन्दा या क्रोध का अभाव, क्षमा भाव, सत्संग से लोककल्याण आदि पर विचार कर रहे हैं ।

विश्वास

जिस प्रकार लौकिक जीवन में विश्वास का महत्व है उसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन में भी विश्वास का महत्व अविस्मरणीय है । यदि ऐहिक जीवन की धुरी आत्मविश्वास है तो आध्यात्मिक जीवन की धुरी परमात्म-विश्वास है । अपने किए कर्मों को स्वीकार करना, अनुचित कर्मों पर पछताना और पतितपावन भगवान के सामने यथोचित दीनता दिखलाना, यह यथार्थ धार्मिक दृष्टिकोण है । पापभावना को अपने हृदय में स्थान देना यथार्थ की स्वीकृति है । इस मनोभावना के दो पक्ष देखे जा सकते हैं -पापी द्वारा अपनी गुणहीनता का स्वीकार और फलतः गुणागार भगवान की शरणागति । अतः भगवान पर अवलंबित होने की भावना पापभावना का स्वाभाविक परिणाम है । इस मनोभावना के वर्णन में कबीर ने कई बार विश्वास

शब्द का प्रयोग किया है । वस्तुतः उनकी भक्ति-साधना में विश्वास का मौलिक महत्व है। यदि भक्ति-विरोधी कर्मों पर पश्चात्ताप साधना का सबसे प्रारंभिक चरण है तो विश्वास से भक्ति का उदय आरंभ होता है ।

ज्ञान और भक्ति में विश्वास का अत्यधिक महत्व है । मानवजीवन आस्था और विश्वास के बिना अधूरा है । सन्त-साहित्य में विश्वास दो रूपों में मिलता है। विश्वास का प्रथम रूप आध्यात्मिक उन्नति में सहायक सिद्ध होता है । विश्वास का दूसरा रूप सामाजिक भलाई केलिए महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करता है । इसलिए कबीर ने विश्वास पर अधिक बल दिया है । यद्यपि कबीर-साहित्य एक ओर अध्यात्म में केन्द्रित होता था तथापि दूसरी ओर मात्र समाज के प्रति आक्रोश व्यक्त करता था। विश्वास की व्यंजना कबीर-साहित्य में अनेक प्रसंगों में हुई है । विश्वास का सार यह है कि भगवान की असीम दया पर निर्भरता के कारण भक्त भगवान को समस्त कल्याण का स्रोत माने । कबीर का विश्वास है कि मनुष्य चिन्ता क्यों करता है । चिन्ता तो ईश्वर करता है, जिसकी कोई, चिन्ता भी नहीं कर सकता-

कबीर का तूँ चितवै, का तेरा च्यंत्या होइ
अण्च्यंत्या हरि जी करै, जो तोहिच्यंत न होइ ।'' [१]

विश्वास करनेवाला भक्त भगवान की सर्वशक्तिमत्ता और सर्वव्यापी शरणदायक रूप का परिचय पाकर अपने संशय और भय को त्याग देता है । भय और संशय भक्ति के बाधक है जिनका परिहार विश्वास द्वारा होता है । मनुष्य जब यह समझता है कि भगवान सर्वशक्तिमान हैं तथा समस्त चराचर की देखभाल करता है तो वह चिन्तामुक्त हो जाता है —

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २३८

''चिंता छांडि अचिंत रहु, साई है समरत्थ
पसु पंखेरु जीव जंतु,तिनकी गांठी किसा गरत्य ।'' [१]

कबीर का विश्वास है कि परमतत्व की इच्छा के बिना कोई कुछ नहीं कर सकता, मानव चाहे लाख कोशिश करे, न वह रत्ती भर घट सकता है और न बढ सकता है-

'' करम करीमा लिखि रह्या अब कछु लिख्या न जाइ
मासा घटै न तिल बढै, जो कोटिक करै उपाइ ।'' [२]

आज मानव अपने कायाबल का आश्रय लेकर सब कुछ करने की कोशिश करते हैं साथ ही ईश्वर को पूर्णतया भूलते हैं । लेकिन यहाँ कबीर ऐसे लोगों को देखकर चेतावनी देते हैं कि यदि मनुष्य अपने जीवन में भलाई या मंगल-कामना करते हैं तो ईश्वर-विश्वास के बिना यह संभव नहीं । मनुष्य के जीवन में घटनेवाली और बढनेवाली सारी बातें ईश्वर के ज्ञान से ही होती रहती हैं। इसलिए विश्वास मानव जीवन का एक अभिन्न अंश रहे, यह अत्यन्त आवश्यक है ।

मनुष्य में विश्वासरूपी मूल्य निर्भर है तो उसके जीवन में डर का कोई स्थान नहीं । डर के द्वारा व्यक्ति में भलाई नहीं उसकी अवनति ही होती है । इसलिए कबीर की मान्यता है कि मनुष्य क्यों डर रहा है, जब उनके सिर पर परम तत्व का हाथ है –

''कबीर तूँ काहै डरै सिर परि हरि का हाथ
हस्ती चढि नहिं डोलिए, कूकुर भुसैं जु लाख ।'' [३]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २३८
२. डॉ.जयदेव सिंह कबीर वाङमय खंड- ३ पृ. २४०

तात्पर्य यह है कि प्रभु के आश्रय एवं विश्वास से मनुष्य ऐसी सुरक्षित स्थिति में रहता है कि उसे संसार में कोई हानि नहीं पहुँचा सकता । वह हाथी पर सवार होते है, विचलित नहीं होता और लाख कुत्तों के भूँकने पर भी भय नहीं करता ।

डॉ.सरनाम सिंह शर्मा ने ठीक लिखा है कि ''भक्ति की सबसे प्रौढ भूमिका विश्वास है ।'' [१] यदि इस भूमिका की प्रतिष्ठा न की जाए तो भक्ति की मुख्य बाधा के रूप में संशय बना रहता है-

''भाव भगति बिसवास बिन, कटै न संसै मूल ।''

कबीर में विश्वास की अनिवार्यता पर बल है उनकी राय में विश्वास के बिना समस्त साधनाएं विफल हैं --

''पद गाएँ लैलीन ह्वै, कटी न संसै पास।'' [२]

यदि संशय का बंधन नहीं कटा तो सर्वथा तल्लीन होकर पद गाने से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता । अतः विश्वास के साथ कुछ न कुछ करना ही उचित है । उससे ही जीवन में ईश्वरानुग्रह एवं भलाई संभव है । केवल दिखावे का विश्वास जीवन की बुराई का कारण है --

गाया तिन पाया नहीं, अनगाया तै दूरि
जिन गाया बिसवास गहि, तिनसौ रांम हजूरि ।'' [३]

जो विश्वासपूर्वक राम-नाम का गान करते हैं, उनके रोम-रोम में प्रभु व्याप्त है और

---

१. डॉ.सरनाम सिंह शर्मा कबीरःव्यक्तित्व,कृतित्व एवं सिद्धान्त पृ. ४३८
२ डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २३९

इसी कारण उनका हर काम मंगलप्रद बन जाता है । अपनी असहायता का अनुभव भक्त को भगवान के अपार ऐश्वर्य एवं कारुण्य से परिचित कराता है और वह भगवान से अपने समस्त कुशल की आशा करने लगता है । भगवान विश्वसनीय है यही मुख्य है, यह बात दूसरी है कि हम उन पर विश्वास करें या श्रद्धा या और कुछ ।

मनुष्य के जीवन में विश्वास की सर्वाधिक आवश्यकता है । बिना विश्वास के जीवन स्वयं में ही असहनीय बन जाता है । कबीर ने परमेश्वर में विश्वास करने का उपदेश देकर मनुष्य को विश्वास करना सिखाया है । विश्वास के माध्यम से ही मानव अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है । विश्वास के न होने पर किसी भी क्षेत्र में सफलता पाना असंभव है । मानव के प्रत्येक लक्ष्य की सार्थकता उसकी विश्वास-भावना पर निर्भर है । विश्वास जितना ही सघन होता है, लक्ष्य के प्रति प्रयत्न में उतने ही उत्साह और आनन्द का अनुभव होता है ।

बाइबिल में विश्वास को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । अपने आपको व्यक्त करनेवाले ईश्वर एवं इसके प्रत्युत्तर के रूप में ईश्वर पर विश्वास करनेवाले लोगों को ही बाइबिल चित्रित करता हैं । प्रवक्ता-ग्रन्थ आह्वान करता है कि – ''ईश्वर पर निर्भर रहो और वह तुम्हारी सहायता करेगा । प्रभु के भरोसे सन्मार्ग पर आगे बढते जाओ ।'' [१] बाइबिल कहता है कि - आपको विश्वास में दृढ और अटल बना रहना चाहिए और उस आशा से विचलित नहीं होना चाहिए, जो आपको सुसमाचार द्वारा दिलायी गयी ।'' [२] विश्वास के अभाव में कोई ईश्वर का कृपापात्र नहीं बन सकता । जो ईश्वर के निकट पहुँचना चाहता है, उसे विश्वास करना चाहिए कि ईश्वर है और वह उन लोगों का कल्याण करता है, जो उसकी खोज में लगे रहते हैं । संत पोल के अनुसार विश्वास के कारण मसीह संहिता

१. पुराना विधान प्रवक्ता-ग्रन्थ २:६ २. संत पोल :कोलोसियों के नाम पत्र १:२३

को परिपूर्णता तक पहुँचाते हैं और प्रत्येक विश्वास करनेवाले को धार्मिकता प्रदान करते हैं ।'' [१] '' जो उनमें विश्वास करता है उसे पूर्ण पाप-मुक्ति प्राप्त होगी ।''[२]

बाइबिल इस बात पर बल देता है कि कर्मों के अभाव में विश्वास निर्जीव है। यदि कोई यह कहता है कि मैं विश्वास करता हूँ किन्तु उसके अनुसार आचरण नहीं करता तो इससे कोई लाभ नहीं । विश्वास धार्मिकता और जीवन का स्रोत है । इस पर संत पोल ने विशेष रूप से बल दिया है । उनके अनुसार '' जो प्रभु के नाम की दुहाई देगा, उसे मुक्ति प्राप्त होगी ।'' [३] विश्वास भक्ति का सार है । यदि आप लोग मुख से स्वीकार करते हैं कि ईसा प्रभु है और हृदय से विश्वास करते हैं कि ईश्वर ने उन्हें मृतकों में से जिलाया, तो आप को मुक्ति प्राप्त होगी ।'' [४] हृदय से विश्वास करने पर मनुष्य धर्मी बनता है और मुख से स्वीकार करने पर उसे मुक्ति प्राप्त होती है । प्रेरित चरित में बताया गया है -'' जो उन में विश्वास करता है, उसे पूर्ण पापमुक्ति प्राप्त होगी ।'' [५] आगे भी बाइबिल की राय में विश्वास की परिणति अनन्त जीवन है । संत पोल इसको साबित करते हुए कहते हैं कि -'' हम तो विश्वास करते हैं कि ईसा मर गये और फिर जी उठे । जो ईसा में विश्वास करते हुए मरे, ईश्वर उन्हें उसी तरह ईसा के साथ पुनर्जीवित कर देंगे ।'' [६] मानव को विश्वास के बल पर चलने और जीवन बिताने का उपदेश संत पोल देते हैं — '' हम आँखों-देखी बातों पर नहीं, बल्कि विश्वास पर चलते हैं ।'' [७] बाइबिल में विश्वास के बारे में यों भी देखते हैं -मानवों को ईश्वर पर पूरा भरोसा रखना चाहिए । विश्वास ईश्वर का बहुमूल्य वरदान है । मनुष्य का विश्वस ही संसार पर उनकी

---

१. संत पोल रोमियों के नाम पत्र १०:४
२. नया विधान :प्रेरित चरित १३:३९
३. संत पोल :रोमियों के नाम पत्र १०:१३
४. वही १०:९
५. नया विधान प्रेरित चरित १३:३९
६.संत पोल थेसलोनियों के नाम पहला पत्र ४:१४
७.वही कोलिन्थियों के नाम दूसरा पत्र ५:७

विजय है । मुक्ति केलिए अनिवार्य विश्वास को पाने केलिए निरंतर संघर्ष करते रहना चाहिए ।

बाइबिल में संत याकोब विश्वास और कर्म को जोडने का एक भरसक प्रयास करते हुए लिखते हैं -'' जिस तरह आत्मा के बिना शरीर निर्जीव है, उसी तरह कर्मों के अभाव में विश्वास निर्जीव है ।'' [१] मनुष्य कर्म से धार्मिक ठहराया जाता है, केवल विश्वास से नहीं । याकोब यह सिद्ध करना चाहते हैं कि अब्राहम कर्म के द्वारा ही धर्मी ठहरा । आगे वे कहते हैं कि विश्वास प्रेम के द्वारा सक्रिय हो जाता है। विश्वास हमें आध्यात्मिक दृष्टि प्रदान करता है जिसके द्वारा हम ईश्वर को जो ज्ञानेन्द्रियों के अदृश है, प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं । विश्वास हर प्रकार के सन्देह से मुक्त है । इसमें किसी प्रकार की अनिश्चयता पैदा नहीं होती । वह किसी परिस्थिति में जीवन अथवा कार्य को व्यर्थ नहीं करता । जैसा कि येशु ने कहा, यदि तुम्हारा विश्वास राई के दाने के बराबर भी हो और तुम इस पहाड से यह कहो, यहाँ से वहाँ तक हट जा, तो यह हट जायेगा, और तुम्हारे लिए कुछ भी असंभव नहीं होगा ।'' [२] पहाड से अभिप्राय यहाँ कठिनाईयों से है । विश्वास के संदर्भ में संत याकोब की यह वाणी विशेष उल्लेखनीय है -'' भाईयो ! यदि कोई यह कहता है कि मैं विश्वास करता हूँ, किन्तु उसके अनुसार आचरण नहीं करता, तो इस से क्या लाभ? क्या विश्वास ही उद्दार कर सकता है ? मान लीजिए कि किसी भाई या बहन के पास पहनने केलिए कपड़े न हों और न रोज़-रोज़ खाने की चीज़ें । यदि आप लोगों में कोई उनसे कहे -'' खुशी से जाइए, गरम-गरम कपडे पहनिए और भर पेट खाइए और उन्हें शरीर केलिए ज़रूरी चीज़ें नहीं दे, तो इससे क्या लाभ? इसी तरह कर्मों के अभाव में विश्वासपूर्ण रूप से निर्जीव होता है ।'' [३]

---

१. नया विधान संत याकोब का पत्र २:२६

२ वही संत मात्य १७:२० ३ नया विधान संत याकोब का पत्र २:१५-१७

विश्वास के संबन्ध में कबीर की वाणी एवं बाइबिल के संदेश की ओर ध्यान देने से स्पष्ट होता है कि प्रेम के अभाव में ये सब व्यर्थ है । ईश्वर पर किया जाने वाला विश्वास पडोसी से प्यार करने केलिए विवश करता है । विश्वास एवं कर्म ये दोनों एक सिक्के के दो भाग हैं । कर्म के अभाव में जितना अधिक विश्वास हमें ईश्वर पर होने पर भी वह व्यर्थ ही है । ईश्वरीय विश्वास हमें भातृप्रेम की ओर जाने में सहायता देता है । हमारे हरेक कर्मों को देखने वाले, कर्मों के अनुसार हमें पुरस्कार देने वाले ईश्वर पर यदि हम विश्वास करते हैं तो हम समाज की भलाई के कार्य ही करेगें । इस विश्वास पर बल देते हुए कर्म करने पर उसके द्वारा हमारी भलाई, समाज की प्रगति एवं लोगों में अपनत्व का भाव ही उभर आयेंगे । पूरा समाज मंगलमय हो जायेगा ।

सारग्रहण और सहिष्णुता

संसार की अधिकांश वस्तुओं में अच्छाई भी होती है और बुराई भी । कुछ अवगुणों के कारण किसी गुणवान वस्तु को त्यागना नहीं चाहिए । जहाँ पर भी जो कुछ भी अच्छाई दिखाई दे उसे अपना लेना चाहिए । मनुष्य को सारग्राही होना चाहिए । समाज के व्यक्ति व्यक्ति में निहित अच्छाई को सब लोगों के अपनाने से पूरा समाज एवं तद्वारा संपूर्ण विश्व भी मंगलयुक्त बन जाते हैं ।

सारग्राहिता कबीर की प्रमुख विशेषता है । उन्होंने अपने समय की समस्त प्रचलित धार्मिक एवं दार्शनिक विचार-धाराओं, साधनाओं और संप्रदायों के सारभूत तत्वों को अपने अनुभव के द्वारा आत्मसात् करके तथा अपनी प्रतिभा और प्रयोग के साँचे में ढाल कर एक अभिनव रूप दे दिया है, जो उनकी मौलिक देन है । सत्य के अनन्य उपासक और मिथ्या से घृणा करनेवाले होने के कारण ही उन्होंने मिथ्या

और असत्य का डटकर विरोध किया था । उनकी साधना-पद्धति तथा रचनाओं पर अनेक संप्रदायों का प्रभाव है । जहाँ पर भी उन्हें जो गुण या अच्छाई दिखाई दी, उसे उन्होंने ग्रहण किया ।

कबीर औगुन नां गहै, गुण ही कौ लै बीनि
घट घट महु कै मधुप ज्यों, परमातचांन्हि [१]

वे बताते हैं कि लोगों के अवगुण मत ग्रहण करो । उनमें विद्यमान गुणों को चुनकर ले लो । उदाहरण के रूप में वे बताते है कि जिस प्रकार मधुमक्षिका पुष्प के अन्य उपादानों को छोडकर केवल साररूप मधु को ग्रहण कर लेती है, उसी प्रकार मनुष्य भी समाज में विद्यमान साररूप को ग्रहण करे और अवशिष्ट को छोड दे ।

इस संसार में एक व्यक्ति को आगे बढता हुआ देखकर दूसरे उससे जलने लगते है और सब कहीं उसकी निन्दा करने लगते हैं । मनुष्य को इससे उत्तेजित नहीं होना चाहिए । दूसरों के अवगुणों से अपने मन में भी विकार पैदा कर लेना बुद्धिमानी नहीं है । साथ ही अपनी निन्दा को सह लेना बडा विकट काम है । कबीरदास कहते हैं कि जो व्यक्ति अपनी निन्दा को सह लेता है वही सच्चाई से युक्त मनुष्य है । धरती के समान सहिष्णुता केवल ईश्वर के भक्त में ही हो सकती है-

कुसबद तौ हरिजन सहै, दूजै सहा न जाई

समाज में होनेवाले सद्‌गुणों को अपनाने की ओर इशारा करते हुए कबीर हंस और दूध का उदाहरण देते हैं । हंस में यह विशेषता होती है कि वह अपनी चोंच से तात्विक दूध या दूध के सार को ग्रहण कर लेता है और शेष जल के अंश को छोड

देता है । इसी प्रकार सज्जन भी इस संसार से सारतत्व को ग्रहण कर अन्य व्यवहारों को छोड देता है ।

खीर रूप हरि नांउ है नीर आन व्यौहार
हंस रूप कोई साधु है, तत का छांननहार ।'' [१]

कबीर की राय में सारग्रहण केलिए मनुष्य को विवेकशील होना परमावश्यक है । बुराई को छोडने एवं भलाई को अपनाने में व्यक्ति को विवेकयुक्त हेना अनिवार्य है। इसको व्यक्त करने केलिए कबीर बताते हैं –

बसुधा बन बहु भांति है, फूलै फलै अगाध
मिष्ट सुबास कबीर गहि, विषम गहै नहिं साघ ।'' [२]

याने इस संसार में विविध प्रकार के वन हैं जो अत्यधिक फल-फूलों से लदे हुए हैं। कबीर कहते हैं कि उनमें से मीठे फलों और सुगन्धित पुष्यों को ग्रहण करना ही विवेक है । विवेकशील लोग दूषित वस्तुओं को ग्रहण नहीं करते । समाज में होने वाली सारी बातों को अपनाना उचित नहीं क्योंकि इसमें भलाई एवं बुराई निहित है। कबीर अपनी वाणी द्वारा यही बताते हैं कि जिन जिन बातों में भलाई है और जिनके द्वारा हमारी प्रगति एवं समाज में मंगल संभव है मात्र उसको ही मनुष्य को स्वीकारना है बाकी सबको छोड देना है ।

भलाई सदा ईश्वर है । मानव अपने भले कृत्य द्वारा ईश्वर की भलाई में भाग लेते हैं । पूरा विश्व भलाई से युक्त हो, यही बाइबिल का पाठ है । 'पुराना विधान'

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २२६
२. वही प. २२७

बताता है -''देखो ! आज मैं तुम लोगों के सामने आशीर्वाद तथा अभिशाप, दोनों रख रहा हूँ यदि तुम उनका पालन करोगे तो तुम्हें आशीर्वाद प्राप्त होगा ।''[१] कहने का तात्पर्य यह है कि संसार में भलाई एवं बुराई है । व्यक्ति इनमें से जिसको अपनाता है उसकी स्वतंत्रता उस व्यक्ति पर ही निर्भर है । जो विवेक से युक्त होकर सद्‌गुण अपनाता है उसमें भलाई होगी और वह आशीष पायेगा । संसार की हर वस्तु में निहित सार को ग्रहण करने में ही व्यक्ति की क्षमता निहित है । प्रवक्ता-ग्रन्थ में बताते हैं कि '' ईश्वर ने प्रारंभ में मनुष्य की सृष्टि की और उसे निर्णय करने की स्वतंत्रता प्रदान की ।'' [२] आगे भी -'' उसने तुम्हारे सामने अग्नि और जल दोनों रख दिये । हाथ बढा कर उनमें एक का चुनाव करो ।''[३] बाइबिल के प्रवक्ता ग्रन्थकार के अनुसार -'' मनुष्य के सामने जीवन और मरण, दोनों रखे हुए हैं । जिसे मनुष्य चुनता है, वही उसे मिलता है ।'' [४] यहाँ इस बात पर बल देते हैं कि भलाई-बुराई से युक्त इस दुनिया में सार ग्रहण को स्वीकारने में ही व्यक्ति की, समाज की एवं संसार की भलाई निर्भर है । नबी आमोस बताते हैं -'' बुराई की नहीं, बल्कि भलाई की खोज में लगे रहो । इस प्रकार तुम्हें जीवन प्राप्त होगा और विश्वमण्डल का प्रभु-ईश्वर तुम्हारे साथ होगा । वे यह भी आह्वान करते हैं कि ''बुराई से बैर करो, भलाई से प्रेम रखो ।''[५] विश्व में होनेवाली सारी बातों को स्वीकारना उचित नहीं बल्कि सबों के सद्‌गुणों के सार को ग्रहण करने में ही विवेक है । इसके बारे में सूक्ति-ग्रन्थ में यों बताते हैं -''सोने की अपेक्षा प्रज्ञा प्राप्त करना अच्छा है । चाँदी की अपेक्षा समझदारी अधिक वांछनीय है ।''[६] इसमें यों भी बताते हैं - ''मूर्ख हर किसी की बात पर विश्वास करता है, किन्तु समझदार सोच-विचार कर आगे बढता है ।''[७] अर्थात् समझदार व्यक्ति में सारग्रहण की शक्ति भी निहित है । इसलिए

---

१. पुराना विधान विधि-विवरण-ग्रन्थ ११:२६
२. वही प्रवक्ता ग्रन्थ १५:१४
३. वही १५:१७
४. वही १५:१८
५. पुराना विधान आमोस का ग्रन्थ ५:१४१५
६. वही सूक्ति ग्रन्थ १६:१६
७. वही १४:१४

वह अनावश्यक मोहजाल में नहीं फँस जाता । वह सत्कर्म करके सच्चे रास्ते पर चलता है । उसके द्वारा समाज में मात्र भलाई ही उद्भूत होती है।

सहिष्णुता से मतलब सबों से सहकारिता कर, सभी बातें सहन करते रहने का एक विशिष्ट गुण है । प्रस्तुत गुण से ओतप्रोत होकर व्यक्ति जब समाज में जीता है तब वह समाज कल्याण का भाग बन जाता है । समाज में सभी हालत से सम-भाव रखना आवश्यक है । व्यक्ति छोटा हो या बडा, मानव होने के नाते उससे सहिष्णुता दिखाना, यही मानव का दायित्व है । प्रस्तुत सद्गुण की प्रशंसा करते हुए और उसको स्वीकारने का आह्वान करते हुए बाइबिल यों कहता है-''आप दलबन्दी तथा मिथ्याभिमान से दूर रहें । हर व्यक्ति नम्रतापूर्वक दूसरों को अपने से श्रेष्ठ समझे । कोई केवल अपने हित का नहीं, बल्कि दूसरों के हित का भी ध्यान रखे।''[१] यहाँ बाइबिल की वाणी द्वारा स्पष्ट होता है कि दलबन्दी करना, मिथ्याभिमान करना, दूसरों को नीचा दिखाना, हित की चिन्ता न करना आदि के द्वारा व्यक्ति को व्यक्ति से और समाज से अलग रहना पडता है । वह असहिष्णुता का प्रतीक बन जाता है । उससे मित्रता रखना अपने लिए तथा समाज केलिए आपत्ति है । इन व्यक्तियों को बाइबिल यों चेतावनी देता है -'' इसका ध्यान रखे कि आपकी स्वतंत्रता दुर्बल लोगों केलिए पाप का कारण न बने ।''[२] दूसरों केलिए पाप का कारण न बनें इसी उपदेश के साथ संत पोल बताते हैं -'' यदि कोई विश्वास में दुर्बल हो, तो आप उसकी पापशंकाओं पर विवाद किये बिना उसका स्वागत करें। कोई मानता है कि उसे हर प्रकार का भोजन खाने की अनुमति है, जब कि जिसका विश्वास दुर्बल है, वह सागसब्जी ही खाता है । मांस खानेवाला शाकाहारी को तुच्छ

---

१. संत पाल फिलिप्पियों के नाम पत्र २:३-४
२ वही कोरिन्थियों के नाम पहला पत्र ८:९

समझे और शाकाहारी मांस खानेवाले को दोषी नहीं मानें क्योंकि ईश्वर ने उसे अपनाया है ।'' [१] असहिष्णुओं से संत पोल यही सवाल पूछते हैं -'' दूसरों के नौकर पर दोष लगाने वाले आप कौन होते हैं ? उसका दृढ बना रहना या पतित हो जाना उसके अपने स्वामी से संबन्ध रखता है ।'' [२] और आगे अपने अनुभव कथन यों देते हुए संत पोल सहिष्णुता का प्रतीक बन जाता है - मैं भी अपने हित का नहीं, बल्कि दूसरों के हित का ध्यान रखकर सब बातों में सब को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता हूँ, जिससे वे मुक्ति प्राप्त कर सकें ।'' [३] संत पोल की यही इच्छा है कि समाज में लोग एकचित्त, एक हृदय तथा एकमत होकर प्रेम के सूत्र में बाँध जायें तो वहाँ बडप्पन के भाव से उत्पन्न भिन्नता शासन नहीं करेगी । तभी वह समाज सहिष्णुता का प्रतीक बन जायेगा । सहिष्णुता से संबन्धित संत पोल का यह आह्वान भी विशेष उल्लेखनीय है -'' हम लोगों को जो समर्थ हैं, अपनी सुख-सुविधा का नहीं, बल्कि दुर्बलों की कमज़ोरियों का ध्यान रखना चाहिए। हम में प्रत्येक को अपने पडोसी की भलाई तथा चरित्र-निर्माण केलिए उसे प्रसन्न करने का ध्यान रखना चाहिए ।'' [४]

निष्कर्ष यह है कि सार-ग्रहण और सहिष्णुता को कबीर साहित्य एवं बाइबिल महत्व देते हैं और इस गुण को आत्मसात कर अपनी तथा समाज की भलाई केलिए जीने का सदुपदेश इन दोनों ग्रन्थों से मिलता है । अन्यथा असहिष्णुता के फलरूपी घृणा, गर्व, स्वार्थ भाव, झगडा आदि अवगुण समाज में सिर उठाकर उभर आयेंगे । फलस्वरूप वैयक्तिक एवं समाजिक जीवन में मंगल के बदले अमंगल बातें घटित हो जायेंगी ।

---

१. संत पोल रोमियों के नाम पत्र १४:१-३
२. वही १४:४
३. वही कोरिन्थियों के नाम पत्र १०:३३

कथनी और करनी का सामंजस्य

समाज में तरह तरह के लोगों को देखा जा सकता है । उनमें कुछ लोग बहुत कुछ कहते हैं उपदेश देते रहते हैं लेकिन कथनी के अनुसार कुछ भी नहीं करते। और कुछ लोग ऐसे हैं जो कुछ भी नहीं कहते बल्कि बहुत अधिक करते हैं। समाज में मुट्टी भर ऐसे लोगों को भी देखा जा सकता है जिनकी कथनी और करनी में सामंजस्य है । उनके द्वारा समाज की उन्नति संभव है । लोग उनकी प्रशंसा करते हैं और अपनी भलाई केलिए उनकी कथनी सुनकर और करनी देखकर काम करने लगते हैं ।

केवल उपदेश देने से या, डींग मारने से ही कुछ नहीं होता । या तो मनुष्य कोई बात कहे नहीं और यदि वह कहता है तो उसे अवश्य ही पूरी करनी चाहिए। करनी और कथनी का सामंजस्य कबीर का एक प्रधान उपदेश है । कबीर का अपना जीवन इस सामंजस्य का ज्वलन्त उदाहरण है । यदि मनुष्य के वचन और कर्म में सामंजस्य नहीं है तो वह अन्तकाल में भयंकर यन्त्रणा भोगता है-

जैसी मुख तैं नीकसै, तैसी चालै नाहिं
मानुख नहीं ते स्वांन गति, बांधे जमपुर जाहिं ।'' [१]

कबीर के अनुसार जिन व्यक्तियों की कथनी-करनी में सामंजस्य नहीं हैं, वे वास्तव में मनुष्य नहीं है । उनकी गति उन कुत्तों के समान है जो केवल भौंकता है किन्तु करता कुछ नहीं ।

अपने निम्न पेशे या जाति के कारण संत लोग अपने को निम्न नहीं समझते

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली प. २४२

थे । बल्कि उनका तो यह कहना था कि वह जाति धन्य है, जिसमें उच्च आचरण का भगवद्भक्त जन्म ले । व्यक्ति की महत्ता उसके कर्म और आचरण पर अवलंबित है, उसकी जाति या पेशे पर नहीं । वास्तव में कबीर के सम्मुख उच्चता और हीनता का दूसरा ही मान था । यह मान था चरित्र और आचार का । सिद्धान्त के प्रति मौखिक स्वीकृति को वे बिलकुल व्यर्थ मानते थे । उन्हें तो वही उच्च प्रतीत होता है जो कही बात को जीवन में आचरित करता है । जिसने आचरण नहीं किया उसका बनाया महल बिलकुल कच्ची नींव पर खडा है । ज़रा सा धक्का लगने पर ध्वस्त हो जायेगा -

कथनीं कथीं तौ क्या भया, जौ करनीं नां ठहराइ
कालबूत के कोट ज्यौं, देखत ही ढहि जाइ ।'' [१]

कबीर बताते हैं कि केवल कर्म के क्षेत्र में नहीं भक्ति के क्षेत्र में भी प्रस्तुत सामंजस्य का पालन करना अनिवार्य है । उदाहरण केलिए वे बताते हैं कि बहुत से लोग मन की उमंग में भक्तिपूर्ण पदों को गाते हैं और बडे आनन्द से अच्छी अच्छी साखियों का पाठ करते हैं, किन्तु वे भी उसी कथनी की सीमा में है । यदि वे परम तत्व के रहस्य को नहीं जानते और जो कुछ गाते या सुनते हैं उसे जीवन में उतारते नहीं, तो वे भी मोक्ष की ओर नहीं जा सकते, बंधन में ही पडे रहते हैं । उनका संगीत और उपदेश एक प्रकार की आत्म-प्रवंचना है । उनके द्वारा समाज-कल्याण संभव नहीं-

पद गाएं मन हरखिया, साखी कहे अनंद
जो तत नांउं न जांनियां, गल में परिया फंद ।'' [२]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २४१

भक्ति के क्षेत्र में होनेवाली एक और बात को कबीर व्यक्त करते हैं । बहुत से कीर्तन करनेवाले मुख ऊँचा करके कीर्तन करते हुए दिखलाई पडते हैं, परंतु वे कीर्तन के मर्म को समझते नहीं । उनका इस प्रकार का कीर्तन ऐसे योद्धा के समान है जिसका सिर कट गया है और केवल घड रह गया है जिसको दिखलाई कुछ नहीं पडता । वह यों ही यन्त्रवत् इधर-उधर अस्त्र चलाता रहता है —

" करता दीसै कीरतन, ऊँचा करि करि तूंड
जांनै बूझैं कछु नहीं, यों ही अंधा रूँड ।" [१]

यदि कोई उपदेश के अनुरूप आचरण भी करे, कथनी और करनी में सामंजस्य भी स्थापित करे तो वह परब्रह्म के बिलकुल निकट हो जाय, जो कि उसे क्षण-भर में पूर्णकाम (संतुष्ट) कर देगा --

जैसी मुख तैं नीकसै, तैसी चालै चा
परब्रह्म नियरा रहै, पल मैं करै निहाल ।" [२]

जो कुछ भी हम कहते हैं उसके अनुसार करने मात्र से लोग हमारी कथनी को सुनेंगे। अन्यथा हमारा सारा परिश्रम बरबाद हो जायेगा । करनी और कथनी के सामंजस्य में ही लोकमंगल निहित है । कबीर की उक्त पंक्तियों के द्वारा यह भाव स्पष्ट है कि कहने मात्र से कुछ फायदा तो नहीं । कहने के साथ ही करने में भी ज़रा ध्यान देना उचित है । समाज की उन्नति और लोगों की भलाई केलिए यह कहना है ' वह करना है ' इसी प्रकार सारे लोग कहते हैं और हाथ बांधकर, आँखें मूँदकर पूरा समय बरबाद करते हैं, समाज की उन्नति की चिन्ता भी नहीं कर

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ २४२
२. डॉ.जयदेव सिंह कबीर वाङमय खंड -३ पृ. १६६

सकते। बातें केवल कहनी में सीमित रखने वालें लोगों को समाज पसंद नहीं करते। कथनी से लोगों को अपने जाल में फँसाना उन लोगों का लक्ष्य है । वही समाज मंगलमय होगा जहाँ के लोग कहने के साथ तनतोड मेहनत भी करते हैं ।

निष्काम कर्म

सकाम और निष्काम मनुष्यों के कर्मों में अन्तर यह है कि सकाम मनुष्य वैयक्तिक स्वार्थ से अल्प क्षेत्र में कार्य करता है जबकि निष्काम मनुष्य संपूर्ण मानव समाज के हित केलिए अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र में कार्यरत होता है । प्राचीन महात्माओं ने धर्म-साधना के तीन मार्ग,ज्ञान-मार्ग, कर्म-मार्ग और भक्ति-मार्ग स्वीकार किए थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि धार्मिक साधना ज्ञान, कर्म और भक्ति के तीनों मार्गों को स्वीकार करती है और इन तीनों का समन्वय ही धर्म का चरमोत्कर्ष है ।'' [१] कर्म के संबन्ध में कबीरदास ने जो परनिन्दा से विरक्ति, सहिष्णुता, गुरु का प्रेम, कुसंग से दूर रहना, सत्संग, कर्म वचन के सामंजस्य आदि के संबन्ध में बहुत कुछ कहा है । निष्कामता की भी उन्होंने प्रशंसा की है, यहाँ तक कि उनके अनुसार भगवान की भक्ति भी निष्काम होनी चाहिए । निष्कामता संत का एक प्रधान गुण है । जब तक भक्ति सकाम है तब तक सारी साधना निष्फल है –

जब लगि भगति सकाम है, तब लगि निरफल सेव
कहै कबीर वह क्यों मिलै, निहकांमी निज देव ।'' [२]

यहाँ कबीर व्यक्त रूप में बताते हैं कि कामना से प्रभु की भक्ति करनेवालों की सब

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. ९६
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १९२

सेवा, पूजा, अर्चना व्यर्थ है । जो प्रभु, स्वरूप से निष्काम है, वह सकाम भक्ति से कैसे मिल सकता है ? 'नया विधान' में संत याकोब धन की प्राप्ति के उद्देश्य से प्रार्थना करनेवाले लोगों को देखकर पूछते हैं - आप लोगों में द्वेष और लडाई झगडा क्यों ? क्या इसका कारण यह नहीं है कि आपकी वासनाएँ आपके अन्दर लडाई करती है ? .....जब आप माँगते भी हैं, तो इसलिए नहीं पाते कि अच्छी तरह प्रार्थना नहीं करते । आप अपनी वासनाओं की तृप्ति केलिए धन की प्रार्थना करते हैं ।'' [१] यहाँ कबीरवाणी एवं बाइबिल के वचनों से स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति का उद्देश्य प्रतिफल पाना नहीं बल्कि अनगिनत भलाइयों से युक्त सर्वसंपन्न परमेश्वर के आगे आत्मार्पण करनेवाली उपासना को अपनाना है । इसी प्रकार मानव में भलाई एवं समाज में कल्याण संभव हो सकता है ।

श्रीमद्भगवद्गीता में निष्काम कर्म एवं कर्मफलत्याग पर ज़ोर दिया गया है। इसलिलए कि यहाँ स्वार्थ मिट जाता है और त्याग प्रबल हो जाता है । कहा गया है--

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन
मा कर्मफल हेतु र्भूः मा ते सङ्गोस्त्वकर्मणि

कबीर ने गीता के इसी तत्व को अपना लिया है । साथ ही कर्मफलत्याग न करने से उत्पन्न विपत्तियों की ओर भी संकेत करते हुए लोगों को उससे दूर रहने की चेतावनी दी है । वे कहते हैं -निष्कामता की प्राप्ति केलिए यह सबसे आवश्यक है कि मनुष्य अहम् का नाश कर दे । या तो व्यक्ति अहंकार ही कर ले जिससे निस्संदेह नाश होता है, या वह प्रेम कर ले जिससे हर हालत में लाभ ही लाभ है।

---

१. नया विधान संत याकोब ४:१-३

''खंभा एक गयंद दोई, क्यों करि बंधसि बारि
मांनि करै तो पिउ नहीं, पिउ तौ मांनि निवारि ।'' [१]

यहाँ कबीर कहते हैं कि यदि तू अहंभाव में रहता है तो उसके साथ प्रिय नहीं रह सकते । उदाहरण केलिए वे स्पष्ट करते हैं खम्भा एक ही है हाथी दो हैं । दोनों हाथियों - अहंभाव और प्रिय-प्रेम को एक साथ बांधना कैसे संभव है ? यदि प्रिय से भक्ति रखना है तो अहंकार को निकालना पडेगा । बाइबिल में प्रार्थना करने केलिए मन्दिर गये हुए दो मनुष्यों का दृष्टान्त है । एक फरीसी (यहूदी जाति का एक श्रेष्ठ विभाग जो अपने को मोसस द्वारा दिये गये नियमों को अच्छे ढंग से पालन करने वाले समझते है) और दूसरा नाकेदार (जो समाज की दृष्टि में बडे पापी थे)। फरीसी तन कर खडे होते हुए अपने को नाकेदार से तुलना करके कहता है - ईश्वर! मैं दूसरों की तरह लोभी, अन्यायी, व्यभिचारी नहीं हूँ और न इस नाकेदार की तरह ही। मैं सप्ताह में दो बार उपवास करता हूँ और अपनी सारी आय का दशमांश चुका देता हूँ ।'' नाकेदार कुछ दूरी पर खडा रहा । उसे स्वर्ग की ओर आँख उठाने तक का साहस नहीं हो रहा था । वह अपनी छाती पीट-पीट कर यह कह रहा था, '' ईश्वर! मुझ पापी पर दया कर । '' ईसा बताते हैं कि यही नाकेदार पापमुक्त होकर अपने घर गया । क्योंकि जो अपने को बडा मानता है, वह छोटा बनाया जायेगा, परंतु जो अपने को छोटा मानता है वह बडा बनाया जायेगा ।'' [२] यहाँ कबीर के समान बाइबिल भी बताता है कि मनुष्य अपने अहम् एवं अहंकार छोडने मात्र से ही निष्कामता की प्राप्ति कर सकता है । फरीसी ने अहंकारयुक्त प्रार्थना ईश्वर के सामने प्रस्तुत की, इसलिए वह तिरस्कृत हो गया, बल्कि नाकेदार स्वीकृत हो गया क्योंकि वह अपने अहम् को छोडकर विनीत होकर ईश्वर के सामने खडा हो गया । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल बताते हैं कि जीवन में निष्काम कर्म करना ही उचित है ।

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबहीर-ग्रन्थावली पृ. १९६ २. नया विधान संत लूक १८:९-१४

साथ ही जगत् के व्यवहार में नीति का आधार लेना आवश्यक है । विकारों को नष्ट करते हुए भगवद्भक्ति में मन को लगाना चाहिए । कबीर का मत है कि बिना कर्म किये कोई क्षण भर भी नहीं रह सकता और कर्म करनेवाला मनुष्य उन लोगों से भला है जो निठल्ले बैठे रहते हैं । कर्म करते वक्त भी जो हरि भक्ति में तल्लीन रहता है, वही धन्य है । बाइबिल बताता है -'' तुम भी ऐसे ही हो, सभी आज्ञाओं का पालन करने के बाद तुम को कहना चाहिए, हम अयोग्य सेवक भर हैं, हमने अपना कर्तव्य मात्र पूरा किया है ।'' [१] याने बाइबिल व्यक्त करता है कि निष्काम भाव से काम करने पर मन को शान्ति मिलेगी । प्रतीक्षा के साथ याने अपरों के मुँह से प्रशंसा, समाज से तालियाँ आदि की प्रतीक्षा कर कुछ करने पर शायद दुख, एवं निराशा होने की संभावना है । संतों ने शुभ कर्मों में सर्वाधिक महत्व का कर्म बताया है भक्ति। प्रामाणिकता से, ईमानदारी से परिश्रम करना ही पुण्य कर्म है —

अनेक जुग से पुन्नि करै, नहीं राम बिना ठाऊ''

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल श्रम का, कर्म का मूल्य जानते थे । उन्होंने निष्काम सेवा-भाव की भूरि-भूरि प्रशंसा की है । श्रम केवल अपनेलिए और परिवार केलिए ही नहीं वरन् परहित साधन केलिए, दूसरों के कल्याण केलिए करना ज़रूरी है । दूसरों के कल्याण केलिए किया गया कर्म ही निष्काम कर्म है । श्रम से प्राप्त किया हुआ धन ही सच्चा धन है और अधिक धन की इच्छा करना मोह है । अधिक मोह व्यक्ति और समाज की भलाई में बाधा उपस्थित करता है और यह सर्वनाश का कारण भी बन जाता है ।

अपरिग्रह

भौतिक पदार्थों का भावी आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु संचय करके रखना

परिग्रह कहलाता है । एसा संचय करना अपरिग्रह है । धन एवं पदार्थ-संचय से समाज में आर्थिक असंतुलन होता है । एक ओर अतुल संपत्ति दूसरी ओर कुछ नहीं। यही असमानता आध्यात्मिक एकता की दिशा के प्रतिकूल मनुष्य को ले जाती है । वेद का कथन है -'' हस्त समाहार सहस्र हस्त संकिर ।'' [१] अर्थात् सैकडों हाथों से इकट्ठा करो और हज़ारों हाथों से बांट दो । यहाँ धन संचयन को हतोत्साह करने का संकेत है और यदि धन संचय है तो वह दूसरों की सेवा केलिए हो ।

जिस समाज में 'व्यक्ति' की संपत्ति को महत्व दिया जाता है, वहाँ यह एक अनिवार्य आवश्यकता है कि एक दूसरे की संपत्ति धोखे से हस्तगत करने का प्रयास न हो । मानवमात्र को अधार्मिक कार्य से परिचित करवाने केलिए ही कवि पराई संपत्ति का लोभ न करने का उपदेश देते हुए इससे उत्पन्न अनेक कष्टों एवं हानियों का उल्लेख करते हैं ।

कबीरदास लोभ के अन्तर्गत केवल संपत्ति एवं धन इत्यादि समाविष्ट नहीं करते । वे तो विश्व की प्रत्येक वस्तु को इसके अन्तर्गत गिनते हैं । उनका मत है कि लोभ त्याग देने पर व्यक्ति का मन संशयमुक्त हो जाता है --

होई निसंक मगन होइ नाचै लोभ मोह भ्रम छांडै ।'' [२]

यहाँ कबीर लोगों से आह्वान करते हैं कि लोभ, मोह, भ्रम आदि अमंगलकारी बातों को अपने जीवन से पृथक कर सभी वस्तुओं से आसक्तिरहित भाव का व्यवहार करके मन को उल्लास देना चाहिए । बाइबिल के प्राचीन विधान का आह्वान भी इस

---

१. अथर्ववेद ३:२४:५

२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ३३

तथ्य से भिन्न नहीं । उसमें बताया गया है - अपने पडोसी के घर-बार कां लालच मत करो । न तो अपने पडोसी की पत्नी का, न उसके नौकर अथवा नौकरानी का, न उसके बैल अथवा गधे का -उसकी किसी भी -चीज़ का लालच मत करो ।'' [१] यहाँ 'पुराना विधान' के अनुसार लोभ, परिग्रह इच्छा आदि मानव जीवन में पाप का कारण बन जाते हैं । इसलिए बाइबिल इसी मुद्दे पर बल देता है कि -'' यदि तुम्हारा दाहिना हाथ तुम्हारे लिए पाप का कारण बनता है, तो उसे काट कर फेंक दो । अच्छा यह है कि तुम्हारे अंगों में से एक नष्ट हो जाये, किन्तु तुम्हारा सारा शरीर नरक में न जाये ।'' [२] प्रस्तुत कथन द्वारा यह बात व्यक्त होती है कि अपरिग्रह ही व्यक्ति को बुरे कर्मों एवं तज्जन्य पापों और पापकर्मों के दुष्फल से बचाता रहता है।

जीवन अमूल्य होता है । उसकी अवधि सीमित है । भगवान की इच्छा के बिना एक क्षण भी जिया नहीं जा सकता । सभी जन्मों से मानव-जन्म बढकर होता है । इस अमूल्य जीवन को मनुष्य लोभवश उडा दे, यह किसी भी हालत में उचित नहीं है । कबीर का कहना है --

प्रानीं काहे कै लोभ लागे रतन जनम खोयौ ।'' [३]

बाइबिल भी कबीर के इस विचार से समानता रखनेवाले विचार प्रस्तुत करता है । ईश्वर की दृष्टि में मनुष्य की स्थिति के बारे में बाइबिल यों बताता है -'' तुम मेरी दृष्टि में मूल्यवान हो और महत्व रखते हो ।'' [४] किन्तु लोभवश अपने बहुमूल्य जीवन को पतित करनेवाली प्रजा को देखकर ईश्वर यों कहते हैं -''मैं ने पुत्रों का

---

१. पुराना विधान निर्गमन-ग्रन्थ २०:१६-१७
२. नया विधान संत मात्यु ५:३०
३. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ३५
४. पुराना विधान एशया का ग्रन्थ ४३:४

पालन-पोषण किया, किन्तु उन्होंने मेरे विरुद्ध विद्रोह किया ।'' [१] जरूसलेम निवासियों पर विलाप करते हुए वे बताते हैं -'' तेरी चाँदी धातुमल बन गयी है, तेरी अंगूरी पानी से भी पतली हो गयी है ।'' [२] यहाँ कबीर-साहित्य एवं बाइबिल दिखाते हैं कि मनुष्य ने परिग्रह की इच्छा मन में रखकर जीने से अपने जीवन की यथार्थता को भी नष्ट कर दिया है मोह के अभिलाषी हो गये हैं ।

लोभ से पारिग्रह बढता रहता है जो जीवन को नष्ट कर देता है । इसलिए कबीर कहते हैं -'' यह नश्वर शरीर कभी भी नष्ट हो सकता है पर मनुष्य लोभ में लिप्त है और लालच तथा माया के भ्रम में भूलकर जन्म को व्यर्थ ही नष्ट कर देता है --

पापी जियरा लोभ करता है आजु कालि उठि जाइगा
लालच लागै जनम गंवाया माया भरमि भुलाइगा ।'' [३]

कबीर की राय में लोभ की लहर में फंसकर व्यक्ति बिना जल ही डूब जाता हैं । जैसे--

''आवेगी कोई लहरी लोभ की बूडैगा बिनु पांनी ।'' [४]

मज़दूर और लालची धनी की तुलना करते हुए बाइबिल में यों कहा गया हैं -'' चाहे खाना ज्यादा मिला हो या कम, मज़दूर की नींद मीठी होती है, किन्तु धनी की परितृप्ति उसे सोने नहीं देती ।'' [५] प्रवक्ता-ग्रन्थकार के अनुसार -'' लाभ के लालच में बहुत लोगों ने पाप किया और जो धनी बनना चाहता है, वह आज्ञाओं पर ध्यान

---

१. पुराना विधान एशया का ग्रन्थ १:२
२. वही १:२२
३. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ४४
४. डॉ.पारसनाथ तिवारी :कबीर-ग्रन्थावली पृ. ५४
५. पुराना विधान उपदेशक-ग्रन्थ २७:१

नहीं देता ।'' [१] ऊपर दिये गये दोनों उदाहरणों में अपरिग्रह के महत्व पर बल दिया गया है । मज़दूर मज़दूर होकर ही अपरिग्रह का पालन करता रहता है और सुख की नींद सोता रहता है । लेकिन धनिक जो परिग्रह की ओर झुका रहता है अपने धन-संचय के लोभ में, धन के नष्ट हो जाने के भय में सुख की नींद सो नहीं सकता । इस संसार में किसी का कुछ नहीं है । सब साई का दिया हुआ है । उसकी इच्छा के बिना कोई भी सुख या दुख का भागी नहीं बन सकता । जब व्यक्तियों में यह भावना बढती है तब अपरिग्रह की भावना प्रबल होती है और व्यक्ति व्यक्ति के बीच की भिन्नताएँ मिट जाती हैं जो समानता एवं लोकमंगल लाने में सहायक हो जाता है।

अपरिग्रह के साधक का ईश्वर में अटूट विश्वास होता है । उसे जो कुछ भी प्राप्त होता है उसी को ईश्वर का अनुग्रह समझकर वह संतुष्ट हो जाता है । कबीर का मत है —

संत न बांधै गाठरी, पेट समाता लेइ
आगैं पाछै हार खडा, जब मांगै तब देइ ।'' [२]

अर्थात् संत में संचय की प्रवृत्ति नहीं होती । वह केवल आवश्यकता भर पदार्थो को ग्रहण करता है अर्थात् उसमें अपरिग्रह की वृत्ति होती है। भक्त यही विश्वास करता है कि प्रभु चारों ओर विद्यमान है, सर्वव्यापी है । भक्त को जिस वस्तु की आवश्यकता होती है वह उसकी पूर्ति कर देता है । इसके संबन्ध में बाइबिल का मत भी भिन्न नहीं । इसमें यों बताते हैं -'' चिन्ता मत करो-हम क्या खायें, क्या पियें, क्या पहनें...तुम सबसे पहले ईश्वर के राज्य और उसकी धार्मिकता की खोज में लगे रहो

---

१. पुराना विधान प्रवक्ता-ग्रन्थ २७:१
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २३९

और ये सब चीजें तुम्हें यों ही मिल जायेंगी ।'' [१] यहाँ बाइबिल के प्रस्तुत वचन से स्पष्ट है कि अपरिग्रही व्यक्ति वास्तव में सभी प्रकार की भौतिक चिन्ताओं को छोडकर ईश्वर पर सब कुछ न्योछावर कर देता है और जीवन का सच्चा सुख पाता है । बाइबिल के अनुसार ईश्वर के राज्य की चिन्ता और उसकी धार्मिकता की खोज ही व्यक्ति का दायित्व है । इसलिए संसार में दिखाई पडनेवाली सारी वस्तुओं को हस्तगत करने की कोशिश किसी को नहीं करनी चाहिए । थोडी ही चीज़ों से उसे संतुष्ट रहना पडता है । अपरिग्रह का पालन करनेवाले व्यक्ति की और एक विशेषता यह है कि वह किसी दूसरे की संचित संपत्ति को देखता ही नहीं, वह तो अपने निश्चय पर ही अडिग रहता है । यह भाव प्रस्तुत पंक्तियों से स्पष्ट होता है –

मीठा खाँड मधुकरी, भंति भांति कौ नाज
दावा किसही का नहीं, बिना बिलायत राज ।'' [२]

याने भिक्षा से प्राप्त भोजन में भाँति-भाँति का अन्न रहता है । वह खाँड के समान मीठा होता है । उसमें किसी एक व्यक्ति का दावा नहीं रहता । मधूकरी से संतुष्ट ऐसा साधु बिना राज्य के ही राजा है । बाइबिल के स्तोत्रग्रन्थकार के द्वारा अपरिग्रही भक्त इश्वर से पूछता है – '' प्रभु ! मुझे क्या पाने की आशा है ? मेरी आशा तुम पर लगी है ।'' [३] यहाँ प्रस्तुत कथन व्यक्त करता है कि भक्त की इच्छा और उसकी दृष्टि अपरों की वस्तुओं पर नहीं ईश्वर के पथ पर है । भक्त की संपत्ति ईश्वर ही है । ईश्वर को पाने का लक्ष्य उसके मन में स्थिर रहता है, इसलिए दूसरों की संचित संपत्ति हडपने की चिन्ता उसको नहीं होती, इसकेलिए समय भी नहीं । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल अपरिग्रह के महत्व पर बल देते हैं । उनके अनुसार

---

१. नया विधान संत मात्यु ६:३२-३३
२. डॉ.जयदेव सिंह कबीर वाङमय खंड-३ पृ. २४२
३. पुराना विधान स्तोत्र-ग्रन्थ ३९:८

अपरिग्रह से ईश्वर में विश्वास, संतोष, निश्चिंतता आ जाती है । यदि समाज के लोग इन सारे गुणों से युक्त हों तो समाज सद्‌गुणोंवाले व्यक्तियों से भर जाएगा । ऐसे समाज में मंगल ही मंगल देखने को मिलेगा । लोग अपनी सारी बातें ईश्वर पर निर्भर होकर करेंगे । धन-संपत्तिरूपी भौतिकता के जाल से वे रक्षा पायेंगे । धन मानव पर शासन नहीं करेगा बल्कि मानव, धन को अधीन कर लेगा । इसके फलस्वरूप सच्चाई, समता, सहकारिता, प्रेम आदि सद्‌भाव सब कहीं फैलेंगे । वह लोकमंगल का कारण बन जाएगा और परिग्रह रूपी अमंगल दूर हो जायेंगे ।

गुरु का महत्व

जो सत्योपदेश से हृदय का अज्ञान रूपी अन्धकार मिटा दे, उनको गुरु कहते हैं । भारतीय धर्म-साधना में उपनिषद काल से ही गुरु का विशेष महत्व रहा है । उपनिषद शब्द में ही गुरु और शिष्य का आमने सामने बैठकर ज्ञान-प्राप्ति की ओर सकेत मिलता है । यहाँ पर गुरु को समक्ष देखते ही शिष्य का नतमस्तक होना तथा उनके चरण-स्पर्श करना अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रचलित है । उनके दर्शन को महाफलदायक तथा उनकी शिक्षा को अत्यन्त कल्याणकारी माना गया है। कारण यह कि गुरु का अर्थ केवल सामान्य अध्यापक न होकर अध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक भी है । सद्‌गुरु के प्रभाव की छाया के अभाव में जीवन के अंतिम लक्ष्य तक पहुँचना असंभव है । इसका प्रधान कारण यही है कि केवल पोथी का ज्ञान ही मनुष्य को अंतिम लक्ष्य तक नहीं पहुँचा सकता । गुरु के मुँह से प्रप्त ज्ञान के अनुभव की भी आवश्यकता होती है । शब्द-ज्ञान को अनुभूति-पथ में लाने केलिए साधक को अनेक बाधाओं तथा विघ्नों का सामना करना पडता है । ऐसे कठिन समय पर यदि उसकेलिए गुरु के रूप में प्रेरणा का स्रोत नहीं है तो संभव है कि वह हतोत्साहित होकर अपनी साधना का त्याग कर दे । इसके अतिरिक्त यह भी हो

सकता है कि वह अनुचित दिशा में कदम बढाने लगे । साधना के पथ पर निरन्तर अग्रसर करने केलिए तथा बाधाओं से बचने केलिए ही एक अनुभवी सद्‌गुरु की आवश्यकता होती है । याने व्यक्ति के सन्मार्ग पर चलने केलिए, व्यक्ति और समाज के मंगल केलिए गुरु परमावश्यक है ।

गुरु की महत्ता का एक कारण और भी है । साधक चाहे ज्ञान के मार्ग पर चलता हो, चाहे भक्ति के, उसमें विनय, सेवा-भावना, लगन आदि आवश्यक गुण होने चाहिए । जब तक साधक अपने आपको भगवान के सामने अत्यन्त विनम्र और शुद्ध रूप में प्रस्तुत नहीं करता, तब तक उसका परिश्रम व्यर्थ हो जाता है । शिष्य को गुरु के आगे भी अपने आपको इसी रूप में प्रस्तुत करना पडता है । गुरु की सेवा में अपने आपको योग्य शिष्य प्रदर्शित करने केलिए शिष्य को जो साधना करनी पडती है वह उसे गुरु के सामने ही योग्य नहीं बनाती वरन् भगवान के समीप पहुँचाने की भी साधना बन जाती है । गुरु सत्य का ज्ञाता होता है और शिष्य सत्य का अभिलाषी । दोनों जब मिलकर प्रयत्न करते हैं तो सच्चे ज्ञान का परदा खुल जाता है और समाज का मंगल हो जाता है ।

जिस व्यक्ति को सद्‌गुरु की प्राप्ति हो जाती है वह बडा भाग्यवान होता है। जब भगवान की कृपा हो तभी तो सद्‌गुरु के दर्शन होते हैं । सद्‌गुरु की प्राप्ति के पश्चात् योग्य शिष्य में ज्ञान का प्रकाश, स्वभावतः ही फूट पडता है । ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होने मात्र से सांसारिक बातों में मग्न व्यक्ति के जीवन में व्याप्त सारी अमंगलकारी बातें दूर हो जाती हैं –

ग्यान प्रकासी गुरु मिला, सो जनि बीसरि जाइ
जब कबीर गोविंद क्रिपा करी, तब गुरु मिलिया आइ ।'' [१]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १३८

यहाँ कबीर बताते हैं कि जब प्रभु ने अनुग्रह किया, तभी गुरु प्राप्त हुए । जब गुरु प्राप्त हुए तब ज्ञान प्रकाशित हो गया । मुझे अब यही प्रयत्न करना है कि गुरु के द्वारा मेरे भीतर ज्ञान प्रकाशित हुआ है, उसको मैं किसी प्रकार भुला न दूँ । बाइबिल में ईश्वर को ही ज्ञान-प्रकाशक के रूप में चित्रित किया गया है । ईश्वर की दया के बिना सही बोलने या सही समझने का कार्य संभव नहीं है । मानव कच्ची सामग्री के समान है जिसे ईश्वर अनुभवों के साँचे में ढालकर पकाता रहता है और उसे जीवन के योग्य बना देता है । असल में यही शिक्षा है, ज्ञान है और ईश्वर गुरु के रूप में माने जा सकते हैं । ईश्वरदत्त प्रज्ञा के बारे में बाइबिल यों बताता है -'' ईश्वर ने मुझे यह कृपा दी कि मैं ये ही बातें बोलूँ और उसके वरदानों का मूल्य समझूँ, क्योंकि वह प्रज्ञा का पथप्रदर्शक है और ज्ञानियों को मार्ग दिखाता है ।'' [१]

कबीर भी पहले लोक और वेद के पीछे लगे रहते थे । जनता में जो अन्धविश्वास तथा अन्य पाखण्ड वेद के नाम पर फैले हुए थे कबीर भी उन्हीं में बंधे हुए थे । किन्तु जब से उन्हें गुरु मिला तब से उन्हें ज्ञान का निर्मल दीपक मिल गया । ज्ञान के प्रकाश में ही कबीर को सत्य का ज्ञान हुआ —

पाछै लागा जाइं था, लोक वेद कै साथि
पैंडे मैं सतगुर मिला,दीपक दीया हाथि ।'' [२]

ज्ञान का प्रकाश सद्‌गुरु के अभाव में असंभव है । बाइबिल में भी इसी बात की ओर संकेत करनेवाले अनेक प्रसंग हैं । बाइबिल के एशया के ग्रन्थ में इसके बारे में यों कहा गया हैं -'' यदि तुम सन्मार्ग से दायें या बायें भटक जाओगे तो तुम पीछे से यह वाणी अपने कानों से सुनोगे -'' सच्चा मार्ग यह है, इसी पर चलते रहो।''[३]बाइबिल

---

१. पुराना विधान प्रज्ञा-ग्रन्थ ७:१५ ३. पुराना विधान :एशया का ग्रन्थ ३०:२१
२. डॉ पारसनाथ तिवारी :कबीर-ग्रन्थावली, पृ.१३७

के इस वचन में कहनेवाले की पहचान तो नहीं है, बल्कि मार्ग दर्शन अवश्य होता है । कहनेवाले के बिना सुनाई पडनेवाली यह वाणी ईश्वर के सिवा किसी और की नहीं हो सकती । गुरु का नाम तो यहाँ पर व्यक्त नहीं है फिर भी उसके अस्तित्व का अनुभन ईश्वरीय कृपा में अवश्य होता है । कबीर भी गुरु को ईश्वर का ही प्रतिरूप मानते हैं । कबीर साहित्य एवं बाइबिल इस बात का समर्थन करते हैं कि गुरु की वाणी या उपदेशों से शिष्यों को अंधविश्वास एवं अधार्मिकता के पथ से मुक्ति मिलती है ।

ज्ञान की आंधी आने पर व्यक्ति में किस प्रकार का परिवर्तन आता है उसके बारे में भी कबीर एवं बाइबिल बताते हैं । एक स्थान पर कबीर ने ज्ञान को आँधी के रूप में चित्रित किया है । ज्ञान की आँधी आने पर भ्रम का पर्दा उड जाता है जो माया की रस्सी से बाँधा गया था । वह रस्सी भी छिन्न-भिन्न हो जाती है । विषयासक्ति और बाह्याचाररूपी खम्भे जो छप्पर को संभालने केलिए रखे थे आँधी के थपेडों से ध्वस्त हो गए । फलस्वरूप तृष्णारूपी वह छप्पर धराशायी हो गया। तृष्णारूपी छप्पर के गिरने पर घर के अन्दर का कुमतिरूपी बर्तन भी टूट गया । कबीर कहते हैं कि ज्ञानरूपी सूर्य के उदय होने पर मन में दिव्य प्रकाश छा गया और अपना वास्तविक स्वरूप सामने आया —

संतों भाई आई ग्यांन की आँधी रे
भ्रम की टाटी सभै उडांनी, माया रहै न बांधी रे
दुचिते की दोइ थूँनि गिरांनी मोह बलेंडा टूटा
त्रिसनां छांनि परी घर उपरि दुरमति भांडा फूटा
आंधी पाछै जो जल बरसै तिहि तेरा जन भीनां
कहै कबीर मनि भया प्रगासा उदै भानु जब चीनां । [१]

१. डॉ.जयदेवसिंह कबीर वाङ्मय खंड -२ पृ. ३७९

यह ज्ञान का प्रकाश गुरु द्वारा ही प्राप्त होता है । गुरु की महिमा यह है कि वह शिष्यों को ज्ञान का प्रकाश देकर उनको भ्रम, माया, विषयासक्ति, बाह्याचार, तृष्णा, कुमति आदि बुराईयों से मुक्ति देता है और दिव्य प्रकाश से आवृत करता है । व्यक्ति को अमंगल से मंगल की ओर ले जाने में गुरु की क्षमता प्रशंसनीय है । कबीर ने रूपक के ज़रिए यहाँ सारी बातों का सुन्दर विश्लेषण किया है और तद्वारा ज्ञान की महत्ता और ज्ञान प्रदाता गुरु के महत्व पर संकेत किया है । बाइबिल में आँधी का रूपक नहीं मिलता, फिर भी ज्ञानप्रकाश के महत्व की बात अवश्य कही गई है । उदाहरण केलिए ज्ञान प्रप्ति के बाद व्यक्ति में आये परिवर्तन बाइबिल यों चित्रित करते हैं -'' तुम चाँदी से मढी हुई अपने द्वारा गढी गयी प्रतिमाओं को और सोने से मढी हुई अपनी देवमूर्तियों को अपवित्र मानोगे । तुम उन्हें दूषित समझकर फेंक दोगे और कहोगे उन्हें .हाँ से निकाल दो । [१] बाइबिल के समय में देवमूर्तियों की पूजा अर्चना का खूब प्रचार था । इसी नाम पर आये दिन लडाई झगडे हुआ करते थे । इसका मूल कारण अज्ञान के अलावा कुछ नहीं था । इस अज्ञान के दूर हो जाने पर ज्ञान के प्रकाश से जिस मंगल की सूचना बाइबिल के इस उद्धरण में मिलती है वह अत्यन्त मूल्यवान है । चाँदी या सोने की देवमूर्तियाँ ज्ञान प्रकाश देने में समर्थ नहीं है । मानव के अन्तर्मन में जब ज्ञान का प्रकाश या ईश्वरीय कृपा होती है तब चाँदी या सोने की बनी मूर्तियों की व्यर्थता अपने आप महसूस होने लगती है। कबीर भी मूर्तिपूजा के विरोधी थे, इसी अर्थ में ।

दोनों ग्रन्थ यह समझाते हैं कि जब ज्ञान का प्रकाश आ जाता है तो स्वार्थ, अहंकार आदि मिट जाते हैं । व्यक्ति के सामने भगवान का सच्चा स्वरूप आ जाता है । वह समाज के अन्य व्यक्तियों को भी उसी भगवान के अंश मानने लगता है और स्वयं में एवं दूसरो में भिन्नता नहीं देखता । उसके आचरण भी इसी से प्रेरित

---

१. पुराना विधान एशया का ग्रन्थ ३०:२२

रहते हैं और वह अपने साथ दूसरों का भी कल्याण करता चलता है जिससे एक स्वस्थ समाज की सृष्टि होती है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल ने इसका सशक्त समर्थन किया है । उनकी राय में शिक्षा व्यक्ति की आत्मा के विकास में मदद करती है । वह आत्मा को सत्य के मार्ग पर लाकर उसे अपने कर्तव्य का ज्ञान करा देती है । शिक्षा व्यक्ति के हृदय में समष्टि का भाव पैदा करती है । व्यक्ति छल, प्रपंच, अहंकार और स्वार्थ की भावना से ऊपर उठकर समाजिक भलाई की ओर उन्मुख होता है । शिक्षा या ज्ञान समाज की इकाइयों में एकता तथा सामंजस्य का भाव उत्पन्न करता है ।

संतों ने अज्ञान को ही समस्त पापकर्मों का मूल माना है । अज्ञान के प्रभाव से चंचल मन में कुप्रवृत्तियाँ प्रवेश कर लेती हैं । इसलिए ज्ञान के दीप से हृदय-मन्दिर को प्रकाशित करना संतों का लक्ष्य रहा है । सन्त-साहित्य में ज्ञान को ही मोक्ष का एकमात्र साधन माना गया है । इसलिए मानव को प्रत्येक कार्य ज्ञान से करना ही उचित है । इस बात से सहमत रहते हुए संत कबीर ने कहा है कि सिर पर जटा रखकर तथा शरीर पर भस्म लगाकर गुफा में निवास करने से विशेष लाभ नहीं होता । मन पर विजय प्राप्त करना ही परम आवश्यक है । इसकेलिए ज्ञान को अंकुश रूप में स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा है कि --

कबीर काइआ कजली बनु भइआ मनु कूंचरु मयमंतु
अंकसु ग्यानु रतनु है खेवटु बिरला संतु ।'' [१]

याने शरीर ही कदलीवन है, जिसमें मन मदमत्त हाथी की भाँति झूम रहा है । ज्ञान ही वह अंकुश है जिससे मनरूपी हाथी को वश में किया जा सकता है । आत्मज्ञान

---

१. डॉ.रामकुमार वर्मा संत कबीर पृ. २७१

को कबीर ने अग्नि-शिखा माना है । जिसके प्रज्वलित होने पर सांसारिक वासनाएँ जल जाती हैं । प्रस्तुत पंक्तियों के द्वारा कबीर स्मरण दिलाते हैं कि ज्ञान प्रकाश से व्यक्ति अपने हृदय में व्याप्त अज्ञानान्धकार को दूर करता है । यहाँ कबीर का मतलब अज्ञान रूपी आडंबर से दूर ज्ञान के सच्चे प्रकाश एवं तद्वारा मन की शुद्धि से है । सांसारिक जटिलताओं के साथ निरन्तर संघर्षरत मानव ज्ञान के माध्यम से ही जीवन की सार्थकता उपलब्ध कर सकता है । जीवन में ज्ञान की आवश्यकता बतलाते हुए बाइबिल में सूक्ति-ग्रन्थकार बताते हैं कि - '' चाँदी की अपेक्षा मेरी शिक्षा ग्रहण करो, परिष्कृत सोने की अपेक्षा मेरा ज्ञान स्वीकार करो क्योंकि प्रज्ञा का मूल्य मोतियों से भी बढकर और वह किसी भी वस्तु से अधिक वांछनीय है । [१] यहाँ स्पष्ट है कि ईश्वर-प्रदत्त शिक्षा एवं ज्ञान से ही मनुष्य के मन में निहित बुराई को दूर किया जा सकता है । प्रवक्ता-ग्रन्थ में प्रज्ञायुक्त व्यक्ति बताते हैं कि - '' प्रज्ञा-संपन्न व्यक्ति आज्ञाओं और धर्माचरण से घृणा नहीं करता, वह आँधी में जहाज़ की तरह हचकोले नहीं खाता ।'' [२]

अज्ञानन्धकार को दूर करने के एक साधना के रूप में ज्ञान को दिखाते हुए कबीरदास बताते हैं कि -'' संसार के लोग आँखों में अंजन लगाकर देखते - देखते पथभ्रष्ट हो गये किन्तु जिन लोगों ने ज्ञानांजन लगाकर देखा उन्हीं की आँखें आदर्श रहीं । गुरु-प्रदत्त ज्ञान-संपत्ति से शिष्य सभी रहस्यों से परिचित हो जाता है । ''[३] बाइबिल में भी ज्ञान के महत्व को स्थान स्थान पर व्यक्त किया गया है। भिन्न प्रतीकों के ज़रिए ज्ञानार्जन का उपदेश स्थान स्थान पर दिया गया है । एक उदाहरण देखिए -वास्तविक ज्ञान के अभाव के कारण गर्विष्ट एवं दुराचरण करनेवालों से बाइबिल भी यों बताते हैं -'' तुम यह कहते हो -'' मैं धनी हूँ, मैं समृद्ध हो गया,

---

१. पुराना विधान सूक्ति-ग्रन्थ ८:१०-११ ३. डॉ.रामकुमार वर्मा संत कबीर पृ. १९०
२. वही प्रवक्ता-ग्रन्थ ३३:२

मुझे किसी बात की कमी नहीं, और तुम यह नहीं समझते हो कि तुम अभागे हो, दयनीय हो, दरिद्र, अन्धे और नंगे हो । मेरी बात मानो । मुझ से आग में तपाया हुआ सोना खरीद कर धनी हो जाओ'' उजले वस्त्र खरीद कर पहन लो और अपने नंगेपन की लज्जा ढँक लो, अंजन खरीद कर आँखों पर लगाओ, जिससे तुम देख सको । [१] यहाँ दोनों ग्रन्थों में एक ही तरह के विचार प्रकट हैं कि सांसारिक मोह मायाओं से मुक्ति पाकर इस संसार में जीने केलिए हमारे ज्ञान की आंखें खोलकर उनके द्वारा देखना है । प्रज्ञा मनुष्य को प्रकाश देती है । ऊपर उठाती है । जीवन में सफलता प्रदान करती है । भगवान के निकट पहुँचाती है। इसी कारण बाइबिल में कहा गया है -'' धन्य है वह मनुष्य, जिसे प्रज्ञा मिली है, जिसने विवेक पा लिया है । उसकी प्राप्ति चाँदी की प्राप्ति से श्रेष्ठ है । सोने की अपेक्षा उससे अधिक लाभ होता है । उसका मूल्य मोतियों से भी बढकर है । तुम्हारी कोई भी अनमोल वस्तु उसकी बराबरी नहीं कर सकती । [२] बाइबिल के ये विचार औपनिषदिक विचारों से बहुत मिलते हैं। उपलिषदों में कहा गया है कि हिरण्मय पात्र से सत्य का मुख ढंका हुआ है । सत्य और धर्म के ज्ञान केलिए इस आवरण को दूर करना चाहिए ।''[३]

लोक-कल्याण में ज्ञान का महत्व विशेष उल्लेखनीय है । क्योंकि समाज में घमण्ड, अक्खडपन, दुराचरण, असत्य-कथन आदि का आविर्भाव अज्ञान से है । इसके निवारण केलिए ज्ञान परमावश्यक है । ज्ञान से ही सत्परामर्श एवं विवेक की प्राप्ति होती है । विवेकी व्यक्ति जीवन की बुराइयों से दूर सद्वृत्ति में ध्यान देता रहता है । इसलिए उसके द्वारा भलाई एवं लोक-मंगल ही आविर्भूत होते हैं । बाइबिल के सुधारकगण ज्ञान का महत्व जाने बिना अज्ञानरूपी घोर अंधकार में जीनेवाले तत्कालीन समाज के लोगों को ठीक रास्ते की ओर लाने के इच्छुक थे ।

---

१. नया विधान प्रकाशना-ग्रन्थ ३:१७-१८
२. पुराना विधान सूक्ति-ग्रन्थ ३:१३-१५
३. हिरण्मयेन पात्रेण सत्यरचापिहितं मुखम् । तत्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ।'

इन लोगों को अनेक उपदेश भी बाइबिल के द्वारा वे देते हैं । बाइबिल के उपदेशक ग्रन्थ के अनुसार -'' मूर्खता की अपेक्षा प्रज्ञा से अधिक लाभ होता है, जैसा कि अन्धकार की अपेक्षा प्रकाश से अधिक लाभ होता है ।'' [१] कबीर-साहित्य एवं बाइबिल के अनुसार मंगल सदा ईश्वर से उद्‌भूत होता है । मानव का मंगल ईस्वरीय मंगल में भाग लेने का एक अवसर है । इसलिए दोनों ग्रन्थों से यही शिक्षा मिलती है कि भलाई-बुराई की पहचान केलिए ज्ञानप्राप्ति परमावश्यक है । और ज्ञानप्राप्ति से संसार में मंगल बढता रहता है ।

ब्रह्मचर्य

भारतीय धर्म-साधना के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य-व्रत का बडा महत्व माना गया है। मन, वाणी, कर्म और इन्द्रियों पर आधिपत्य स्थापित करते हुए इन्द्रिय-सुखों से विरत रहना एवं ज्ञानदृष्टि ही ब्रह्मचर्य का मुख्य लक्ष्य है । साधक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है । इससे कष्टसहन की अतुल्य क्षमता साधक को हो जाती है। कबीर ने ब्रह्मचर्य रहित जीवन को नारकीय जीवन बताया है । उनका कहना है -

नर नारी सब नरक है जब लगि देह सकांम ।'' [२]

कबीर बताते हैं कि जब तक मन में काम की भावना बनी रहती है तब तक चाहे नर हो या नारी, वह काम उसे नरक की ओर ले जाता है । अध्यात्म से विमुख होना और काम में रत होना ही नरक की ओर जाना है । बाइबिल के अनुसार -'' जो भोगविलास का जीवन बिताती है, वह जीते हुए भी मर चुकी है ।'' [३] यहाँ दोनों ग्रन्थों के कथनों से स्पष्ट है कि निरन्तर कामवासना एवं भोग-लिप्सा में मग्न रहने

---

१. पुराना विधान उपदेशक-ग्रन्थ २:१३
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ.२३२
३. संत पोल तिमथी के नाम पत्र ५:६

से मानवजीवन का वास्तविक उद्देश्य नष्ट हो जाता है और मृत्यु के बाद मोक्षप्राप्ति के बदले मानव नरक के भागी बन जाते हैं ।

धनलिप्सा, स्त्री-संग आदि विषय विचार मात्र से ही मनुष्य को मदान्ध बना देते हैं और इनके उपयोग से तो मनुष्य मृत्यु का ग्रास बन जाता है —

एक कनक अरु कांमिनी, बिखफल किया उपाइ
देखें ही तैं बिख चढै, खाए तैं मरि जाई ।'' [१]

मन्तव्य यह है कि कनक (सोना और धतूरा) तथा कामिनी ये दोनों विष-फल के समान उत्पन्न किये गये हैं । इनके दर्शन-मात्र से विष चढ जाता है अर्थात् मोह का नशा छा जाता है और इनका स्वाद लेने से तो मनुष्य का विनाश ही हो जाता है । बाइबिल की राय भी इससे भिन्न नहीं है -'' वहाँ कहा गया है मनुष्य अपने पुत्रों की बलि चढाते, रहस्यानुष्ठान मनाते और रंगरलियों के साथ दावतें उडाते हैं । वे न तो जीवन का आदर करते हैं और न विवाह की पवित्रता का । वे षड्यंत्र रचकर एक दूसरे का वध करते हैं और व्यभिचार द्वारा एक दूसरे को दुख देते हैं । [२] इस उद्धरण के अन्तर्गत विवाह की पवित्रता एवं व्यभिचार की बात कहकर बाइबिल ने इसी तत्व पर ज़ोर दिया है । बाइबिल के अनुसार विवाह एक पवित्र बन्धन है जो मनुष्य को त्याग सिखाता है और मानसिक बल प्रदान करता है । इसके बदले इस पवित्र बन्धन को तोडकर या उसके विरुद्ध जाकर व्यभिचार और इन्द्रियसुखों में लगे रहना जीवन में विपरीत फल देता है । पहला बन्धन पवित्र एवं मंगल करनेवाला होता है और दूसरा मानव का अमंगल करता रहता है । मन, वाणी, कर्म और शरीर से जो सुख पा सकते हैं उसको त्यागकर ब्रह्मचर्यपालन में लोग बहुत पीछे पड गये

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २३३
२. पुराना विधान प्रज्ञा-ग्रन्थ १४:२३-२४

हैं -यही विचार कबीर-साहित्य एवं बाइबिल देते हैं । विषय वासना के प्रभाव से मनुष्य अन्धा हो जाता है और अनेक प्रकार के कुकृत्यों में लिप्त होकर अपनी महान् हानि कर बैठता है । समाज में इसी प्रकार विषयवासना में मग्न लोगों की संख्या जब बढ जाती है तब पूरे समाज में बुराईयों की भरमार ही देखी जा सकती है । लोकमंगल की कामना करनेवाले कबीरदास और लोकमंगल को लक्ष्य करके चलनेवाला बाइबिल लोगों से यही आह्वान करते हैं कि विषयवासना से मुक्ति पाने का मार्ग अपनाओ और आत्मशुद्धि तथा समाजकल्याण में निरत रहो । कबीर स्पष्ट करते हैं —

कनक कसौटी जैसे कसिलेइ सुनारा
सोधि सरीर भयो तन सारा ।''[१]

जिस प्रकार अग्नि में तपा देने पर स्वर्ण परिशुद्ध हेकर दमक जाता है इसी भांति ब्रह्मचर्य की साधना से शरीर परिशुद्ध करो । और बाइबिल कहता है -'' अतः भाइयो ! मैं ईश्वर की दया के नाम पर अनुरोध करता हूँ कि आप मन तथा हृदय से उसकी उपासना करें और एक जीवन्त, पवित्र तथा सुग्राह्य बलि के रूप में अपने को ईश्वर के प्रति अर्पित करें । आप इस संसार के अनुकूल न बनें, बल्कि सब कुछ नयी दृष्टि से देखें अपना और अपना स्वभाव बदल लें ।'' [२] इसमें अर्पण एवं त्याग की महत्ता की ओर संकेत है ।

कबीर ने ब्रह्मचर्यव्रत के पालन की साधक को सीख दी हैं । कबीर का ब्रह्मचर्यव्रत विषयवासना तथा कामवासना का परित्याग करना है । ब्रह्मचर्य का अर्थ है मन, वचन, कर्म से समस्त इंन्द्रियों का संयमन । मनुष्यशरीर आत्मसाक्षात्कार के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु मिला है । अधिक से अधिक मानव प्राणियों की सेवा

१. डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर-ग्रन्थावली पृ. ९४ २. पुराना विधान प्रज्ञा ग्रन्थ १४:२३-२४

करके आत्मानुभूति का आनन्द पाना ही जीवन का लक्ष्य है । हृदय को पवित्र रखना परमावश्यक है क्योंकि हृदय में भगवान का वास है । यथा -'' क्या आप लोग यह नहीं जानते कि आपका शरीर पवित्र आत्मा का मन्दिर है ? वह आपमें निवास करता है।'' [१] ब्रह्मचर्यपालन की महत्ता 'नया विधान' में यों कही गयी है -''स्त्री से संबन्ध न रखना पुरुष केलिए उत्तम है । किन्तु व्यभिचार की आशंका के कारण हर पुरुष की अपनी पत्नी हो और हर स्त्री का अपना पति ।'' [२] यों कबीरदास एवं बाइबिल ब्रह्मचर्य पर बल देते हैं । विषयवासना समाज की भलाई में बाधा उपस्थित करती है । विषयों में निरत व्यक्ति वैयक्तिक, परिवारिक एवं सामाजिक उन्नति पर ध्यान नहीं देते । उनका मन आसक्तियों से कलुषित होने के कारण फलदायक एवं मंगलप्रद बातों के बारे में नहीं सोचता । ऐसे लोगों से युक्त समाज में सकर्म की प्रतीक्षा न करना ही श्रेयस्कर है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल ने काम वासना एवं भोगविलास को अमंगल मानकर ब्रह्मचर्य को श्रेष्ठ बताया है ।

आत्मनियंत्रण

मन की चंचलता की ओर वेद से लेकर वर्तमान मनोविज्ञान तक की परंपरा में निरंतर विचार किया जा रहा है, अतः मन को वश में कर इन्द्रियों का अपनी इच्छानुसार संचालन धर्म-मार्ग का प्रमुख अंग हो जाता है । धर्म-मार्ग पर चलते हुए मानव अपना एवं लोक का मंगल कर सकता है । गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है –

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते । ''[३]

---

१. संत पोल कोरिन्थियों के नाम पहला पत्र ६:१९
२. वही ७:१-२
३ भगवदगीता ६:३५

अर्थात् मन को निःसन्देह कठिनता से ही वश में किया जा समता है । वह चंचल है किन्तु अभ्यास और वैराग्य से यह वश में आ सकता है । आत्म-संयम के मूल में राग-द्वेष-विमुखता का भाव है । जो पुरुष समस्त कामनाओं का त्याग कर निःस्पृह, ममत्वरहित और अहंकाररहित होकर व्यवहार करता है उसका जीवन श्रेष्ठ हो जाता है । जीवन में संयम की बडी आवश्यकता है संयमी व्यक्ति जीवन में सफलता प्राप्त करता है । तन स्थूल है, मन सूक्ष्म है । अतः ये दोनों व्यवहारिक संतुलन संयम द्वारा ही सहज संभव हैं ।

कबीर की वाणी में आत्म-संयम के विषय में अनेक स्थलों पर विचार किया गया है । वास्तव में आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति केलिए आत्मसंयम से श्रेष्ठ मार्ग की कल्पना नहीं हो सकती । कबीर का निश्चित मत है कि -'' आत्मनियंत्रण के अभाव में मनुष्य को किसी प्रकार की सफलता मिलना संभव नहीं। चाहे साधारण जीवन-यापन की बात हो अथवा हरि-पद-प्राप्ति की, काम, क्रोध, लोभ और मोह को त्यागने पर ही लक्ष्यप्राप्ति संभव है -

काम क्रोध लोभ मोह बिबरजित हरिपद चीन्हे सोई । [१]

संत पोल गलातियों के नाम पत्र में कहते हैं कि -'' जो लोग ईसामसीह के हैं, उन्होंने वासनाओं तथा कामनाओंसहित अपने शरीर को क्रूस पर चढा दिया है। यदि हमें पवित्रात्मा द्वारा जीवन प्राप्त हो गया है तो हम आत्मा के अनुरूप जीवन बितायें । [२]

कबीर के अनुसार काम क्रोध एवं लोभ मनुष्य को नष्ट करनेवाले हैं । ये अगाध पानी की तरह है जिसके भँवर में पडकर व्यक्ति बच नहीं सकता । कबीर

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १९ २.संत पोल गलातियों के नाम पत्र ५:२५

कहते हैं -

कांम क्रोध तिसनां के मारे बूडि मुएहु बिनु पांनी ।'' [१]

बाइबिल भी काम के दुष्फलों के बारे में कहता है । सूक्तिग्रन्थकार जानते हैं कि श्रद्धालु ही वास्तव में धार्मिक और सद्‌गुणसंपन्न बन सकता है । इसी कारण नवयुवकों को सदाचारपूर्ण जीवन अपनाने की प्रेरणा देते हुए कामी लोगों की दुरवस्था का अच्छा चित्र खींचते हैं । वहाँ कहा गया है -'' पुत्र ! क्यों तुम व्यभिचारिणी पर मोहित होते हो ? क्यों तुम परस्त्री को गले लगाते हो ? दुष्ट अपने ही कुकर्मों के जाल में फँसता है, वह अपने ही पापों के बन्धनों से बँधता है।''[२] परस्त्रीगमन अधर्म है । धर्मानुसार चलने से जीवन में मंगल होता रहता है । अधर्म अमंगल का कारण है । दुष्ट हमेशा स्वार्थ में आकर कुकर्म करता रहता है और अपने को अनजाने ही पाप में फँसाता रहता है । यदि थोडा आत्मनियंत्रण रखे तो वह इनसे अवश्य बच सकता है । बाइबिल यहाँ पर आत्मनियंत्रण के महत्व एवं तद्वारा लोक-मंगल की स्थापना की ओर संकेत करता है । कबीर सुन्दर प्रतीकात्मक ढंग से इसी तत्व को इसी प्रकार व्यक्त करते हैं —

पंच चोर गढ मंझा । गढ लूढहिं दिवसउ संझा । [३]

इस शरीररूपी दुर्ग में काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर आदि पाँच चोर घुसे हुए हैं जो रात-दिन तेरे दुर्ग को लूटते हैं अर्थात् आध्यात्मिक निधि का संचय नहीं होने देते । मनुष्य अज्ञानवश इन पांचों चोरों को अपने संग रखकर उनके संसर्ग में बहुमूल्य जन्म व्यर्थ ही खो देता है —

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ४१
२. पुराना विधान सूक्ति-ग्रन्थ ५:२०,२२
३. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ४२

पंच चोर संगि लाइ दिए हैं इन संगि जनम गंवायौ ।'' [१]

संत पोल तीतुस के नाम पत्र में यहूदियों की कल्पित कथाओं तथा सत्य का तिरस्कार करनेवाले मनुष्यों के आदेशों पर ध्याान न देने का उपदेश देते हैं । इसके अन्तर्गत शरीर से किए जानेनाले कुकर्मों की ओर संकेत किया गया है । उनको इस प्रकार गिनाया गया है - व्यभिचार, अशुद्धता, लम्पटता, मूर्तिपूजा, जादू टोना, बैर, फूट, ईर्ष्या, क्रोध, स्वार्थपरता, मनमुटाव, दलबन्दी, द्वेष, मतवालापन, रंगरलियाँ और इस प्रकार की और बातें । जो इस प्रकार का आचरण करते हैं, वे ईश्वर के राज्य के अधिकारी नहीं होंगे ।'' [२] और आगे संत पोल का आह्वान है कि-

आप लोग आत्मा की प्रेरणा के अनुसार चलेंगे, तो शरीर की वासनाओं को तृप्त नहीं करेंगे । शरीर तो आत्मा के विरुद्ध इच्छा करता है, और आत्मा शरीर के विरुद्ध। ये दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं । यदि आप आत्मा की प्रेरणा के अनुसार चलते हैं, तो वही उचित हैं । [३] कबीर का मत भी इससे भिन्न नहीं । वे बताते हैं कि जो इन्द्रियों पर नियंत्रण कर लेता है, उसका जीवन सुधर जाता है —

मन पवनांपांटौ बसि कीया, तिन या राह संवारी । [४]

कबीर साहित्य एवं बाइबिल यही समर्थन करते हैं कि इन्द्रिय मनुष्य को कुकर्म की ओर ले जाने का सतत प्रयास करते हैं । जिसने इनको वश में कर लिया वह सुख एवं शान्ति प्राप्त करेगा । ये इन्द्रिय अत्यन्त प्रबल हैं और मानव की सुख शान्ति में विष का कार्य करते हैं --

पांच कुडुंबी महा हरांमी अंम्रित मैं बिख घौलै। '' [५]

१.डॉ.पारसनाथ तिवारीःकबीर-ग्रन्थावली पृ. २२
२.संत पोल :गलातियों के नाम पत्र ५:१९-२१
३.वही ५:१६-१८
४.डॉ.पारसनाथ तिवारीःकबीर-ग्रन्थावली पृ.१०१
५. वही पृ. ५५

बाइबिल के प्रवक्ता-ग्रन्थ में बताया गया है कि -'' अपनी वासनाओं के दास मत बनो और अपनी लालसाओं पर संयम रखो । यदि तुम अपनी वासनाओं के दास बनोगे तो तुम्हारे शत्रु तुम्हारा उपहास करेंगे । [१] आत्मनियंत्रण एवं संयम सबसे ज्यादा युवकों को ही करना चाहिए क्योकि युवत्व में ही मानव-इन्द्रियों के वश में पडकर भले बुरे की सोच के बिना, करणीय अकरणीय की पहचान के बिना अधर्म करता है और नाश की ओर बढता रहता है । यौन-मनोविज्ञान से सुपरिचित विद्वानों ने बाइबिल के ज़रिए यह चेतावनी दी है -'' नवयुवकों को समझाओ कि वे सब बातों में संयम से रहे । [२] आगे कहा गया है - '' ईश्वर की कृपा सभी मनुष्यों की मुक्ति केलिए प्रकट हो गयी है । वह हमें यह शिक्षा देती है कि अधार्मिकता तथा विषयवासना त्याग कर हम इस पृथ्वी पर संयम, न्याय तथा भक्ति का जीवन बितायें। [३]

संक्षेप में कबीर एवं बाइबिल यही अनुरोध देते हैं कि आत्मनियन्त्रण से ही काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि विकार दूर हो सकते हैं । इसके अभ्यास केलिए जीवन की छोटी बातों पर सतत ध्यान रखना होगा । इन्द्रिय-जनित काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि पर विजय प्राप्त करनेवाला संत जल में कमल के सदृश निवास करता है । संसार में समस्त कार्य करता हुआ भी वह निर्लिप्त रहता है ।

है साधू संसार मैं कंवला जल मांहि
सदा सरबदा संगि रहै जल परसत नाहिं । ''[४]

कबीर ने इस दोहे में ज्ञानी धर्ममार्गीय संत का सोदाहरण परिचय प्राप्त कराया है। उसकी तुलना कमल से करते हुए उसे जल में कमल के समान सांसारिक

---

१. पुराना विधान प्रवक्ता-ग्रन्थ १८:३०-३१ ३. संत पोल तीतूस के नाम पत्र २:११-१२
२. संत पोल :तीतूस के नाम पत्र २:६ ४. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीरग्रन्तावली पृ. २०

आसक्तियों से अनछुआ दिखाया गया है ।

आत्मनियन्त्रण लोक-कल्याण का अनुपेक्षणीय माध्यम है । अपने आप पर कुछ नियन्त्रण किये बिना समाज में जीना कठिन है । आत्मसंयम से समाज के कई प्रश्नों का आसानी से परिहार किया जा सकता है । संयम के अभाव में समस्याएँ और भी गंभीर होती हैं । इसलिए कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में आत्मसंयम को बडे ही महत्व की दृष्टि से देखा गया है ।

आत्म-शुद्धि

आत्म-शुद्धि अथवा नैतिक संयम एवं सदाचरण के बल पर ही मानवसमाज की अभीष्ट सिद्धि तथा विकास होता है । आदिकाल में जब मानव सभ्यता की ज्योति से प्रकाश की ओर अग्रसर हुआ तभी उसने नैतिक संयम की ओर ध्यान देना आरंभ कर दिया । अन्तःकरण से स्वार्थ और षडयंत्र जब तक नष्ट नहीं हो जाते तब तक सारा समाज अपना नहीं बन सकता । यह चित्तशुद्धि नामस्मरण से होती है । जिसका मन अशुद्ध है उस भक्त केलिए काशीयात्रा और गंगास्नान का कोई प्रयोजन नहीं । मन मलिन हो तो बाहरी शरीर घोने से कुछ लाभ नहीं । चित्त से काम, क्रोध, मोह, लोभ मद आदि षडंयंत्र को त्यागकर उसे निर्मल और शांत बनाने से सुखानुभव प्राप्त हो जाता है । अंतःशुद्धि में परमेश्वर का निवास रहता है । पुण्यक्षेत्र में जाकर मुंडन करने से पाप नहीं नष्ट होता और पवित्र जल में नहाने से पुण्य नहीं मिलता ।

आत्मा की शुद्धता लोककल्याण केलिए अनिवार्य है । जिसका मन शुद्ध हो उस व्यक्ति पर मानव विश्वास करते हैं । विश्वास द्वारा आपसी सहकारिता एवं स्नेह

बढते हैं । जहाँ स्नेह एवं सहयोग है वहाँ भलाई ही संभव है । इसलिए कबीर-साहित्य एवं बाइबिल मानव की आत्मशुद्धि पर बल देते हैं । कबीर असंयमित जीवन के परित्याग करने तथा संयमित जीवन के ग्रहण करने को आत्मसाक्षात्कार के हेतु परमावश्यक बताते हैं । कबीर के शब्दों में —

''पहिलै बुरा कमाई करि, बांधि बिख की पोट
कोटि करम किल पलक मैं, जब आया हरि की ओट । [१]

अर्थात् पहले अनेक पाप-कर्म करके जीव ने जो विष की गठरी बाँध रखी है, प्रभु की शरण में जाने पर वह उसको क्षण भर में फेंक कर शुद्ध हो जाता है, चाहे वे कर्म करोडों की संख्या में क्यों न हो । बाइबिल में कही बात भी इससे भिन्न नहीं है - '' प्रभु कहता है तुम्हारे पाप सिंदूर की तरह लाल क्यों न हों, वे हिम की तरह उज्वल हो जायेंगे, वे किरमिज की तरह मटमैले क्यों न हों, वे ऊन की तरह श्वेत हो जायेंगे। [२]

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल ने आत्मसंयम के हेतु मन के संयम की ओर अधिक ध्यान देने को कहा है क्योंकि मन ही समस्त उपद्रवों की जड है, विष की गांठ है और अपकर्ष का आधार है । यह मन हिरण के समान है । जैसे हिरण उछलता-कूदता इधर-उधर फिरता है, वैसे ही मन चंचल रहता है । शरीर की शुद्धता, इन्द्रियों की शुद्धता एवं मन की पवित्रता ही साक्षात्कार में सहायक हो सकती हैं । आत्मशुद्धि एवं हृदय की पवित्रता केलिए साधक को सभी विध्वंसात्मक दुर्गुणों यथा - असत्य, चोरी, धनलिप्सा, अनाचार, हिंसा, कामवासना, अभिमान, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, चापलूसी, कुसंग, पाखंड, कपट, स्वार्थपरता, भय, अविश्वास, अधीरता आदि का परित्याग करना है तथा सृजनात्मक सद्‌गुणों में विश्वास,निष्ठा,

---

१.डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली प. १५० २. पराना विधान एशया का ग्रन्थ १:१८

सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, त्याग, क्षमा, दया, परोपकार, सेवा, समभाव, विनयशीलता, सदाचरण, सत्संग, संतोष, कथनी-करनी का एकीकरण, पवित्रता, सादा जीवन आदि को अपनाना है ।

कबीर ने अनुभव किया है कि विषय-वासना के त्याग एवं मन की निर्मलता के फलस्वरूप ईश्वर स्वयं ही प्राप्त हो जाते हैं। कबीर मानते हैं कि सच्चा मन होने पर 'साहिब' निकट रहता है परंतु मन में यदि झूठ है तो वह ऐसे व्यक्ति से दूर हो जाता है —

सांचै मन तैं साहिब नेरै झूठे मन तै भागा । [१]

बाइबिल में इसके बारे में यो बताते हैं -''धन्य हैं, वे जिनका हृदय निर्मल है ! वे ईश्वर के दर्शन करेंगे ।'' [२] संत पोल के इब्रानियों के नाम पत्र में हृदय शुद्धि के बारे में यों बताया गया है -'' हम अपने हृदय को पाप के दोष से मुक्त कर और अपने शरीर को स्वच्छ जल से धोकर निष्कपट हृदय से तथा परिपूर्ण विश्वास के साथ ईश्वर के पास चलें । [३] आगे भी कबीर बताते हैं कि मन की निर्मलता ही तो सदाचार का मूल आधार हैं, जिसका मन निर्मल है उसे तो हरि स्वयं ढूँढते फिरतेहैं-

कबीर मन निरमल भया जैसा गंगा नीर
लब पांछै लागा हरि फिरै कहत कबीर कबीर । [४]

बाइबिल भी यही कहता है -'' जिसे हृदय की पवित्रता प्रिय है और जिसकी बातों में मधुरता है उसे राजा अपना मित्र बनाता है ।'' [५] यहाँ राजा से तात्पर्य ईश्वर से

१.डॉ.पारसनाथ तिवारी :कबीर-ग्रन्थावली पृ.११० ४.पारसनाथ तिवारीःकबीर-ग्रन्थावली पृ.२०७
२. नया विधान संत मात्यु ५:८ ५. पुराना विधान सूक्ति-ग्रन्थ २२:११
३. नई इब्रानियों के नाम पत्र १०:२२

है । यहाँ भी व्यक्त होता है कि अपनी आत्मा को शुद्ध रखने वालों के साथ ईश्वर बसते हैं याने शुद्धात्मा युक्त भक्त ईश्वर के बहुत निकट ही रहता है ।

संक्षेप में -''जो शुद्ध हैं, उनकेलिए सब कुछ शुद्ध है । किन्तु जो दूषित और अविश्वासी हैं, उनकेलिए कुछ भी शुद्ध नहीं है,क्योंकि उनका मन और अन्तःकरण, दोनों दूषित हैं । वे ईश्वर को जानने का दावा तो करते हैं, किन्तु अपने कर्मों द्वारा उसे अस्वीकार करते हैं । वे घृणित अवज्ञाकारी और किसी भी काम के नितान्त अयोग्य हैं ।'' [१] याने कबीर एवं बाइबिल इसमें एकमत हैं कि जिसमें आत्मशुद्धि न हो उस के साथ न ईश्वर बसता है न मनुश्य । दोनों ग्रन्थों में बताया गया है कि साधक केलिए परमोन्नत गुण भी आत्मशुद्धि है । वे सदाचरण एवं मन की पवित्रता पर भी विशेष बल देते हैं । निर्मल मनयुक्त व्यक्ति के कर्म एवं वचन भी निर्मल होंगे। इसी प्रकार समाज के सारे व्यक्ति मन की शुद्धि एवं सदाचार पर बल देंगे तो पूरा समाज भी शुद्ध होगा । ऐसे समाज में मंगल के सिवा और कुछ नहीं होगा ।

विनयशीलता

मानव जीवन में विनयशीलता का प्रमुख स्थान है । विनम्रता भक्त का प्रमुख गुण है, जो उसे महान् बनाता है । समाज में विनम्रता का प्रथम स्थान है । समाज का हर एक व्यक्ति जब विनम्र रहता है तब समाज से बुराई सदा केलिए नष्ट हो जाती है और समाज भलाई से भरपूर हो जाता है । आदर्श और महान बनने केलिए इस गुण की अत्यन्त आवश्यकता है । फलों के भार से जब वृक्ष लदता है तब नीचे झुकता है । विद्याविभूषित साधु भी नम्र होते हैं । विनयशीलता मनुष्य को अपनी भूल को सुधारने का अवसर प्रदान करती है और साधक अपनी भूलों का सुधार करता हुआ निरन्तर साधना के मार्ग पर अग्रसर होता रहता है ।

विद्या का फल है विनय । ' विद्या ददाति विनयम् ' की लोकोक्ति के अनुसार विद्वानों का एक प्रमुख लक्षण है विनम्रता । धर्मपालन सब मनुष्यों का आभूषण है। सब आभूषणों में श्रेष्ठ विनयसहित विद्या है । कबीरकालीन समाज में इस गुण का अभाव था । '' मैं समाज का सेवक हूँ इस वृत्ति की कमी थी । पूरा समाज स्वार्थलोलुपता और कामांधता के पीछे था । विनम्र भाव से सबके साथ रहना ही अपने और समाज केलिए हितकर है । विनम्रता और समाज के साथ सद्व्यवहार ही जीवन की सबसे बडी साधना है । पर कबीर के समाज में सबसे बडी साधना स्वार्थ की थी । कोई भेष बदलकर भिक्षा माँगता था तो कोई सुरपान में आनन्द लेता था । यद्यपि समाज के ये विवध रूप पाखण्डपूर्ण बाह्याचार थे पर सबके पीछे स्वार्थ था । पंडितों के पुराण पढने में भी स्वार्थ था और योगियों के योग-ध्यान में भी गर्व था । कबीर के समाज में जितने क्रिया-व्यापार चलते थे सबमें स्वार्थ की गति थी। इसी स्वार्थ के आकर्षण में समाज का सारा व्यक्तित्व बँधा हुआ था । कबीर इन स्वार्थी भावों से सबको मुक्त करना चाहते थे । वे यह नहीं चाहते थे कि मनुष्य गुड में चिपकी मक्खी की तरह उसी में उलझ कर मर जाय । बल्कि वे मानव को सत्कर्म की ओर प्रेरित करना चाहते थे ।

कबीर विनयशीलता की प्रतिमूर्ति थे । सच्चे भक्त की भाँति उन्होंने परमात्मा के महत्व और अपनी हीनता का अनुभव किया है । कबीर के अनुसार व्यक्ति को इतना विनम्र हो जाना चाहिए कि उसमें अहंकार का लेशमात्र भी अंश न हो । कबीर के शब्दों में –

कबीर कूता रांम का, मुतिया मेरा नांउं
गले रांम की जेवरी, जित खैचै तित जाउं ।'' [१]

---

१ डॉ पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ ९६०

कबीर तो अपने को समाज का दास समझते थे । कबीर एक महान भक्त के रूप में अपने को भगवान का पालतू कुत्ता मानते हैं जो उनकी भगवान के प्रति निष्ठा और विनम्रता का प्रतीक है । यह विनम्रता समाज के प्रति भी थी, उनकी विनय यहाँ तक पहुँची है कि वे अपने को रास्ते का रोडा मानते हैं जो भांति भांति की ठोकरें खाकर अपने स्वरूप को संवारना चाहते हैं --

रोडा होइ रहु बाट का, तजि पाखंड अभिमांन
ऐसा जे जन होइ रहै, ताहि मिलै भगवान ।'' [१]

बाइबिल में चित्रित ईसा की माँ मरियम विनयभाव का मूर्त रूप है । ईसा के जन्म का सन्देश स्वर्गदूत गब्रिएल से पाने के बाद कुँवारी मरियम ने कहा -'' मैं प्रभु की दासी हूँ । आपका कथन मुझ में पूरा हो जाये ।'' [२] प्रभु ईसा के चरणों पर गिरकर अपनी विनयभावना दिखाते हुए सिमोन नामक एक व्यक्ति ने कहा -'' प्रभु मेरे पास से चले जाइए । मैं तो पापी मनुष्य हूँ ।'' [३] कबीर बताते हैं कि जो व्यक्ति पाखंड और अभिमान छोडकर मार्ग में पडे कंकड के टुकडे के समान दीन और तुच्छ हो जाता है याने निरहंकार और विनम्र हो जाता है उसे भगवान की प्राप्ति होती है। आगे जोब के ग्रन्थ में कहा गया है -'' ईश्वर घमण्डी को नीचे दिखाता है और दीन हीन की रक्षा करता है ।'' [४] यहाँ कबीर एवं बाइबिल का यही कथन हैं कि अहंकार एवं विनयरहित व्यक्ति ईश्वर से बहुत दूर है । आगे कबीर बताते हैं कि बाट का रोडा बनने से क्या लाभ जो पथिक को दुख दे सकता है । हरिजन को चाहिए कि वह पृथ्वी की धूल ही बने ।

---

१. डॉ.पारसनाथ तिन्वारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २०७
२. नया विधान संत लूक १:३८
३. वही ५:८
४. पुराना विधान जोब का ग्रन्थ २२:२९

रोडा भया तो क्या भया,पंथी कौं दुख देइ
हरिजन ऐसा चाहिए, ज्यौं धरनीं की खेह ।'' [१]

आगे वे धूल से भी विनयशील और निरूपद्रवकारी बनना चाहते हैं और कहते हैं कि धूल सबकी ठोकरें खाती है । तो फिर पानी जैसा होना चाहिए जो सबके दोष धोने में समर्थ हो सके । परंतु पानी भी तो गर्म और सर्द होकर सुख दुख देता है-

पानीं भया तौ क्या भया, ताता सीरा होइ
हरिजन ऐसा चाहिए, जैसा हरि ही होइ ।'' [२]

इस प्रकार कबीर के अनुसार विनयशीलता आत्मसाक्षात्कार में समर्थ होती है । ऊपर की पंक्तियों द्वारा कबीर स्पष्ट करते हैं कि वे इतना अधिक विनयी होना चाहते हैं जैसा कि रोडा, पर रास्ते का रोडा पथिकों को दुख देता है। इसलिए वे उससे भी अधिक विनीत धूल बनना चाहते हैं बल्कि वहाँ भी कबीर देखते हैं कि धूल लोगों को मलिन कर्ने वाली वस्तु है सो वह उससे भी सरल रूप,पानी के समान विनयशील बनना चाहते हैं । इन सब प्रतीकों के वर्णन में कबीर का मत यह है कि लोगों को विनयपूर्वक जीवन बिताना ही उचित है उसमें ही भलाई एवं मंगल निहित है । बाइबिल में ईसामसीहा के दिये जानेवाले उपदेश भी इससे मिलते जुलते रहते हैं। ईसा का आह्वान यह है कि -'' मेरा जुआ अपने ऊपर ले लो और मुझ से सीखो। मैं स्वभाव से नम्र और विनीत हूँ । [३] आगे वे बताते हैं -''तुम जानते हो कि संसार के अधिपति अपनी प्रजा पर निरंकुश शासन करते हैं और सत्ताधारी लोगों पर अधिकार जताते हैं । तुम में ऐसी बात नहीं होगी । जो तुम लोगों में बडा होना चाहते हो, वह तुम्हारा सेवक बने और जो तुम में प्रधान होना चाहते हो वह

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर ग्रन्थावली पृ. २०७ ३. नया विधान संत मात्यु ११:२९

तुम्हारा दास बने, क्योंकि मानवपुत्र भी अपनी सेवा कराने नहीं बल्कि सेवा करने तथा बहुतों के उद्धार केलिए अपने प्राण देने को आया है । [१] ईसा यही आह्वान देते हैं कि मनुष्य को अपना कर्तव्य विनीतभाव से करना ही उचित है । दूसरों केलिए उपकार करने के बाद भी यही भाव रखना उचित है -'' हम अयोग्य सेवक भर हैं, हमने अपना कर्तव्य मात्र पूरा किया है । [२]

संत पोल की बात भी बिलकुल विचारणीय है । नया विधान में वे बताते हैं -''आप पूर्ण रूप से विनम्र, सौम्य तथा सहनशील बनें, प्रेम से एक दूसरे को सहन करें । इसके साथ वे स्मरण दिलाते हैं दूसरों को श्रेष्ठ समझना भी विनीतों की एक विशेषता है -आप दलबन्दी और मिथ्याभिमान से दूर रहें । हर व्यक्ति नम्रता पूर्वक दूसरों को अपने से श्रेष्ठ समझें । कोई केवल अपने हित का नहीं, बल्कि दूसरों के हित का भी ध्यान रखे । [३] और बाइबिल में संत पोल ने अपने पत्रों द्वारा मसीह की विनम्रता का अनुसरण करने का उपदेश दिया है- ''आप लोग अपने मनोभावों को ईसामसीह के मनोभावों के अनुसार बना ले। वह वास्तव में ईश्वर थे और उनको पूरा अधिकार था कि वह ईश्वर की बराबरी करें । फिर भी उन्होंने दास का रूप धारण कर तथा मनुष्यों के समान बनकर अपने को दीन-हीन बना लिया और उन्होंने मनुष्य का रूप धारण करने के बाद मरण तक, हाँ क्रूस मरण तक, आज्ञाकारी बन कर अपने को और भी दीन बना लिया ।'' [४] कलोसियों के नाम पत्र द्वारा संत पोल बताते हैं कि ईश्वर की चुनी हुई प्रिय प्रजा होने के नाते -'' आप लोगों को अनुकम्पा, सहानुभूति, विनम्रता, कोमलता और सहनशीलता धारण करनी चाहिए ।'' [५] संत याकोब याद दिलाते हैं कि -'' जो भाई दरिद्र है, वह ईश्वर द्वारा

---

१. नया विधान संत मात्यु २०:२५-२७
२. वही संत लूक १७:१०
३. संत पोल एफेसियों के नाम पत्र ४:२
४. संत पोल फिलिप्पियों के नाम पत्र २;३-४
५. वही कोलेसियों के नाम पत्र ३-१२

प्रदत्त अपनी श्रेष्ठता पर गौरव करे । जो धनी है, वह अपनी हीनता पर गौरव करेः क्योंकि वह घास के फूल की तरह नष्ट हो जायेगा ।''[१] संत पत्रोस बताते हैं -'' आप सब-के-सब नम्रतापूर्वक एक दूसरे की सेवा करें, क्योंकि ईश्वर घमण्डियों का विरोध करते हैं किन्तु विनम्र लोगों पर दया करते हैं । आप शक्तिशाली ईश्वर के सामने विनम्र बने रहें, जिससे वह आप को उपयुक्त समय में ऊपर उठाये ।''[२] इन सारे उद्धरणों के ज़रिए कबीर एवं बाइबिल यही सन्देश हमें देते हैं कि मनुष्य अपने जीवन में जितना विनीत बन सके उतना बने क्योंकि घमण्ड से पाप की वृद्धि ही संभव है बल्कि विनयभाव से भलाई की भरमार ।

कबीर ने समाज की नब्ज़ पहचानी थी । अभिमानी, अहंकारी लोगों से सामान्य जनता अप्रसन्न और रुष्ट थी । घमंड और पाखण्डी वृत्ति का बोलबाला था। नम्रता, शालीनता का अंश भी न था । जो नम्र और विनीत थे उन्हें लोग तुरंत अपने हृदय में समा लेते थे । कबीर के मत में सत्संग समूह अहंकार से दूर था । वे लोगों से विनम्रता का व्यवहार करते थे । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल की दास्यभावना में पूर्ण समर्पण है । उनके अनुसार भगवान इस विश्व के कण-कण में भरा हुआ है । इसलिए वे समाज के हर व्यक्ति, हर प्राणि में ईश्वर के दर्शन कर लेते हैं। ईश्वर-चैतन्य से कोई भी वस्तु अथवा स्थान रिक्त नहीं है । इसलिए दोनों ग्रन्थ सामाजिक जीवन में नीति, सदाचार और नम्रता के साथ सबों से समान व्यवहार करने पर बल देते हैं । समाज में जो भेद-भाव है उसका त्याग करके परस्पर सहानुभूति, नम्रता एवं प्रेम का व्यवहार करें, तो समाज एवं विश्व आनन्द से भर जायेंगे । व्यक्ति का ईश्वर का कृपापात्र बनने केलिए यही चाहिए कि वह जितना अधिक बडा हो, उतने ही अधिक नम्र बनना सीखे ।[३] विनम्र एवं

---

१. नया वाधान संत याकोब का पत्र १:९-१० ३. पुराना विधान प्रवक्ता ग्रन्थ ३:२०-२१
२. वही संत पत्रोस का पहला पत्र ५:५-६

श्रद्धा से ईश्वर वाणी सुनने वालों पर ईश्वर की कृपा सदा रहेगी । ''[१] कुलमिलाकर विनम्रता लोकमंगल का एक अनुपेक्षणीय अंग है । विनयी और नम्र लोगों से संसार में शान्ति का वातावरण उत्पन्न होता है । समाज के और लोग इनसे प्रेरणा पाकर जीने लगें तो समाज में मंगल ही मंगल रहेगा । सुसमाचार के अनुसार -'' जो अपने को बडा मानता है, वह छोटा बनाया जायेगा, परंतु जो अपने को छोटा मानता है वह बडा बनाया जायेगा । [२] इसमें संदेह नहीं कि विनयभाव ही आन्तरिक संपन्नता का परिचायक है ।

समर्पणभाव

अपने को पापी तथा परमात्मा को पतितपावन एवं क्षमाशील समझकर उनके चरणो में मानसिक वाचिक तथा कायिक सभी दृष्टियों से अपने को सौंप देना ही समर्पणभाव है । ईश्वर पर अटूट विश्वास तथा समर्पण की भावना ने निर्गुण कवियों के जीवन को पवित्र बनाया था । इससे उनके अवगुणों का निराकरण हो गया था। ईश्वर-विश्वस एवं पूर्ण आत्म-समर्पण से सांसारिक मोहमाया से छुटकारा मिल जाता है । संसार के मिथ्यात्व की भावना व्यक्ति को सामाजिक पवित्रता की ओर प्रेरित करती है । जब मनुष्य प्रत्येक वस्तु पर ईश्वर का अधिकार समझ लेता है, तो फिर समस्याएँ और कठिनाइयाँ रह ही नहीं जातीं । कबीर ईश्वर से कहते हैं-

मेरा मुझ में किछु नहीं, जो किछु है सो तेरा
तेरा तुझकौ सौंपता, क्या लागै मेरा । [३]

याने, '' हे प्रभु ! मेरे में अपना कुछ भी नहीं है, जो कुछ भी है, वह सब तेरा ही

---

१. पुराना विधान एशया का ग्रन्थ ६६:२
२. नया विधान संत लूक १८:१४

है । इससे बढकर विनम्रता क्या हो सकती है । मानव का ममत्व का भाव सर्वथा भ्रान्त है । जब सब कुछ तेरा ही है, तब तेरी वस्तु को तुझे समर्पित करने में मेरा क्या लगता है ?

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पयेत्।

विश्व में दिखाई पडने वाली सारी वस्तुओं के अधिकारी ईश्वर ही हैं-बाइबिल में यही भाव दृष्टव्य है -'' प्रभु ! तू सारी सृष्टि की रक्षा करता है, क्योंकि वह तेरी है।''[१] भौतिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में, मनुष्य को अपनी तुच्छता एवं निस्सहायता को समझकर अपने आपको पूर्णरूपेण ईश्वर पर सौंपना आवश्यक है । आत्मरक्षा, मात्र अपनी क्षमता द्वारा संभव नहीं । ईश्वर की अपार शक्ति एवं तहे दिल से उन पर विश्वास रखने पर ही समर्पण की भावना उभर आती है । ईश्वर के आगे किया जानेवाला आत्मसमर्पण ही आध्यात्मिक जीवन का केन्द्र है -ये सारी बातें कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में समान रूप से देखी जा सकती हैं । उनके अनुसार ईश्वर ही सबकुछ है । मनुष्य की शक्ति का केन्द्र ही ईश्वर है । जब जब मनुष्य ईश्वररूपी शक्ति को अपने अन्दर रखकर काम में निरत होते रहते हैं तब तब वे बलवान बन जाते हैं । ये दोनों ग्रन्थ इस बात से सहमत हैं कि उस शक्तिमान के आगे आश्रय भाव से खडा रहना ही समर्पणभाव है । ईश्वर के आगे अपने को समर्पित कर भक्त बताता है -'' मेरी आँखें प्रभु पर लगी हुई हैं क्योंकि वह मेरे पैरों को जाल से छुडाता है ।[२] कबीर भी ईश्वर की शक्ति पर भरोसा रखकर बताते हैं –

कबीर तूँ काहै डरै, सिर परि हरि का हाथ
हस्ति चढि नहिं डोलिए, कूकुर भुसैं जु लाख ।''[३]

---

१. पुराना विधान प्रज्ञा-ग्रन्थ ११:२६
२. वही स्तोत्र-ग्रन्थ २५:१५
३. डॉ.जयदेवसिंहः कबीरवाङमय खंड -३ पृ. २४

अर्थात् हे जीव ! प्रभु का संरक्षक हाथ तेरे ऊपर है, फिर तू क्यों भयभीत होता है? जब तू हाथी पर सवार हो गया, तब क्यों विचलित होता है ? तब तो तू सुरक्षित है । तेरे पीछे चाहे लाख कुत्ते भूँकें, तुझे भय नहीं करना चाहिए । यहाँ कबीरसाहित्य एवं बाइबिल दिखाते हैं कि प्रभु के आगे संपूर्ण समर्पणभाव होने पर भक्त ऐसी सुरक्षित स्थिति में रहता है कि उसे संसार में कोई हानि नहीं पहुँचा सकता । याने संपूर्ण समर्पणभाव से व्यक्ति में अटूट विश्वास, पवित्रता, सांसारिक मोह-माया से मुक्ति,संसार की नश्वरता का ज्ञान, समस्या एवं कठिनाइयों से मुक्ति आदि आते हैं। व्यक्तिसुधार एवं उससे विश्वकल्याण होता है ।

मधुर भाषण

वचन या वाणी की शक्ति अपार है । इसलिए कहा गया है ''जिह्वाग्रे वर्तते लक्ष्मी जिह्वाग्रे मित्र बान्धवाः।'' सद्वचन दुर्बल हाथों को शक्ति देने, शक्तिहीन पैरों को सहायता देने फटे हृदयों को उत्तेजना देने, घावों को सुखाने, आँसुओं को पोंछने की क्षमता रखता है । इसलिए मधुर भाषण सभी प्रकार के पुरस्कारों से उन्नत एवं मूल्ययुक्त किसी भी वस्तु से श्रेष्ठ है । संत कबीर एवं बाइबिल कोमल एवं मधुर वाणी को तो धर्म का अंग मानते हैं । उनकी राय में कटु-वचनों का आघात अत्यन्त तीव्र होता है, अतः मधुर, कोमल शब्दावली का प्रयोग ही श्रेष्ठ मार्ग है । वे बताते हैं --

ऐसी बांनी बोलिए, मन का आपा खोइ
अपनां तन सीतल करै, औरों कौ सुख होइ ।'' [१]

यहाँ कबीर का आह्वान है कि अपने मन का अपनत्व और अहंकार छोडकर ऐसी

---

१ डॉ पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली प १९५

मधुर वाणी बोलना चाहिए जिससे कहनेवाले को शीतलता प्राप्त होती है और सुनने वालों को सुख भी मिलता है । याने एक साथ दोनों की भलाई के लिए मधुर-भाषण सहायक है । बाइबिल भी इसके बारे में कहता हैं -'' धर्मी के मुख से प्रज्ञा के शब्द निकलते हैं, किन्तु कपटी जिह्वा काट दी जायेगी । धर्मी के होंठ प्रिय बातें करते हैं, किन्तु दुष्ट के मुख से कुटिल बातें निकलती हैं ।'' [१] यहाँ दोनों ग्रन्थ स्थापित करते हैं कि व्यक्ति की वाणी उसके व्यक्तित्व पर निर्भर है । यदि वह श्रेष्ठ है तो श्रेष्ठ एवं फलदायक वचन के द्वारा वह भाषण करता है । कपटी व्यक्तियों के मुख से कपटता का भाव ही निकलता है ।

समाजकल्याण केलिए वाणी-नियंत्रण की भी ज़रूरत है । कबीर का मत है कि सज्जन व्यक्ति को कटु-वचनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए । मधुर वचनों का प्रयोग साधु के लक्षणों में एक प्रमुख लक्षण है ।

''साधु भया तौ क्या भया, बौलै नाहिं बिचारि
हतै पराई आतमां, जीभ बांधि तखारि ।'' [२]

यहाँ कबीर स्पष्ट करते हैं कि कटु वचन तलवार के समान घाव करते हैं । मनुष्य की वाणी उसके आन्तरिक भावों की द्योतक है । अतः सज्जन व्यक्ति की वाणी सदा मधुर और शुभ होगी । कटुवचनों का प्रयोग कठोर और असज्जन व्यक्ति ही करेगा। बाइबिल के स्तोत्र-ग्रन्थ में बताते हैं -'' दुष्टों के षडयन्त्र से, कुकर्मियों के अत्याचार से मेरी रक्षा कर । उन्होंने अपनी जिह्वा को तलवार की तरह तेज किया और अपने विषैले शब्दों का निशाना बाण की तरह बाँधा है ।'' [३] नबी जरेमिया अत्याचारियों के बारे में यों बताते हैं कि '' उनकी जिह्वा घातक बाज-जैसी है वे कपटपूर्ण बातें

---

१. पुराना विधान सूक्ति-ग्रन्थ १०:३१-३२ ३. पुराना विधान स्तोत्र-ग्रन्थ ६४:३४
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १८७

करते हैं । हर व्यक्ति अपने पडोसी से शान्ति की बात करता है, किन्तु अपने हृदय में उसकेलिए जाल रचता है ।'' [१] लेकिन धर्मी व्यक्ति की वाणी के बारे में भी बाइबिल बताता है -''धर्मी की जिह्वा शुद्ध चाँदी है ।'' [२] मधुर वचन एवं कटु भाषण की तुलना एवं बुद्धिमान एवं बुद्धिहीन की तुलना बाइबिल यों करता है- ''कोमल शब्द क्रोध को शान्त करता है किन्तु कटुवचन क्रोध भडकाता है। बुद्धिमान की वाणी ज्ञान बखानती है, किन्तु बुद्धिहीन के मुख से मूर्खता प्रकट होती है।''[३] ''सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् '' यही प्रमाण है । मधुर भाषण की महत्ता की ओर ईशारा करने के साथ साथ व्यर्थ भाषण की बुराई की ओर भी कबीरदास अपना मत प्रकट करते हैं । उनकी राय में विद्वान व्यक्ति व्यर्थ भाषण में नहीं लगता । अधिक बोलने से विकार बढते हैं, 'आधा घट' अधिक बोलता है । उनके अनुसार ज्ञानी से वार्तालाप हितप्रद एवं आनन्ददायक है । बाइबिल का मत भी इससे भिन्न नहीं । उनके अनुसार -'' सद्धर्मी का मुख जीवन का स्रोत है ।''[४]

मनुष्य जिस तरह अपने हाथ से परिश्रम का फल पाता है, उसी तरह उसे अपने शब्दों के फल से अच्छी चीज़ें प्राप्त होती हैं ।'' [५] इन सब उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि मनुष्य की वाणी उनमें निहित भलाई या बुराई के आधार पर बाहर निकलती है । सच्चरित्रवाले व्यक्ति सदा सत्य एवं मधुर वचन बोलते हैं इससे सुननेवाले भी खुशी का अनुभव करते हैं । इससे ही लोकमंगल संभव है । अतः व्यक्ति मधुरभाषण एवं मितभाषण के ज़रिए समाज की भलाई में अपना दायित्व निभाने केलिए बाध्य होता है । इसका पालन होने पर व्यक्ति में एवं समाज में सद्‌गुण उत्पन्न होंगे । कबीर यह भी जोडते हैं यदि ईश्वर के नाम के प्रति हृदय में अनवरत प्रेम बना रहे तो साधक एक ऐसी स्थिति को पहुँच जाएगा, जहाँ उसके मुख से ज्ञान के मोती

---

१. पुराना विधान जरेमिया का ग्रन्थ ९:७
२. वही सूक्ति-ग्रन्थ १०:२०
३. वही १५:१-२
४. पुराना विधान सूक्ति-ग्रन्थ १०:११
५. वही १२:१४

झडने लगेंगे और उसे उस आत्मज्योति के दर्शन होंगे जो अनन्त और अपार है ।

कबीर हरि के नांव सौं, प्रीति रहै इकतार
तौ मुख तैं मोती झरै हीरा अनंत अपार ।'' [१]

इससे तात्पर्य यह है कि व्यक्ति को अपने हृदय में ईश्वरीय चिन्ता या सद्विचार सदा रखना चाहिए । ऐसा होने पर उसका हृदय शुद्ध एवं निर्मल होगा । उससे उद्‌भूत वाणी भी निर्मल होगी । बाइबिल में ऐसा कहा गया है-'' अच्छा मनुष्य अपने हृदय के अच्छे भण्डार से अच्छी चीज़ें निकालता है और जो बुरा है, वह अपने बुरे भण्डार से बुरी चीज़ें निकालता है, क्योंकि जो हृदय में भरा है, वही तो मुँह से बाहर आता है ।''[२]

कर्म का फल

काम करते रहने से, सही ढंग से सही काम करने से,संसार में मंगल होता रहता है । मानव एक सामाजिक प्राणी है, उसके कर्म केवल उसको ही प्रभावित नहीं करते, बल्कि उस वृहद् समाज को भी प्रभावित करते हैं, जिसका वह एक अभिन्न अंग है । अतएव मानव के विकास में प्रत्येक कार्य सहायक होता है, जो श्रेष्ठ, शुभ और ज्ञानवर्द्धक हो, सभी क्लेशों को कम करनेवाला हो, दूसरों को प्रेरणा व साहस प्रदान करनेवाला हो तथा सामाजिक, राजनीतिक एवं अन्य परिस्थितयों में सुधार लानेवाला हो । ऐसे कर्मों से मानव के कार्यों की सार्थकता बनी रहती है। उत्तम चरित्र एवं दिव्य शक्ति मानव की महान संपत्ति है । इसमें संसार के सभी शुभ गुणों और कर्मों का समावेश है । सत्यवादिता, दयालुता, कोमलता, निष्कपटता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सदाचार, निर्भरता, सन्तोष, तप और दान आदि सभी कर्म एक

श्रेष्ठ चरित्र की सीमा में आ जाते हैं ।

मनुष्य जैसा कर्म करता है उसके अनुरूप ही उसको फल मिल जाता है । यादे वह अच्छा कर्म करता हैं तो उसका फल या परिणाम भी अच्छा ही होता है । यदि बुरा कर्म करता है तो उससे अच्छा परिणाम कभी नहीं निकलता । कबीर ने इसी विचार को अनुभूतिपूर्ण रूप में प्रस्तुत साखी में चित्रित किया है –

कली काल तत काल है, बुरा करौ जिनि कोइ
अन बाबैं लौहा दींहिणे, बोबै सुलुणतां होइ । [१]

यहाँ कबीर ने कर्म के फल के विचार का स्पष्टीकरण उदाहरण के द्वारा किया है, याने किसान जैसी फसल बोता है वैसी ही बाँयें हाथ में फसल के पौधे को पकडकर दाहिने हाथ से दराँती से काटता है । यदि उसने अच्छे ढंग से फसल बोई है तो उसका फल भी अच्छा मिलेगा । कहने का अभिप्राय यह है कि कर्म का फल परिश्रम के अनुसार अवश्य मिल जाता है चाहे तत्क्षण ही मिल जाए या कुछ देर के बाद, परंतु परिश्रम व्यर्थ नहीं जाता । बाइबिल में भी कर्म का महत्व स्थान स्थान पर चित्रित है । कर्म के अनुसार ही मनुष्य उसका फल पायेंगे यही विचार 'नया विधान' में प्रकाशना-ग्रन्थ में देते हैं -'' देखो, मैं शीघ्र ही आऊँगा । मेरा पुरस्कार मेरे पास है और मैं प्रत्येक मनुष्य को उसके कर्मों का प्रतिफल दूँगा ।'' [२] कबीर आगे बताते हैं कि व्यक्ति को ईश्वर के न्याय पर विश्वास रखना चाहिए । प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्मों के अनुसार फल भोगना पडता है । इस विधान से जीव का उत्थान और भावी विकास होता है –

---

१. प्रो.पुष्पपाल सिह कबीर-ग्रन्थावली सटीक पृ. २२३
२ नया विधान प्रकाशना-ग्रन्थ २२:१२

करम करीमाँ लिखि रहा, अब कुछ लिखा न जाइ
मासा घटै न तिल बढै, जौ कौटिक करै उपाइ ।'' [१]

याने कृपालु प्रभु ने व्यक्ति के कर्मों के अनुसार फल का लेखा तैयार कर रखा है । इसमें किञ्चित् भी घटाव या बढाव नहीं हो सकता । अब उसके आगे कुछ भी नहीं लिखा जा सकता । व्यक्ति चाहे जितना भी प्रयत्न क्यों न करे ज़रा भी बदलाव इसमें नहीं आता । बाइबिल के जोब के ग्रन्थ में ऐसे लिखते हैं -'' ज्ञानियो ! मेरी बात सुनो । ईश्वर में कोई अन्याय नहीं, सर्वशक्तिमान् में कोई अन्याय नहीं ! वह मनुष्य को उसके कर्मों का फल देता है और उसके आचरण के अनुसार उसके साथ व्यवहार करता है ।'' [२] बाइबिल के अनुसार मनुष्य द्वारा की जानेवाली हर छोटी प्रवृत्ति को भी ईश्वर मूल्य देते हैं । इसलिए बाइबिल आह्वान करता है कि मनुष्य को अपना काम सच्चे मन से ही करना उचित है । इसको व्यक्त करते हुए नबी आमोस बताते हैं -'' प्रभु कहता है-तुम लोगों ने जो कुछ किया मैं वह सब याद रखूँगा ।''[३] कर्म के अनुसार मिलनेवाले फल के बारे में सुसमाचार में ईसामसीह का कथन बिलकुल स्मरणीय है -'' मेरे पिता के कृपापात्रो ! आओ और उस राज्य के अधिकारी बनो, जो संसार के प्रारंभ से तुम लोगों केलिए तैयार किया गया है, क्योंकि मैं भूखा था और तुमने मुझे खिलाया, मैं प्यासा था और तुमने मुझे पिलाया.....इस पर धर्मी उन से कहेंगे, प्रभु ! हमने कब आप को भूखा देखा और खिलाया कब प्यासा देखा और पिलाया ? राजा उन्हें यह उत्तर देंगे, मैं तुम लोगों से यह कहता हूँ- तुमने मेरे इन भाइयों में से किसी एक केलिए चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, जो कुछ किया वह तुमने मेरे लिए ही किया ।'' [४] कबीर-साहित्य एवं बाइबिल इसी तथ्य पर बल देते हैं कि करनी के बिना बडे बडे सिद्धान्तों की बातें

---

१. डॉ.जयदेव सिंह कबीर वाङमय खंड- ३ पृ. २४० ३.पुराना विधान :आमोस का ग्रन्थ ८:७
२ पराना विधान जोब का ग्रन्थ ३४:१०-११ ४ नया विधान :संत मात्य २५:३४-४०

करने से और लंबे-लंबे उपदेश आदि देने से भी कुछ भी लाभ नहीं है । जो काम मनुष्य करते हैं उसका फल वह ज़रूर प्राप्त करेगा । यहाँ दोनों ग्रन्थों द्वारा यही आह्वान है कि मनुष्य अच्छे कर्मों के द्वारा सद्फल का अधिकारी बनकर समाज का हितकारी बनना ही उचित है ।

निन्दा और क्रोध का अभाव

किसी व्यक्ति की, सद्भाव से प्रेरित होकर की गई स्वस्थ आलोचना उसको अपने दोष सुधारने का अवसर देती है। इससे मनुष्य शैनैः शनैः अपने अवगुणों को त्याग कर श्रेष्ठ मानव बनने के मार्ग पर अग्रसर होता है । परंतु इसके विपरीत एक अन्य प्रवृत्ति है - किसी मनुष्य की अनुपस्थिति में निन्दा करना । मनुष्य के अन्दर निहित ईर्ष्या और द्वेष के कारण ऐसा निन्दा भाव आता है । यह भाव मानव समाज में भलाई के बदले बुराई का कारण बन जाता है । कबीरदास आत्मशलाघा और परनिन्दा दोनों को त्याज्य मानते हैं क्योंकि –

अपनापौ न सराहिए, पर निदिंए न कोइ
अजहूँ लंबे धौहडे, नां जांनौ क्या होइ ।'' [१]

कबीर यहाँ इस बात पर बल देते हैं कि इस विश्व में कब क्या हो जाएगा, कोई नहीं जान सकता । उनकी राय में बेचारे अज्ञानी लोग ही दूसरों की निन्दा करते रहते हैं । कबीर यह बात और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि –

अपनापौ न सराहिए और न कहिए रंक
नां जानौं किस बिरिख, तलि कूडा होइ करंक ।'' [२]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २१८

वे लोगों को यही आह्वान देते हैं कि अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिए और किसी दूसरे को तुच्छ नहीं कहना चाहिए । अहंमन्यता व्यर्थ है । इस नश्वर शरीर् का, जिसके ऊपर हम गर्व करते हैं, न जाने कब अन्त हो जाए और इसकी हड्डियाँ न जाने किस वृक्ष के नीचे कूडे के समान पडी रह जाएँ ? यही मुद्दा बाइबिल में यो देते हैं -'' जो अपने उपहार की डींग मारता, किन्तु नहीं देता वह उन बादलों और हवा जैसा है जिनके बाद वर्षा नहीं होती ।''[१] आगे हम देखते हैं कि कल की बातें अनजान हैं सो डींग मारना मूर्खता है -'' आनेवाले कल की डींग मत मारो, क्योंकि तुम नहीं जानते कि एक ही दिन में क्या होगा ।'' [२] आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति को छोडने का उपदेश दोनों ग्रन्थ समान रूप से देते हैं । कबीर की राय में बेचारे अज्ञानी लोग ही दूसरों की निन्दा करते रहते हैं–

''लोग बिचारा निंदई, जिनहुं न पाया ग्यां
रांम अमलि माता रहै, तिनहुं न भावै आंन ।'' [३]

उनके अनुसार जो प्रभु की भक्ति में अनुरक्त रहते हैं, उन्हें प्रभु को छोडकर और कुछ अच्छा लगता ही नहीं । उन्हें दूसरों की निन्दा में रस कहाँ मिल सकता है ? कबीर बताते हैं कि दूसरों की निन्दा करने का अधिकार हमें नहीं, वह जितना भी निम्न हो ।

कबीर घास न निंदिए जौ पावां तलि होइ
ऊडि पडै जब आंखि मैं, तौ खरा दुहला होइ ।'' [४]

स्पष्ट करने केलिए उदाहरण के रूप में वे बताते हैं कि तृणसदृश तुच्छ वस्तु की

---

१. पुराना विधान सूक्ति-ग्रन्थ २५:१४ ३. डॉ.पारसनाथ तिवारी :कबीर-ग्रन्थावली पृ. २१७
२. वही २७:१ ४. वही पृ. २१७

भी, जो पाँवों तले पडी हो, कभी निन्दा नहीं करनी चाहिए । क्योंकि यदि कभी उडकर वह तुच्छ तृण भी आँख में पड जाए तो अत्यन्त पीडा होगी । सुसमाचार में बताते हैं -'' सावधान रहो उन नन्हों से एक को भी तुच्छ न समझो । मैं तुम से कहता हूँ -उनके दूत स्वर्ग में निरन्तर मेरे स्वर्गिक पिता के दर्शन करते है ।''[१] बाइबिल इस बात से भी सहमत है कि समाज में ऐसे लोग बसते हैं जो बडे आत्मविश्वास के साथ अपने को धर्मी मानते और दूसरों को तुच्छ समझते हैं ।[२] संत पोल पूछते हैं -'' दूसरे के नौकर पर दोष लगानेवाले आप कौन होते हैं ?[३] आगे वे विश्वासियों को ये उपदेश देते हैं -'' तुम्हारी कम उम्र के कारण कोई तुम्हारा तिरस्कार न करे । तुम वचन, कर्म, प्रेम, विश्वास और शुद्धता में विश्वासियों के आदर्श बनो ।''[४] इन सभी वर्णनों में भी यही स्पष्ट है कि ईश्वर की कोई भी वस्तु निकृष्ट या तुच्छ नहीं । हरेक का अपना अपना महत्व है । समाज की भलाई में हरेक का योगदान ज़रूर होता है । जहाँ सूई की ज़रूरत है वहाँ सूई का उपयोग करना तलवार का नहीं ।

कबीर यद्यपि निन्दा करना अनुचित मानते हैं पर निन्दक को अपने अंगन में कुटी बनवाकर देने का विचार - प्रकट करते हैं क्योंकि वे हमारे दोषों को दिखाकर हमारे स्वभाव को निर्मल करने का महान कार्य करते हैं —

निंदक नेरै राखिए, आंगनि कुटि बंधाइ
बिन साबुन पांनी बिनां, निरमल करै सुभाइ ।''[५]

ये निन्दक पानी और साबुन के बिना ही हमारे स्वभाव को निर्मल कर देता है ।

---

१. नया विधान संत मात्यु १८:१०
२. वही :संत लूक १८:९
३. संत पोल रोमियों के नाम पत्र १४:४
४. संत पोल तिमथी के नाम पहला पत्र ४:१२
५. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २१८

बाइबिल में भी यही सन्देश है कि अपने निन्दक रूपी शत्रु को सरकाने का नहीं अपने साथ रखने का प्रयास करो । यथा -'' प्रिय भाईयो ! आप स्वयं बदला न चुकायें, बल्कि उसे ईश्वर के प्रकोप पर छोड दें, यदि आपका शत्रु भूखा है, तो उसे खिलायें और वह प्यासा है, तो उसे पिलायें, क्योंकि ऐसा करने से आप उसके सिर पर जलते अंगारों का ढेर लगायेंगे । ''[१]

मनुष्य के जीवन में अमंगल करनेवाले क्रोध को भी त्यागने का उपदेश कबीर देते हैं । उनके मत में काम, क्रोध और तृष्णा के कारण मनुष्य बिना जल ही डूब जाता है —

कांम क्रोध तिसनां के मारे बूडि मुएहुं बिनु पांनी । [२]

जो मनुष्य इनसे बचना चाहे उसे जूझना पडेगा, संघर्ष करना पडेगा -

कांम क्रोध सौ जूझनां चौडे मांडा खेत । [३]

बाइबिल का आदेश भी यह है कि - '' यदि आप क्रुद्ध हो जायें, तो इस कारण पाप न करें - सूरज के डूबने तक अपना क्रोध कायम नहीं रहने दें । [४] सुसमाचार में आगे भी ईसा लोगों से बताते हैं -'' तुम लोगों ने सुना है कि पूर्वजों से कहा गया है -'हत्या मत करो'। यदि कोई हत्या करे, तो वह कचहरी में दण्ड के योग्य ठहराया जायेगा । परंतु मैं तुम से यह कहता हूँ - जो अपने भाई पर क्रोध करता है, वह कचहरी में दण्ड के योग्य ठहराया जायेगा । [५] 'पुराना विधान' में हत्या करने पर

---

१. संत पोल रोमियों के नाम पत्र १२:१९-२० ४. संत पोल एफेसियों के नाम पत्र ४:२६
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ४ ५. नया विधान संत मात्यु ५:२१-२२
३. वही पृ. १८०

जो दण्ड देते थे वही नया विधान में क्रोध करने वाले को मिलने लायक है । यहाँ ईसा स्थापित करते हैं कि क्रोध भी हत्या के समान पाप का कारण है ।

''अपने समान पडोसी को प्रेम करो वाली वाणी के विरुद्ध ही क्रोध एवं निन्दा आते हैं । इसलिए कबीर साहित्य एवं बाइबिल अपनी वाणियों द्वारा इन दोनों अवगुणों -जो समाज की उन्नति में बाधा हैं -त्यागने का उपदेश देते हैं, और मानसिक शांति तथा परम-सत्य की उपलब्धि-जो समाज को मंगलमय बनाते हैं- अपनाने का उपदेश देते है ।

क्षमा भाव

दूसरों के द्वारा किये गये अपराधों को भुला देना और प्रतिशोध न करना क्षमा है । दूसरे शब्दों में क्रोध की परिस्थिति उत्पन्न हो जाने पर भी क्रोध न करना क्षमा है । क्षमा का अर्थ है दूसरों से गलती हो जाने पर भी पश्चाताप करने पर उन्हें दण्ड न देना और उनके अपराधों को भूलकर उन्हें दयापूर्वक प्यार करना । क्षमाशीलता मानव की एक सबसे बडी उपलब्धि है । यदि मानव इस सीढी को पार कर जाता है तो मालूम होगा कि उसने मुक्ति का मार्ग ढूँढ लिया है । मानसिक, शारीरिक एवं आध्यात्मिक तनाव से मुक्ति पाने केलिए क्षमाशीलता की आवश्यकता है । गलती करना मानवीय स्वभाव तथा क्षमा प्रदान करना ईश्वरीय स्वभाव है । संसार के सब धर्मों में क्षमा सबसे श्रेष्ठ गुण है । क्षमाशील मनुष्य को ही स्वर्ग, यश और मोक्ष की प्राप्ति होती है । क्षमा से ही हमारा जगत् टिका हुआ है । '' जिनमें क्षमा है, उन्हीं केलिए यह लोक और परलोक दोनों कल्याणकारक है । क्षमा ब्रह्म है, क्षमा सत्य है, क्षमा भूत है, क्षमा भविष्य है और क्षमा तप है । क्षमा ने संपूर्ण जगत् को धारण कर रखा है । [१]

क्षमा करने की शक्ति मानव-समाज में सद्भाव एवं मैत्री-भाव को विकसित करती है । कबीर क्षमा को महान् व्यक्तियों का गुण मानते हैं । वे धरती एवं वन का उदाहरण देकर बताते हैं कि धरती अपना खोदा जाना, वन अपना काटा जाना सहन करते हैं । इसी प्रकार सज्जन व्यक्ति ही मनुष्य के कुटिल वचनों को सहन करता है और क्षमा कर देता है –

खोद खाद धरती सहै काट कूट बनराइ
कुटिल वचन साधू सहै, दूजै सहा न जाइ ।'' [१]

बाइबिल में एक सुन्दर प्रतीक के ज़रिये इसका वर्णन किया गया है -'' ईश्वर दयालु अवश्य है, लेकिन ईश्वर ने जिन पर अनुग्रह किया है वे दीन हीन एवं दुखी रहते हैं। जहाँ दुःख है वहाँ ईश्वर है । जहाँ क्रूस है वहाँ येशु है । क्षमा दुःख सहन का उत्तमोत्तम उपाय है । क्षमाशील व्यक्ति में ईश्वर का वास होता है । बाइबिल इसके बारे में यों बताते हैं - अग्नि में स्वर्ण की परख होती है और दीन-हीनता की भट्टी में ईश्वर के कृपा पात्र की । [२] नया विधान में येशु ने क्षमाशीलता को बडा महत्व दिया है । बाइबिल में ऐसी शिक्षा मिलती है कि ईश्वर ने क्षमा केलिए कितना बडा मूल्य चुकाया, येशु के क्रूस की ओर देखें तो, उन्होंने अपने मारनेवालों को भी क्षमा किया । येशु ने कहा -'' क्षमा करो और तुम्हें भी क्षमा मिल जायेगी । ''[३] क्रूस पर होकर भी उन्होंने पिता ईश्वर से प्रर्थना की - पिता ! इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहें है । [४] यहाँ कबीर एवं बाइबिल दिखाते हैं कि धरती को खोदते वक्त, पेड को काटते वक्त और सज्जन मनुष्य को वेदना देते वक्त वे क्षमापूर्वक सहते हैं । क्योंकि क्षमा ईश्वरदत्त उन्नत दान है । क्षमा की महत्ता दिखाते

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १५६ ३. नया विधान संत लूक ६:३४
२. पुराना विधान प्रवक्ता-ग्रन्थ २:५ ४. वही २३:२४

हुए कबीरदास कहते हैं कि जहाँ क्षमा है वहाँ ईश्वर बसते हैं -

जहाँ दया तहं धर्म है, जहाँ लोभ तहं पाप
जहाँ क्रोध तहं काल है जहाँ खिमां तहं आप ।'' [१]

यहाँ कबीर बताते हैं कि दया के अभाव में धर्म नहीं होगा, जहाँ लोभ होगा वहाँ पाप भी विद्यमान होगा और क्रोध तो साक्षात् काल ही है, पर जहाँ क्षमा है वहाँ तो प्रभु स्वयं विद्यमान हैं । बाइबिल भी बताता है कि क्षमा देने केलिए ईश्वर की कृपा की ज़रूरत है । जिसको अपने अन्दर में बसने वाले ईश्वर के बारे में चिन्ता नहीं है वह क्षमा भी नहीं दे सकता । लेकिन जो ईस्वर को अपने में पहचानते हैं वे जल्दी ही क्षमा देते हैं -'' समझदार व्यक्ति देर से क्रोध करता है । दूसरों के अपराध क्षमा करना उसका गौरव है । [२] बाइबिल सिखाता है कि हमारे पडोसी ने हमें हानि पहुँचाई है, हमें बदनाम किया है और हमारे विषय में नाना प्रकार की झूठी बातें कही हैं, हम उसकेलिए प्रार्थना करें और सब कुछ क्षमा करके उसकेलिए भलाई के काम करें । संभव है कि इस बात को देखकर वह पश्चाताप करें और फिर हमारे संग अच्छा संबन्ध स्थापित कर लें । संत पोल का आह्वान है कि - '' जिस तरह ईश्वर ने मसीहा के कारण आप लोगों को क्षमा कर दिया, उसी तरह आप भी एक दूसरे को क्षमा करें । [३]

यहाँ दोनों ग्रन्थ स्थापित करते हैं कि क्षमा करने के फलस्वरूप समाज में घृणा, शत्रुता, झगडा आदि दुर्गुण दूर हो जाते हैं बदले में स्नेह, मैत्री, शांति आदि सद्गुणों का प्रदुर्भाव होता है । याने समाज में बुराई के स्थान पर भलाई, दुर्गुण के बदले सद्गुण, अमंगल के विपरीत मंगल की वृद्धि में क्षमा बिलकुल सहायक है।

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी :कबीर-ग्रन्थावली पृ. १९० ३.संत पोल एफेसियों के नाम पत्र ४:३२
२. पराना विधान सक्ति-ग्रन्थ १९:११

सत्संग से लोककल्याण

जिस प्रकार स्थूल रूप में सत्संग का अर्थ है सज्जन व्यक्तियों का संग, उसी प्रकार सूक्ष्म रूप में उसका अर्थ है हृदय में सद्वृत्तियों का संचरण । दूसरा ही सत्संग का सच्चा अर्थ है तथा उसका उद्देश्य भी । समाज में अच्छे मनुष्य भी रहते हैं और बुरे भी। व्यक्ति जैसे मनुष्यों का संसर्ग करता है, उसका स्वभाव भी वैसा ही होता है । सज्जन व्यक्तियों का प्रभाव निर्मल और दुष्ट व्यक्तियों का प्रभाव दूषित करनेवाला होता है । कबीरदास भले मनुष्यों की संगति को बहुत महत्व देते हैं । बाइबिल भी बताता है कि सत्संग से व्यक्ति में भलाई एवं समाज में मंगल होता हैं। सुसंग कल्याणप्रद एवं कुसंग हानिकर है ।

कबीर याद दिलाते हैं कि भवसागर को पार करने केलिए संतों और असंतों के गुण एवं अवगुण को समझकर सत्संगति करनी चाहिए । सत्संग से मनुष्य की दुर्बुद्धि दूर होकर सुबुद्धि की वृद्धि होती है । इसलिए उनकी चेतावनी है कि --

''कबीर संगति साधु की नित प्रति कीजै जाइ
दुरमति दूरी गवाँइसी, देसी सुमति बताई ।'' [१]

याने अच्छे व्यक्तियों के बीच बैठने पर अच्छी बातें होंगी और जीवन पर उनका प्रभाव भी अच्छा होगा । राजा दाविद अपने स्तोत्र-ग्रन्थ द्वारा ईश्वर से बताते हैं -- '' धर्मी मुझ पर भले ही हाथ उठाये और भक्त मुझे डाँटे, किन्तु दुष्ट का सुगन्धित तेल मेरा सिर अलंकृत न करें, क्योंकि मैं प्रार्थना द्वारा उनके कुकर्मों का विरोध करता हूँ ।''[२] यहाँ स्पष्ट है कि कबीर-साहित्य एवं बाइबिल सत्संग की महिमा को खूब श्रेष्ठता देते हैं । सत्संग द्वारा समाज सद्वृत्ति की ओर झुक जाये यही उनका लक्ष्य है ।

१ डॉ पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली प १५६ २ पुराना विधान स्तोत्र-ग्रन्थ १४१:५

एक स्थान पर कबीर स्वभाव से दुष्ट लोगों के बारे में भी बताते हैं –

सीतलता के कारनै, नाग बिलंबे आइ
रोम रोम बिख भरि रहा, अम्रित कहां समाई ।'' [१]

याने शीतलता की प्राप्ति केलिए सर्प आकर चन्दन के वृक्ष पर लिपटता है किन्तु उसके रोम-रोम में विष भरा होने के कारण चन्दन का शीतल प्रभाव उसके भीतर नहीं समा सकता । इसी प्रकार स्वभाव से ही दुष्ट व्यक्ति को सत्संग की शरण पाने पर भी अच्छे गुण से वंचित रहना पडता है । सूक्ति-ग्रन्थ में ऐसी एक चेतावनी हम देख सकते हैं -'' पुत्र ! मेरी प्रज्ञा पर ध्यान दो, मेरी शिक्षा कान लगाकर सुनो, जिससे तुम विवेकशील बने रहो और तुम्हारे होंठ ज्ञान की बातें बोलें । व्यभिचारिणी के होठों से मधु चूता है और उसकी वाणी तेल से भी चिकनी है । किन्तु अन्त में वह चिरायते-जैसी कडवी और दुधारी तलवार-जैसी तेज़ होती है । [२] बुरे लोगों के जाल में बुराई की भरमार है इसलिए कबीर-साहित्य एवं बाइबिल ने सज्जन लोगों के संसर्ग पर बल दिया है । इससे दो लाभ होते हैं । प्रथम सत्संग करने वाला व्यक्ति बुरे प्रभावों से बचा रहता है । द्वितीय, इसके जीवन के चारों ओर का वातावरण सात्विकता से अनुरंजित होने लगता है । याने सत्संग से वैयक्तिक मंगल एवं लोकमंगल एक साथ घटित होते हैं ।

कबीरदास सत्संग को भक्ति-साधना का प्रमुख अंग समझते हैं । यदि यह न हो तो अन्य अभ्यास निष्फल प्रामाणित होंगे –

मथुरा जाउ द्वारिका भावै जाउ जगन्नाथ
साधु संगति हरि भगति बिनु, कछु न आवै हाथ । [३]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २१७
२. पुराना विधान सूक्ति-ग्रन्थ ५:१४ ३. डॉ.पारसनाथ तिवारी :कबीर-ग्रन्थावली पृ.१५६

व्यर्थ कर्म में निरत लोगों को बाइबिल यों दिखाता है -'' दुष्ट सैकडों कुकर्म करने के बाद भी बहुत समय तक जीवित रहते हैं । फिर भी मैं यह जानता हूँ ईश्वर के भक्तों का कल्याण होगा, क्योंकि वे ईश्वर पर श्रद्धा रखते हैं । किन्तु दुष्ट का कल्याण नहीं होगा । वह छाया की तरह लुप्त हो कर बहुत समय तक जीवित नहीं रहेगा, क्योंकि वह प्रभु पर श्रद्धा नहीं रखता । [१] सुसमाचार में यों बताया है - '' ये लोग मुख से मेरा आदर करते हैं, परंतु इनका हृदय मुझसे दूर है । ये व्यर्थ ही मेरी पूजा करते हैं, और ये जो शिक्षा देते हैं, वह है मनुष्यों के बनाए हुए नियम मात्र । [२] सत्संग के महत्व को समझाते हुए कबीर ने एक दोहे में कहा है कि क्षण भर की सत्संगति भी जीवन को सफल बना देती है । इसीसे तो ब्रह्ममय वातावरण बनता है, सद्‌गुरु की प्राप्ति होती है — सत्कर्म तथा सद्‌गुरुओं के माध्यम से जीवन का समुचित विकास होता है और जीव ब्रह्म की ओर बढता रहता है । यथा —

कबीर एक घडी, आधी घडी, आधी हूँ तै आध
भगवान सेती गोसटे जो कीनै सो लाभ । [३]

सत्संगति के फलस्वरूप मानव में आये अचानक परिवर्तन को बाइबिल भी चित्रित करता है । ज़ॉन बपतिस्ता के पापक्षमा के लिए पश्चात्ताप के उपदेश सुनकर जनता उससे पूछती थी, '' तो हमें क्या करना चाहिए ? [४] ईसा मसीह के साथ सत्संग करने के तुरंत बाद नाकेदार ज़केवूस ने दृढता से प्रभु से कहा, '' प्रभु ! देखिए, मैं अपनी आधी संपत्ति गरीबों को दूँगा और मैंने जिन लोगों के साथ किसी बात में बेइमानी की है, उन्हें उसका चौगुना लौटा दूँगा । [५] कबीर एवं बाइबिल एकमत

---

१. पुराना विधान उपदेशक-ग्रन्थ ८:१२-१३
२. नया विधान संत मात्यु १५:८-९
३. डॉ.रामकुमार वर्मा संत कबीर पृ. २७२
४. नया विधान संत लूक ३:१०
५. वही १९:८

है कि क्षण भर की सत्संगति के द्वारा भी मानव में परिवर्तन आता है । उनके अनुसार सत्संगति आदर्श मानव-मूल्यों को स्थापित करने का केन्द्रिबिन्दु है, क्योंकि साधु पुरुष धैर्यशील, निर्विकार, पवन और सूर्य की भांति समाचरणशील एवं परोपकारी होता है । इन गुणों से युक्त साधुओं के साथ रहने से साधारण व्यक्ति भी गुणसंपन्न बन जाता है ।

संक्षेप में कबीर साहित्य एवं बाइबिल इस बात से सहमत हैं कि मन, वचन और कर्म से सभी प्राणियों के साथ मैत्री रखनी चाहिए, उन पर दया करनी चाहिए, उनको सब प्रकार से सुख देना चाहिए । यही सज्जन का सनातन धर्म है । साधु-संगति में सब कुछ देखा, सुना और समझा जा सकता है । साधु-संगति से मनुष्य को सद्‌बुद्धि मिलती है । उनकी कुमति का नाश होता है । सत्संग द्वारा सामाजिक सुधार की समस्या सुलझ जाती है । कबीर एवं बाइबिल की यह दृढ मान्यता थी कि सत्संगति से मानसिक वृत्तियाँ आदर्श की ओर उन्मुख होती है जिसके फलस्वरूप समाज परम पावन होता है और मानव अपने सुन्दर विचारों के अनुरूप आचरण करता है तथा समाज को उन्नति की ओर ले जाता है । दोनों ग्रन्थों का उपदेश हैं कि जहाँ कहीं भी शुभ गुण दिखाई पडे उसे आत्मसात् कर लेना चाहिए तभी एक आदर्श समाज बन सकेगा। कबीर बताते हैं जैसे शहद की मक्खी प्रत्येक वस्तु में से अमृततुल्य शहद का अंश तो ले लेती है और अनिष्टकारी अंश छोड देती है, वैसे ही शुभ गुणों का अर्जन करना चाहिए —

कबीर औगुणँ नां गहै, गुण को ही ले बीनि
घट घट मृदु के मधुप ज्यों, परमातम ले चीन्ही । [१]

यही बात 'नया विधान' में यों बताई गई है -'' स्वर्ग का राज्य समुद्र में डाले हुए

---

१ डॉ पारसनाथ तिवारी, कबीर-ग्रन्थावली, पृ. २२६

जाल के सदृश है, जो हर तरह की मछलियाँ बटोर लाता है । जाल के भर जाने पर मछुए उसे किनारे खींच लेते हैं । तब वे बैठकर अच्छी मछलियाँ चुन- चुन कर बरतनों में जमा करते हैं और रद्दी मछलियाँ फेंक देते हैं । संसार के अन्त में ऐसा ही होग।''[१] इसमें कोई संदेह नहीं कि सत्संगति की क्षमता अपार है । समाज के समूल परिवर्तन करने की शक्ति इसमें निहित है । भलाई से भरे हुए मन सदा जागृत होकर सब कहीं फैलाने में निरत होंगे । फलस्वरूप उनसे संसर्ग करनेवाले भी सद्विचारों से संपन्न हो जायेंगे और पूरे विश्व भी मंगल कामना से भर जायेंगे।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जब मनुष्य आपस में प्रेम, दया, परोपकार, अहिंसा, अस्तेय आदि गुणों से युक्त व्यवहार करने लगते हैं तब मनुष्य के मन में विश्व के प्रति ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' का भाव आता है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल ने अपनी वाणियों के द्वारा यही विश्व-कल्याण सब कहीं लाने का प्रयास किया है। इन दोनों ग्रन्थों में विश्व-बन्धुत्व की भावना भरपूर रही है । जब मनुष्य अपने सहवर्गी मानव की सब तरह से सहायता करता है, अपने पडोसी से प्रेम करता है तब यह भावना विकसित होती रहती है । प्रेम ही इसका मूल है, प्रेम से यह फूलता है, फलता है और प्रेम में ही समा जाता है । यही प्रेम ईश्वर है । कबीरदास एवं बाइबिल रचनाकार मानवीय गुणों में पूर्ण विश्वास रखते हैं । क्योंकि इससे प्रेम उत्पन्न होता है । दया, क्षमा, दान, धैर्य, सन्तोष, त्याग, परोपकार, अहिंसा, प्रेम, अस्तेय आदि सभी धर्मों में पाये जाते हैं और काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, कपट, कायरता, निर्दयता, तृष्णा इत्यादि कुप्रवृत्तियों का खंडन सभी धर्मों ने किया है ।

---

१. नया विधान संत मात्यु १३:४७-४९

मानव मात्र को एक समाज और एक ही नैतिक बन्धन में बाँधना कबीर-साहित्य एवं बाइबिल का प्रमुख ध्येय था । वे विषमता रूपी जड को मूल से उखाडकर फेंक देना चाहते थे और उसकी जगह एक ऐसा समाज स्थापित करना चाहते थे जिसमें समानता हो । याने समाज को एक बनने और विश्वकल्याण के मार्ग में विघ्न डालनेवाले सारे शत्रुओं को दूर करने केलिए वे अपनी वाणी की सहायता से परिश्रम भी करते थे ।

कबीर एक महान घुमक्कड थे जिन्होंने अपना सारा जीवन लोक-कल्याण में ही व्यतीत किया । साधक विचार और वैराग्य के दो पंखों पर अपने चरम लक्ष्य, आत्म प्रकाश, को प्राप्त हो जाता है और वही प्रकाश जन समाज के कल्याण केलिए बाँटता फिरता है । बाइबिल रचना का उद्धेश्य भी इससे भिन्न नहीं था । इसकी हरेक वाणी विश्व की भलाई को लक्ष्य करके लिपिबद्ध है । तमसो मा ज्योतिर्गमय के सिद्धान्त के अनुसार उन दोनों ग्रन्थों की वाणी को अपनाकर जीने से मानव के अन्धकार रूपी हृदय प्रकाशित हो जाते हैं । भ्रातृ प्रेम की भावना बढ जाती है । लडाई झगडे समाप्त होते हैं और समाज का मंगल होता है । सद्ग्रन्थों द्वारा प्राप्त प्रकाश को ग्रहण न करने पर मानव को दर दर ठोकरें खानी पडती हैं। संत कबीर परमात्मा की जीती-जागती, चलती-फिरती प्रतिमा हों तो बाइबिल ईश्वरीय वाणियों का संग्रह है । इन्होंने मनुष्य को मृत्यु से अमरता का मार्ग बतलाया है और जो व्यक्ति इनके कहे अनुसार जीते हैं वे विश्वमंगल के भागी होते हैं । परंतु जो इस मार्ग पर नहीं चलते वे अज्ञानी बनकर मृत्यु के मुख में जैते रहते हैं, संसार का नाश करते रहते हैं ।

****

सातवाँ अध्याय

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में समाज-सुधार एवं लोकमंगल की भावना-एक मूल्यांकन

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल के अध्ययन के बाद यही विचार उभर आता है कि दोनों समाजों के लोग ईश्वरोपासना के नाम पर बहुसंख्यक विधियों, बाह्याडंबरों, पृथक विधि-विधानों पर बल देने के कारण आपस में द्वेष, भेदभाव एवं झगडा रखते थे। प्रस्तुत भेद-भाव को मिटाकर लोगों को एक ही प्रेम-सूत्र में पिरोने का काम अपनी वाणी द्वारा दोनों समाजों के इन सुधारकों ने किया । लेकिन भारतीय समाज के ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि उच्चवर्ग के लोगों तथा बाइबिलकालीन यहूदी, फरीसी, शास्त्री आदि सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत लोगों ने इन सुधारकों की वाणी को अस्वीकार किया । फिर भी प्रेम एवं क्षमा के द्वारा इन लोगों को भी सच्चे मार्ग पर लाने का निरंतर प्रयत्न कबीर साहित्य एवं बाइबिल के द्वारा किया गया ।

इस प्रकार मनुष्य मात्र को एक प्रेम सूत्र में बांधने का प्रयत्न कबीर साहित्य एवं बाइबिल ने किया है । सत्याचरण, नीतिपूर्ण व्यवहार, धर्म की रक्षा, भक्ति का प्रचार और प्रसार, सत्य की खोज, हिंसा का त्याग और समाज में एकता का भाव निर्माण करने में वे निरत रहे । समाज को अभाव एवं हीनता में डालनेवाली परिस्थितियों से, जो मानव से ही निर्मित हैं लोगों को मुक्त करने का कार्य दोनों ग्रन्थों के ज़रिये किया गया है। कबीर-साहित्य एवं बाइबिल यही विश्वास रखते हैं कि सच्ची कर्तव्य परायणता पारस्परिक स्नेह, लोकसेवा की भावना, आत्मत्याग एवं औदार्य की महत्ता आदि मानव को समझाने से ही मानव समाज मंगल की ओर अग्रसर हो सकता है । इसकेलिए दोनों ग्रंथों के रचयिताओं ने शोषण तथा

सामाजिक असमानता की भर्त्सना करके समाज के सम्मुख पवित्रता का आदर्श रखकर भ्रातृत्व का पोषण करने का अथक प्रयत्न किया । उत्पीडनरहित समाज-निर्माण केलिए उन्होंने भरपूर प्रयत्न किया ।

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल बताते हैं कि मानव की आत्मा में ईश्वर वास करते हैं । सभी मानव आत्मस्वरूप हैं । इसलिए अपने आप यदि आत्मा को देख लें तो समाज का हित और कल्याण हो सकता है । इसके लिए जीव मात्र को ईश्वर स्वरूप समझना आवश्यक है ।

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में प्रतिपादित गुरु-महत्व-संबन्धी बातों के विश्लेषण से पता चलता है कि वैयक्तिक एवं सामाजिक सुधार एवं भलाई केलिए सद्गुणसंपन्न गुरुजनों की ज़रूरत है । गुरु पथप्रदर्शक हैं, ईश्वरीय मार्ग खोलने वाले हैं । सत्य असत्य का अन्तर समझानेवाले हैं । वे बिना देखे, बिना जाने, बिना परखे किसी चीज़ पर विश्वास करनेवाले नहीं है । बल्कि अनुभूत सत्य का खजाना खोलकर मानव कल्याण को लक्ष्य कर अनमोल ज्ञानरूपी मोती बिखेरने वाले हैं । गुरु के मुख से आनेवाली वाणी का मूल्य पहचानकर उसको अपनाने तथा तदनुसार जीने का उपदेश कबीर-साहित्य एवं बाइबिल समान रूप से देते हैं । मानव मात्र को मायारूपी सांसारिक जाल से रक्षा देने का मूलमंत्र गुरूमुख से ही प्राप्त होता है । कबीर की राय में ऐसे विरले ही शिष्य मायाजाल से मुक्ति पाते हैं —

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवैं पडंत
कहै कबीर गुरु ग्यांन तैं, एक आध उबरंत ।'' [१]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १३६

बाइबिल की राय भी यह है कि ईश्वर की शक्ति पर विश्वास सद्वचनों का ज्ञान एवं उसके पालन में जो तैयार है उसकी रक्षा आसानी से होती है । इसके बारे में बाइबिल मानव से यों पूछता है -'' कहीं तुम लोग इसलिए तो भ्रम में नहीं पडे हुए हो कि तुम न तो धर्मग्रन्थ जानते हो और न ईश्वर का सामर्थ्य ? [१] मायामोह जो सामाजिक बुराई का कारण बन जाता है उससे मानवों को मुक्त कर देने में गुरु के ज्ञान की महत्ता भी दोनों ग्रन्थ घोषित करते हैं ।

लोकमंगल में परिवार एवं पारिवार के सदस्यों का क्या दायित्व है इसके संकेत भी कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में यत्रतत्र मिलते हैं । माँ-बाप एवं सन्तन के जीवन में सुधार आने पर प्रेम, से जीने पर, परिवार में मंगल होता है । समाज पर भी इसका असर पडता है । सद्गुणसंपन्न व्यक्ति के द्वारा सदा भलाई ही संभव है । माँ-बाप के प्रयत्न द्वारा सन्तान सदाचारी एवं परोपकारी बन जाती है । इसलिए कबीर साहित्य एवं बाइबिल समान रूप से आदेश देते हैं कि अपने बच्चों को उच्च शिक्षण देने का दायित्व परिवारवालों पर निर्भर है ।

स्त्री कुल का दीपक है । यही दीपक जब प्रकाश के बदले अंधकार फैलाता है तब परिवार तिमिराच्छन्न हो जाता है। इसलिए कबीर-साहित्य एवं बाइबिल नारी-सुधार पर बल देते हैं । नारी के ठीक रास्ते पर चलने पर पारिवारिक समस्यायें एक हद तक दूर हो जाती हैं । समाज में सभी व्यवहार विश्वास पर चलते हैं । जहाँ विश्वास नष्ट हो जाता है वहाँ संबन्ध टूट जाते हैं । इसलिए कबीर-साहित्य एवं बाइबिल सदाचारी नारी की प्रशंसा एवं आचरण भ्रष्ट होकर मनमाने ढंग से चलने वाली नारी की भर्त्सना भी करते हैं ।

---

१. नया विधान संत मारक १२:२४

भक्ति को बनाये रखने एवं ईश्वरसाक्षात्कार को उद्देश्य करके जितने अधिक बाह्याचार का अनुष्ठान लोग करते हैं इन सबका खण्डन कबीर-साहित्य और बाइबिल करते हैं साथ ही अनुष्ठानों की व्यर्थता एवं आन्तरिक परिवर्तन की महत्ता समझाते भी हैं । भक्ति के नाम पर इस प्रकार जीवन बरबाद करने वालों का वे परिहास करते हैं । नीतितत्वों याने सत्य, दया, परोपकार आदि के बिना कोई भी यथार्थ भक्त नहीं बन सकता, यही दोनों ग्रन्थों का मत है । सर्वशक्तिमान ईश्वर की सेवा एवं पूजा मानव मानव के बीच आपसी प्रेम के बिना असंभव है । पाखंड, अहंकार, परंपरा आदि विभिन्न प्रकार के जालों में फंसे लोगों से उसे तोडकर बाहर आने का आह्वान भी कबीर-साहित्य एवं बाइबिल करते हैं ।

सामाजिकता की जागृत चेतना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । वह सदैव पारस्परिक संबन्धों के आधार पर जीवन-यात्रा संपन्न करता है । कोई भी मनुष्य समाज से असंपृक्त नहीं । जन्म से मृत्यु-पर्यन्त हमारा प्रत्येक विचार, प्रत्येक कर्म, सामाजिक संगठन एवं परिवेश से प्रभावित होता है । जीवन-यात्रा को सुसंपादित करने के हेतु मनुष्य को विवध संपर्कों एवं संबन्धों की आवश्यकता होती है जिसमें वह पूर्णत्व प्राप्त कर सके । खान-पान, वस्त्र इत्यादि से लेकर हमारे चिन्तन-मनन एवं विभिन्न क्रिया कलापों को सामाजिक जीवन की परिधि में ही विकास एवं दिशा प्राप्त होती है । इसलिए मनुष्य को मानव के सहयोग के साथ साथ सामाजिक सहयोग की अपेक्षा होती है।

यह सुविदित है कि समाज, व्यक्तियों के पारस्परिक मिलन की उपज है, व्यक्तियों का समूह है । बाल्यकाल से लेकर मनुष्य जब तक बडा होता है तब तक उसे निरन्तर दूसरों के सहयोग की आवश्यकता पडती है । व्यक्तियों के पारस्परिक

संपर्क तथा संबन्ध समाज का मूलाधार है । समाज में व्यक्ति प्रायः एक दूसरे के पूरक हुआ करते हैं । परिवार में जिस प्रकार पारस्परिक आदान-प्रदान के द्वारा व्यक्तिगत अभाव एवं आवश्यकतायें पूर्ण होती हैं उसी प्रकार समाज के विभिन्न संगठनों और संस्थाओं के द्वारा मनुष्यों का पारस्परिक विनिमय चलता है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है । परिवार के समान समाज में भी एक प्रकार की पारस्परिक निर्भरता होनी है ।

कबीर एवं बाइबिलकालीन समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अंधकार, अव्यवस्था और विश्रृंखलता फैली हुई थी । भारतीय समाज अपने वर्णाश्रमधर्म के कारण और बाइबिलकालीन पश्चिम एशियाई समाज असंख्य जाति, उपजाति, कुल, उपकुलों के कारण छिन्न-भिन्न हो गया । इन जातियों में भी विभिन्न जातियाँ बन गयी थीं ज़िनमें छुआ-छूत तथा ऊँच-नीच का भाव और भी बढ गया था । पूरा वातावरण दुर्गुणों से भरपूर था, भ्रष्टाचार भी सब कहीं फैल रहा था । इस माहौल में सबसे अधिक उत्पीडित, सज्जन एवं साधारण जनता ही थी । इस जनता को जागृत कर ऊपर उठाने का कार्य कबीर एवं बाइबिल कालीन सुधारकों ने किया । इस ग्रन्थ में समाज की चिन्ता, व्यथा और मनोदशा उभर कर ऊपर आ गई । सामाजिक दुख-सुख को, सामाजिक वेदना-व्यथा को उन्होंने अपने दुख-सुख और अपनी वेदना-व्यथा के रूप में अनुभव किया और जो भी समाज-विरोधी तत्व उन्हें दिखाई पडे, उनके प्रति उन्होंने गहरे रोष, क्षोभ की अभिव्यक्ति की । उन्होंने समाज में व्याप्त रूढियों, कुरीतियों एवं अंधविश्वासों से लोगों को विमुक्त कर सच्ची चेतना-युक्त अच्छे व्यक्ति के रूप में परिवर्तित करने का प्रयत्न किया ।

सुप्त, आशाहीन एवं अज्ञानांधकार में पडे हुए उन लोगों को देखकर सतर्क रहने का उपदेश देते हुए कबीर ने कहा - यह संसार अंधकारमय काजल की कोठरी

है और इस कोठरी में अपने कर्मों के कपाट भी मसिमय अर्थात् अंधकारमय है । इसमें घुसनेवाले को कालिख लग ही जाती है । लेकिन जो इस अज्ञान के घेरे में भी ईश्वर की शरण लेते हैं, प्रभु के प्रति जिनके हृदय में भक्ति जागृत होती है वे इस संसाररूपी काजल की कोठरी में घुस कर वासनाओं की कालिमा से अछूता ही निकल आता है । यथा -

" काजल केरी कोठरी, काजल ही का कोट
बरिहारी वा दास की, रहै रांम की ओट। [१]

अज्ञानांधकार को छोडकर ज्ञान-प्रकाश ईश्वर पर निर्भर रहने का आदेश बाइबिल में भी देख सकते हैं । इसमें यों बताते हैं — " जब तक ज्योति तुम्हारे पास है, आगे बढते रहो । कहीं ऐसा न हो कि अन्धकार तुम को घेर ले । जो अंधकार में चलता है, वह नहीं जानता कि वह कहाँ जा रहा है । जब तक ज्योति तुम्हारे पास है, ज्योति में विश्वास करो, जिससे तुम ज्योति की सन्तति बन जाओ । [२] यहाँ कबीर-साहित्य एवं बाइबिल समान भाव से व्यक्त करते हैं कि कर्मभोग केलिए संसार में या सामाजिक कार्यकलापों में आना तो अनिवार्य है, पर सच्चा मनवाला भक्त संसार में लिप्त नहीं होता ।

समाज को जागृत करने के उद्देश्य से कबीर साहित्य एवं बाइबिल में कही गयी वाणी अक्षुण्ण हैं । हृदय की पवित्रता पर दोनों ग्रन्थ विशेष महत्व देते हैं । उनके अनुसार हृदय की पवित्रता केलिए विधि और निषेध की आवश्यकताहै । हृदय को शुद्ध रखने केलिए कुछ कार्य अपनाने हैं और कुछ छोडने हैं ।

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २१९.८
२. सं. जॉन नया विधान १२: ३५-३६

उदाहरण केलिए उदारता, शील, क्षमा, संतोष, दया, विवेक आदि ग्रहण करने योग्य हैं और काम, क्रोध, लोभ, कपट, तृष्णा, कनक-और कामिनी, निन्दा आदि छोडने येग्य हैं । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल इसमें एकमत हैं कि विधि-निषेध का वास्तविक ज्ञान तब तक नहीं होता, जब तक कि गुरु से मार्ग दर्शन न प्राप्त हो । गुरु या सत्संग के बिना ज्ञान अधूरा है । वही ज्ञान का दीपक हाथ में देकर सन्मार्ग की ओर अग्रसार करता है । समाज में मुट्टी भर ऐसे लोग भी देखने को मिलते हैं जो मात्र सच्चाई एवं भलाई पर बल देते हैं । इन ग्रन्थों का यही आह्वान हैं कि सत्यमार्ग पर जो चलते हैं और जो सत्यरूपी मंगलतत्व को बहुमूल्य समझते हैं उनसे सत्संग करना वैयक्तिक एवं सामाजिक प्रगति केलिए अनिवार्य है । इसको व्यक्त करते हुए कबीर यों बताते हैं --

कबीर संगति साधु की, नित प्रति कीजै जाइ
दुरमति दूर बहावसी, देसी सुमति बताइ । [१]

साधु की संगति करने में तत्परता दिखानी चाहिए । उसके फलस्वरूप दुर्बुद्धि दूर होगी और सुबुद्धि प्राप्त हो जायगी । ज्योतिरूपी सच्चाई या सन्मार्ग पर चलने वालों को स्वीकारने की बात बाइबिल ग्रन्थकार चित्रित करते हैं । कुसंग के जाल में न पडने का उपदेश नौजवानों को देते हुए बाइबिल के सूक्ति ग्रन्थकार यों लिखते हैं - जो बुद्धिमानों का सत्संग करता है, वह बुद्धिमान बनेगा, किन्तु जो मूर्खों से मेल-जोल रखता है, वह संकट में पडेगा । ''[२] दोनों ग्रन्थ इन उदाहरणों द्वारा स्पष्ट दिखाते हैं कि समाज को जागृत करने एवं व्यक्ति व्यक्ति के उद्धार केलिए सत्संग एक अनिवार्य अंग ही है ।

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ १५६.२२
२. पुराना विधान सूक्ति-ग्रन्थ १३:२०

कबीर एवं बाइबिल के सुधारकों की वाणी ने अपने समय की सीमाओं का अतिक्रमण कर सत्य से साक्षात्कार किया और मानव की सोई हुई चेतना को उद्‌बुद्ध कर एक ऐसे विश्व-धर्म की रूपरेखा का निर्माण किया जहाँ धर्म, जाति, वर्ग और संप्रदाय बहुत पीछे छूट गये । अपने समय के असंगठित दीन हीन उद्विग्न समाज को देखकर इन्होंने परस्पर प्रेम और सहिष्णुता, क्षमा की भावना का प्रसार किया । मानव को समझाते हुए कबीर कहते हैं कि पानी के बुद्‌बुद् जैसी ही मनुष्य जाति नश्वर है । जैसे प्रातःकाल देखते-देखते नक्षत्र अस्त हो जाते हैं, वैसे ही मनुष्य एक दिन समाप्त हो जाता है ।

पांनी केरा बुदबुदा, अस मानुस की जाति
देखत ही छिपि जाइंगे, ज्यों तारे परभाति । [१]

इसलिए कबीर का आह्‌वान है कि जो बहुमूल्य जीवन हमें मिला है उसको परोपकार एवं सत्कर्म कर उपयोगी बनना ही उचित है । मानव जीवन की क्षणिकता दिखाकर अच्छे ढंग से जीने का आह्‌वान बाइबिल में यो मिलती " तू मनुष्यों को इस तरह उठा ले जाता है, जिस तरह सबेरा होने पर स्वप्न मिट जाता हैं, जिस तरह घास प्रातःकाल उगकर लहलहाती है और सन्ध्या तक मुरझा कर सूख जाती है । [२]

कबीर ने वस्तव में व्यक्ति और समाज को भिन्न नहीं माना । वह समाज के सुधार का आधार सांस्कृतिक विकास को मानते थे और इसकी इकाई व्यक्ति है । इसी कारण दोनों ग्रन्थों ने व्यक्ति को उन समस्त आचरणों से दूर रहने का उपदेश

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २००
२. पुराना विधान स्तोत्र-ग्रन्थ ९०:५-६

दिया जो अहंकार को पुष्ट करते हैं । सामाजिक विषमता को मिटाकर एकता स्थापित करना ही उनका लक्ष्य था । तत्कालीन समाज में व्याप्त बहुविध शोषकों के कराल हाथों के आगे जागृत रहने एवं शोषण को समाप्त करने का आह्वान भी दोनों ग्रन्थ देते हैं । इसकेलिए समाज द्वारा स्वीकृत मानवीय स्वतंत्रता को आवश्यक एवं अबाधित स्वतंत्रता को निरर्थक मानते हैं । कबीर का आदर्श मनुष्य वह साधु पुरुष है जो जाति-पांति या ऊँच-नीच भेदभाव से बहुत ऊपर उठ गया है और सामाजिक सेवा को अपना धर्म मानता है --

जाति न पूछो साधु की पूछि लीजियो ज्ञान
मोल करो तरवारि का, धरी रहन दो म्यान ।

अतः कबीर जाति की अपेक्षा कर्म के दर्शन को ज्यादा महत्वपूर्ण मानते हैं । कर्म को अगर श्रेष्ठ माना जाय तो निश्चित रूप से जुलाहा, कारीगर, शिल्पी आदि जातियाँ ज्यादा श्रेष्ठ हैं । मानव को आपसी भिन्नता छोडकर एक होकर जीने का आह्वान बाइबिल भी देता है और कहता है कि मानव एक ही शरीर के विवध अंग हैं सबका धर्म समान श्रेष्ठ है - मनुष्य का शरीर एक है, यद्यपि उसके बहुत-से अंग होते हैं और सभी अंग, अनेक होते हुए भी, एक ही शरीर बन जाते हैं । हम यहूदी हो या यूनानी, दास हों या स्वतंत्र, पुरुष हो या स्त्री, हम सब के सब एक ही आत्मा ग्रहण कर एक ही शरीर बन गये हैं । [१]

सारांशतः कबीर-साहित्य एवं बाइबिल ने जाति-पांत, रूढि ग्रस्त, परंपरा पर आधारित समाज का विरोध कर बिखरी हुई, टुकडों में बंटी हुई और दबी पिसी मानवता को एक मिलन-विन्दु पर लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया ।

---

१ संत पोल कुरिन्तियों के नाम पहला पत्र १२:१२-१३

सामाजिक जीवन में भाई-चारे का सन्देश

समाज में न्याय और सत्य का आचरण सामूहिक रूप में कार्यान्वित हो जाना चाहिए । तभी समाज श्रेष्ठता प्राप्त करता है । जीवन न्याय और अन्याय के बीच का, सत्य और असत्य के बीच का समझौता है । सत्य ओर न्याय से युक्त व्यक्ति सदा आदर्श जीवन बिताता है । नैतिक मूल्यों पर बल देने वाले व्यक्तियों के जीवन में सर्वदा उन्नत गुणों एवं उदात्त भावनाओं की उपस्थिति रहती है । उसमें स्वचिन्ता जितनी है उसी मात्रा में वह ईश्वर और अपरों के बारे में भी सोचता रहता है । उसमें करुणा, दया, सहानुभूति आदि भावनाएँ होती हैं । दूसरों के प्रति प्रेमभावना युक्त व्यक्ति परोपकार केलिए अपने जीवन तक उत्सर्ग कर देते हैं । पंचेद्रियों को अपने वश में करना, दूसरों को कष्ट न देना, स्वयं कष्ट सहन करना आदि कबीर-साहित्य एवं बाइबिल के मुख्य विषय हैं । अपनी इन्द्रियों को वश में कर लेनेवाला मनुष्य ही सच्चा मनुष्य है । वह विषयवासनाओं से दूर रहने के कारण स्वार्थ से ऊपर उठता है । उस पर ईश्वरीय कृपा होने के नाते वह इन अधम कृत्यों से दूर रहता है ।

अपने आचरण के द्वारा ही व्यक्ति समाज की श्रद्धा का पात्र बनने में समर्थ होता है । समाज में उन्हें सज्जन नाम देकर उनका आदर किया जाता है । अपने आचरण के द्वारा मनुष्य दीर्धजीवी हो सकता है, इहलोक व परलोक में धन-ऐश्वर्य तथा कीर्तिलाभ कर सकता है । दुराचारी या दुर्जन व्यक्ति दुखी और अल्पायु होता है । कबीरसाहित्य एवं बाइबिल का यही उपदेश है कि मनुष्य को जीवन की प्रगति केलिए सदा शुद्ध आचरण करना चाहिए ।

पिछले अध्यायों से स्पष्ट हो चुका है कि कबीर एवं बाइबिलकालीन समाज

पारस्परिक द्वेष, घृणा, झगडा आदि दुर्गुणों से पूर्ण था । जनता अत्याचार, अनाचार तथा स्वेच्छाचार में डूब चुकी थी । समाज में व्याप्त अनैतिक आचरणों से लोगों को रक्षा देने के उद्देश्य से कबीरसाहित्य एवं बाइबिल ने अपनी वाणी लोगों के समाने प्रस्तुत कीं । क्योंकि मनुष्य को शिष्टता एवं सभ्यतायुक्त बनने के साथ साथ सहजीवियों के सुख-दुख में भी सहानुभूति प्रदर्शित करना है । इसी कारण दोनों रचनाओं में दया, क्षमा, प्रेम, करुणा, विनम्रता, सहानुभूति आदि विषयों को भी स्थान दिया गया है । कबीर अपनी वाणी द्वारा ईश्वर में निहित नैतिकता एवं लोगों से उनके व्यवहार का चित्रण देते हैं । उनकी राय में ईश्वर के सिवा कोई अन्य हितैषी नहीं है । वे इतना उदार एवं समभावना रखनेवाले हैं कि वे गुण और अवगुण में अन्तर नहीं करते, पापी और पुण्यात्मा का भेद नहीं मानते । जीवमात्र के प्रति अनुराग रखते हैं, उस पर अनुग्रह करते हैं । सामान्य लोग तो स्वार्थ से बंधे हुए है –

कबीर सिरजनहार बिन, मेरा हितू न कोई
गुन औगुन बिहडै नहीं, स्वारथ बंधी लोई ।'' [१]

बाइबिल भी ईश्वर को सच्चे हितैषी के रूप में दिखाता है । ईश्वर की उदारता एवं समभावना के बारे में बाइबिल यों बताता है – ईश्वर भले और बुरे, दोनों पर अपना सूर्य उगाता है तथा धर्मी और अधर्मी दोनों पर पानी बरसाता है ।'' [२] सर्वोपरि ईश्वर- प्रेम की महानता पर बल देकर प्रभु की प्राप्ति केलिए लोगों को जगाने और तद्वारा भाई-चारे का सन्देश देने का परिश्रम भी कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में देखा जा सकता है । ईश्वर से ही समस्त भलाई का आविर्भाव है ।

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १६६.१७
२. नया विधान संत मात्यु ५:४५

कबीर आह्वान करते हैं कि ईश्वर की ओर भक्ति होना परम आवश्यक है । इसके द्वारा ही मनुष्य सर्वगुण-संपन्न बन जाता है । क्योंकि ईश्वर सर्वगुण संपन्न है --

करता केरे बहुत गुन, औगुन कोई नांहि
जौ दिल खोजौं आपनी, तौ सब औगुन मुझ मांहि ।'' [१]

कबीर व्यक्त करते हैं कि प्रभु में सभी गुण विद्यमान हैं याने वे पूर्ण हैं । उनमें कोई दोष नहीं है । जो पूर्ण है वह अपूर्ण का उद्धार कर सकता है । इसलिए कबीरदास अपनी वाणी द्वारा पूर्ण ईश्वर की ओर मुडने का उपदेश भी अपूर्ण मनुष्यों को देते हैं । बाइबिल का आदेश भी इससे समानता रखता है । ईश्वर की पूर्णता का सहारा लेकर मानव को अपनी अपूर्णता दूर करते हुए सारे जगत् में भलाई करनी चाहिए यही बाइबिल का अनुरोध है । ईसा मसीह कहते हैं -'' तुम पूर्ण बनो जैसे तुम्हारा ईश्वर (स्वर्गिक पिता) पूर्ण है ।'' [२]

परिचय, घनिष्ठता व मित्रता सामाजिक मेल-जोल का क्रमिक विकास है । इस श्रृंखला की अंतिम सीढ़ी ही प्रेम है । इस चराचर विश्व की संरचना प्रेम का ही प्रतिफल है । प्रेम ही जीवन का सार है । प्रेम से ही सहृदयता का भाव जन्म लेता है । जब व्यक्ति के हृदय में प्रेमभाव उत्पन्न होता है तभी वह दूसरों के बारे में सोचता है और परोपकार की ओर मुडता है । नहीं तो वह स्वार्थी बन जाता है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल पूर्ण रूप से भाई-चारे के सन्देश से युक्त हैं । निस्वार्थ एवं अहंकाररहित होकर सबको प्रेम करने का उपदेश दोनों ग्रन्थ देते हैं । कबीर की राय में स्नेह-शून्य हृदय पर ईश्वर का प्रभाव पडना असंभव है क्योंकि उसका हृदय

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १६१.५
२. नया विधान संत मात्यु ५:४८

पत्थर के समान कठोर है, वह कभी नहीं गलतां । पत्थर के ऊपर जब वर्षा पडती है तो उस पर लगी हुई मिट्टी गलकर गीली हो जाती है परंतु पत्थर पूर्ववत् कठोर रहता है । इसी प्रकार ईश्वर के अनुग्रह की वर्षा सभी के ऊपर है परंतु सहृदयता एवं स्नेहपूर्ण व्यक्ति उससे आद्र होता है । स्नेहविहीन पर उसका कोई प्रभाव नहीं पडता । वह स्नेह भाव से शून्य शुष्क बना रहता है । दूसरों की सहायता में भी वे अशक्त हो जाते हैं –

झिरमिर झिरमिर बरखिया, पाहन ऊपरी मेह
माटि गलि सैंजल भई, पाहन वोही तेह ।'' [१]

भाई-चारे का सन्देश देते हुए बाइबिल यों सिखाता है कि -'' अपने शत्रु से प्रेम करो औऱ जो तुम पर अत्याचार करते हैं उनकेलिए प्रार्थना करो ।'' [२] अपने पर अत्याचार करनेवाले शत्रुओं केलिए भी ईश्वर से प्रार्थना करनेवाले व्यक्ति का अवश्य ही कल्याण हो जाता है और उसके द्वारा समाज में भी भलाई होती है ।

कबीर एवं बाइबिल के सुधारकों केलिए जनता ही सब कुछ थी और वह भी गरीब जनता, वह जनता जिसे धर्म-शास्त्रों को पढने और सुनने का अधिकार नहीं था, जिसे जीवन में धार्मिक शान्ति ग्रहण करने का कोई आश्रय नहीं था । जनहित की भावना कबीर के हृदय में वर्तमान थी । दलित, गिरे और पिछडे वर्गों के उत्थान का इन ग्रन्थों में संदेश है । ये सुधारक वास्तव में जनता के विचारक, जनता के धर्माचार्य और जनता के प्रतिनिधि थे । उनकी वाणी के शब्द-शब्द से जनहित की भावना झंकृत होती है ।

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २१६
२. नया विधान संत मात्यु ५:४४

ये दोनों ग्रन्थ जीव मात्र को परम पिता की संतान मानते हैं और सबको एक ही स्तर पर लाकर खडा कर देते हैं । उनकी वाणी मानव-एकता एवं भाई-चारे की महत्ता सिद्ध करती है । कबीर ने प्रत्येक प्रकार से ऐसे लोगों को चेतावनी दी जो धन, धाम और धरा के ऐश्वर्य से मदविह्वल होकर मानव को भूल बैठे थे और मानव को तुच्छ एवं हेय समझते थे ।

कबीर गरबु न कीजुअै, ऊँचा देखि आवास
काल्हि परौ भुइ लोटनां, ऊपरि जांमै घास ।''

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल की ओर दृष्टि डालने पर पता चलता है कि सबसे बडी भेंट जो मनुष्य दूसरों को दे सकता है वह है स्नेह और शान्ति । इसकेलिए पैसा नहीं लगता और महँगी भी नहीं लगती । इसकेलिए उदार हृदय चाहिए । संत जोन के पत्र में लिखा गया है कि -'' बच्चे ! हम वचन से नहीं - कर्म से, मुख से नहीं हृदय से एक दूसरे को प्यार करें।'' [१] दूसरों से प्यार एवं परोपकार करने से समाज में शान्ति का वातावरण बढता जाता है । पारस्परिक विरोध की भावना घटती जाती है । आपस में भाईचारे का भाव बढता जाता है ।

संगठित मानव-समाज की कल्पना

कबीर एवं बाइबिल का युग विश्रृंखलता, अलगाव और हिंसा-प्रतिहिंसा का युग था । दोनों समाजों में विवध संप्रदाय और उपसंप्रदाय, जातियाँ, उपजातियाँ नित्य प्रति बढती जा रही थीं । आध्यात्मिकता या दार्शनिकता और साधना के धरातल पर भी प्रस्तुत समाज व्यर्थता और आडंबर तथा ढोंग के कारण बहुत कुछ

---

१ संत जॉन का पहला पत्र ३:१८

टूट चुका था । कबीर एवं बाइबिल के सुधारकों ने इन सबको देखा, अनुभव किया और इनको समाप्त करने की प्रेरणा भी पायी । परंपरा से आनेवाली समस्त मान्यताओं को किस प्रकार युग के अनुकूल परिवर्तित किया जा सकता है, किस सीमा तक उनका खंडन या मंडन किया जा सकता है, इसकी अन्तर्दृष्टि इन सुधारकों में थी । यही कारण है कि कबीर ने शास्त्रीय ज्ञान की उपेक्षा करते हुए जन-मानस के आवेगों और आकाँक्षाओं को समझा और जाति-भेद एवं कर्म-कांडों का विरोध करते हुए उन्होंने ऐसे विश्वधर्म की परिकल्पना की जिसमें विविध वर्गों के लोग बिना किसी बाधा के समान रूप से एक पंक्ति में बैठ सकते थे । जाति-भेद एवं ऊँच-नीच भाव को प्रमुखता देनेवाले लोगों से कबीर यों पूछते हैं –

जो तूं बाभन वभनी जाया । तौ आन बाट होआ काहे न आया
जे तूं तुरक तुरुकिनीं जाया । तौ भीतरि खतनां क्यूं न कराया ।
कहै कबीर मद्धिम नहिं कोई । सो भद्धिम जा मुखि रांम न होई ।'' [१]

यहाँ कबीर व्यक्त करते हैं कि कोई जन्म से नीच नहीं है । नीच वही है जिसके मुख में भगवान् राम का नाम नहीं है । उच्च-नीच की यही प्रथा बाइबिल की यहूदी जनता के बीच में प्रचलित थी । लेकिन इसको मिटाते हुए बाइबिल का एक सुधारक संत पत्रोस बताते हैं कि -'' किसी भी मनुष्य को अशुद्ध अथवा अपवित्र नहीं मानना चाहिए ।'' [२]

कबीर एवं बाइबिलकालीन समय में समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अंधकार, अव्यवस्था और विश्रृखलता फैली हुई थी । हिन्दू, मुसलमान और यहूदी समाजों

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १०६.१८२
२. नया विधान प्रेरित चरित १०:२८

की धार्मिक और व्यावहारिक सभी बातों में आडंबर बढता जा रहा था । इस काल में धर्म समाज को जोडने की अपेक्षा उसे तोडने में अधिक सक्रिय था । भारत में हिन्दू-मुसलमान के दो अलग-अलग समाज थे और दोनों की अलग-अलग व्यवस्थायें थीं । हिन्दू समाज अपनी परंपरागत मान्यताओं में बह रह था और मुसलमान समाज भी अपने संस्कार को बल देकर ही बना हुआ था । दोनों अपने-अपने धर्म को श्रेष्ठ सिद्ध करने में निरत थे । वे धर्म के असली स्वरूप को भूलकर आडंबर एवं मिथ्यात्व के पूजारी हो गये थे । बाइबिलकालीन स्थिति भी इससे भिन्न न थी । बाइबिल के एशया के ग्रन्थ में बताते हैं कि यहूदी लोगों ने नियमों की रक्षा का गलत अर्थ स्वीकार किया । उन्होंने प्रार्थना, उपवास एवं मन्दिरों में बलि अर्पित करके ईश्वर के नियमों का पालन करने की कोशिश की । उन्होंने अपने प्रस्तुत बाहरी आचारों द्वारा सोचा कि अपने इन कृत्यों से ईश्वर उन पर खुश होकर उनकी रक्षा व मार्गदर्शन करने केलिए विवश किया जायेगा । इस प्रकार उन्होंने प्रस्तुत गलतफहमी की कि अपनी मुक्ति केलिए प्रस्तुत बाहरी आचार ही काफी है । बाइबिल के शास्त्री एवं फरीसी नियमों का यथावत् पालन कर बाह्य तौर पर विधिवादी होने का परिचय देते थे, लेकिन नियमों का मूल अर्थ समझने में वे पूर्णतः असमर्थ थे । उन्हें अपनी मानवीय परंपराओं तथा नियमों के कठोर पालन पर गर्व था । वे ईश्वर एवं पडोसी के प्रति उत्तम व्यवहार नहीं करते थे । यहूदी होने के कारण वे अपनी जाति को ऊँचा मानते थे । अतः वे दूसरों को निम्न दृष्टि से देखते थे तथा उनका यह मानना था कि गैर यहूदी ईश्वर की चुनी हुई जाति नहीं है । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि कबीर एवं बाइबिलकालीन समाज भेदभावों से युक्त, अनैतिक रास्ते को अपनाकर चलने की अवस्था में था ।

समाज में व्याप्त प्रस्तुत विषैली व्यवस्था एवं भिन्नता को जड से उखाडने

की स्थापना करना ही उनका लक्ष्य था । तरह तरह के कुकृत्यों के इस माहौल में सबसे अधिक उत्पीडित, सज्जन एवं साधारण जनता ही थी । जीवन-निर्वाह केलिए आर्थिक समस्या ही उनके जीवन की मूल समस्या बन गयी थी । वास्तव में तत्कालीन समाज में निहित जाति-धर्म के भेदभाव जनता की दुर्गति के कारण थे।

इन अधःपतनों से समाज की रक्षा ही इन सुधारकों का मुख्य लक्ष्य था । आर्थिक -विषमता धनी और निर्धन का भेदभाव भी समाज की विकासोन्मुखता केलिए बाधक है -यही विचार उनके मन में उभर आया । समरूपता, अन्योन्याश्रित होना, सहकारिता आदि जो गुण समाज की प्रगति केलिए अनिवार्य हैं इस पर उन्होंने बल दिया । व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर एक दूकरे केलिए काम करना और. अपने काम के द्वारा दूसरों का कल्याण करना यही समाज की मूलगत भावना होनी चाहिए । कबीर साहित्य एवं बाइबिल में प्रतिपादित सामाजिक बातें इनकी द्योतक हैं ।

कबीरदास न केवल अपने युग की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अवस्था पर टीका-टिप्पणी ही करते हैं अपितु उनकी समस्त प्रतिभा एक सुसंगठित, आदर्श समाज की स्थापना में केन्द्रित हो जाती है । भक्ति में तल्लीन होने पर भी वे अपने युग में व्याप्त सामाजिक मूल्यों के ह्रास से विमुख नहीं रह सके तथा इस ह्रास से खिन्न उनका हृदय चीत्कार कर ही उठा । उनके अपने कर्तव्य की ओर इशारा करते हुए वे बताते हैं —

कबीर कहता जात है, सुनता है सब कोई
राम कहें फल होइगा, नातर भला न केई ।'' [१]

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १५२

यहाँ कबीर व्यक्त बताते हैं कि वे बंराबर कहते ही रहते हैं सभी उनकी बात सुनते भी हैं किन्तु उनके उपदेश के अनुरूप कोई आचरण नहीं करता । सद्वचनों के अनुरूप जो जीता है उसके जीवन एवं उस समाज में भलाई सुनिश्चित है । सद्वचनों के पालन की अनिवार्यता एवं उस में निहित भलाई के बारे में कबीर एक और वाणी में स्पष्ट करते हैं कि पेड में जैसा फल लगता है तदनुरूप अन्त तक उसका संरक्षण हो तो वह सार्थक हो जाता है, ऐसे ही सद्वचनों में जो उपदेश निहित है उसका अन्त तक निर्वाह हो जाय तो जीवन सार्थक एवं फलदायक हो जाता है । जैसे पैसा पैसा जोडने से लाख करोड एकत्र हो जाता है, वैसे ही उपदेश के अनुसार निरन्तर प्रयत्न से अंत में पूर्णता प्राप्त हो जाती है –

जैसी उपजै पेड तैं, जौ तैसी निबहै औरि
कौडी कौडी जोडता, जौरै लाख करोरि ।'' [१]

बाइबिल के सुधारकों ने विशेषतः येशु ने लंबे समय से चली आ रही यहूदी परंपरा के विरुद्ध कार्य कर अपने अनोखे व्यक्तित्व को उजागर किया । येशु ख्रीस्त एक ऐसे समाज में रहे जहाँ उच्च श्रेणी का कोई भी व्यक्ति निम्नवर्ग याने गरीब, तिरस्कृत और नाकेदारों के साथ भोजन नहीं करता था, लेकिन येशु इन सबों के साथ खाये-पिये, घूमे-फिरे और उन्होंने इन से मित्रता का संबन्ध स्थापित किया । [२] इस प्रकार का कार्य उस समय निर्भीक तथा साहसिक माना जाता था । यह यहूदी समाज में प्रचलित जाति-व्यवस्था और सामाजिक ढाँचे के विरुद्ध एक बडी चुनौती थी । इसी प्रकार दूसरी ओर यह समाज के रीति रिवाज़ और लोगों की मनोवृत्ति में परिवर्तन लाने का आह्वान भी था । प्रस्तुत प्रवृत्ति के द्वारा उन्होंने एक ऐसे समाज

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १८६
२. नया विधान संत लूक १९:१-१०

की कल्पना की, जहाँ समानता, न्याय तथा भाईचारा हो, ऊँच-नीच की भावना न हो बल्कि सभी भाई बहनों की भांति एक साथ एकत्रित हो । वहाँ मालिक या नौकर, गुरु या शिष्य, सवर्ण या अवर्ण, अमीर या गरीब जैसे भेद-भाव भूल जाते हैं । बाइबिल बताता है कि ईश्वर की कृपा हमारे साथ है, तो दूसरे के साथ भी है, इसलिए सभी भाई बहन है । सब ईश्वर की दृष्टि में समान है, क्योंकि ईश्वर प्रत्येक मानव में मनुष्य बन गया है। समाज के उपेक्षित एवं निम्न स्तर के माने जानेवाले जैसे कि बहरे, लँगडे, अंधे और भूखे आदि पर ईसा ने दया दिखाई । कानून के नाम पर मानवों पर की गई दासता के विरुद्ध उन्होंने प्रतिवाद किया या विरोध प्रकट किया, पापियों, कर वसूल करनेवालों (नाकेदारों) बच्चों और औरतों के अपने दल में शामिल होने दिया और पददलितों, गरीबों तथा संक्रामक रोगियों का उद्धार किया। याने उनकी दृष्टि में कोई निम्न या तुच्छ नहीं थे सब ईश्वर की सन्तान थे। ईश्वर हर व्यक्ति को जैसा वह है उसी रूप में उसे प्यार करता है । मनुष्य की गरीबी, उसकी असफलता, उसका रूप-रंग, उसकी जाति, उसकी बलहीनता, उसकी पापमयता आदि उसके प्रति ईश्वर के प्रेम में बाधा नहीं डालतीं । प्रस्तुत बातें बाइबिल के ज़रिए कहकर येशु लोगों से अनुरोघ करते हैं कि मनुष्यत्वपूर्ण समाज ही सच्चा समाज है । जहाँ मानव आपस में वैरद्वेष एवं घृणाभाव रखते हैं यह निश्चित है कि उनके बीच में ईश्वर नहीं बसेंगे । भाई से प्रेम किये बिना की जानेवाली सारी भक्ति असंगत है, अर्थशून्य है ।

कबीरसाहित्य एवं बाइबिल पूर्ण रूप में भाईचारे का संदेश देकर कहते हैं कि समाज के हरेक व्यक्ति को उच्चादर्शवान, चरित्रवान, सर्वगुणसंपन्न, परोपकारी बनना आवश्यक है तद्वारा वही समाज एक उच्चकोटि का समाज बन जाता है । समाज में ऐक्य स्थापित करनेवाला और समाज केलिए सर्वस्व उत्सर्ग करनेवाला

व्यक्ति ही व्यक्ति है । इसके द्वारा समाज में मानवीय मूल्य एवं चिन्तनशीलता का आविर्भाव होता है ।. ऐसे समाज स्वार्थरहित होकर दूसरों के हित केलिए खडा रहता है ।

समन्वयात्मकता

मध्ययुग के विचारक कबीरदास एवं बाइबिलकालीन ईसा एवं अन्य सुधारक नबीगण सडी हुई प्राचीन रूढियों को त्याग कर नवीन क्रान्ति लानेवाले स्वतंत्र विचारकों के अन्तर्गत आते हैं जिनके सामने प्राचीन रूढिवादी आडंबर कोई महत्व नहीं रखते थे । ये लोग अत्यन्त सरल और उदार वृत्ति के थे, जिन की भावना और जिनके विचार मानवधर्म और मानवकल्याण की भावना को लेकर चलते थे । उन्होंने समाज में व्याप्त विश्रृंखल वातावरण को मर्यादा प्रदान की असात्विकता को सात्विकता प्रदान की और दुराचरण को सदाचरण में बदलने का प्रयास किया ।

भारतीय संस्कृति के अनुसार मनुष्य के जीवन का लक्ष्य चार पुरुषार्थ माने गये हैं -धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष । सामाजिक जीवन में इनकी बडी प्रमुखता रही है। धर्म से मतलब व्यक्ति के दायित्व से है । समाज में तरह तरह के व्यक्ति दिखाई पडते हैं । इनकी श्रेणियों के अनुसार इनका दायित्व भी बदलता रहता है । अपना अपना धर्म निभाना प्रत्येक मनुष्य केलिए मोक्षप्राप्ति का सहायक बन जाता है । कबीरसाहित्य एवं बाइबिल व्यष्टिधर्म और समष्टि धर्म दोनों में विश्वास करते थे। व्यष्टि धर्म के अंतर्गत मनुष्य केलिए सद्‌गुणों का पालन उन्होंने बहुत ही आवश्यक माना है । इनमें सत्य, अहिंसा, अस्तेय, परोपकार, दया, क्षमा, समभाव, मधुरभाषण आदि आते हैं ।

युग का प्रतिनिधि अथवा लोकनायक उसे कहते हैं जो विभिन्न विरोधों में समन्वय स्थापित कर सकें । कबीर ने हिन्दुओं और मुसलमानों के पारस्परिक विरोधों को दूर करने का प्रयास किया तो बाइबिल के सुधारकों ने यहूदी एवं गैर-यहूदियों के बीच के अन्तर-द्वन्द्वों को मिटाने का परिश्रम किया । उन्होंने समाज के उभरते हुए व्यापक संघर्ष की विभीषिका को पहचाना और उसकी आग से अपने समाज को बचाने का प्रबल प्रयत्न किया । कबीर का अध्ययन करनेवाले व्यक्ति प्रायः उनको विभिन्न धर्मों का समन्वयकारी सुधारक मानते हैं । कबीर की समन्वय दृष्टि समस्त धर्म-मतों में निहित व्यापक मानवीय मूल्यों के ग्रहण पर प्रतिष्ठित है । उनके मन में मनुष्य की परिकल्पना व्यापक मूल्यों के आधार पर है और इस अखंड विश्वास के सहारे साहस के साथ उन्होंने समस्त धार्मिक विधि-विधान को अस्वीकार कर मनुष्य को सहज मूल्यों पर प्रतिष्ठित किया है । यह वह मानव-मिलन की भूमिका है जिसकी प्रतिष्ठा केलिए कवि को जाति-कुल, धर्म-मत, संस्कार संप्रदाय, विश्वास तथा शास्त्र आदि के भ्रमजाल को छिन्न-भिन्न करना पडा । कबीर एवं बाइबिल के सुधारक गण यह जानते थे कि मूल्यों के सांस्कृतिक समन्वय की स्थिति में ही मानव-समाज के बीच से अशान्ति, हिंसा, भ्रष्टता और आपाधापी दूर हो सकती है। इसलिए वे इस समन्वय भावना से प्रेरित होकर खंडन और विरोध के मार्ग से गुज़रे हैं । कबीर के युग में देखा जा सकता है कि वहाँ उस समय हिन्दू-मुस्लिम जातियों का अन्तर्विरोध पारस्परिक ही नहीं था, पर इन जातियों में अपने आन्तरिक विरोध भी थे । प्रस्तुत स्थितिविशेष बाइबिलकालीन पश्चिमी एशियाई समाज में भी देख सकते हैं । वहाँ के यहूदी एवं गैर-यहूदियों के बीच झगडा होने के साथ ही साथ यहूदी जाति के उपविभाग जैसे यहूदी, फरीसी, शास्त्री, सदूकी आदि के बीच भी अन्तर्विरोध चलते रहते थे । इस प्रकार दोनों समाज के जनजीवन में दिग्भ्रम की अवस्था भी था । इसी कारण सामान्य स्तर के चिन्तनशील व्यक्ति को अपने मंगल

का मार्ग बना लेना कठिन सा प्रतीत होता था । मानव-मानव के बीच में सद्भावना और सहयोग के स्थान पर जातीय कटुता तथा ऊँच-नीच की भावना से जनित पारस्परिक वैमनस्य और घृणा के भाव जाग गये थे । पारस्परिक सहयोग की भावना मृतप्राय होती गयी थी ।

कबीर एवं बाइबिल के सुधारकगण आत्मा को परमात्मा का रूप मानकर सभी प्राणियों में परमात्मा का निवास माननेवाले थे । इसलिए हिन्दू-मुसलमानों को, यहूदी-गैर यहूदियों को आपस में एक दूसरे का विरोध करते और लडते-झगडते देखते हुऐ उन्हें बडा दुख होता था । इन सुधारकों ने लोगों के बीच खडी धार्मिक कट्टरता की दीवारों पर जबरदस्त प्रहार किये । कबीर ने राम, रहीम, केशव, करीम, अल्लाह, खुदा आदि विभिन्न नामों के फेर में न पडकर उन सबके मूल में स्थित सत्य पर विचार करने को कहा । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल की राय में लोग ईश्वर से संबन्धित वास्तविक रहस्य को न समझ कर व्यर्थ ही एक दूसरे को विरोधी समझते हैं । यही भ्रम सभी झगडों की जड है । दोनों ग्रन्थों के सुधारकों ने जाति एवं धन को मूलतः व्यक्ति की उच्चता का आधार न मानकर भक्तिभाव तथा नैतिकता को इस उच्चता के मानदण्ड की गरिमा प्रदान की । उन्होंने वास्तव में जाति एवं उच्च-नीच के नाम पर विश्रृंखल होती हुई जनता को फिर से संगठित करके नवीन प्राण-स्पंदन देने का परिश्रम किया । इन्होंने बार बार यह बात कही कि सभी मनुष्य एक ही मानव समाज के अंग है । कबीर की राय में सारे मनुष्य एक विशाल वृक्ष की विभिन्न शाखाओं के समान है । और बाइबिल के अनुसार सभी व्यक्ति एक ही शरीर के विभिन्न अवयवों के समान परस्पर बन्धित हैं ।[१] सबके मूल की ओर दृष्टि डालने पर उनमें कोई अन्तर नहीं दीखता और न इसी कारण उससे

---

१. संत पोल कोरिन्थियों के नाम पहला पत्र १२:१२

एक दूसरे को पृथक वा ऊँच-नीच समझने का कोई आधार है । यहाँ कबीर पूछते हैं –

हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध, तुम कैसे ब्राह्मण कैसे सूद
छोति करता तुम्ह ही जाए, तौ ग्रभवास कहें कौ आए ।

एकता की भावना का प्रसार और वर्णव्यवस्था का विरोध उस समय के समाज के दो प्रमुख तथ्य थे । कबीर एवं ईसामसीह जानते थे कि हिन्दू और मुसलमानों में,फरीसी, यहूदी एवं गैर-यहूदियों में शारीरिक दृष्टि से कोई अन्तर और भेद नहीं, भेद केवल विचारों और भावों का है । कबीर ने देखा कि हृदय की चरम अनुभूति की दशा में राम और रहीम में कोई अन्तर नहीं रहता । अन्तर केवल उन माध्यमों में है जिनके द्वारा वहाँ तक पहुँचने का प्रयास किया जाता है । इसलिए सुधारक कबीर उन माध्यमों-मन्दिर, पूजा, नमाज़, व्रत और रोजा आदि का खुलकर विरोध करने पर कटिबद्ध थे । कबीर, ईसा एवं सारे नबीगणों ने प्रचलित सारे बाह्याचारों का विरोध किया । उनके मतानुसार बाह्याचार पारस्परिक विरोध के कारण थे । उन्होंने समस्त कट्टरपन और कठमुल्लापन का विरोध, सबको एक दूसरे के निकट लाने केलिए किया । कबीर ने हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही समझाया कि तुम्हारे राम और रहीम दोनों एक ही हैं, इसलिए तुम्हें आपस में मेल से रहना चाहिए। परंतु साधारण जन इस रहस्य को नहीं जानते इसलिए आपस में लड मरते हैं –

कह हिन्दू मोहि राम पियारा, तुरक कहै रहिमाना
आपस में दोइ लरि मुए, मरम न काहू जाना ।

तथा

हिन्दू तुरक की एक राह है, सतगुरु यहै बताई
कहै कबीर सुनौ हो सन्तों, राम न कहेउ खुदाई ।

यहाँ स्पष्ट है कि कबीर के अपने समय में प्रचलित धार्मिक कटुता पर प्रहार करके उन्हें हिला अवश्य किया । इस प्रकार भक्तिमार्गी कबीर ने शताब्दियों से चली आई धार्मिक कट्टरता और सामुदायिक कटुता कम करने में और विभिन्न संप्रदायों को एक दूसरे के समीप लाने में महान योगदान दिया । कबीर के इन्हीं क्रान्तिकारी, मानवतावादी विचारों के कारण कबीर हिन्दू-मुसलमान दोनों जातियों में समान रूप से लोकप्रिय थे । ईसामसीह का कार्य भी इससे भिन्न नहीं है । उन्होंने सभी प्रकार के लोगों को-चाहे वह यहूदी हो या यवन, धनी हो या दरिद्र, पण्डित हो या अशिक्षित सबों को एक ही सूत्र में पिरोने का परिश्रम किया । उनके बीच में जो अंलगाव था उसको मिटाकर मैत्री स्थापित करने की कोशिश की ।

कबीर को राष्ट्रीय एकता के सूत्रधार के रूप में चित्रित कर डॉ.रामकुमार वर्मा यों लिखते हैं -'' सन्त कबीर का दृष्टिकोण इतना विस्तृत और व्यापक था कि उसमें मानव-जीवन की समस्त सीमाएँ तिरोहित हो जाती हैं और मानव-मानव में कोई भेद नहीं रह जाता । मानव की यह एकता देश और राष्ट्र के संदर्भ में राष्ट्रीय एकता है और इसका प्रवर्तन करने के कारण कबीर सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय एकता के सूत्रधार कहे जाने चाहिए । [१] बाइबिल में ईसा भी सिखाते हैं कि राष्ट्र के प्रति मानव का जो दायित्व है वह सच्चे अर्थों में निभाना मानव का धर्म है । '' जो सीसर का है, उसे सीसर को दो और जो ईश्वर का है, उसे ईश्वर को दो [२]- वाली ईसा की वाणी लोगों को एकता एवं राजधर्म की ओर उन्मुख करानेवाली है।

---

१. डॉ.रामकुमार वर्मा कबीर-एक अनुशीलन पृ. ९
२ नया विधान संत लूक २०:२५

कबीर एवं येशू ने जातीय अहंकार का मखौल उडाया और भंगी, चमार, धोबी, नाई, कुम्हार, नाकेदार, व्यभिचारिणी, विधवा, अपदूतग्रस्त आदि हर तरह के लोगों को नई आशा का सन्देश दिया । कबीर एवं ईसा के जीवन की प्रधान विशेषता समरसता थी । धर्म में, समाज में और जीवन में सर्वत्र ही वे समरसता का ही प्रचार और प्रसार चाहते थे । जिस प्रकार धर्म में उन्हें पक्षापक्षी की भावना अशोभन लगती थी, उसी प्रकार समाज में उन्हें जाति-भेद की बात भी नहीं पसंद थी । इन्होंने सच्चे धर्म-मार्ग का प्रदर्शन किया । कबीर एवं बाइबिल के सारे सुधारक मानवात्मा की एकता के कायल थे । एकता का विस्तार ही उनके जीवन का उद्यम था । मानवजीवन के मध्य स्थित विवध प्रकार की भेद-भित्ति को भूमिसात् करने का विशाल आयोजन उन्होंने अपने जीवन में किया । चाहे मुल्ला हो, पंडित हो, पीर और उपदेशक हो, यहूदी और गैर-यहूदी हो, फरीसी और शास्त्री हो, शै और शाक्त हो, वैष्णव और चंडाल हो - प्रत्येक स्तर पर खंड खंड दिखायी देनेवाली मानवता को असाधारण सूझ-बूझ के ज़रिए उन्होंने एकता के समसूत्र में ग्रंथित कर दिया । विश्व प्रजा के वे समर्थक थे । भौतिक आवरण उनकी एकता में व्यवधान नहीं थे । देश, काल, रक्त और लिंगभेद उनकेलिए निर्विरोध माध्यम थे। उनकी वाणी एकता का अजस्र प्रवाहित होनेवाला स्रोत थी । व्यावहारिक दृष्टि से देखेंगे तो यह स्पष्ट है कि सभी धर्म-संप्रदायों की मूल विचारधारा सामान्यतः एक है । सभी धर्म ईश्वर में विश्वास, प्रभु के गुणगान, ईश्वर के नाम-रूप का चिंतन आदि का समर्थन करते हैं । जब धर्म के मूल रूप की उपेक्षा होने लगती है, बाह्य रूप का महत्व बढता है। इसलिए कबीर और बाइबिल के सुधारकों ने धर्म के बाह्य स्वरूपों, परंपराओं एवं रूढियों को खंडन किया ।

कबीर एवं ईसा ने धार्मिक ग्रन्थों को झूठा नहीं बताया, बल्कि धार्मिक ग्रन्थों

की दुहाई देकर बाह्याडंबरों का प्रचार करने वालों को ' झूठे का बाना ' बताया और कबीर ने उन्हें यों फटकारा –

वेद किताब कहौ ने मत झूठे, झूठा जो न पिचारै

इसी प्रकार ईसामसीह ने धर्म के नाम पर अधर्म करनेवाले और मनुष्यता को भूलकर केवल नियमों एवं उपनियमों पर बल देनेवाले उन फरीसी एवं शास्त्री लोगों के पाण्डित्य एवं दिखावटी भक्ति की भर्त्सना की ।

कबीर एवं बाइबिल के सुधारक जनता के वक्ता थे । वे जनता को संदेश देना चाहते थे । अतः वे उन्हीं काव्यरूपों की ओर आकृष्ट हुए जो जनता में अधिक प्रचलित और प्रभावशाली थे । याने भाषासमन्वय पर भी कबीर एवं बाइबिल के सुधारकों ने ध्यान दिया । कबीरकालीन समाज में संस्कृत और बाइबिलकालीन समाज में यूनानी भाषा-विद्वानों और दार्शनिकों की भाषा बनी हुई थी । लेकिन संतों ने संस्कृत की अनिवार्यता स्वीकार नहीं की । कबीर ने तो संस्कृत को प्रवाहरहित कूपजल और लोक भाषा को बहता नीर कहा है –

संस्कीरत है कूप जल भाषा बहता नीर [१]

कबीर एवं बाइबिल के सुधारकों ने उस भाषा को चुन लिया जो जनता में अधिक प्रचलित हो । जनता के बीच काम करनेवाले के सामने यह स्वाभाविक एवं अनिवार्य आवश्यकता होती है कि वह जनता की बोली में बातें करे, जनता की समझ में आनेवाली, जनता को प्रभावित करनेवाली और जनता के हृदय को अधिक से अधिक छूनेवाली शैली अपनाए । कबीर एवं बाइबिल के सुधारक जनता

---

१. संत बानी संग्रह भाग १ पृ. ६३

के वक्ता थे । वे जनता को संदेश देना चाहते थे । अतः वे उन्हीं काव्यरूपों की ओर आकृष्ट हुए जो जनता में अधिक प्रचलित और प्रभावशाली थे । भावों की अभिव्यक्ति ही उनका एकमात्र लक्ष्य था । अपनी अनुभूतियों को सर्वसाधारण को बोधगम्य कराने केलिए उन्होंने किसी भाषाविशेष का आश्रय न लेकर बोलियों का सहारा लिया । कबीर एवं बाइबिल के सुधारकों का लक्ष्य ख्याति प्राप्त करना नहीं था अपितु सांसारिक और आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना था । इसलिए जनभाषा का प्रयोग करके कबीर-साहित्य एवं बाइबिल ने धर्म और दर्शन को सर्वसुलभ बना दिया । उन दिनों भारत में धार्मिक साहित्य की भाषा जनभाषा हिन्दी नहीं थी । हिन्दुओं के धार्मिक साहित्य की भाषा संस्कृत थी और मुसलमानों के धार्मिक साहित्य की रचना अरबी या फारसी में होती थी । इस प्रकार धर्म के शास्त्रीय ज्ञान के साथ सामान्य जनता का सीधा संपर्क बहुत कम रह गया था । धंार्मिक ज्ञान केलिए जन सामान्य को पंडितों और मुल्लाओं पर निर्भर रहना पडता था । इसी प्रकार की स्थिति बाइबिलकालीन समाज में भी निहित थी । यूनानी भाषा एवं हीब्रू भाषा से सामान्य लोग अनभिज्ञ थे । जनता की इस असमर्थता को दूर करने केलिए कबीर एवं ईसा ने प्रयास किया । उन्होंने धार्मिक सिद्धान्तों को जनता की ही बोली में प्रस्तुत करके सर्व-सुलभ बना दियंा । उन्होंने जनता की ही भाषा में जीवन की जटिल समस्याओं के समाधान प्रस्तुत किए और उनकी समझ में आनेवाले विविध प्रतीकों एवं दृष्टान्तों के ज़रिए बातों को खूब समझाने का प्रयास भी किया ।

संक्षेप में कबीर एवं बाइबिल के सुधारकों की गणना उन इने-गिने महान् पुरुषों में निस्संदेह की जा सकती है, जिन्होंने अपने समसामायिक समाज की गतिविधि को भली भांति परखना तथा उसे आवश्यक मोड देना अपना परम कर्तव्य

समझा । उनको अपने समाज के अन्तर्गत से चाहे जो मिला हो और न इसकेलिए उन्हें पर्याप्त योग्यता अर्जित करने का कभी समुचित अवसर ही मिला हो, वे इसके कारण कभी विचलित व हताश नहीं हुए । उनके पास अपना आत्मबल था और अतीव साहस था, जिस कारण उन्होंने विपथचलने वा भटकनेवालों को, चाहे वे किसी भी उच्च स्तरीय वर्ग के क्यों न रहे हों, अपनी भूलों पर एक बार दृष्टिपात करने केलिए सजग कर देना चाहा । ऐसा करते समय उन्होंने किसी भी वर्गविशेष का पक्ष नहीं लिया और न कोई पक्षपातपूर्ण प्रहार ही किया । बल्कि उन्होंने अपने समय की संघर्षमूलक प्रवृत्तियों को शान्ति प्रदान करने का प्रयत्न किया और रूढिवादी संघर्षप्रिय विचारकों को समन्वय और शान्ति का मार्ग सुझाया ।

अनाचारों एवं अत्याचारों के विरुद्ध लडाई

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में स्वच्छन्द विचारों की श्रेणी देखी जा सकती है । इसके लेखकों ने अपने मत के समर्थन में धार्मिक सिद्धान्तों के साथ साथ सांसारिक जीवन में काम आनेवाले व्यावहारिक आचार-विचारों का भी आवश्यकतानुसार वर्णन किया है । इसके अतिरिक्त उन्होंने धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में जहाँ कहीं भी प्रगति को रोकनेवाली रूढियों का पालन होते देखा है वहीं उनका दृढता के साथ खंडन किया है । उन्होंने धर्म के नाम पर बाहरी आडंबरों को बढावा देनेवाली सभी बातों की खुलकर आलोचना की है । उन्होंने सभी धर्मों के ठेकेदार बनने का दम्भ करनेवाले पण्डे-पुजारियों, ढोंगी साधु-फकीरों, पाखंडी पुरोहितों तथा मुल्लाओं को कसकर फटकारा है ।

कबीर एवं बाइबिल के सुधारकों ने समाज में व्याप्त पाखंड का अनुभव किया है । समाज में नाना प्रकार की साधना प्रचलित थी, अनेक तन्त्र-मन्त्रों का अभ्यास

किया जा रहा था, अनेक सिद्ध, योगी, तीर्थ,व्रती नाना प्रकार की साधनाओं में संलग्न थे । कबीर एवं ईसा ने अनुभव किया कि उनके समय मुनि, पीर, दिगम्बर, योगी, यती, ब्राह्मण, पुरोहित तथा सन्यासी सभी माया के प्रपंच में फंसे हुए हैं । कबीरकालीन समाज में पौराणिक धर्म का प्रभाव था, दूसरी ओर योगियों की मान्यता थी । पौराणिक परंपरा में वेद पाठ, तीर्थयात्रा, कर्मकाण्ड, अवतारोपासना तथा छुआछूत का प्रचलन था । इसी प्रकार बाइबिलकालीन समाज में भी विवध परंपरायें, मूर्तिपूजा, अंधविश्वास, कर्मकाण्ड आदि बातें प्रचलित थीं । कबीर एवं बाइबिल के सुधारकों ने इन सबका खण्डन तथा विरोध किया है । उनका प्रश्न है, यह छुआछूत कहाँ से आई, सबका जन्म एक स्थान से और एक ही तत्व से होता है।

कबीर एवं बाइबिलकालीन सुधारक बाहरी आडंबरों और रूढियों के कट्टर विरोधी थे । उन्होंने इनकी खूब निन्दा की । जातियों में पाई जानेवाली ऊँच-नीच की भावना को उन्होंने कभी सहन नहीं किया था । कबीर ने अपनी जाति का गर्व करनेवाले ब्राह्मण को फटकारते हुए कहा था –

जो तू बांभन बांभनी जाया, आन बाट ह्वै क्यों नहीं आया ।''

बाइबिल दिखाता है कि सारे मनुष्य ईश्वर की दृष्टि में समान है । उन्होंने सारे मनुष्यों की सृष्टि एक समान की है । इसके बारे में उत्पत्ति-ग्रन्थ में बताया गया है-''ईश्वर ने मनुष्य को अपनी प्रतिरूप बनाया, उसने उसे ईश्वर का प्रतिरूप बनाया, उसने नर और नारी के रूप में उनकी सृष्टि की ।'' [१] यहाँ स्पष्ट है कि ऊँच-नीच, जाति-पाँति आदि भेदभाव ईश्वरनिर्मित नहीं बल्कि मानवनिर्मित है । मनुष्य के बारे में ईश्वर के सम्मुख कुछ भेद तो नहीं । इसलिए इसके नाम पर मनुष्य

को गर्व करने की कोई ज़रूरत नहीं ।

बाह्य-आडंबर एवं ढोंग के विषय में कबीर-साहित्य एवं बाइबिल विशेष सजग हैं । इन ग्रन्थों में व्रत, तीर्थ, केश कटवाना, जटा रखना, माला फेरना, मूर्तिपूजा, मुल्ला का बांग देना, फरीसी एवं सन्यासी का विभिन्न वेश धारण करना इत्यादि अनेक कार्यों को व्यर्थ मान, बाह्य-आडंबर एवं ढोंग की कटु निन्दा की गई है । इन सुधारकों की राय में धर्म के बाह्य ढोंग से धर्म का पालन नहीं होता, उनकेलिए तो सतत प्रयास की आवश्यकता है । विभिन्न प्रकार के पाखण्ड रचकर जनता को मूर्ख बनाना कबीर पूर्णतः अनुचित मानते हैं –

छह दरसन पाखंड छयांनबै, आकुल किनहुं न जानां । [१]

जनता को कुमार्ग पर ले जानेवाले एवं उनको पथभ्रष्ट करनेवाले पाखंडी फरीसियों एवं झूठे नबियों से सतर्क रहने का आह्वान देते हुए ईसामसीह बताते हैं -'' झूठे नबियों से सावधान रहो । वे भेडों के वेश में तुम्हारे पास आते हैं ।'' [२] कबीर के मत में जब तक अन्तस् शुद्ध नहीं होता, तब तक तीर्थ-स्नानादि सब व्यर्थ हैं । इससे स्वयं को और समाज को मुक्ति प्राप्त न होगी –

अंतर मैल जे तीरथ न्हावै तिन बैकुंठ न जानां ।'' [३]

बाइबिल की राय भी इससे भिन्न नहीं । बाह्य रूप में नहीं आन्तरिक भाव में शुद्धता ही प्रभु ईश्वर के मन्दिर में प्रवेश करने की अनिवार्य आवश्यकता है । [४] बाइबिल

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ३९
२. नया विधान संत मात्यु ७:१६
३. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ४९
४. पुराना विधान स्तोत्र-ग्रन्थ २४:३-४

भी कबीर के समान सिखाता है कि हृदय में निर्मलता एवं निर्दोषता लाने केलिए आन्तरिक शुद्धि ही आवश्यक है, बाहरी दिखावा नहीं । बाइबिल ऐसे कुछ लोगों को भी दिखाता है जिनकी बाहरी एवं आन्तरिक चेष्टा भिन्न भिन्न है । वे मीठे वचनों से लोगों को फंसाने का प्रयत्न करते हैं लेकिन वास्तव में वे ईश्वर पर श्रद्धा नहीं रखते और मनुष्य की भलाई भी नहीं चाहते । इनके बारे में बाइबिल कहता है - '' उस मनुष्य ने अपने पडोसी पर हाथ उठाया, उसने मैत्री का वचन भंग किया । वह चिकनी-चुपडी बातें करता है, किन्तु उसके हृदय में लडाई का भाव है । उसके शब्द तेल जैसे कोमल, किन्तु कटार-जैसे पैने हैं ।''[१] कबीर-साहित्य एवं बाइबिल दिखाते हैं कि दुष्टता एवं कपटता से पूर्ण इन मनुष्यों की भक्ति मात्र दिखावा है जो निरर्थक एवं फलशून्य है । बह्य वेश आदि के विषय में उनका कथन है कि —

ब्रह्मां नहिं जब टोपी दीन्हां, बिस्नु नहीं जब टीका । [२]

तो फिर बाह्य आडंबर की क्या आवश्यकता है ? उस परम सत्य को जान पाने में अनेक योगी, जटाधारी असमर्थ रहे हैं । योगी, तपस्वी, सन्यासी विभिन्न तीर्थों का भ्रमण करते हैं वे चाहे लंबी जटाएँ धारण कर लें, चाहे केश कटवा डालें, जब तक सत्यमार्ग का अनुसरण नहीं करेंगे, ये सब व्यर्थ हैं --

जोगी जति संन्यासी बहु तीरथि भ्रमनां
लुंचित मुंडित मोनि जटाधर अंति तउ मरनां ।'' [३]

कबीर बताते हैं कि मूर्तिपूजा करते हुए हिन्दू, हज करते हुए तुर्क, जटा घारण

---

१. पुराना विधान स्तोत्र-ग्रन्थ ५५:२१-२२
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ८४
३. वही पृ. ५९

करनेवाले योगी सब नष्ट हो गए पर उस प्रभु की शक्ति को कोई न पहचान पाया। यहाँ कबीर स्पष्ट स्थापित करते हैं कि मनुष्य अपनी हर चेष्टा द्वारा स्वार्थ की वृद्धि पर ही लक्ष्य करते हैं न कि अपना मन ईश्वरोन्मुख करना । इन लोगों से कबीर कहते हैं कि —'' ईश्वर नाम विस्मृत कर जितना कर्म हम करते रहते हैं सब निरर्थक है, फलशून्य है ।'' [१] बाइबिल में भी ऐसे ही विचार प्राप्त होते हैं । [२] कबीर-साहित्य एवं बाइबिल समान भाव से लोगों से अनुरोध करते हैं कि मनुष्य का अपना अत्याचार छोडकर, अनाचारों की व्यर्थता समझकर लोकसेवी एवं ईश्वरप्रेमी के रूप में परिवर्तित होना अत्यंत आवश्यक है । उचित मार्ग तो भ्रम से मुक्ति प्राप्त कर लेना है, व्यक्ति चाहे असंख्य वेश धारण करे, हृदय के पवित्र हुए बिना सत्य-ज्ञान प्राप्त करने में सफलता नहीं मिलेगी । सामाजिक अपराधों को करनेवाला व्यक्ति तीर्थ-यात्रा करता है, यह उसी प्रकार है जैसे ज्ञान के बिना घाट के बीच डूब जाना । अनेक दर्शनों तथा बहुविध शास्त्रों का अध्ययन करके भी मनुष्य बिना केन्द्रित भाव-तत्व को जाने-समझे भ्रमित ही होता है । जप-तप, नियम-संयम और पूजा-अर्चना करके भी व्यक्ति जीवन का सही मार्ग नहीं पाता ।

कबीर एवं बाइबिल के सुधारकों ने अर्चन एवं उपासना के क्षेत्र में बाह्याचारों की ओर से जनता की प्रवृत्ति को हटाने का प्रयत्न किया है । माला जपना, घंटे घडियाल बजाना, काबे जाना, बलि चढाना इत्यादि सब इन सुधारकों ने निरर्थक और भ्रामक माना है । इन सबको पाखण्ड समझकर उन्होंने खण्डन किया है । इन सुधारकों ने बाह्याचारों के स्थान पर मनाचारों की ओर की प्रवृत्ति पर बल दिया है। हृदय और मन की शुद्धता ही इन्होंने ब्रह्म-भजन, पूजन केलिए आवश्यक मानी है और भगवान का निवास स्थान मंदिर या मस्जिद न होकर मनुष्य का मन और हृदय

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ५०
२. पुराना विधान स्तोत्र-ग्रन्थ ४९:९-११,१३

ही बतलाया है । कबीर की राय में सच्चे साधक केलिए जटा बनाकर भस्म लपेट कर गुफा में निवास करना अपेक्षित नहीं है । कबीर बार बार इस बात पर बल देते हैं कि ब्राह्मणों के द्वारा एकादशी का व्रत करना अथवा काजी के द्वारा रमज़ान में रोज़ा रखना निरर्थक है । अगर खुदा मस्जिद में रहता है, तो यह सारा संसार किसका है ? इसी प्रकार अगर राम तीर्थ तथा मूर्ति में निवास करता है तो अन्यत्र उसे कहाँ देखा जाए । वस्तुतः राम और रहीम हृदय में निवास करते हैं और उनकी वहीं खोज करनी होगी । पत्थर से बने मन्दिर की नश्वरता संबन्धी बात बाइबिल में भी देखी जा सकती है ।[१] यहाँ कबीर साहित्य एवं बाइबिल की दृष्टि में व्यक्ति केलिए बाहरी आचारों एवं अत्याचारों में मग्न रहना नहीं बल्कि मन को जीतना और विषयों से निरपेक्ष रहना अपेक्षित है ।

कबीर एवं बाइबिल की राय में वस्तुतः साधु का जीवन महत्वपूर्ण है, जिसमें व्यक्ति गुणों को अपनाकर साधना के पथ पर विकास करता है । इसलिए कबीर के मत में लंबे केश धारण करना या सिर मुंडाना कोई अर्थ नहीं रखता । बाहरी वस्त्रों का आडंबर धारण करने से क्या लाभ, यदि मन कुप्रवृत्तियों में संलग्न है ? कबीर कहते हैं कि विषय विकारों से भरे हुए मन को मूडना अपेक्षित है, केशों ने क्या बिगाडा है, जो उन्हें बार-बार मूडा जाता है ।[२] बाहरी आचारानुष्ठानों पर ध्यान देकर और विषयवासना में मग्न होकर हृदय की पवित्रता की चिन्ता के बिना जीने-वाले लोगों से बाइबिल द्वारा संत पोल भी यही बताते हैं ।[३]

साधारण जन पर अत्याचार कर धन का संग्रह करनेवालों की भरमार दोनों कालों में विद्यमान थी । प्रस्तुत शोषण कबीर जैसे फक्कड संत को तथा बाइबिल

---

१. नया विधान संत मारक १३:१-२
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ४०
३. संत पोल रोमियों के नाम पत्र ८:५-७,१५

के सुधारकों को नहीं रुचता । उन्होंने समाज के धनलोभी गृहस्थ व्यक्तियों को कडी चेतावनी दी है । कबीर ने कहा संसार के संबन्ध नश्वर हैं, जब तक मृत्यु नहीं आती तभी तक सब संबन्ध हैं ।[१] घनलोभी लोगों से बाइबिल की चेतावनी भी यही है ।[२]

संक्षेप में, अपने समय की पाखण्डपूर्ण परिस्थितियों में कबीर एवं बाइबिल के सुधारकों ने अपने विचार-स्वातन्त्र्य से काम लेकर सब धर्मों के अत्याचारों एवं बाह्याचारों का खण्डन किया तथा सब धर्मों के उपयोगी तत्वों का संग्रह कर एक सरल एवं सहज धर्म के पालन का उपदेश दिया । कबीर एवं ईसामसीह की वाणी का आधार प्रेम है । बाह्याचार प्रेम में बाधक होते हैं । इस कारण वे प्रत्येक प्रकार की बातों का विरोध करते हैं जो प्रेम के मार्ग का रोडा बनती है । इसी कारण उन्होंने जाति भावना, छूआछूत, ऊँच-नीच की भावना, छोटे-बडे की भावना आदि विभेदकारी भावनाओं का खुलकर और डटकर विरोध किया है । उन्होंने अन्याय, अधर्म, अत्याचार, व्यर्थ आचार, भ्रष्टाचार तथा आडंबर का निस्संकोच भाव से विरोध किया । शुद्ध आचार के द्वारा इस लोक को स्वर्गतुल्य बनाने का उपदेश दिया ।

मध्यमार्गीय समाज की प्रमुखता

साधारण जनता के प्रतिनिधि कबीरदास एवं बाइबिल के सुधारक कभी भी एक सामाजिक संगठन की कल्पना नहीं कर सकते थे । उनके सम्मुख भावात्मक पक्ष ही रह गया था । भावात्मक पक्ष की एक विशेषता यह होती है कि उनका गठन मिथों (myths) से हुआ करता है । समाज सुधार के व्रती को, किसी नये मूल्य की उपलब्धि संभव न होने की स्थिति में, इन प्राचीन मिथों की सीमाओं में ही अपने

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ४०

आदर्श मिथ की खोज करनी पडती है । कबीरदास को ऐसा ही करना पडा था । उन्होंने देखा कि हिन्दू, मुसलमान तथा इनके विभिन्न संप्रदाय जाति एवं वर्ग भावात्मक मिथों केलिए आपस में संघर्ष कर रहे हैं । मुसलमान काबा,मसजिद तथा पीर-पैगम्बर आदि से संबद्ध मिथों को लिए हुए आपस में एक दूसरे को छोटा-बडा समझते थे तथा हिन्दुओं से द्वेष रखते हुए संघर्ष करते थे । हिन्दू भी जाति तथा विभिन्न संप्रदायों के आधार पर ऊँच-नीच तथा छुआछूत की भावना में डूबे आपस में संघर्ष कर रहे थे तथा मुसलमानों के प्रति तीव्र घृणा को लिए हुए थे । बाइबिल-कालीन लोगों की चिन्ता-धारा भी इससे भिन्न न थी । यहूदी लोग अपने को सबसे श्रेष्ठ एवं ईश्वर द्वारा चुनी हुई जनता समझकर गर्व करते थे तथा अन्य लोगों को विशेषतः गैर-यहूदियों को हीन, तुच्छ एवं पापी समझकर उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे । यहूदियों में फरीसी लोग केवल नियमपालन को ही सबकुछ समझकर उनके पालन में कटिबद्ध हो गये और जो इन नियमों एवं उपनियमों के पालन में विमुख थे उनको कठिन दण्ड भी देते रहे । ऊँच-नीच, छुआछूत आदि कहकर साधारण मानव को अपने से अलग करते थे ।

कबीरदास, ईसामसीह एवं बाइबिल के अन्य सुधारकों ने एक सच्चे समाज-सुधारक की भावना से अपने अपने समाज में प्रचलित इन स्थितियों का अवलोकन किया । कबीर को यह स्पष्ट दिखाई पडा कि प्रतिष्ठित मिथों के दुष्परिणामों से बचने केलिए किसी ऐसे मिथों को स्वीकार करना आवश्यक होगा जो उस काल की जनता के भावों को किसी सीमा तक परितृप्त कर सके । उनकी दृष्टि उस सगुण ईश्वर और उनसे संबद्ध भक्तिभाव पर गई, जिसकी प्रतिष्ठा हिन्दू-सामन्तवाद की उस प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप हुई थी, जो मुसलमानों से टक्कर लेने से उत्पन्न थी । कबीर इन प्रतिष्ठित मिथों से अपना काम नहीं निकाल सकते थे, अतः उन्होंने

सभी मिथों को एकदम अस्वीकार किया । इसका अनिवार्य परिणाम यह था कि वे एक ऐसे ईश्वर को स्वीकार करने को बाध्य हुए जिसको किसी साकार मिथ के माध्यम से समझाना कठिन था । यही कारण था कि उन्होंने हरि का निश्चित रूप बताने का प्रयत्न नहीं किया –

दीठा है तौ कस कहूँ, कह्याँ न को पतियाई
हरि जैसा है तैसा रहौ, तूं हरिषि हरिषि गुण गाई ।'' [१]

याने कबीरदास कहते हैं कि उस परम प्रिय का साक्षात्कार तो हुआ है, किन्तु वह कैसा है, यह कहना संभव नहीं, यदि मैं उसके विषय में कुछ कहता हूँ तो कोई विश्वास नहीं करता, इससे मैं ने निश्चय कर लिया है कि मैं हरि के विषय में कुछ नहीं कहूँगा, वह जैसा है वैसा ठीक है, मेरे मन को चाहिए कि वह प्रसन्न होकर उसके गुणों का गान करे-भक्त भी ऐसा ही करे ।

सच्चे ईश्वर की जानकारी के बिना पर्वतों में जाकर विभिन्न पूजा अर्चना करने वाले गैर यहूदी वंश की समारी स्त्री को ईसा भी समझाते हैं कि -'' तुम लोग जिसकी आराधना करते हो, उसे नहीं जानते । परंतु वह समय आ रहा है, जब सच्चे आराधक आत्मा और सच्चाई से ईश्वर की आराधना करेंगे । ईश्वर ऐसे ही आराधकों को चाहता है । ईश्वर आत्मा है । उसके आराधकों को चाहिए कि वे आत्मा और सच्चाई से उसकी आराधना करें । [२]

कबीर ने उच्चवर्गीय हिन्दू मुसलमानों के धार्मिक एवं सामाजिक आडंबरों का विरोध कर एक ऐसे धर्म की स्थापना करने का प्रयत्न किया था जिसे साधारण

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर ग्रन्थावली पृ. १६४
२. नया विधान संत जॉन ४:२२-२४

जनता अपना कर सुखी जीवन व्यतीत कर सकती थी । ऐसा करके कबीर ने धर्म के सच्चे रूप को जनता के सामने प्रस्तुत किया था । ईसा का काम भी इससे मिलता जुलता रहा है । बाह्याचारों एवं नियमों उपनियमों से युक्त उस समाज में आम जनता बहुत कष्ट झेलती रहती थी । धर्म एवं भक्ति के वास्तविक अर्थ भूलकर पाखंडी जीवन बिताने वाले इन लोगों से स्नेहरूपी नियम के बारे में ईसा ने कहा और उनको अपनाने का उपदेश दिया ।

कबीर के समय में भी समाज में अनेक प्रकार के धार्मिक विश्वास और मत-मतान्तर प्रचलित थे । जैसे-वैष्णव, शाक्त, शैव, सहजयान, नाथ-पन्थ, मुस्लिम एकेश्वरवाद, सूफीमत आदि । कबीर ने साधु-सन्तों का सत्संग कर इन विभिन्न विचारधाराओं, संप्रदायों तथा दार्शनिक सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त किया था । परंतु उन्होंने इनमें से एक का भी आँख बन्द कर अनुसरण नहीं किया । उन्होंने प्रत्येक धर्म अथवा विचारधारा में से मानव का कल्याण करनेवाली अच्छी बातें अपना लीं और बुराईयाँ छोड दीं । जैसे उन्होंने वैष्णवों से भक्ति ली परंतु उनके अवतारवाद का खंडन किया, मुसलमानों के एकेश्वरवाद (खुदा एक है) को अपनाया परंतु उनके 'राम' मुसलमानों के खुदा से भिन्न हैं, सूफियों के प्रेम-तत्व को तो ग्रहण कर लिया परंतु अपनी रहस्य-साधना को उनसे भिन्न रखा, शंकराचार्य के अद्वैतवाद से निराकार ब्रह्म और आत्मा का सिद्धान्त ग्रहण किया परंतु कबीर का निराकार ब्रह्म कहीं कहीं साकार सा भासित होने लगता है । उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि कबीर ने विभिन्न धर्मों, संप्रदायों, दार्शनिक विचार धाराओं से अपने मतलब की बातें छाँटकर, उनका मिश्रण करके अपना एक ऐसा मौलिक धर्म बनाया था जो साधारण जनता केलिए सहज ग्राह्य तथा मानवमात्र का कल्याण करनेवाला था ।

कबीर एवं बाइबिल के अनुसार सच्ची भक्ति वास्तव में आन्तरिक शुद्धता पर

आधारित है । यदि मन शुद्ध है, हृदय निष्कपट है, विचार पवित्र है और आचरण सात्विक है तो उसको धार्मिक कहलाने में बाधा नहीं पड सकती । मन के शुद्ध होने पर ईश्वरीय ज्ञान बिना पढे ही प्राप्त हो जाता है । प्रत्येक धर्म का लक्ष्य भगवान की प्राप्ति है वह भी हृदय की शुद्धता से हो सकती है । कबीर ने कहा है -

हरि न मिले बिन हिरदै सूध ।''

यहाँ कबीर हृदय की निष्कपटता और मन की शुद्धता पर बल देते हैं । बाइबिल भी सिखाता है कि ईश्वर प्राप्ति में मन की निर्मलता एक आवश्यक बात है ।[१]

दोनों ग्रन्थ समान भाव से बाहरी दिखाने के ऊपर प्रहार करते हैं । हृदय में प्रभु के प्रति लगन के बिना, केवल बाहरी दिखावे करके प्रभु के प्रति असत्य का व्यवहार लोग करते हैं । उनका आह्वान है कि यदि मनुष्य की आन्तरिक स्थिति शुद्ध होती है तो बाह्य वेश से कुछ बनता-बिगडता नहीं । इनके साथ वे समरसता पर भी बल देते हैं । समाज में जितनी भी भिन्नता, भेद-बुद्धि है याने मान-अपमान, जय-पराजय, लाभ-हानि, सुख-दुख आदि की विषमता व्याप्त रहती है कबीर साहित्य एवं बाइबिल उसे भी समरसतापूर्ण देखने के पक्ष में हैं । जब तक मन भेद-बुद्धि में उलझा है तब तक वह आत्मसाक्षात्कार के योग्य ही नहीं रहता ।

कबीर ब्रह्म के निराकार रूप की उपासना करते थे । अपने इस ब्रह्म को उन्होंनें 'राम' कहा है । उसका 'राम' शब्द निर्गुण, निराकार ब्रह्म का प्रतीक बन गया । उनका यह 'राम' दशरथ के पुत्र से भिन्न था । उन्होंने कहा है –

दशरथ-सुत तिहूँ लोक बखाना, राम नाम का भरम है आना ।

---

१. नया विधान संत मात्यु ५:८

कबीर का 'राम' त्रिगुणातीत, द्वैताद्वैत, विलक्षण, अलख, आगोचर, प्रेम का सागर है। वह अत्यन्त सूक्ष्म और अनिर्वचनीय है । कबीर कहते हैं –

जाके मुँह माथा नहीं, नहीं रूप सरूप
पुहुप वास ते पातरा, ऐसा तत्व अनूप ।'' [१]

प्रस्तुत साखी द्वारा कबीर का मत है कि ब्रह्म के न मुख है, न सिर है, न रूप है और न रेखा । उसको रूपवान या रूपरहित नहीं कहा जा सकता । वह पुष्प की गन्ध से भी अत्यन्त क्षीण है अर्थात् केवल अनुभूति-गम्य है । ईश्वर का रूप मूर्तियों या अन्य वस्तुओं में आरोपित करने की चेष्टा करनेवाले बाइबिलकालीन लोगों से नबी इसायाह भी लिखते हैं । [२]

प्रस्तुत अरूप एवं अदृश्य 'राम' का आधार लेकर कबीर तथा अनादि एवं अनन्त, करुणापूर्ण एवं स्नेहसंपन्न ईश्वर को लेकर ईसामसीह ऐसी भक्ति की स्थापना करना चाहते थे जिसे सभी लोग -हिन्दू मुसलमान, ब्राह्मण और शूद्र-समान रूप से अपना सकें, उसकी उपासना कर सकें । कबीर ने इसकेलिए राम-रहीम की एकता स्थापित कर उन्हें धर्मों तथा संप्रदायों के धार्मिक बन्धनों से मुक्त कर दिया । उन्होंने हिन्दुओं से ब्रह्मवाद, सर्ववाद तथा मुसलमानों के एकेश्वरवाद आदि की बारीकियों से मुक्त ऐसे ब्रह्म का निरूपण किया जिसे सब समान रूप से अपना सकते थे ।

संक्षेप में कबीर एवं बाइबिल के समय में प्रचलित नाना-धर्म-संबन्धी बातें जनता को भूलमूलैया में डाल रही थीं । लेकिन कबीर एवं ईसा की भक्ति-संबन्धी बातों ने भारतीय एवं पश्चिम एशियाई समाज के जनमानस को उस समय अवलंब

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १६३
२. पुराना विधान इसायाह का ग्रन्थ ४०:२५

प्रदान किया जब वे सिद्धों-योगियों, फरीसियों-शास्त्रियों की गुह्य साधनाओं, सिद्धान्तों एवं नियमों से ऊब रहा था । इन सुधारकों ने करुणामयी ईश्वर में डूबकर प्रेम-भक्ति का ऐसा दृढ अवलंबन जनता को दिया कि वह आत्मविभोर हो उठी । जनता में सहज भावना द्वारा स्वतंत्र चिन्ता की भावना को जाग्रत कर देना उनका कार्य था। छोटी जातियों को, पापियों को तथा आश्रयहीन लोगों को उनकी यह प्रेमपूर्ण विचारधारा के अंतर्गत मानो भगवान ही मिल गये, अश्वासन मिल गया, सहारा मिल गया । इन सुधारकों की भेद-भाव विहीन बातों के द्वारा जनता को बल मिला, उनके नैतिक जीवन में सुधार की प्रवृत्ति जागरूक हो उठी और सभी में अपने जीवन, अपने समाज और अपने धर्म के प्रति स्वतंत्ररूप से विचार करने की प्रवृत्ति ने जन्म लिया ।

आध्यात्मिक दृष्टि और समाज-सुधार

आध्यात्मिकता हमेशा भलाई से परिपूर्ण है । इसमें पाप या अन्याय की गंध भी नहीं रह सकती । जहाँ आध्यात्मिकता की प्रमुखता है वहाँ कुटिलता केलिए स्थान नहीं होता, सरलता ही प्रमुख है । संसार में जीनेवाले मनुष्य को इहलोक व परलोक के अनुकूल आचरण करना है । इससे ही वह पूर्णता प्राप्त करता है । आध्यात्मिक चिन्ता में निरत मनुष्य कर्तव्यनिष्ठ, सदाचारप्रिय, सुकृत करनेवाला, पुण्य का इच्छुक, न्यायी आदि बन सकता है । आध्यात्मिकता एक व्यक्तिगत अनुभव है जो व्यक्ति के चरित्र को दृढता प्रदान करके संघर्षों का धैर्यपूर्वक सामना करने की क्षमता प्रदान करता है । यह एक व्यक्तिगत अनुभव होने पर भी उसका फल पूरे समाज पर प्रतिफलित होता है । क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक जीव है । ईश्वरीय चिन्ता या आध्यात्मिक दृष्टि मानवजीवन में संयम लाती है, जिससे उसका और उसके द्वारा समाज का क्रमिक विकास होता है ।

मन, वचन और कर्म से सब प्राणियों के साथ मैत्री रखना, उन पर दया करना तथा उन को सब प्रकार सुख देना आदि आध्यात्मिकता से पूर्ण सज्जनों का कार्य है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल सारे मानव को गुण संपन्न, आध्यात्मिकता से पूर्ण मनुष्य होने का आह्वान करते हैं । इनकी राय में अलौकिक या आध्यात्मिक व्यक्ति में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, इन्द्रिय निग्रह, क्षमा, दया आदि गुण सदा रहेंगें । इन गुणों से युक्त व्यक्तियों की अधिकता जब समाज में होती है तब निर्विवाद कह सकते हैं कि उस समाज में लोकमंगल एवं भलाई संभव है । वह लोगों को शान्ति और सान्त्वना प्रदान करता है, व्यक्तित्व को संगठित तथा पूर्ण बनाता है और व्यक्ति के बुरे कार्यों को नियंत्रित करता है । आध्यात्मिक विचारों के व्यक्ति में रहने पर वह भौतिक स्वार्थों के ऊपर उठकर सोचने केलिए विवश होता है। वह आत्मज्ञान से युक्त होकर अपने में निहित पाशविक प्रवृत्तियों को त्याग कर सहानुभूति, परोपकार, प्रेम आदि भावना का विकास करता है ।

कबीर एवं बाइबिलकालीन समाज की आध्यात्मिक स्थिति जीर्ण थी एवं आधार्मिकता का वह युग अत्यन्त शोचनीय था । जिस समय भक्ति एवं आध्यात्मिकता का महान सन्देश लेकर संत एवं सुधारकों का आगमन हुआ उस समय पूरा समाज अंधविश्वास, छुआछूत, जाति-भेद, उच्च-नीच आदि दुराचारों एवं कुरीतियों से भरा हुआ था । कबीर के समय जाति-व्यवस्था, मूर्तिपूजा आदि के आचरण में हिन्दू धर्म आगे था । साथ ही लोग अन्धविश्वासी भी थे । तत्कालीन समाज संकल्प और विकल्प दोनों में पडकर बाह्याचारों एवं आडंबरों में मग्न था । लोग आध्यात्मिकता को छोडकर माया मोह के वश में रहते थे । चारों ओर अधार्मिकता, दंभ, ईर्ष्या, पाखंड, अहंकार आदि अनेक अहितों का ताण्डव-नृत्य हो रहा था । इस धार्मिक अराजकता के युग में सर्वसाघारण से हृदय में सत्य एवं सदाचरण का भाव जागृत

कर समाज में सच्ची शांति लाना कठिन था । कबीर एवं अन्य सुधारकों ने बहुत सोच समझकर ऐसे सभी प्रश्नों के तल तक जाने का प्रयत्न किया और उन्होंनेसब केलिए एक नित्य एवं शाश्वत सत्य के अस्तित्व का प्रतिपादन कर, उसे अपने जीवन में अनुभव करने तथा उतारने की सलाह दी ।

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल की वाणी द्वारा समाज में प्रचलित बुरी रीतियों को त्यागकर उसके स्थान पर सच्चाई एवं आध्यात्मिकता की प्रतिष्ठा करने का आह्वान दिया गया है । शुद्ध भाव से, विशुद्ध हृदय से साधना करने का आह्वान भी वे देते हैं । हृदय में कपट भाव, बुरा कर्तव्य या विषयासक्ति -ये सारे अवगुण हैं, अधर्म हैं और आध्यात्मिकता के विरुद्ध हैं । प्रस्तुत दिखावटी बाह्यरूप से समाज की हानि भी होती है । आध्यात्मिकता की वृद्धि केलिए ज़रा ध्यान दिये बिना मात्र बाहरी बातों एवं चेष्टाओं पर बल देनेवाले फरीसियों के बारे में बाइबिल यों बताता है -'' ढोंगी शास्त्रियो और फरीसियो ! धिक्कार है तुम लोगों को ! तुम पुती हुई कब्रों के सदृश हो, जो बाहर से तो सुन्दर दीख पडती है, किन्तु भीतर से मुरदों की हड्डियों और हर तरह की गन्दगी से भरी हुई हैं । इसी तरह तुम भी बाहर से लोगों को धार्मिक दीख पडते हो, किन्तु भीतर से तुम पाखण्ड और अधर्म से भरे हुए हो।''[१] यहाँ व्यक्त है कि कबीर एवं बाइबिल के सुधारकगण भक्ति में बाह्य प्रदर्शन का विरोध करते थे। वे व्यक्तिगत साधना का समर्थन करते थे । एकान्त में बैठकर अपने हृदय में स्थित ब्रह्म का दर्शन करने का उपदेश भी देते थे । परंतु ईस्वर के दर्शन तभी हो सकते हैं जब भक्त अपनी संपूर्ण कामनाओं को त्याग दें । कबीर के अनुसार -

जब लगि भक्ति सकाम है, तब लगि निष्फल सब सेव

याने यहाँ कबीर व्यक्त करते हैं कि यदि मनुष्य कुछ भौतिक वस्तुओं को पाने केलिए

---

१. नया विधान संत मात्य २३:२७-२८

बहुत कामना के साथ प्रार्थना करे तो वह भक्ति निष्फल ही है । भक्त केवल भगवान के समीप रहना ही चाहता है । मनुष्य की प्रार्थना किस प्रकार की होती है -इसके बारे में बाइबिल जो बताता है वह वाणी कबीर के विचारों से मिलती जुलती है । ''जब तुम प्रार्थना करते हो, तो अपने कमरे में जाकर द्वार बन्द कर लो और एकान्त में अपने ईश्वर से प्रार्थना करो । [१] यहाँ कबीर एवं बाइबिल के सुधरक एकमत हैं कि भक्ति द्वारा मानव का हृदय शुद्ध एवं एकाग्र हो जाता है तद्वारा समाज में भी परिवर्तन होता है । शुद्ध हृदयवाला व्यक्ति हमेशा समाज में भलाई करने की इच्छा करता है । इसलिए आध्यात्मिक चिन्ता को इन्होंने सामाजिक उन्नति के एक मार्ग के रूप में स्वीकार किया है ।

जीवन को आदि से लेकर अंत तक छानकर देखने के बाद भक्त कबीर को लंगा कि प्रभु के अतिरिक्त, संसार की अन्य सभी वस्तुएँ विनाशकारी ही है । अतः वे स्मरण दिलाते हैं कि ईश्वर-स्मरण ही जीवन का सार है बाकी सब बातें बन्धन में डालने वाली हैं –

कबीर सुमिरन सार है, और सकल जंजाल
आदि अंत सब सोधिया, दूजा देखौ काल ।'' [२]

बाइबिल में संत याकोब याद दिलाते हैं कि-'' कपटी और बेइमान लोगों ! क्या आप यह नहीं जानते कि संसार से मित्रता रखने का अर्थ है ईश्वर से बैर करना ? जो संसार का मित्र होना चाहता है, वह ईश्वर का शत्रु बन जाता है । [३] कबीर के अनुसार बाइबिल भी बताता है कि संसार की वस्तुओं के पीछे पीछे जाकर इस जीवन को नष्ट न करना । जितनी अधिक ममता मनुष्य संसार से दिखाते हैं उतना ही वे

१. नया विधान संत मात्यु ६:६
२. डॉ पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ ९८९ नया विधान संत याकोब ४:४

ईश्वर से दूर हो जाते हैं । यहाँ दोनों ग्रन्थों का यही आह्वान है कि मनुष्य को सांसारिक माया-मोह में पडकर अपनेको और समाज को हानि नहीं पहुँचानी चाहिए बल्कि अविनाशी एवं अनश्वर ईश्वर से आध्यात्मिक संबन्ध रखना ही उचित है । प्रस्तुत आध्यात्मिकता की किरण समाज पर डालकर वह भलाई से परिपूर्ण हो जाते हैं और यहाँ सभी प्रकार के बाहरी आचार दूर हो जाते हैं ।

सत्य से असत्य का विरोध

मानवीय अस्तित्व की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता बुद्धिमत्ता अथवा विवेकशीलता है । यौक्तिक विवेचना के आधार पर मानव हर जटिल समस्या का समाधान करते हुए नित नये अनुसंधानिक कर्मों में जुटा रहता है । भले-बुरे और सत्य-असत्य की जानक़ारी तार्किक निकष के आधार पर होती है । किन्तु सत्य क्या है, इसकी खोज में मानव हमेशा निरत है । वह सृष्टि के विभिन्न पहलुओं में सत्य के दर्शनार्थ लालायित रहता है । अपनी लालसाओं के तपोवन में जलकर सत्य की कड़वी-मीठी संतृप्ति पा लेता है, पर उसका वास्तविक रूप उससे छिपा रहता है । इस प्रकार सत्य की खोज की यह प्रक्रिया लगी ही रहती है ।

सत्यवचन की आवश्यकता और उसके महत्व पर प्रायः सभी धर्मों के अन्तर्गत प्रकाश डाला गया है । संस्कृतसाहित्य एवं उससे पूर्व वैदिक-साहित्य के अन्तर्गत सत्य के महत्व को स्पष्ट करनेवाले असंख्य कथन हैं। वाल्मीकि रामायण में सत्य को धर्म की पराकाष्टा और सबका मूल कहा गया है ।[१] सत्य ही जगत् में ईश्वर है, सदा सत्य के ही आधार पर धर्म की स्थिति रहती है । सत्य ही सबका मूल है, सत्य से बढकर दूसरा कोई परम पद नहीं । सत्य अन्य सभी सुकृतों का मूल स्रोत

---

१ वाल्मीकि रामायण अयो १०९/१०

है । वाल्मीकि के अनुसार सत्य ही प्रणव रूप शब्द ब्रह्म है, सत्य में ही धर्म है, सत्य ही अविनाशी वेद है और सत्य से ही परब्रह्म की प्राप्ति होती है । [१] सत्य से बढकर अन्य कोई परम पद नहीं है । मनु सत्य तथा प्रिय-भाषण का मार्ग स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सत्य बोले, प्रिय बोले, सत्य भी अप्रिय न बोले और प्रिय भी असत्य न बोले, यही सनातन धर्म है । [२]

कबीर एवं बाइबिलकालीन समाज में सत्य का कहीं सम्मान नहीं था इसके बदले झूठ को समाज में सर्वत्र ही आदर मिलता था । एक क्रान्तिकारी प्रतिभासंपन्न विचारक के नाते तत्कालीन सुधारकों ने अपने युग की जनता को हितकारी मार्ग सुझाया । वे अपने में निहित ईश्वरीय शक्ति एवं अनुशीलन के ज़रिए जनता में निहित सत्य जाँचनेवाली वस्तु का समर्थन एवं असत्य लगनेवाली वस्तु का खण्डन करना अपना धर्म समझते थे । उनका लक्ष्य एवं मूल उद्देश्य असत्य पर सत्य की विजय दिखाना रहा है । क्योंकि इन सुधारकों को ठीक सा पता था कि जहाँ सत्य की विजय होती है वहाँ लोक-मंगल का होना स्वाभाविक ही है । मगर समाज इन सुधारकों को स्वीकारने एवं उनके विचारों को कान देने के लिए तैयार नहीं थे क्योंकि सत्य को अपनाने का अर्थ है अपनी जीवनशैली में बदलाव लाना । अतः जीवन में बदलाव लाना दुखदायी होता है । इसलिए मनुष्य सत्य का तिरस्कार करते हुए अज्ञता में फंसे रहकर अपने जीवन को और कठिन उलझनों में डाल देते हैं ।

समाज की यथार्थ स्थिति के विशुद्ध अनुशीलन के फलस्वरूप कबीर एवं बाइबिल के सुधारकों को बहुत सी अच्छी बातें संग्रह करने का अवसर मिला, बहुत से ताज़ा विचारों को वे संग्रहीत कर सके और फिर उन्होंने अपनी वाणी द्वारा उन्हें

जनता तक भी पहुंचाया । उन्होंने व्यक्ति के जीवन की सच्चाई पर भी विशेष बल दिया है और आचरण का आदर्श जनता के सामने रखा । इन सुधारकों ने स्वानुभूत सत्य का सहारा लिया, पहले स्वयं परखकर देखा फिर विश्वास किया, खरा उतरा तो स्वीकार किया नहीं तो चलते बने । कोई माया-मोह उन्हें आकर्षित नहीं कर सका और कोई भी प्रलोभन उन्हें साधना के मार्ग से विचलित नहीं कर सका । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल ने सत्य का दर्शन सम्यक रूप से किया और उनसे मानव जाति को संगठित और विवेक संपन्न करने केलिए अपनी प्रतिभा को सही दिशा में नियोजित किया । मनुष्य संसार के अंधेरे कुहासे में भटकता है और जीवन के सत्य को नहीं पाता । इस भटकाव में हिन्दू मूर्तिपूजा करके, तुर्क हज करके, यहूदी एवं फरीसी मात्र बाहरी नियमों पर अधिक ध्यान देकर जीवन गवाँ देता है । इसी प्रकार अनेक वेश-धारण कर व्यक्ति भटकते हैं और वेद का पाठ कर तथा धन-संपदा को संचित कर जीवन व्यर्थ गवाँते हैं । लेकिन ये लोग सत्य एवं प्रेम की ओर ज़रा भी ध्यान न देते थे । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल ऐसे कर्मकाण्डों की अपेक्षा प्रेम-साधना केलिए मूल्यों की भूमिका स्वीकार करते हैं । वस्तुतः व्यक्ति केलिए जीवन में असत्य या कपट से मुक्त होना प्रारंभ से अपेक्षित है । सत्य के बदले झूठ को सम्मान देनेवाले समाज को देखकर कबीर ने कहा –

सांच बरोबरि तप नहीं, झूठ बरोबरि पाप
जाकै हिरदै सांच है, ताकै हिरदै आप ।'' [१]

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल की राय में केवल वेश बनाने से या नियमों का पालन करने से कोई व्यक्ति सत्य को नहीं पा सकता । वे कर्म पर बल देते हैं, क्योंकि जीवन

के ठीक दिशा देने केलिए सत्कर्म एवं सच्चाई अपेक्षित है । कबीर बताते हैं कि संसार के लोग लोक-लज्जा से सत्य का निर्वाह नहीं करते और कंचन को छोड काँच को ग्रहण करते हैं अर्थात् जीवन के आदर्शों की अपेक्षा कर निम्न स्तर की मूल्य-हीन बातों को श्रेष्ठ समझकर अपनाते हैं । सत्य को छोडकर अधर्मी जीवन बिताने-वाले बाइबिलकालीन लोगों को देखकर नबी जरेमिया यों विलाप करते हैं - प्रभु ईश्वर कहता है - '' मेरी प्रजा ने दो अपराध कर डाले, उसने मुझे संजीवन जल के स्रोत को रोक दिया और अपने लिए ऐसे कुण्ड बनाये, जिनमें दरारें है और जिनमें पानी नहीं ठहरता ।'' [१] सत्य को छोडनेवालों को यहाँ संजीवन जल के स्रोत को त्यागनेवालों के समान और असत्य अपनानेवालों को पानीरहित कुण्ड बनानेवालों के रूप में चित्रित किया गया है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल समान रूप में सिखाते हैं कि संतों की वाणी विचारशील होती है, वे अपने सत्य वचनों से सबका उपकार करता हैं । साधु की संगति निष्फल नहीं होती, क्यों उससे व्यक्ति अपने जीवन को शुद्ध कर उच्च आदर्शों की ओर प्रेरित होता है । [२] सत्य के साथ जीवन-यापन करनेवाले व्यक्ति को ही परम तत्व का अनुभव होता है । वही वास्तव में भक्त है। इसके बारे में बाइबिल के स्तोत्र-ग्रन्थकार यों बताते हैं - प्रभु ! कौन तेरे शिविर में प्रवेश करेगा ? कौन तेरे पवित्र पर्वत पर निवास कर सकेगा ? वही, जिसका आचरण निर्दोष है, जो सदा सत्कर्म करता है, जो हृदय से सत्य बोलता है और चुगली नहीं खाता ।'' [३] इन दोनों साहित्यों ने सत्य मार्ग से विचलित होकर झूठ को ग्रहण करने वालों की संगति को अस्वीकार किया है ।

संक्षेप में कबीर, ईसामसीह एवं अन्य नबीगणों ने अपने समय की विभिन्न परिस्थितियों से अवगत रहते हुए भी अपने विचार बडे स्पष्ट शब्दों में एवं निर्भीकता

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १८७

२ पराना विधान :जरेमिया का ग्रन्थ २:१३ ३ डॉ पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ १३८

के साथ प्रकट किये । उन्होंने किसी वर्गविशेष के प्रति कोई विशेष ममता नहीं की। उनमें आई हुई त्रृटियों की ओर अंगुलि-निर्देश करते हुए, उन्होंने उन पर निष्पक्ष भाव से विचार करने का प्रबल आग्रह किया तथा किसी प्रथा, परंपरा-विशेष के साथ आंख मूंदकर चिपके रहनेवालों को उन्होंने कडे-से-कडे शब्दों में फटकार बतलाई। उन्हें इस बात की कदाचित् परवाह न थी कि इसके कारण उनके प्रति उपेक्षा का भाव प्रदर्शित किया जा सकता है, उनका सामाजिक बहिष्कार किया जा सकता हैं अथवा उन्हें अधिकारियों की ओर से दण्ड का भाजन तक भी बनना पड सकता है। यह तो सत्य है कि इन सुधारकों को इसके कारण सचमुच अनेक प्रकार की यातनायें सहनी पडीं, किन्तु उन्होंने अपने मार्ग से डिगना उचित नहीं समझा । वे सत्य के समर्थक थे और सत्यनिरूपण का एकमात्र साधन उनकी वाणी, उपदेश अथवा प्रवचन ही थे ।

समाज-सुधार का लक्ष्य शांति मंत्र

आज देश के प्रत्येक क्षेत्र में भ्रष्टाचार फैला हुआ है । चाहे सामाजिक क्षेत्र हो या फिर धार्मिक, राजनीतिक हो या आर्थिक सभी क्षेत्र भ्रष्ट एवं बुराइयों से भरपूर दिखाई पड रहे हैं । साधारण व्यक्ति जो अच्छे ढंग से जीने की इच्छा करते हैं उनको भ्रष्टाचार से युक्त जीवन के कारण जीना मुश्किल हो गया है । मध्यकालीन एवं बाइबिलकालीन समाज की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं थी । विभिन्न बुराइयों - रूपी जाल में फंसकर मनुष्यों का नैतिक पतन होता गया । मानव मानव के रक्त के प्यासे होकर अमानवीय कर्म करनेवाले बन गये । देश के भ्रष्ट लोगों ने सामाजिक एवं पारिवारिक सदस्यों में परस्पर प्रेम तथा सौहार्द-भावना समाप्त कर दी । मनुष्य की मनुष्य से ही शत्रुता सब कहीं दिखाई पडने लगी । धार्मिक स्थिति

---

१. पुराना विधान स्तोत्र-ग्रन्थ १५:२-३

भी इससे भिन्न नहीं थी । धर्म के नाम पर ढोंगी और निकम्मे साधुगण भोली-भाली जनता को लूटकर उल्लू सीधा कर देने में निरत रहे । उस ज़माने के शासकवर्ग जिन्हें देश में शान्ति फैलाने में कर्मनिरत होना था, मार्ग भ्रष्ट होकर शासितों पर अत्याचार करते रहे । कबीर एवं बाइबिलकालीन समाज पूर्ण रूप से शान्ति के बदले अशांति के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो चुके थे ।

समाज व्यक्तियों का ही सामूहिक स्वरूप है इसलिए जब भी व्यक्ति कर्तव्य-च्युत होता है तो उसका प्रभाव समाज पर अनिवार्य रूप से पडता है । समाज विश्रृंखल होकर नाश की ओर चलने लगता है । समाज के नाश गिरावट के कारण व्यक्ति के नैतिक, मानसिक, बौद्धिक, शारीरिक, आर्थिक आदि पतन समाज में प्रतिबिंबित हो उठते हैं । व्यक्ति की प्रस्तुत बुराइयाँ समाज में विष के समान फैल जातीं हैं । कबीर एवं अन्य सुधारकों ने देखा कि तत्कालीन देश की स्थिति बहुत ही खराब है, भ्रष्ट एवं बेइमानी व्यक्तियों ने धार्मिक भावना को लेकर अपने देश की जनता को गुमराह करने का फैसला कर लिया है और लोगों की शान्ति एवं उनके बीच की एकता को दीमक के समान खाती जा रही है । समाज के इस विष को दूर करने केलिए, विश्रृंखल ढाँचे को फिर से श्रृंखलाबद्ध करने के निमित्त कबीर एवं बाइबिल के सुधारकों ने काम किया । इन्होंने समाज में प्रचलित कुरीतियों का खण्डन कर नवीन प्रवृत्तियों को जन्म दिया और प्राचीन पाखण्डी मान्यताओं के प्रति जो अशान्ति का मूल कारण था, विद्रोहात्मक प्रतिक्रिया, को प्रश्रय दिया ।

इन सुधारकों ने देखा कि जाति-पांति, छूत-अछूत, ऊँच-नीच, वर्ग-भेद, वर्ण- भेद आदि जितनी भिन्नता समाज में प्रचलित है इसके द्वारा सामाजिक प्रगति नहीं अवनति ही होती है । मानव मानव के बीच एवं उनके मन में अशान्ति ही व्याप्त होती है । इसलिए इन्होंने समाज में व्याप्त प्रस्तुत वैषम्यों का खण्डन कर

समाज को मिलाकर दृढ बना देने का प्रयास किया । धर्म को किसी वर्गविशेष की बपौती न मानकर आपने उसे सार्वजनिक क्षेत्र में लाकर खडा किया । इन सुधारकों की विचारधारा धर्म, जाति अथवा समाजविशेष तक सीमित नहीं थी - उनमें मानव-मात्र के कल्याण की भावना थी । इस भावना ने समाज के नैतिक और धार्मिक दोनों प्रकार के उत्थान में सहयोग दिया । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल ने इस बात पर बल दिया है कि विभिन्न धर्म-मतों के प्रचलित कर्मकाण्डों तथा पूजा-पाठ आदि धर्म की मूल्यदृष्टि के पोषक नहीं हैं, प्रायः विरोध में ही आते हैं । जिस प्रकार प्रेम की साधना को इन ग्रन्थों ने महत्व दिया है, उसके मूल में प्रेम का ही जीवन है । उनके अनुसार जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व में प्रेमरस व्याप्त नहीं है, वह मनुष्य कहलाने योग्य नहीं है । उन्होंने सत्संग को महत्व दिया है और उसके संसर्ग से व्यक्ति के जीवन में दुर्मति का अन्धकार दूर होता है और मूल्यों का प्रकाश फैलता है । जहाँ मूल्यों का प्रकाश है वहाँ शान्ति एवं सन्तोष भी विद्यमान है । मूल्य के स्तर पर जीने-वाले व्यक्ति कबीर की राय में सन्त, साधु, निर्वैर, सत्यनिष्ठ, निष्काम, अहिंसक तथा निस्वार्थ रूप में व्यंजित करते हैं । निश्चय ही ये सारे मानवीय गुण व्यक्ति को उच्च मूल्यों की भूमिका पर प्रतिष्ठित करते हैं । निष्पक्ष भाव से व्यक्ति समता के स्तर पर शीतलता और शांति का अनुभव करता है, और दूसरी ओर इस भूमिका से साधना-पथ पर अग्रसर होता है । इसकेलिए कबीर ने सबसे पहले सांप्रदायिक एकता स्थापित कर समाज में शान्ति स्थापित करने का अथक परिश्रम किया । उहोंने जाति-पांति को भक्तिमार्ग में कोई स्थान नहीं दिया ।

बाइबिल के सुधारक लोग ईश्वर के अनन्य भक्त थे उन्होंने प्रत्येक मनुष्य में ईश्वर को देखा । उन्होंने सबों को प्रेम तथा समानता का संदेश दिया और वर्ण या जाति को प्रोत्साहन नहीं दिया । उनकी नज़र में कोई भी उच्च या निम्न जाति

का नहीं था । सब ईश्वर की संतान थे । उन्होंने देखा कि जाति-प्रणाली सच्ची स्वतंत्रता का आनन्द लेने में बहुत बडी बाधक थी । उस प्रदेश में वर्ग, जाति, संस्कृति या भाषा के नाम पर कोई फूट उपस्थित करने में वे सहमत नहीं थे । इन सुधारकों ने समझाया कि ईश्वर की किसी विशेष जातियों के लोगों के प्रति कोई विशेष लगाव या कृपा नहीं है, वरन् प्रत्येक जन चाहे वह किसी भी देश या जाति का क्यों न हो, ईश्वर केलिए स्वीकार्य है । अर्थात् ईश्वर सबको पक्षपात के बिना स्वीकार करता है ।[१] जैसे कि व्यक्ति ऊँची-जाति के हों या नीची जाति के, काले हो या गोरे ईश्वर सबों में व्याप्त है ।

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल लोगों को याद दिलाते हैं कि विचारों की भिन्नता के कारण आध्यात्मिक चरम सत्य को भूल जाना उचित नहीं । आत्मतत्व सभी में व्याप्त है । वह हिन्दू में भी है, मुसलमान में भी है, यहूदियों में भी है और अन्य धर्मवालों में भी । मूल तत्व के आधार पर सब एकत्वपूर्ण है और इसलिए सब परस्पर भाई-भाई हैं और सबको एक दूसरे के कल्याण केलिए प्रयत्नशील रहना चाहिए । कबीर बताते हैं —

चिंतामनी चित मैं बसे, सोई चित्त मैं आंनि
बिन चिंता चिंता करैं, इहै प्रभू कि बांनि ।'' [२]

सभी वांछित पदार्थों को देनेवाले समर्थ ईश्वर रूपी चिंतामनि हरेक के चित्त में विद्यमान है । कबीर विश्वास करते हैं कि ईश्वर का यही स्वभाव है कि वह सबका ख्याल रखते हैं कोई उनका चिंतन करे या न करें । बाइबिल के प्रज्ञा ग्रन्थाकार के अनुसार- प्रभु की आत्मा संसार में व्याप्त है । वह सब को एकता में बाँधे रखती

---

१. नया विधान, ऐरित-चरित ६ २. डॉ. पारसनाथ तिवारी: कबीर ग्रन्थावली पृ. २४०

है । और मनुष्य जो कुछ कहते हैं, वह सब जानती है ।'' [१] यहाँ कबीर-साहित्य एवं बाइबिल स्पष्ट करते हैं कि विभिन्न वैषम्यों के नाम पर जो अशांति समाजिक जीवन में व्याप्त है वह वेवकूफ की बात है । मानवमन की अनभिज्ञता ही इसका कारण है । ज्ञानरहित मानव पर स्वार्थता शासन करती है । स्वार्थ हृदय ईश्वर को नहीं सांसारिकता को प्रमुखता देते हैं । जिसके हृदय में ईश्वर को स्थान नहीं वहाँ शान्ति एवं सुख विद्यमान नहीं होते ।

संत पोल अपने लेख में [२] चेतावनी देते हैं कि जब तक वे एक परिवार जैसे नहीं रहेंगे, मेल-मिलाप एवं आपसी प्रेम में नहीं बँधेंगे तो उनका समुदाय छिन्न-भिन्न हो जायेगा । यदि संस्कृति, भाषा, जाति, वर्ग एवं धर्म-विधियों के कारण परिवार के सदस्यों में, पति-पत्नी में, माता-पिता एवं बच्चों में फूट है तो वे उत्तम व्यक्ति, वह समाज उत्तम समाज कहलाने के योग्य नहीं रह जायेंगे ।

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल समभाव से बताते हैं कि सच्चे मन से भगवान् का भजन कर उसमें आस्था के साथ रहना ही जीवन की वास्तविक शान्ति है । मन के शुद्ध और हृदय के निष्कपट होने पर व्यक्ति के आचरण कभी भी असात्विक और धर्म-विरुद्ध नहीं हो सकते । असात्विकता और अधार्मिकता सामाजिक अशान्ति पैदा करते हैं । अतः दोनों ग्रन्थों ने मन की शुद्धता और हृदय की निष्कपटता पर बल दिया है । शुद्ध मन और निष्कपट हृदय के साथ यदि विचारों में सात्विकता आ जाय तो सोने में सुहाग हो जाता है । सच्चे और पवित्र मन से विचारों में सात्विकता लाने से ही भगवान से आत्मा का सहज योग होता है । बीच का भेद-भाव और अन्धकार विलुप्त हो जाते हैं । कबीर एवं बाइबिल के सुधारकों ने

---

१. पुराना विधान प्रज्ञा ग्रन्थ १:७

२. संत पोल कोरिन्थियों के नाम पहला पत्र १:१०-१३,१७

आध्यात्मिक क्षेत्र में सम-भावना का सन्देश दिया और वह भी बडी निर्भीकता के साथ किया । उन्होंने त्याग, तपस्या, सदाचार, समता और सद्भावना का महान सन्देश जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया जिसमें जनहित की भावना निहित थी और थी समूचे मानव जगत की बाहरी तथा आन्तरिक शान्ति ।

भक्ति में आनन्द और रक्षा

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल जीवन से संबन्धित कई तत्वों का विश्लेषण करते हैं फिर भी उनका मूल स्वर भक्ति है । भक्ति भगवान के प्रति किये गये प्रेम को ही सूचित करती है । इस प्रेम का महत्व दोनें ग्रन्थों ने खूब गाया है । भक्ति-जन्य प्रेम जीवन का चिरंतन मूल्य है । इससे परमानन्द की प्राप्ति होती है । प्रेम तत्व लोकरंजन का विधायक है और इसी कारण उसे मंगल विधायक भी माना जा सकता है । भक्ति के क्षेत्र में भक्त और भगवान ही सबकुछ है । भगवान या ईश्वर आश्रय है और भक्त आश्रित है । आश्रय और आश्रित का यह भाव आनन्द के बन्धन से बन्धा हुआ है । फिर भी इसमें ईश्वर को रक्षक मानने की प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है । रक्षक के रूप में भगवान है इसलिए भक्त विश्वास के साथ निस्संकोच प्रेम के भाव में उलझा रहता है । रक्षा की भावना जहाँ नहीं होती वहाँ प्रेम का निर्बाध प्रवाह असंभव है । कबीर प्रेमरहित व्यक्ति का जीवन निरर्थक सिद्ध करते हैं --

जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहिं राम
ते नर इस संसार में, उपजि खए बेकांम । [१]

यहाँ कबीर की राय है कि जिनके हृदय में न प्रेम है, न प्रेम का आस्वाद और जिनकी

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १५०

जिह्वा पर राम नाम भी नहीं है, वे मनुष्य इस संसार में व्यर्थ पैदा होते हैं । यहाँ कबीर स्पष्ट करते हैं कि प्रेम रहित व्यक्ति अपने लिए, परिवार केलिए या समाज की प्रगित केलिए कुछ नहीं कर सकते । प्रेमभाव में भलाई का मार्ग छिपा रहता है। ईश्वर की रक्षा का अनुभव उसमें न होने के कारण आपसी प्रेम एवं ईश्वरीय प्रेम उनके जीवन में नहीं के बराबर है । ईश्वरीय रक्षा पर विश्वास किये बिना जो व्यक्ति प्रेमरहित होकर जीवन बिताते रहते हैं वे इस दुनिया में जीने योग्य नहीं है क्योंकि वे अपने लिए और समाज के लोगों केलिए विनाश का कारण बन जाते हैं । बाइबिल में भी यही कहा गया है ।[१]

प्राचीन हिन्दू-दार्शनिकों ने परम पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति के तीन मार्ग निश्चित किये थे-ज्ञान, कर्म और भक्ति । उपनिषदों का मार्ग तत्वतः ज्ञान का मार्ग है । मीमांसकों ने कर्मकाण्ड पर सबसे अधिक बल दिया । किन्तु ये दोनों ही मार्ग सर्वसामान्य को व्यापक रूप से अपनी ओर आकृष्ट न कर सके । समान्य जन केलिए शुद्ध ज्ञान के द्वारा परम सत्य का साक्षात्कार करना संभव नहीं है । इसको तो परम योगी ही कर सकते हैं । वैदिक कर्मकाण्ड श्रमसाध्य होने के साथ साथ इतना जटिल था कि सामान्य जन की शक्ति और साधना के परे था । भक्तिमार्गी संतों के मानव-प्रेम का एक महत्वपूर्ण पहलू यह था कि वे केवल अपने व्यक्तिगत मोक्ष की साधनाओं में लीन नहीं रहे । उनका करुणामय हृदय यह स्वीकार न कर सका कि उनका स्वयं का उद्धार हो जाय और शेष जनता भवसागर में पडी हुई तडपती रहे । इसलिए उन्होंने गाँव-गाँव और द्वार-द्वार घूमकर लोगों को जगाया। उन्हें भक्ति का उपदेश दिया और उनमें एक नई आशा का संचार किया । भगवान सब प्रकार से भक्त की रक्षा करता है इस बात का दृढ विश्वास होना भी भक्त केलिए परमावश्यक है । कबीर ने विश्वास पर बडा बल दिया है । ' कबीर-ग्रन्थावली

---

१ नया विधान संत मात्थ १८:१६-१७

में साखियों के एक अंग का नांम ही ' बेसास को अंग ' दिया गया है । यहाँ प्रभु को प्रत्येक समय भक्त की चिन्ता करनेवाला कहा गया है —

'' च्यंता न करि अच्यंत रहु, साई है संम्रथ [१]

यहाँ भविष्य के बारे में चिंता कर दुखी लोगों से कबीर का आह्वान है कि शक्तिशाली प्रभु ईश्वर में विश्वास रखकर निश्चिंत होकर विश्वास के साथ जीना व्यक्ति के लिए अनिवार्य है । फिर वे भयभीत होकर जीनेवाले लोगों से पूछते हैं - तुम क्यों डरते रहते हो ईश्वर का हाथ सदा तुम्हारे ऊपर है । यथा —

'' कबीर तूं डरै, सिर परि हरि का हाथ । [२]

बाइबिल भी इस बात से सहमत है कि रक्षा की भावना में प्रेम का निबाध प्रवाह है। ईश्वर की शक्ति पर मानव सुरक्षित है । निर्भय होकर, आकुलता के बिना जीना मानव का काम है । बाइबिल में प्रभु की वाणी यों है -'' तुम मत डरो । मैं तुम्हारे साथ हूँ । मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा । यह प्रभु की वाणी है । ''[३] ईश्वर के रक्षादायी भाव प्रस्तुत कथन में स्पष्ट दिखाई पडते हैं -'' क्या स्त्री अपने दुधमुँहे बच्चे को भुला सकती है ? क्या वह अपनी गोद के पुत्र पर तरस नहीं खायेगी यदि वह भुला भी दे, तो भी मैं तुम्हें कभी नहीं भुलाऊँगा । मैं ने तुम्हें अपनी हथेलियों पर अंकित किया है ।'' [४] यहाँ दोनों ग्रन्थ समानभाव से व्यक्त करते हैं कि ईश्वर द्वारा प्रदत्त रक्षाभाव में जीनेवाला भक्त आनन्द एवं सुरक्षा का अनुभव करता है । ऐसे भक्तों से भरा समाज मंगल से परिपूर्ण हो जाता है ।

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ५८
२. वही पृ. ५८
३. पुराना विधान जरेमिया का ग्रन्थ १:८
४ वही एशया का ग्रन्थ ४९:१५-१६

रक्षा का आधार करुणा का भाव है । ईश्वर करुणामय है । कबीर करुणामय प्रभु के अनुग्रह में अपनी आस्था व्यक्त करते हुए कहते हैं कि स्रष्टा के सिवाय मेरा कोई अन्य हितैषी नहीं है । वह गुण और अवगुण में अन्तर नहीं करता है अर्थात् पापी और पुण्यत्मा का भेद नहीं करता है । उसके प्रति जो अनुराग रखता है वह चाहे पापी हो या पुण्यात्मा, प्रभु उस पर अनुग्रह करते हैं । अन्य सभी लोग स्वार्थ में बंधे हुए हैं । उनका कथन है —

कबीर सिरजनहार बिन, मेरा हितू न कोई
गुन औगुन बिहडै नहीं, स्वारथ बंधी लोई ।''[१]

बाइबिल भी इसे मानता है । 'नया विधान' में संत मात्यु बताते हैं कि '' हमारे ईश्वर भले और बुरे, दोनों पर अपना सूर्य उगाता तथा धर्मी और अधर्मी दोनों पर पानी बरसाता रहता है ।'' [२] याने ईश्वर की करुणा व्यक्ति के गुणों पर आश्रित नहीं रहती। इसलिए ईश्वर हमेशा भक्त की रक्षा करते रहते हैं ।

बाइबिल निसंदेह कहता है कि ईश्वर परम दयालु पिता एवं पूर्ण शान्ति के दाता हैं, जो कष्टों में मनुष्य को शान्ति देते हैं। उसमें ईश्वर की करुणा, दया आदि का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है । ईश्वर करुणामय, दयालु, अत्यन्त सहनशील और स्नेहसंपन्न है । [३] उनमें सबके सुखी होने तथा दुखों से छूटने की अत्यधिक इच्छा तथा दया है । ईश्वर न्याय तथा दया से एक ही प्रयोजन की सिद्धि मानते हैं और वह है सबको दुख से छुडाकर सुखी करना । संत पोल के पत्रों में ईस्वर की दया या करुणा की स्मृति है । कोरिन्थियों के नाम पत्र में उन्होंने लिखा है कि ईश्वर

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. ११६.१७
२. नया विधान संत मात्यु ५:४५

दीन-हीन लोगों को सान्त्वना देनेवाले हैं । ईश्वरीय दया के दृष्टान्त भडकी हुई भेड, दाखबारी के मज़दूर, खोया हुआ सिक्का, खोया हुआ लडका आदि में स्पष्ट रूप में वर्णन किया गया है । संत पोल की राय में ईश्वर की दया सभी मनुष्यों की मुक्ति केलिए प्रकट है ।[१] दया की मूर्ति एवं करुणासागर ईश्वर से प्राप्त प्रस्तुत रक्षा बोध के कारण भक्त धैर्य के साथ जीवन में आगे बढता है । क्योंकि लोक में प्रथम साध्य रक्षा ही है । जहाँ रक्षा एवं प्रेम एक साथ आते हैं वहाँ मंगल का भाव कैसे न हो ? ईश्वर का अंश हरेक प्राणी में निहित है । जब तक जीव इसे नहीं पहचानता उसकी भक्ति का सच्चा मूल्य उसे प्राप्त नहीं होता । जब भक्त के मन में यह भाव प्रबल होता है वह 'स्व' को त्याग कर 'पर' को अपना लेता है । इसी में भक्त की विजय है संसार का मंगल है । उसमें त्याग की भावना जागृत होती है। वह अपने समान दूसरों को भी मानता है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में भक्त के इस भाव को अपनाने का आह्वान समान रूप से चित्रित है । इन दोनों रचनाओं में 'स्व' केलिए कुछ स्थान नहीं है । दूसरों केलिए, समाज केलिए और मानव जाति के कल्याण केलिए किया हुआ प्रयास दिखाई देता है । इन्होंने सत्य को ही इश्वरवत् माना । वे इसी समाज को, इस लोक को ही आदर्श और सज्जन व्यक्तियों के प्रभाव द्वारा स्वर्ग बनाना चाहते थे । इसके बारे में बाइबिल यों बताता है -- स्वर्ग में विराजमान हमारे पिता ! तेरा राज्य आये । तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में, वैसे पृथ्वी पर भी पूरी हो।''[२] इस प्रकार भक्त के मन में लोक के प्रति करुणा भाव सफल हो जाता है । स्वयं उस पर भी ईश्वर की करुणा वर्षित होती रहती है । इस प्रकार भक्त के साथ समस्त संसार जब पीडा और विघ्न-बाधा से मुक्त हो जाता है तब प्रेम भावना का, लोकरंजन का और समस्त संसार के सुख के विधान की नौबत आ जाती है, यही लोकमंगल है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में इसी के प्रस्थापन की प्रेरणा कई

---

१. संत पोल तीतुस के नाम पत्र २:११
२. नया विधान संत मात्य् ६:१०

तरह से की गई है । काव्य का उत्कर्ष भी इसी में देखा जा सकता है । यहीं पर सौन्दर्य का साक्षात्कार भी हो सकता है । जहाँ ईश्वर है वहाँ सबकुछ है । कबीर कहते हैं कि ईश्वर सत्य है, अपनी स्वार्थपूर्ति केलिए तथा दूसरों को अपने से नीचा दिखाने केलिए सत्य छोडना उचित नहीं । सत्यरूपी ईश्वर के साथ रहने की इच्छा है तो झूठ को छोडकर सांच को एक तपस्या के रूप में स्वीकारना है । सत्य के साथ जीवन बितानेवाले का हृदय ईश्वर का वासस्थान है —

सांच बरोबरीं तप नहीं, झूठ बरोबरि पाप
जाकै हिरदै सांच है, ताकै हिरदै आप ।'' [१]

प्रेम और करुणा सत्व-गुण-प्रधान है । करुणा का भाव अहिंसा और परोपकार से संबन्धित है । इसका महत्व कबीर साहित्य एवं बाइबिल में गाया गया है । जहाँ सत्व गुण प्रधान होता है वहाँ ईश्वर का अस्तित्व रहता है । जहाँ प्रेम और करुणा है वहाँ ईश्वर है, जहाँ ईश्वर है वहाँ प्रेम और करुणा का भाव है । ये भाव जहाँ प्रबल होते हैं वहाँ पर मंगल अपने आप आ जाता है । सार यही है कि जहाँ ये भाव रहते हैं वहाँ ईश्वर रहते हैं, जहाँ ईश्वर रहते हैं वहाँ मंगल है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में ईश्वरप्रेम की प्रबलता के चित्रण के ज़रिए लोकमंगल की इसी भावना का चित्रण हुआ है ।

सौन्दर्य का प्रयत्न-पक्ष

मध्यकालीन भक्ति-साहित्य में सौन्दर्य एवं एकता का भाव अद्‌भुत रूप में स्थापित हुआ था । साहित्य के माध्यम से स्थापित संबन्ध हमेशा दृढ रहता है,

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १८७

इतना दृढ और गंभीर कि उसका टूटना असंभव है । कबीर-साहित्य ने यही किया है । कबीर के दोहे, ऐसे तत्वों से भरे हुए हैं कि उनमें सबको एक ही विचार धारा से दृढता के साथ बांध रखा है । इसी एकता के कारण उसमें सौन्दर्य की स्थापना भी की गयी है । कबीर-साहित्य धार्मिक साहित्य है परंतु उसका धार्मिक स्वरूप साधारण जनता केलिए है । कबीर याद दिलाते हैं कि भगवद् भक्ति की शक्ति इतनी अधिक है कि उससे भक्त सबकुछ पा जाता है । भगवान के अनुग्रह-रूपी समुद्र की लहर मात्र से उनकी सभी खिन्नतायें समाप्त हो जाती हैं –

" जाके हिरदै हरि बसे, सो जन कलपै काई
एक लहरी समुंद की, दुख दलित सब जाई । [१]

बाइबिल में भी हम इसी बात को देख सकते हैं । यहाँ पर सौन्दर्य का प्रयत्न पक्ष ज्यादा मुखर हुआ है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में आध्यात्मिक शक्ति की बात कही गयी है, ईश्वर के साक्षात्कार को महत्व दिया गया है जो सौन्दर्य के प्रयत्न-पक्ष में ही संभव हो सकता है । त्याग, कष्ट, सहिष्णुता, परोपकार, विनयशीलता, दया इत्यादि की महत्ता कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में स्थान स्थान पर गायी गयी है और यहाँ तक कि इन्हीं को आनन्द प्राप्त करने के, ईस्वर के साक्षात्कार करने के सफल मार्ग के रूप में चित्रित किया गया है । जब भक्त निरंतर त्याग एवं सहिष्णुता के ज़रिए ईश्वर का साक्षात्कार करता है तो उसमें सात्विक विभूति जाग उठती है। कबीर एवं ईसा इसी सात्विक विभूति पर बल देते थे, इसको बहुत अधिक महत्व प्रदान करते थे और इसी आध्यात्मिक शक्ति में ही जीवन की सफलता मानते थे । कबीर में बराबर यह शक्ति रही थी और वे समाज के अन्य व्यक्तियों में भी इसे लाना चाहते थे । ईसा की बात भी इससे भिन्न न थी । येशू ने अपने जीवन के लक्ष्य के

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीरग्रन्थावली पृ. २४०

बारे में यों कहा है - मैं इसलिए जन्मा और इसलिए संसार में आया हूँ कि सत्य के विषय में साक्ष्य दूँ । जो सत्य के पक्ष में है, वह मेरी सुनता है ।[१] निर्दोष जीवन, अन्तर्दृष्टि, सहनशीलता, निष्कपट प्रेम, सत्य का प्रचार, ईश्वर की शक्ति पर विश्वास आदि व्यक्ति की आध्यात्मिक शक्ति की वृद्धि में सहायक हैं । इसी सत्व-गुण की प्रतिष्ठा मानव में पूर्ण प्रभविष्णुता लाने केलिए अत्यन्त आवश्यक है । यह कबीर एवं ईसा अच्छी तरह जानते थे । अंतसंज्ञा में स्थित बीज के रूप में और संसार में व्याप्त प्रकाश के रूप में वे इसे देखते थे । कबीर बताते हैं कि सर्वव्यापी ब्रह्म ज्योति स्वरूप है । अतः निर्गुण होते हुए भी वे अपने तेज की आभा से पहचाने जाते हैं —

अगम अगोचर गमि नहीं, जहां जगमगै जोति
तहां कबीरा बंदगी, जहां पाप पुन्नि नहीं छोति ।[२]

कबीर की राय में जो ज्योति जगमगा रही है, जिस साक्षात्कार का कबीर ने अनुभव किया है, वह मन, वचन से परे है । वह इन्द्रिय का विषय नही है । वहाँ किसी लौकिक साधन का प्रवेश नहीं है । जिस परम ' सत्यं, शिवं, सुन्दरम् के सामने कबीर प्रणत है, वह स्थिति पाप-पुण्य से भी परे हैं । पाप-पुण्य तो अहं को लेकर होता है । वह अहं से परे है । भक्त की अंतिम अवस्था वह है जिसमें वह अनन्त ज्योति में समा जाता है । बाइबिल भी प्रकाश को ईश्वर के प्रतीक के रूप में दिखाता है । नबी सामुएल ईश्वर से यों बताते हैं - प्रभु ! तू ही मेरा दीपक है। तू मेरे अन्धकार को आलोकित करता है ।[३] स्तोत्रग्रन्थकार की राय में -'' हे ईस्वर ! तू ही जीवन का स्रोत है, तेरी ही ज्योति में हम ज्योति देखते हैं ।''[४] और

---

१ नया विधान :संत जॉन १८:३७ ३.पुराना विधान सामुएल का दूसरा ग्रन्थ २२:२९
२.डॉ.पारसनाथ तिवारी:कबीर-ग्रन्थावली पृ.१६७ ४. वही स्तोत्र ग्रन्थ ३६:१०

आगे भी बाइबिल बताता है -'' ईश्वर ज्योति है और उसमें कोई अन्धकार नहीं।'' [१] कबीर-साहित्य एवं बाइबिल समान विचार प्रकट करते हैं कि प्रकाशरूपी ईश्वर पूरे विश्व में व्याप्त है । इसी ईश्वर को पहचानने, इसी सौन्दर्य को आत्मसात् करने केलिए जिन जिन बातों का अनुसरण करना होता है कबीर साहित्य एवं बाइबिल में इनका स्थान स्थान पर वर्णन किया गया है । कबीर बताते हैं कि जीव का मन माया में जिस प्रकार रमण करता है उसी प्रकार यदि उसका मन राम में रमण करे तो वह नक्षत्रखचित आकाश को भी भेदकर जहाँ से आया है वहाँ पहुँच सकता है अर्थात् ईश्वर में लीन हो सकता है —

जैसे माया मन रमैं, यौं जे रांम रमाइ
तौ तारामंडल बेधि कै सो अमरापुर जाइ ।'' [२]

आगे कबीर स्पष्ट करते हैं कि पृथ्वी में व्याप्त सारी बुराईयोंरूपी अंधकार को मिटाने वाले प्रकाशरूपी ईश्वर की उपासना करना मनुष्य का कर्तव्य है । जब तक शरीररूपी दीपक में प्राणरूपी बत्ती विद्यमान है याने जब तक जीवन है तब तक निर्भय होकर रामनाम का स्मरण करना है । तेल घटने पर बत्ती का बुझा जाना स्वाभाविक है याने शक्ति क्षीण होने पर जीवन समाप्त हो जाएगा फिर किस प्रकार नामस्मरण होगा ?

कबीर निरभै रांम जपि, जब लगि दीवै बाति
तेल घटै बाती बुझै, तब सोवेगा दिन राति ।'' [३]

---

१. नया विधान संत जॉन का पहला पत्र १:५
२. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १५१
३. वही पृ. १५१

बाइबिल आदेश देता है कि -''मनुष्य सबसे पहले ईश्वर के राज्य और उसकी धार्मिकता की खोज में लगे रहे और बाकी सब चीज़ें यों ही मिल जायेंगी ।'' [१]

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल के बारे में निस्सन्देह कह सकते हैं कि ईश्वर साक्षात्कार एवं उसके मिलन केलिए किन किन बातों पर मानव को ध्यान देना है, जिसके द्वारा व्यक्ति में, परिवार में, एवं समाज में मंगल का कार्य संभव हो, ये सारी बातें इन ग्रन्थों का मुख्य विषय है । यह सौन्दर्य चिन्तन मनुष्य को अच्छे-बुरे, उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय तथा ईमानदारी-बेइमानी को समझने में सहायता देता है । जब मानव इनको समझकर आगे बढता है तब अपने आप मंगल की स्थापना हो जाती है ।

शुभ-अशुभ आचरण

भक्ति में सत्वगुण की प्रमुखता रहती है । सत्वगुण की स्थिति नित्य, पारमार्थिक, सत्ता के बहुत निकट है । व्यावहारिक पक्ष में इसी सत्य का अर्थ शुभ ही कहा जा सकता है । यहीं से शुभ आचरण की शुरूआत है । सत् (ईश्वर) की प्राप्ति केलिए शुभ आचरण की अपेक्षा है । शुभ आचरण हमेशा मनुष्य का विकास करता है तब समाज का कल्याण होता है । शुभ आचरण केलिए अशुभ आचरण को दूर करना होता है । अशुभ आचरण के अन्तर्गत अत्याचार, अहिंसा, परनिन्दा, बैर, फूट, ईर्ष्या, क्रोध, स्वार्थपरता, दलबन्दी, व्यभिचार आदि आते हैं । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में इस अशुभ आचरण को दूर करने एवं शुभ आचरण में लगे रहने का उपदेश दिया गया है । कबीर बताते हैं --

कबीर औगुण नां गहे, गुणही कौ ले बीनि
घट घट महुं कै मधुप ज्यों, परमातम ले चीन्हि ।'' [२]

---

१. नया विधान संत मात्यु ६:३३ २. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २२६

लोगों के अवगुण मत ग्रहण करो । उनमें विद्यमान गुणों को चुनकर ले लो । जिस प्रकार मक्षिका पुष्प के अन्य उपदानों को छोडकर केवल साररूप मधु को ग्रहण कर लेती है उसी प्रकार जीवों में विद्यमान साररूप ग्रहण कर अवशिष्ट छोड देना है । जो सैद्धान्तिक सत् (ईश्वर) है वही व्यावहारिक शुभ है । जिसमें भक्ति है उसका अंतकरण पवित्र होता है । प्रभु का भक्त के स्थान पर पहुँचना आसान बात नहीं । जब तक व्यक्ति में ' मैं मैं ' का भाव या आपा रहता है तब तक प्रभु से परिचय नहीं हो पाता । आपा मिटते ही प्रभु से मिलन हो जाता है । प्रेम की विलक्षणता है कि जब तक द्वैत बना रहता है तब तक उसमें परिपूर्णता नहीं आती । द्वैत की समाप्ति पर ही परिपूर्णता आती है । ईश्वर में लीन होकर, उनसे तादात्म्य प्राप्त करने से भक्त का जीवन सफल हो जाता है । यथा –

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नहिं
सब अंधियारा मिटि गया, जब दीपक देखा मांहि ।'' [१]

यही सत् (ईस्वर) लोकमंगल का सैद्धान्तिक पक्ष है । शुभ (भक्त) लोकमंगल का व्यावहारिक पक्ष दिखाता है । भक्त की महत्ता कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में गायी गयी है । तमोगुण और रजोगुण जब सत्वगुण के अधीन हो जाते हैं उसके इशारे पर काम करने लगते हैं तब लोक में समष्टि प्रबल हो जाती है, स्वार्थ नष्ट हो जाता है, मंगल-विधायिनी शक्ति प्रबल हो जाती है, ईश्वर या ब्रह्म के आनन्द का प्रकाश दिखाई देता है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल सत्वगुणप्रधान इसी आनन्द की ओर लक्ष्य करते हैं । ये दोनों ग्रन्थ सिखाते हैं कि जो आनन्द यह संसार दे सकता है, वह क्षणिक है, जबकि मानव का हृदय शाश्वत आनन्द केलिए लालायित रहता है ।

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १६६

बाइबिल के अनुसार आत्मा के बल पर जीना, प्रेम का जीवन है । वह मातृत्व आनन्द, शांति, धैर्य, कोमलता, अच्छाई, ईमानदारी, संयम का जीवन है ।[१] सत्वगुणप्रधान आनन्द से कबीर-साहित्य एवं बाइबिल का तात्पर्य इन्द्रियसुख से नहीं। ये दोनों ग्रन्थ सिखाते हैं कि विषय भोगों से मनुष्य को पूर्ण संतोष नहीं प्राप्त होता । आत्मा का सुख ही सच्चा आनन्द है । इस आनन्द की प्राप्ति अपने अपने कर्तव्यों के पालन से होती है । परम सत् की प्राप्ति ही मनुष्य का लक्ष्य होना चाहिए। अतः नीतिनिष्ठ व्यक्ति के हृदय में पवित्र ईश्वर का निवास रहता है । बाइबिल में प्रत्येक व्यक्ति को सत्वगुण एवं नीति के पथ पर चलकर अपनी आत्मा को पवित्र बनाकर जीवन को सरस मधुर तथा आनन्दमय बनाने का आह्वान किया गया है । येशु ने शुद्ध-हृदय बनने का लोगों को उपदेश दिया है -'' धन्य है वे जिनका हृदय निर्मल है । वे ईस्वर के दर्शन करेंगे ।''[२] शुद्ध हृदयवाले व्यक्तियों की बुद्धि सीधी होती है । अन्तकरण की शुद्धता से आनन्द की वृद्धि होती है । कबीर साहित्य एवं बाइबिल की वाणी द्वारा यही आह्वान है कि अपने अन्तकरण को शुद्ध रखो और आनन्द सदा बना रहेगा ।

ईश्वर-साक्षात्कार एवं लोकमंगल

संसाररूपी सागर में विरला ही जीव होगा जो सुख-शान्ति को अनुभव करता है । क्षण-क्षण जाग्रत होनेवाली दुश्चिंताओं से सभी आकुल-व्याकुल हैं । इनसे व्यथित मानव की कारुणिक अवस्था से प्रत्येक संत-महात्मा का अन्तर द्रवित होता रहा है । संत कबीर उन्हीं महान् आत्माओं में से हैं जिन्होंने मानव कल्याण केलिए अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया ।

---

१. संत पोल गलतियों के नाम पत्र ५:२२
२. नया विधान संत मात्यू ५:८

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल मूलतः भक्ति-साहित्य है । धर्म की रसात्मक अनुभूति का नाम ही भक्ति है । धर्म है ब्रह्म के सत्यस्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति, जिसकी असीमता का आभास अखिल विश्वस्थिति में मिलता है । इस प्रवृत्ति का साक्षात्कार परिवार और समाज जैसे छोटे क्षेत्रों से लेकर समस्त भू-मण्डल और अखिल विश्व तक के बीच किया जा सकता है । [१] कबीर एवं ईसा इसी धर्म की असीमता का आभास संपूर्ण विश्व में देखने का प्रयत्न करते हैं । भक्त के सामने भगवान के दो रूप- वज्रादपि कठोर और ''कुसुमादपि मृदु '' प्रकट हैं । इनका विस्लेषण कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में स्थान स्थान पर मिलता है । प्रभु ईश्वर की आज्ञाओं पर कान न देकर अपनी मर्जी के अनुसार जीनेवाले इस्राएलियों पर वे अपना क्रोध बार बार दिखाते हैं और अपना कठोर भाव व्यक्त करते हैं । [२] यहाँ बाइबिल कठोर भावों से युक्त ईश्वर का चित्र दिखाता है साथ ही अपनी इच्छा छोडकर ईश्वर के कहे अनुसार जीने पर मिलनेवाली भलाई का चित्र प्रस्तुत करता है । [३] कबीर भी अपनी रचना में भगवान के कोमल रूप को दिखाते हैं -'' पूत पियारो पिता कौं [४] में परमात्मा को एक ममतामय पिता के रूप में चित्रित कर जीव को पुत्र का रूप देते हैं । अपनी भावना को जागृत करके कबीर ने परमात्मा को माँ के रूप में और भक्त को बालक के रूप में भी चित्रित किया है । बालक के नाना अपराधों को जननी अपने मन में नहीं रखती उसको भूल जाती है –

हरि जननी मैं बालक तेरा, काहे न अवगुन बकसहु मेरा
सुत अपराध करत है केते, जननी कै चित्त रहैं न तेते । [५]

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल :चिन्तामणि पृ. १४२
२. पुराना विधान विधि-विवरण-ग्रन्थ ११:१६-१७
३. वही ११:१३-१५
४. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. २३८
५ वही प ००

वैसे ही भगवान भी अपने भक्त के साथ बडी उदारता के साथ पेश आते हैं । सत्व-गुण को कायम रखने में इन दोनों रूपों की अत्यधिक आवश्यकता है । यहाँ पर कठोरता, उग्रता, प्रचंडता, सात्विक गुण के तेज को लेकर सामने आती है -भक्त इसी के दर्शन करता है । साथ ही '' कुसुमादपि कोमल '' ईश्वर के दर्शन भी वही करता है । भक्ति में परस्पर विरोधी इन तत्वों का अस्तित्व देखा जा सकता है । इसी कारण उसकी महत्ता गायी गयी है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल ने भक्त को ही सर्वोपरि माना है । इस भक्ति-मार्ग को अपनाते हुए साधारण से साधारण व्यक्ति भी सत्वगुणसंपन्न हो जाता है । भक्त में, उसके चारों ओर के परिवार में, लोक के परिचालन में, विश्व की शाश्वत स्थिति में भक्त इसी सत् (ईश्वर) के उग्र और कोमल रूप के दर्शन करते हैं । इसकी विशेषता यही है कि सत् (ईश्वर) के साक्षात्कार को जितने विस्तृत रूप में किया जाता है ईश्वर के स्वरूप की उतनी ही बडी भावना प्राप्त हो जाती है । और भक्त अखिल विश्व में सत् (ईश्वर) की इसी प्रवृत्ति के साक्षात्कार की साधना करता रहता है । यहीं पर आनन्द और मंगल का आविर्भाव है । भीतर का चित् बाहर के सत् का साक्षात्कार करता है, त्याग की भावना प्रबल हो जाती है । भोग एवं स्वार्थ खतम हो जाता है । इसकी ओर लक्ष्य कर तुलसीदास कहते हैं -'' अंतरजामिते बड बाहिरजामि

अंतरजामिते बड बाहिरजामि

तुलसीदास ने कहा है कि अन्तर्भाव से भी बढकर विश्व का भाव रहता है। सत् (ईश्वर) की इसी अवस्था, ईश्वर के साक्षात्कार की अवस्था, या ईश्वर को सारे विश्व में देखने की अवस्था की ओर कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में भी संकेत मिलते हैं । ईश्वर के समान या उनसे बडा कोई नहीं है । ईश्वर ऐसी एक शक्ति है जो पूरे विश्व में व्याप्त होकर मनुष्य को कार्य करने की प्रेरणा देती रहती है । ईश्वर के

सर्वव्यापी अस्तित्व को भक्त कबीरदास स्वीकार करते हैं । निर्गुण, निराकार ईश्वर सब कहीं व्याप्त है -इसकी घोषणा कबीरदास करते हैं । वे बताते हैं अनश्वर, अभंग प्रभु जिसका न कोई आदि है न मध्य और न अंत, वह मनुष्य के जीवन के आदि, मध्य और अंत तक अर्थात् जीवन और मृत्यु र्यन्त सदा, लगातार उसके साथ रहता है । कबीर कहते हैं कि ऐसे सर्वव्यापी ईश्वर का कभी साथ नहीं छोडना चाहिए -

आदि मध्य अरू अंत लौ अविहड सदा अभंग
कबीर उस करतार का, सेवग तजै न संग । [१]

निर्गुण एव सर्वव्यापी ईश्वर के सामने कबीर मूक रहने के बदले उनकी विशेषताओं का निरंतर वर्णन करते जाते हैं । उनका कथन है कि हरि के गुण अनन्त हैं । वे वर्णन से परे है । ईश्वर के अनगिनत गुणों का वर्णन करके वे बताते हैं -सातों समुद्रों को स्याही में तथा संपूर्ण वनों की लकडियों को कलम में परिणत कर लिया जाय और संपूर्ण धरतीरूपी कागज़ पर भगवान् के गुणगान लिखे जायें, तब भी उनके पूरे गुण नहीं लिखे जे सकते –

सात समुंद्र की मसि करों, लेखनि सब बनराइ
धरती सब कगद करौ, तऊ हरि गुन लिखा न जाइ । [२]

सर्वव्यापी ईश्वर की महत्ता दिखाते हुए बाइबिल में भी ऐसा ही बताया गया है । [३] कबीर का ईश्वर समस्त ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त है । जिन्होंने उसे जान लिया उनके लिए वह अति समीप है और जो उसे नहीं जानते उनके लिए वह दूरातिदूर है –

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १६६
२. वही पृ. ३१८
३. पुराना विधान स्तोत्र-ग्रन्थ १३९:७-९

घटि बढ कहूँ न देखिए, ब्रह्म रहा भरपूरी
जाने ही ते निकट है, अनजाने ते दूरी । [१]

इस प्रक्रिया में धर्म का बडा महत्व है । यहाँ विश्वधर्म ही पूर्णधर्म माना जाता है। विस्तृत जनसमूह का कल्याण,लोक-कल्याण,से संबन्ध रखनेवाला यही धर्म उच्च कोटि का है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में इसी धर्म के भिन्न तत्वों के अनुसरण केलिए प्रेरणा दी गयी है । प्रेमतत्व की महत्ता के संबन्ध में बताकर उसको सबसे श्रेष्ठ धर्म के रूप में दोनों ग्रन्थ चित्रित करते हैं ।

इसी विश्वधर्म में धर्म का शुद्ध रूप मिलता है, यही धर्म का पूर्ण स्वरूप भी है । यह पूर्णधर्म केवल ईश्वर में ही रहता है जिसकी मार्मिक अनुभूति ईश्वर में विश्वास रखनेवाला भक्त ही कर सकता है । इस मार्मिक अनुभूति केलिए अंतर्मन की शुद्धता अत्यन्त आवश्यक है । आन्तरिक शुद्धता की इसी अनुभूति के अनुरूप आचरण-सदाचरण का अपने आप यहाँ विकास होता है । क्षुद्र से क्षुद्र प्राणी से लेकर मनुष्य तक की सब प्राणियों की रक्षा (करुणा भाव) मात्र से भक्त को आनन्द प्राप्त होता है । वह मानता है 'अहिंसा परमों धर्मः','परोपकारार्थमिदं शरीरम्'। जब विषय की व्यापकता इतनी बढ जाती है तो उसमें यह भाव जाग जाता है-'सर्वे सुखिनः सन्तु।' यहाँ पर वह समस्त विश्व को अपना परिवार मानता है और अपने अन्दर जो ईश्वर है उन्हीं को बाहर विश्व में देखना चाहता है। यहीं पर 'यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् की सत्यता प्रकट हो जाती है । इसी में परमानन्द है और संसार का मंगल है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल इसी मंगल की कामना करते हैं।

पूर्णधर्म का स्वरूप

कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में पूर्णधर्म का स्वरूप चित्रित मिलता है ।

---

१ डॉ पारसनाथ तिवारी, कबीर-ग्रन्थावली, पृ. १६७

कबीर के राम और बाइबिल के ईसा इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं । इनके लीलाक्षेत्र के भीतर धर्म के विविध रूपों का प्रकाश देखा जा सकता है । यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि कबीर के पूर्णधर्म का स्वरूप निर्गुण है और बाइबिल का निर्गुण और सगुण दोनों है । अद्वैत की स्वीकृति कबीर-साहित्य में परिलक्षित होती है । वे स्पष्ट करते हैं कि उन्होंने छानबीन करके समझ लिया है कि परमतत्व एक ही है । जिन्होंने इस निर्गुण को नहीं पहचाना है और द्वैत की भावना रखते हैं, उन्हीं का पतन होता है —

हम तौ एक एक करि जांनां
दोई कहै तिनहि कौ दो जग जिन नाहिंन पहिचांनां । [१]

कबीर-साहित्य में यद्यपि निर्गुण ईश्वर की ओर संकेत किया गया है फिर भी पूर्णधर्म स्वरूप की प्राप्ति के भिन्न मार्ग बाइबिल के समान यहाँ भी अंकित किये गये हैं । कबीर यद्यपि राम की लीलाओं का वर्णन नहीं करते फिर भी राम (ईश्वर) की मंगल विधायिनी शक्ति के बारे में जिक्र अवश्य करते हैं । कबीर ने ईश्वर प्रेम की महानता पर बल देकर प्रभु की प्राप्ति केलिए भक्तों को जगाने का परिश्रम किया है क्योंकि ईश्वर से ही समस्त भलाई का आविर्भाव है । ईश्वर की ओर भक्ति होना परमावश्यक है । इसके द्वारा मनुष्य सर्वगुणसंपन्न बन जाता है क्योंकि ईश्वर सर्वगुणसंपन्न एवं मंगल की कामना करनेवाला है —

" करता केरे बहुत गुन, औगुन कोई नांहि
जौ दिल खोजौं आपनीं, तौ सब औगुन मुझ मांहि ।" [२]

और एक दोहे में ईश्वर में व्याप्त समभावना की ओर इशारा करते हुए कबीर बताते

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर ग्रन्थावली पृ. ४५

हैं कि सृष्टा के सिवाय कोई हितैषी नहीं है । निर्गुण ब्रह्म (राम) के सत्यस्वरूप का प्रकाश इस नामरूपात्मक जगत् में देखने का प्रयत्न करते हुए कबीर ने पूर्णधर्म के स्वरूप का स्थान स्थान पर वर्णन किया है । कबीर आत्मा और परमात्मा को एक ही मानते हैं । वे खोजते खोजते इस प्रकार ब्रह्म में लीन हो गये थे जैसे कि जल की एक बूँद समुद्र में मिल जाती है । फिर पूरे समुद्र का अस्तित्व उस बूँद में समा जाता है —

हेरत हेरत हे सखी रहा कबीर हिराइ
बूँद समानी समद में सो कत हेरी जाइ । [१]

जीव जो पहले अहं बना हुआ था, जब प्रभु की खोज में चलते चलते अहं से पृथक होकर प्रभु से तादात्म्य प्राप्त कर लेता है । सर्वव्यापी, ज्योतिस्वरूप, सर्वसंपूर्ण, अत्यन्त क्रियाशील, सबल उपास्य-की चिन्ता में रत रहने के बदले उसको छोडकर अन्य देवताओं के पीछे जाना अच्छा नहीं । प्रभु सागर के समान है अन्य अनन्त देव-देवियां छिछले तालाब हैं । परम-प्रिय परमात्मा राम को छोडकर अन्य देवताओं की पूजा करनेवालों की कबीर भर्त्सना करते हैं —

कबीर राम ध्याइ लै, जिभ्या सौ करि मंत
हरि सागर जिनि बिसरै, छीलर देखि अनंत । [२]

बाह्य जगत् में धर्म की दिव्य ज्योति के दर्शन न करते हुए जो अन्तकरण के किसी कोने में ईश्वर को ढूँढने का प्रयास करते हैं असल में वे विश्व के कल्याण के भागी नहीं होते । कबीर इनका घोर विरोध करते हैं । कबीर की राय में आत्मरक्षा की

---

१. डॉ.पारसनाथ तिवारी कबीर-ग्रन्थावली पृ. १६५

इच्छा करके, एकान्त जीवन बिताने केलिए जंगल जाने से अच्छा स्वधर्म की पूर्ति करके समाज के माध्य ही जीना है । अपने में निहित क्षमता दूसरों को भी देकर समाज-कल्याण का भागी बनना ही श्रेयस्कर है । अन्यथा यह जीवन व्यर्थ हो जायेगा । धर्म तभी पूर्ण हो सकता है जब 'स्व' के साथ 'पर' का भी कल्याण होता रहता है । ईश्वर को इसलिए पूर्णधर्म माना जाता है कि वे भक्तों के प्रति पक्षपात नहीं करते । सबकी समान ढंग से रक्षा करते हैं । यहाँ उच्च नीच, 'स्व','परः' का भेद नहीं है । कबीर ईश्वर के इसी रूप को मानव में भी पाना चाहते हैं । वे सत् (ईश्वर) के सैद्धान्तिक पक्ष से नहीं बल्कि व्यावहारिक पक्ष से प्रेरित रहते हैं । इसलिए ईश्वर की पूर्णता मानव में भी देखने की इच्छा करते हैं । ईश्वर की पूर्णता के बारे में कबीर अपने विचार यों प्रकट करते हैं -प्रभु में सभी गुण विद्यमान हैं,याने वे पूर्ण हैं । उनमें कोई दोष नहीं है । जो पूर्ण है वह अपूर्ण का उद्धार कर सकता है । इसलिए कबीर ईश्वर की ओर मुडने का आदेश अपूर्ण मनुष्यों को देते हैं । यदि सहज रूप में धर्म की यह ज्योति मानव में फूटती नहीं है तो कबीर अधर्मरूपी अन्धकार के विनाश एवं धर्म की स्थापना पर बल देते हैं । इसीलिए वे व्यक्ति में सद् गुणों के विकास पर बल देते हैं । मनुष्य जब सत्य, अहिंसा, अस्तेय, परोपकार, प्रेम, दया, क्षमा, आदि गुणों की महिमा एवं उसकी आवश्यकता पहचानते हैं तभी उनको अपनाने की इच्छा उनके मन में उभर आती है । कबीर एवं ईसा यह जानते थे कि इन सद्गुणों का आविर्भाव जब तक समाज में नहीं होता तब तक पाप एवं बुराई रूपी अंधकार समाज से दूर नहीं हो जाते । मनुष्य घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, घमंड आदि को त्याग कर सभी वस्तुओं को और मनुष्यों को वैसे ही देखें जैसे ईश्वर देखता है- यही कबीर-साहित्य एवं बाइबिल की इच्छा है । संत पोल कहते हैं कि - '' हम अंधकार में थे, किन्तु अब प्रकाश में हैं । इसलिए प्रकाश के पुत्र बने रहें ।'' [१] कबीर

---

१. संत पोल एफेसियों के नाम पत्र ५:८

एवं बाइबिल यही बात बताते हैं कि समाज का प्रत्येक मानव आत्मा की पहचान से ही अपने दोषों को त्याग कर सद्‌गुणों को ग्रहण कर सकते हैं । सद्‌गुणों से ही मनुष्य में सहव्यवहार और नैतिकता आती है । नैतिकता से ही मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन एवं सामूहिक जीवन में सुधार होता है । व्यक्ति में इन गुणों के विकास से समाज की भलाई एवं विश्व का मंगल संभव होता है । यहाँ पर व्यक्ति भी पूर्णधर्म की अवस्था पर पहुँचता है । जिस अवस्था में आकर सर्वत्र मंगल कामना हो, यही उसका मूल उद्देश्य होता है । इस प्रकार धर्म से लोक का ही अभ्युदय, दूसरे अर्थों में सब केलिए मोक्षमार्ग का विधान हो जाता है । हर कहीं आनन्द छा जाता है। यहाँ आकर मोक्ष धर्म से अलग नहीं होता । सांसारिक जीवन में ही इसकी उपलब्धि होती है । कबीर धर्म का चरम विकास इसी लोक के बीच आपसी व्यवहार में देखना चाहते थे । इसलिए उन्होंने धर्म के व्यवहार के कई क्षेत्रों का अपने काव्य में जिक्र किया है । बाइबिल भी इसका समर्थन करता है । संत जोन आह्वान करते हैं कि मनुष्य को अपने सद्‌गुणरूपी धर्म का पालन आज से ही शुरू करना है । वे बताते हैं -'' बच्चो ! हम वचन से नहीं, कर्म से, मुख से नहीं, हृदय से एक दूसरे को प्यार करें । इसी से हम जान जायेंगे कि हम सत्य की सन्तान हैं ।'' [१] मनुष्य की प्रगति एवं समाज की उन्नति केलिए ईश्वरज्ञान, आत्मज्ञान, धर्मपालन, यथार्थ भक्ति आदि की जरूरत है । धर्म, ज्ञान और भक्ति की समभावना इन दोनों ग्रन्थों में देखा जा सकता है ।

कर्म-साधना ही धर्म-साधना है

संसार में कर्म सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । कुछ भी बिना किये नहीं होता प्रत्येक वस्तु कर्म का परिणाम है । कर्म करना ही प्रधान है । सृष्टि का नियम है

---

१. नया विधान संत जॉन का पहला पत्र ३:१८

कि जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है । विद्वानों तथा मनीषियों ने कर्म को धर्म की संज्ञा प्रदान की है । यह मान्यता सत्य प्रतीत होती है । क्योंकि जब-जब व्यक्ति अपने कर्म से च्युत हुआ है तब-तब उसे पलायनवादी की संज्ञा दी गई है और जब भी कर्मशील रहा है तब विजयी हुआ है । सत्य तो यह है कि ''धर्म ही कर्म है'' अथवा ''कर्म ही धर्म है'' । इसलिए जो धर्म का नाम लेकर कर्म स्थान से भागता है वह सन्त कहता हुआ भी सन्त नहीं, और जो कर्म की तूफानी उडान भरता हुआ भी 'धर्म' से च्युत रहना चाहते हैं वह न तो कर्मयोगी कहलाने का अधिकारी है ।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में श्रम अनिवार्य है । बिना श्रम किये हुए किसी भी व्यक्ति को रोटी खाने का अधिकार नहीं है । जो बिना परिश्रम किये खाना खाता है वह चोर है । गीता के तीसरे अध्याय में कृष्ण कहते हैं कि -'' जो पापी लोग अपने शरीरपोषण केलिए ही पकाते हैं वे तो पाप को ही खाते है ।'' इसमें कहने का आशय है कि स्वार्थभाव से कार्य करना अशुभकारी है । अतएव मनुष्य अपनी मेहनत से शोभा पाता है । बाइबिल में भी कहा गया है कि अपनी रोटी तू अपना पसीना बहाकर कमा और खा ।''

पहले ही कहा जा चुका है कि सत् का व्यावहारिक पक्ष कबीर साहित्य का मूल ध्येय रहा है । बाइबिल भी इससे भिन्न नहीं है । अत्याचार के विरोध और अशुभ आचरण के त्याग से ही लोककल्याण के विधायक धर्म का अनुष्ठान किया जा सकता है । इसकेलिए निस्वार्थ कर्म की आवश्यकता है । यही कर्म मार्ग धर्म के पूर्ण स्वरूप की ओर ले जाने वाला है । कबीर ने निस्वार्थ कर्म पर बल दिया है । भगवद्गीता में यों कहा गया है — कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन

मा कर्मफल हेतुर्भूः मा ते सङ्गोस्त्वकर्मणि ।''

कर्मविरोध असल में धर्मविरोध होता है । वयनजीवी होने के कारण जुलाहा मुसलमान कुल में कपडा बुनना पैतृक व्यवसाय था । कबीर ने अपने पैतृक व्यवसाय कपडे बुनने के कर्म को नहीं छोडा वरन् वह जीवन का अंग बन गया । साथ ही साधना के साथ इसका कोई विरोध नहीं था । इसे उन्होंने आवश्यक भी माना । कबीर का मत था कि धार्मिक जीवन का अर्थ आलस्य में समय गँवाना नहीं है, हर भक्त को परिश्रम करके स्वयं अपनी रोटी कमानी चाहिए और दूसरों की सहायता करनी चाहिए ।

कर्म पर कबीर का उडिग विश्वास है । वे कर्म में ही मुक्ति की तलाश करते हुए उन लोगों की आलोचना करते हैं जो किसी कल्पित मुक्तिलोक का प्रलोभन देते हैं । कबीर के अनुसार साधु संगति अथात् साधुता का आचरण ही वैकुण्ठ है । वह समाज सापेक्ष और इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है ।

धर्मविरोध का दुष्परिणाम असल में ईश्वरविरोध होता है । भक्त कवि कबीरदास किसी भी हालत में इसे माननेवाले नहीं थे । ईश्वरविरोध के बारे में वे सोच भी नहीं सकते थे । जहाँ निस्वार्थ कर्म है, जहाँ कर्मफल का त्याग है वहाँ ईश्वर है । भक्त कर्म करता रहता है जिसमें स्वार्थ का सर्वथा अभाव रहता है । उसकी रक्षा केलिए ईश्वर हमेशा उसके साथ रहता है । बाइबिल में कहा गया है-

आप शक्तिशाली ईश्वर के सामने विनम्र बने रहें, जिससे वह आपको उपयुक्त समय में ऊपर उठाये । आप अपनी सारी चिन्ताएँ उस पर छोड दें क्योंकि वह आपकी सुधि लेता है । [१]

निस्वार्थ कर्म में विश्व कल्याण की व्यापक दृष्टि निहित है । भक्त की भावना में आत्मबोध और जगत्बोध एक रहता है । इसलिए 'स्व' को बाहर देखता

---

१. नया विधान संत पत्रोस का पहला पत्र ५:६-७

है और बाहर को भीतर देखने की प्रवृत्ति अपनाता है । अर्थात् व्यष्टि को समष्टि में देखता रहता है । अत्याचार का हनन, निन्दा न करना, स्तुतिपाठ करना, दया से आर्ध होना, डूबते हुए को बचाना -ये ही भक्त के लोकपालन का धर्म है जिससे लोकमंगल आसानी से साध्य बन जाता है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में इसी का वर्णन देखा जा सकता है ।

निष्कर्ष

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि कबीर एवं बाइबिल के रचनाकारों ने युगीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में इन ग्रन्थों की रचना की । युग की प्रवृत्तियों और अवधारणाओं से वे अछूते न थे । समाज में व्याप्त सभी प्रकार की आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक विषमताएँ दोनों ग्रन्थों के सुधारकों ने देखा और परखा तथा उनके निराकरण का प्रयास किया । इन सुधारकों ने जिस समन्वयवादी एवं सुधारवादी दृष्टिकोण को अपनाया, वह आज भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना उस युग में था । उन्होंने ईश्वर को स्वानुभूतिपरक आध्यात्मिक विचारों के ज़रिए सर्वव्यापी, कालातीत, भेदातीत, अनश्वर, अनिर्वचनीय, अद्वैत घोषित किया । उनको एकमात्र सत्य का रूप दिया गया । दोनों ग्रन्थों के सुधारकों के मानवतावादी दृष्टिकोण उल्लेखनीय हैं । दोनों ग्रन्थों ने व्यष्टि और समष्टि को खूब स्थान दिया । व्यक्ति के उत्थान केलिए सामाजिक स्वस्थ वातावरण की आवश्यकता होती है । व्यक्ति के उन्नयन से समाज का उन्नयन संभव है । अतः मानव के प्रति दया, सहानुभूति, उदारता, असहायों की सेवा, अहिंसा की प्रवृत्ति-दोनों ग्रन्थों में समान है । दोनों ही रचनाओं में गुरुजनों के सम्मान, दुर्व्यसनों का त्याग, संयमित जीवन की आवश्यकता आदि पर बल दिखाई देता है। सामाजिक उन्नति एवं मानवकल्याण को लक्ष्य कर दोनों ग्रन्थों में जो जो बातें कही गई हैं वे सब संसार में मंगल लानेवाली हैं ।

उपसंहार

साहित्य का संसार जीवित संसार है । उसमें समाज एवं मानव की गहरी संवेदनाएं रूपायित हैं। इन ग्रन्थों के बारे में कहें तो ये जीवन के निरीक्षण के बाद रचनाकार के मन पर उभरी बातें है । जीवनोपयोगी बातें इनमें अभिव्यंजित हैं । प्रस्तुत दोनों ग्रन्थों की वाणी में जीवन की यथार्थ स्थिति उभर आती है साथ ही भविष्य में एक सुन्दर जीवन बिताने की प्रेरणा भी निर्भर रहती है ।

किसी भी कवि की रचना की प्रासंगिकता का अर्थ वर्तमान संदर्भ में उसकी उपादेयता का विवेचन है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल की प्रासंगिकता का मतलब आज के समाज केलिए उनके साहित्य की समीचीनता से है । याने प्रासंगिकता से तात्पर्य उस साहित्य से है जो वास्तविकता युक्त हो । साथ ही युग विशेष में विशेष संदेश को लेकर चलता हो । इन दोनों दृष्टियों से कबीर-साहित्य एवं बाइबिल की वाणी सफल है और शत प्रतिशत प्रासंगिक है ।

कबीर एवं बाइबिलकालीन समाज की ओर देखने पर वह समाज जाति-पांति, ऊँच-नीच भाव, छुआछूत, अन्धविश्वास, बाह्याडंबर आदि कुप्रथाओं एवं मूल्य विघटन की स्थिति में था । कथनी की अपेक्षा करनी पर बल देने वाले इन सुधारकों ने इन सबका घोर विरोध किया । समाज के निचले स्तर के लोगों को उबारने तथा उन्हें मानवीय बनने एवं सामाजिक अधिकार के योग्य बनने केलिए कबीर, ईसामसीह एवं अन्य सुधारकों ने अपने अपने ढंग से प्रयत्न किया । साथ ही इसी प्रकार खंडन-मंडन की प्रवृत्ति में व्यापृत होते वक्त उनके मार्ग में स्वाभाविक रूप से उभर आनेवाली हर तकलीफ का हिम्मत के साथ सामना किया । इन्होंने समाज के जाति भेद, समाज का मूल्यहीन दृष्टिकोण, संकुचित धारण तथा अमानवीय व्यवहार का खुले आम विरोध

किया । कबीर एवं येशु के संग नीच जाति के लोग भी बैठे थे । वे जातियों के बीच की दीवारों तोड देते थे, भेद-भाव का अन्त करते थे । कबीर ने अपने प्रखर और तेजस्वी व्यक्तित्व से ब्राह्मण व्यवस्था पर कुठाराघात किया । उनके अनुसार कोई भी जन्म से श्रेष्ठ नहीं है । सद्‌गुणों से पूर्ण होना यही आवश्यक है । यदि कर्म अच्छा न हो तो ऊँचे कुल में जन्म लेने से क्या लाभ है ?

''ऊँचे कुल क्या जनमिया, जे करनी ऊँचि न होई ।''

जगत के प्राणियों ने व्यर्थ में जाति या कुल की मर्यादा को अधिक महत्व देकर अपने लिये दुख एवं कष्ट पैदा कर रखा है । केवल कुल की श्रेष्ठता से किसी को प्रभु नहीं मिलता । कुल का संबन्ध शरीर से है आत्मा से नहीं । तन को नष्ट हो जाने पर कुल-विशेषता अपने आप समाप्त हो जाती है । जाति-पांति को छोडकर आपसी प्रेम के साथ जीना ही श्रेष्ठ है । बाइबिल भी यही सन्देश देता है । उसमें कहा गया है कि इस्राएलियों को एदोमी (गैर-यहूदी) व्यक्ति से घृणा मत करनी चाहिए क्योंकि वे आपस में भाई-भाई हैं । मिस्र निवासियों (गैर-यहूदी) से भी घृणा नहीं की जानी चाहिए । इन बातों से यह सिद्ध होता है कि भिन्न जातियों के रहते हुए भी बाइबिल को आपस में भाईचारे का सन्देश देना था । ईसा सभी जातियों की समानता, पडोसियों के प्रति प्यार, गरीबों के प्रति सहानुभूति और दलितों, कमज़ोरों, असहायों के प्रति करुणा की शिक्षा देते हैं । जाति, धर्म, रंग, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक स्थिति पर आधारित कोई भी भेद-भाव कबीर ईसा और अन्य सुधारकों को बरदश्त नहीं है । उन्होंने अपनी वाणियों द्वारा जो कुछ भी कहा है वह सब जीवन और जगत् के यथार्थ को खुली आँखों से देखने के बाद ही कहा है । वहाँ उनकी दृष्टि में कुछ पक्षपात या भेदभाव केलिए ज़रा भी स्थान नहीं था । उनके पक्ष में जातिगत, कुलगत, आचारगत, परंपरागत श्रेष्ठता का कोई मूल्य नहीं था । समाज में व्याप्त वर्ण-

व्यवस्था, जाति-पाँति आदि को मिटाने का प्रयत्न करके कबीर ने कहा-सभी मानवों का शरीर एक तत्व से बना है, सब मनुष्य एक हैं, सबके शरीर में एक ही खून है, एक ही प्राण है तो किससे हम अपने को अलग समझते हैं ? मनुष्य सब एक है-यही भाव बाइबिल भी मनुष्य को देता है । उसके अनुसार-मनुष्य का शरीर एक है, यद्यपि उसके बहुत-से अंग होते हैं और सभी अंग, अनेक होते हुए भी, एक ही शरीर बन जाते हैं । यहूदि हों या यूनानी, दास हों या स्वतंत्र, मनुष्य सब के सब एक ही आत्मा का बपतिस्मा ग्रहण कर एक ही शरीर बन गये हैं । मानव की एकता संबन्धी प्रस्तुत बात आज भी प्रासंगिक है । क्योंकि समाज में वैज्ञानिक वा तकनीकी प्रगित बहुत होने पर भी आज भी मानव मन संकुचित ही रहता है । आज के युग में छोटी छोटी बातों के लेकर मानव मानव के बीच में झगडा ही झगडा है । सांप्रदायिकता के नाम पर देश के अन्दर तनाव बहुत बढ गये हैं । राम जन्म भूमि, बाबरी मसजिद जैसे विषयों को लेकर हिन्दू और मुसलमान के बीच भेदभाव बढता ही जाता है इन सबके बीच साधारण मानव पिसते जाते हैं । उनकी प्रगति अवरुद्ध होती है । भेदभाव विहीन, समानता युक्त समाज की स्थापना केलिए कबीर एवं बाइबिल के सुधारकों ने वर्षों पहले संघर्ष किया था । आज भी हम उसी केलिए तरस रहे हैं । इस दृष्टि से ये दोनों ग्रन्थ आज भी प्रासंगिक हैं । आज देश से जाति प्रथा की भयंकर बुराई को समाप्त कर देना अत्यन्त आवश्यक हो गया है ।

आज का युग सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रभावों से ग्रस्त भौतिकवादी वैज्ञानिक युग है । इसमें भौतिकता का पुट देखने को नहीं मिलता । मशीनों के बीच रहते हुए मानव आज यांत्रिक हो गये हैं । आज के मानव केलिए धर्म, दर्शन, नैतिकता, पाप,पुण्य आदि मूल्य हीन एवं पुराने हो गये हैं । यहाँ कबीर की ''मैं कूता राम का'' वाली पंक्तियाँ, और बाइबिल की ''मैं प्रभु की दासी हूँ'' वाली वाणी मूर्खता

हैं। मानव की संवेदनायें नष्ट प्राय हो गयी हैं । उनकी व्यस्तता के बीच पडोस वालों की, परिवार वालों की या स्वयं अपनी ही चिन्ता करने को उनके पास समय नहीं है। भीड तो बढ रही है पर भीड के बीचों बीच खडा आदमी अपने को अकेला पा रहा है। कुंठापन, अजनबीपन, परायापन, अविश्वास आदि के कारण मानव मन जल विहीन मछली के समान तडप रहा है । इससे बचने केलिए अनैतिक या अधार्मिक बातों, निम्न श्रेणी के संचार माध्यमों व नशीली पदार्थों में वे आश्रय पाते हैं । ये सारी बातें उनको संतोष देने के बदले मानसिक असंतोष ही देती रहती हैं । वैज्ञानिक प्रगति को छोडकर आज समाज में दिखाई पडने वाली सारी बातें ज्यों की त्यों कबीर एवं बाइबिलकालीन समाज में भी दिखाई पडती थीं । अपने अपने समय में एक युग पुरुष के रूप में अवतरित होकर कबीर, ईसा एवं अन्य सुधारकों ने अपनी वाणी द्वारा अनेक वर्षों पहले के उस समाज के लोगों को जो उपदेश दिये थे वह आज के मानव केलिए भी उसी अंश में ही सार्थक हैं । उन्होंने अपनी वाणी द्वारा व्यक्ति जीवन, पारिवारिक जीवन एवं सामाजिक जीवन से संबन्धित जो बातें बतायी हैं वही बातें वर्षों बाद के वर्तमान समाज केलिए भी लागू हो सकती हैं । मूल्यों एवं आदर्शों से संबन्धित जो बातें इन रचनाओं में प्राप्त हैं वह आज भी ताज़ा है ।

कबीरदास, ईसामसीह एवं बाइबिल के अन्य सुधारक विद्रोही थे । व्यक्तिपरक, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक आदि सभी क्षेत्रों की विसंगतियों के प्रति वे प्रतिक्रिया प्रकट करते थे । उन्होंने तत्कालीन समाज की शोषित-पीडित जनता की मुक्ति केलिए संघर्ष किया । वे समाज में सबको समान पद देना चाहते थे । कबीर एक साहसी एवं निर्भीक व्यक्ति होने के कारण मुसलमानों के शासन काल में रहकर भी काजी और मुल्ला के विरुद्ध आवाज़ उठाते थे और ब्राह्मणवाद से ग्रस्त समाज में ब्राह्मणों और पंडितों के दुराचारों पर आक्रोश करते थे । युगीन समस्याओं से विह्वल

ईसा ने भी उसके निराकरण हेतु भरसक प्रयत्न किया है । ईसा ने अपने समय के सर्वहारा वर्ग का पक्ष ग्रहण करके उन्हें 'शोषण तंत्र' के मूल स्वरूप को समझाने की चेष्टा की । ईसा सच्चे अर्थों में एक राजनीतिक विद्रोही और जन नायक थे । शासक को नीति निपुण एवं प्रजावत्सल रहना चाहिए । पृथ्वी और प्रजा का पालन ही राजधर्म है । भारतीय राजनीति-चिन्तन में राजा ईश्वर का अंश माना गया है तथा सार्वभौम धर्म, एकता एवं शक्ति का केन्द्र बिन्दु होता है । लेकिन कबीर एवं बाइबिलकालीन शासक गण मनमाने ढंग से चलते थे । राजनीतिक उथल-पुथल के परिणाम जनता को भोगने पडे । राज्य-विस्तार तथा धन-प्राप्ति केलिए सर्वत्र संघर्ष चल रहा था । इस काल में जनता से प्राप्त धन को सुन्दर महल बनवाने तथा अन्य कार्यों पर राजा ने खर्च किया । जिस राज्य का राजा क्रूर, अन्यायी, विलासी हो, उस युग का कवि यदि व्यवस्था के प्रति विद्रोह नहीं कर सकता तो अपनी दृष्टि आध्यात्म की ओर प्रेरित करता है । इस प्रकार समकालीन राजा से निराश होकर कबीर ने राजाओं के राजा राम के गुणों का वर्णन किया है जो समकालीन राजाओं को एक अप्रत्यक्ष आदर्श की शिक्षा माना जा सकता है । कबीर चेतावनी देते हैं कि चाहे कोई राजा राणा या छत्रपति हो सबकेलिए एक ऐसा दिन आयेगा जब उसे संसार से सबकुछ त्यागकर जाना होगा । इसलिए हे मनुष्यों, जीवन के रहते ही सावधान क्यों नहीं हो जाते -

एक दिन ऐसा होइगा, सब सौं परै बिछोह
राजा राना छत्रपति, सावधान किन होई ।''

राजसत्ता को बनाये रखने केलिए झूठ बोलने एवं गलत आचरण करने से न हिचकने वाले राजा का चित्र बाइबिल में भी देखा जा सकता है । दो सहस्र वर्ष पूर्व उत्कट स्वांग एवं उद्घोषणा युक्त क्षणों में राज्यपाल पीलातोस येशू को दण्ड देने का आग्रह

लेकर आये । पीलातोस ने उसकी निर्दोषता के प्रति आश्वस्त रहते हुए भी उसे मृत्यु-दण्ड दिया । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल दिखाते हैं कि राजनीति को धर्म और नैतिकता पर आधारित होना है । उसी में सदाचार और सत्याचरण की प्रधानता है। धर्म ही भारतीय जीवन का मूलतत्व रहा है । धर्मविहीन राजनीति समाज में स्वार्थपरता, अर्थलोलुपता और भ्रष्टाचार फैलाती है । शासक नीति निपुण एवं प्रजावत्सल रहने के बदले मनमाने ढंग से,स्वार्थ पूर्ति करते हुए जीवन बिताते रहते हैं । भारतीय राजनीति-चिन्तन में राजा ईश्वर का अंश माना गया है । बाइबिल ने उपदेश दिया है कि प्रजा को राजा का आदर करना चाहिए । राजा वास्तव में सार्वभौम धर्म, एकता एवं शक्ति का केन्द्र बिन्दु होता है । यदि राजनीतिक जीवन में पवित्रता लाना है, उसे भ्रष्टाचार से मुक्त करना है और सत्यनिष्ठा की प्रतिष्ठा करनी है तो राजनीति और राजनीतिज्ञों को धर्म का आश्रय लेकर चलना होगा । अर्थात् धर्म मनुष्य को सत्य पर चलने केलिए प्रेरित करता है, उसको निस्वार्थ सेवा और त्याग की शिक्षा देता है । जो समस्यायें समाज से दूर करने केलिए कबीर एवं बाइबिल के सुधारकों ने वर्षों पहले प्रयत्न किया वही समस्यायें आज भी समाज में, राजनीति में स्थित है । इन समस्याओं के द्वारा समाज में एकता के स्थान पर आज भिन्नता ही काम करती जा रही है । इस अवसर पर कबीर-साहित्य एवं बाइबिल की वाणी पर ध्यान देना उचित है वह मानव को एकता का मार्ग दिखायेगी। इन दोनों ग्रन्थों में बतायी वाणी वर्षों पहले के वातावरण से उद्भूत होने पर भी वह आधुनिक युग में भी लागू होती है इसलिए बिलकुल प्रासंगिक ही कही जा सकती है।

धर्म के नाम पर आज कोलाहल मच रहा है । सभी धर्मावलंबी अपने ही धर्म को श्रेष्ठ मान कर उसको उच्च स्थान पर आसीन करने में निरत रहते हैं । इसको विषय बनाकर पूरे देश में होने वाली दुर्घटनाओं की सूची प्रतिदिन बढती जा रही हैं।

कबीर एवं बाइबिल के युग में भी यही होता था । उस समय के सुधारकों ने समाज में प्रचलित इस विपन्नता से मानव को बचाने केलिए खूब परिश्रम किया । प्रेम से परिपूर्ण मानव धर्म को अपनाने का उपदेश उन्होंने अपनी वाणी द्वारा दिया । उन्होंने बताया कि हम सब एक ही परमात्मा की संतन हैं और आपस में भाई-भाई हैं । धर्म मनुष्य हृदय की अत्यन्त उच्च, उदात्त, पुनीत एवं पवित्र भावना है । धार्मिक भावना से मनुष्य में सात्विक प्रवृत्तियों का जन्म होता है, परोपकार, समाज सेवा, सहयोग तथा सहानुभूति की भावना उत्पन्न होती है । धर्म का नाश सर्वनाश का द्योतक है और उसकी रक्षा सर्वोन्नति का सोपान है । धर्म के मार्ग का काम, क्रोध, लोभ, शत्रुता आदि मुख्य बाधाएँ हैं । मनुष्य को धार्मिक प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर इन सब बाधाओं से अपने को दूर रखते हुए, कष्टों को झेलते हुए सत्य के मार्ग का अनुकरण करना है। आज के संसार में विशेषकर मूल्यों के शोषण के इस संदर्भ में कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में चित्रित धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों का विशेष महत्व रहा है । वैज्ञानिक उन्नति पाकर आज मानव में स्वार्थता, अहंभाव आदि दुर्गुण भी पनपने लगे हैं । वह तनिक भी दूसरों की सुवीधाओं की सोचता नहीं है । नैतिक मूल्यों में परिस्थिति के अनुसार बदलाव आ गया है । इसी प्रकार के गर्व से युक्त आधुनिक समाज की ओर देखकर आज भी कबीर-साहित्य एवं बाइबिल बताते हैं कि केवल बडा व्यक्ति बन जाने मात्र से कुछ नहीं होता । जीवन की सार्थकता उसी में है कि वह बडा व्यक्ति समाज के लिए उपयोगी हो, अन्यथा उसका बडप्पन भी व्यर्थ हो जाता है ।

पुराने ज़माने के समान आज भी मनुष्य पदलोलुप होकर दौडता-फिरता रहता है । 'धन और पद' पाने केलिए कुछ भी करने को वह तैयार है । धोखा, मारकाट विशेषतः कटु वचनों के द्वारा भी वह दूसरों की हत्या करता रहता हैं । ऐसे मनुष्य की ओर देखकर कबीर यों बताते हैं-

ऐसी वाणी बोलिए, मन को आपा खोय
औरन को शीतल करैं, आपहु शीलत होय ।''

कहने वाले को शीतलता एवं सुनने वाले को सुख मिलनेवाली वाणी का उपयोग ही श्रेष्ठ है । बाइबिल इसके बारे में यों बताता है-''अच्छा मनुष्य अपने हृदय के अच्छे भण्डार से अच्छी चीज़ें निकालता है और जो बुरा है, वह अपने बुरे भण्डार से बुरी चीज़ें निकालता हैं, क्योंकि जो हृदय में भरा है, वही तो मुँह से बाहर आता है ।'' मिठास से युक्त वाणी के द्वारा पूरे संसार को अपनाना ही सच्चे मानव का लक्षण है । दूसरों की ओर ईर्ष्या भाव रख कर अशांति का जीवन जीने वाला और कटु वचन के द्वारा स्वयं की ओर दूसरों की शान्ति का हनन करने वाला मनुष्य पुराने ज़माने के समान आधुनिक काल में भी है । इसकेलिए इन दोनों ग्रन्थों की वाणी आज भी विशेष संदेश देती रहती हैं ।

आधुनिक भौतिक युग में सामाजिक मूल्यों के विघटन के साथ साथ पारिवारिक मूल्य भी टूट चुके हैं । परिवार में आज प्रेम का कोई महत्व नहीं है । सब अपने अपने सुख में मग्न हैं लेकिन वास्तविक सुख कोई भी नहीं भोगता । पडोसी, समाज, देश आदि सब उनकी स्मृति से विस्मृत से हैं । आज संसार की स्थिति इतनी गिर गयी है कि व्यक्ति उनमें अच्छा-बुरा पहचाने में असमर्थ हो गया है । आज मानव-मानव से विरोध करता रहा है । ऐसे संदर्भ में मानव को मानव के निकट लाना, उनमें एकता का भाव उत्पन्न करना, नितान्त अनिवार्य बन गया है । आज मानव ओर विश्व का भविष्य खतरे में है । विश्व में सांप्रदायिक भेद-भाव, तनाव और हिंसा व्यापक स्तर पर बनी हुई है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल के पदों में बार बार इस बात की पुनरावृत्ति हुई है कि हिंसा नहीं करनी चाहिए, चाहे वह हिंसा मन से हो, कर्म से हो अथवा वाणी से हो । इससे समाज में अमंगल ही होता है । आधुनिक लोगों को ये

दोनों ग्रन्थ यही संदेश देते हैं कि अहिंसा विकास पथ की और ले जानेवाली है तो हिंसा नाश की ओर ले चलनेवाली है ।

आत्मा की श्रेष्ठता में विश्वास करने वाले हमारे लोग पीढी दर पीढी सैकडों वर्षों के अथक प्रयास और परिश्रम से जिन नैतिक मूल्यों को सुरक्षित रखते आये हैं, आज वे सभी प्रकार से कुचले जा रहे हैं । आज धर्म और अधर्म के बीच जो संघर्ष छिडा हुआ है उससे बचने केलिए लोगों की आन्तरिक चेतना को सजग करना होगा। भौतिक दुखों के ऊपर आत्मा की श्रेष्ठता की प्रतिष्ठा करनी होगी । यह प्रस्तुत दोनों ग्रन्थों में चित्रित नैतिक मूल्यों के अनुवर्तन से सफलता के साथ संपन्न किया जा सकता है । सत्य, अहिंसा, अस्तेय, दया, परोपकार आदि भी भावना जब विकसित होगी, तब मानवता की भावना का विकास होगा । मानवता की भावना का अभाव ही सामाजिक विनाश का कारण है । आधुनिक युग में भी कबीर-साहित्य एवं बाइबिल एक सच्चा पथ प्रदर्शक है । मानव जीवन को सफल बनाने वाली सत्य, अहिंसा, परोपकार, क्षमा, दया आदि वृत्तियों का सफल नियोजन कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में हुआ है । दोनों ग्रन्थों में सत्य संबन्धी विचार मिलते है । उनमें व्यक्ति के सत्य बोलने एवं सदाचरण करने पर बल दिया गया है । व्यक्ति मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य का अनुवर्तन करे क्योंकि सत्य सभी सुकृतों की जड है । ''सत्य मूल सब सुकृत सुहाए।'' बाइबिल कहता है कि-''सत्य तुम्हें स्वतंत्र बना देगा ।'' बन्धन या अस्वतंत्रता हमेशा अमंगल है जो मानव को नाश की ओर ले जाता है । इसके ठीक उलटे स्वतंत्रता मानव को विकास की ओर अग्रसर करती है और इससे समाज का और व्यक्ति का मंगल हो जाता है ।

अंतरंग की शुद्धता, सदाचार, अनन्यता, सर्व-समानता, निष्काम लोकमंगल कर्म, चराचर के प्रति विशुद्ध प्रेम-भाव, मानव समाज का रक्षण, खण्डित व्यक्तित्व में

आत्मबल निर्माण करना, आत्मविश्वास, अहंकार शून्यता, विनय, दैन्य, सर्वस्व समर्पण आदि से मानव मानव के निकट पहुँचने का आह्वान दोनों ग्रन्थ करते हैं । दोनों ग्रन्थों ने अपनी वाणी से समाज को प्रबोधित किया था जो आज के संगणक युग में, मनुष्य की भौतिक लालसाओं की मर्यादा को सूचित करते हुए मनुष्य को शाश्वत मंगल की चेतना प्रदान करती है । दोनों ग्रन्थ आज भी आत्मान्वेषण के, आत्मोद्धार के प्रेरक है । परस्पर अलगाव और व्यक्ति प्रमुखता के परिवेश में दोनों ग्रन्थों के विचार मानवता का सन्देश देते हैं ।

संक्षेप में दोनों ग्रन्थों के विशद अध्ययन के बाद यह स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत ग्रन्थों में प्रतिपादित समाज के लोग ईश्वरोपासना के नाम पर बहुसंख्यक विधियों, बाह्याडंबरो पृथक विधि-विधानों पर बल देने के कारण आपस में द्वेष, भेदभाव एवं झगडा रखते थे । आज की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है । प्रस्तुत भेद-भाव को मिटाकर लोगों को एक ही प्रेम सूत्र में पिरोने का काम अपनी वाणी द्वारा इन सुधारकों ने किया । और आज भी वही करते रहते हैं । कबीर, ईसामसीह एवं बाइबिल के अन्य सुधारकों की यही विशेषता है कि ख्याति प्राप्त करना उनका लक्ष्य नहीं था । अपने अनुभूत सत्य का, अज्ञानांधकर में पडी जनता को दर्शन कराना तथा पथभ्रष्ट प्राणियों का मार्गदर्शन करना उनका परम लक्ष्य था । इसी उद्धेश्य से आज भी दोनों ग्रन्थ समाज में मौजूद हैं । आदर्श युक्त एवं समानता को महत्व देनेवाले समाज का निर्माण कर सद्भावना और सदाचार की श्रेष्ठता घोषित करके व्यक्ति व्यक्ति में मानवता भरना ही उनकी इच्छा थी, ये दोनों ग्रन्थ याद दिलाते है कि संघर्षरहित, साथ ही आपसी प्रेम युक्त समाज में ही भलाई संभव है । प्रस्तुत भलाई की कामना दोनों रचनाओं में निर्भर रहने के कारण निसंदेह यह कह सकते हैं कि कबीरदास, ईसामसीह और अन्य नबीगण सच्चे समाज सुधारक थे । वैयक्तिक एवं सामाजिक

प्रगति केलिए जिन जिन बातों पर मनुष्य को आज ध्यान देना हैं ये सब इन दोनों ग्रन्थों में बताया गया है । इसी कारण इसकी प्रासंगिकता हैं ।

समाज में प्रचलित रूढियों एवं कुरीतियों से जन-जन को मुक्त कराने के उद्देश्य से इन सुधारकों ने सामान्य जन की भाषा का प्रयोग करने के साथ ही साथ विविध प्रतीकों की सहायता भी ली । शिष्यों एवं अनुयायियों को उपदेश देते समय उन सुधारकों की भाषा में स्वाभाविक मृदुलता और सहजता के दर्शन होते है । लेकिन पाखंडी पंडितों एवं पुरोहितों की आलोचना करते समय उनकी भाषा व्यंग्यात्मक बन जाती है । अपने मन्तव्य को जन जन तक पहुँचाने का सामार्थ्य दोनों रचनाओं के सभी सुधारकों में अवश्य मिलता है ।

परिस्थिति की निष्पक्ष आलोचना, उसके आधार पर निश्चित किए गए स्वतंत्र विचार, तदनुसार व्यवहार आदि इन सुधारकों के जीवन में समान भाव से देखा जा सकता है । जन जन के आत्मविश्वास की कामना तद्वारा विश्वकल्याण की आशा ये चाहते थे । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल में भक्ति का प्रतिपादन ही अधिक है किन्तु पाखण्डों के निराकरण, स्वार्थी और घमंडी लोगों के विरुद्ध व्यंग्योक्तियों और क्षोभपूर्ण कथनों का प्रयोग भी एकसमान देखते हैं ।

राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक दृष्टिकोण से कबीर एवं बाइबिलकालीन परिस्थितियों में आश्चर्यजनक समानता दिखाई देती है । राजनीतिक दृष्टि से दोनों समय अराजकता और अव्यवस्था का समय था । सामाजिक स्थिति में भी दोनों रचनाओं के युग में कोई विशोष अंतर नहीं था । असत्य, अनाचार, व्यभिचार के प्रति जिस प्रकार कबीर ने आक्रोश प्रकट किया वहीं भाव युगों पहले बाइबिल के सुधारकों ने भी प्रकट किया ।

समानताओं के साथ साथ इन ग्रन्थों में कुछ असमानतायें भी है । कबीर के युग में वर्णाश्रम की प्रमुखता थी लेकिन बाइबिलकालीन समाज में ऐसी प्रथा नहीं थी। कर्म का विभाजन अवश्य रहा था । युद्ध करने एवं शासन केलिए राजा गण, पूजापाठ आदि केलिए पुरोहित, व्यापार एवं कृषि कार्य केलिए मध्यवर्गीय लोग आदि थे । दास प्रथा भी प्रचलित थी । अन्तर केवल यही है कि कबीरकालीन समाज में पूजा पाठ आदि करने वाले ब्राह्मण की ही प्रमुखता थी तो बाइबिलकालीन समाज में युद्ध एवं शासन करने वाले राजा ही प्रमुख थे । कबीर-साहित्य में निराकार, निर्गुण एवं सर्वव्यापी ईश्वर को देख सकते है । लेकिन बाइबिल के 'पुराना विधान' में निराकार, सर्वव्यापी ईश्वर का प्रतिपान है लेकिन 'नया विधान' में मनुष्य रूप में अवतरित, साकार ईश्वर ईसामसीह का चित्र अधिक रूप में देख सकते हैं । भूखे भक्ति न कर सकते हैं,कबीर यही बताते हैं तो ईसा की राय में दुरात्माओं से मानव की मुक्ति केलिए प्रार्थना के साथ उपवास की भी ज़रूरत है । केवल दिखावे केलिए किए जाने वाले उपवास के वे सख्त विरोधी हैं । कबीर एवं बाइबिल अहिंसा के बारे में बताते हैं । कबीर के अहिंसा तत्व के अन्तर्गत जीव-जन्तुओं की भी हत्या न करने की बात आती है । लेकिन बाइबिल जीव-जन्तुओं की हत्या के विरुद्ध नहीं बल्कि मानव के आपसी प्रेम के विरुद्ध की जानेवाली हरेक चेष्टा को हिंसा के अन्तर्गत मानते हैं ।

अन्ततः हम शोध प्रबन्ध के विषय से संबन्धित प्रस्तुत निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं-

१. स्पर्धा रहित, आपसी प्रेम एवं समभावना से युक्त एक स्वस्थ समाज का निर्माण ही कबीर-साहित्य एवं बाइबिल का प्रमुख उद्देश्य रहा है ।

२. कबीरसाहित्य एवं बाइबिल जाति का निर्णय जन्मानुसार न कर कर्मानुसार करते हैं । दोनों ग्रन्थ यह भी व्यक्त करते हैं कि कोई भी काम नीच नहीं-मनुष्य की भलाई

एवं प्रगति केलिए एक ही समाज में विविध कर्म करने वालों की ज़रूरत है। जन्म से कोई भी उच्चनीच नहीं । सभी मानव समान है ।

३. भिन्न भिन्न समय पर लिखे गये होने पर भी कबीर-साहित्य एवं बाइबिल का प्रतिपाद्य प्रायः एक ही है । दोनों ने मानव जीवन के विकृत रूप को संवारने, सुधारने की चेष्टा की है, मानव कल्याण विरोधी बातों के खंडन एवं पोषक तत्वों के मण्डन भी दोनों रचनाओं में देखा जा सकता है ।

४. शाश्वत मूल्यों का जिक्र दोनों में हुआ है और इनकी महत्ता गाई गई है । इन मूल्यों के अनुवर्तन से जीवन में मिलने वाली भौतिक एवं आध्यात्मिक सफलता की ओर लक्ष्य किया गया है । इनके द्वारा यह शिक्षा भी मिलती है कि मूल्य-रहित समाज में मूल्यों के पुनर्विवेचन के द्वारा एक स्वस्थ समाज का निर्माण किया जा सकता है ।

५. कबीरदास, ईसामसीह, नबीगण आदि अपने अपने समय के युग-प्रवर्तक, क्रन्तिकारी एवं समाजसुधारक थे । वे समाज में प्रचलित सडीगली व्यवस्था में परिवर्तन लाने केलिए प्रयत्न निरत थे ।

६. कबीर-साहित्य एवं बाइबिल बताते हैं कि मनुष्य जीवन में सत्य, अहिंसा, परोपकार आदि गुण अत्यन्त आवश्यक हैं । इस बात में वे एकमत रहे ।

७. प्रेम को संसार के स्थाई सत्य के रूप में कबीर-साहित्य एवं बाइबिल स्वीकारते हैं, जिसका अभाव आज दुनिया में बहुत है । प्रेम कर सकते हैं तो संसार के जीत सकते हैं । प्रेम के संबन्ध में दोनों ग्रन्थों में प्रतिपादित ज्ञान वर्तमान युग के लोगों को उपयोगी होगा ।

८. कथनी और करनी के प्रति अटूट विश्वास दोनों ग्रन्थ रखते थे । कथनी- करनी में समानता होने पर वहाँ ऐश्वर्य स्वाभाविक रूप में आयेगा-यही दोनों ग्रन्थों का सन्देश है ।

९. मानव सर्वशक्तिमान एक अदृश्य शक्ति के नियंत्रण में है । कबीर-साहित्य एवं बाइबिल भक्ति प्रधान होने के कारण प्रस्तुत अदृश्य शक्ति को ईश्वर मानते हैं । मानव ईश्वरांश हैं और वे ईश्वर में विलय हो सकते हैं । प्रस्तुत शक्ति को पाने में प्रत्येक मानव के जागृत होने पर समाज शान्ति एवं भलाई से भरपूर हो जायेंगे ।

१०. दोनों रचनाओं के बीच सहस्रों वर्षों का अंतर है तो भी दोनों की वाणी में अद्‌भुत क्षमता एवं प्रेरक शक्ति है । दोनों की प्रासंगिकता भी विशेष उल्लेखनीय है । बहुत कम असमानताओं दोनों में देखने पर भी मानव की भलाई को लक्ष्य करके कहे गये उनके विचार इतने अमूल्य हैं कि आज के इस इक्कीसवीं शताब्दी की नयी पीढी केलिए उपयुक्त एवं प्रेरक हैं जो उनकी बडी देन है । दोनों ग्रन्थों में आनन्द और मंगल का, शान्ति और प्रेम का, स्वान्तःसुख और लोकहित का अद्‌भुत सन्देश और समन्वय हैं । परहित सबसे बडा धर्म है । मनुष्य का कल्याण सच्चे मार्ग पर चलने से होता है। दोनों ग्रन्थों के अनुसार नैतिक मूल्यों एवं धार्मिक निष्ठाओं के अनुकथनों एवं अनुकरणों द्वारा व्यक्ति को आपस में प्यार करने की प्रेरणा प्राप्त होती है । व्यक्ति को एक दूसरे का आदर करने की शिक्षा प्राप्त होती है । ईश्वर एक है मानव सब उसकी सन्तान हैं, आपस में भाई-भाई हैं । यही दोनों ग्रन्थों का सन्देश है । मानव में सद्‌गुण-दुर्गुणादि भाव सदैव हैं । अतः कबीर-साहित्य एवं बाइबिल की वाणी मानवता के पथ को सदैव आलोकित करती रहेगी । यह वाणी तत्कालीन समय में प्रासंगिक थी, वह वर्तमान में ही नहीं भविष्य केलिए भी उपादेय बनी रहेगी ।

****

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थों की सूची

(क) संस्कृत-ग्रन्थ

श्रीमद्भगवद्गीता

नारद भक्ति सूत्र

महाभारतपुराण

वाचस्पत्यम्

शब्दकल्पद्रुमम्

(ख) हिन्दी-ग्रन्थ

कबीर-ग्रन्थावली	डॉ.पारसनाथ तिवारी	हिन्दी परिषद, प्रयाग १९६१
कबीर-ग्रन्थावली	बाबू श्यामसुन्दर दास	नागरी प्रचारिणी सभा,काशी १९६२
कबीर-ग्रन्थावली	डॉ.माताप्रसाद गुप्त	साहित्य भवन, इलाहाबाद १९६३
सन्त कबीर	डॉ.रामकुमार वर्मा	साहित्य भवन, इलाहाबाद १९४१
कबीर बीजक	विचारदास शास्त्री	सत्यनाम प्रेस,वारणसी
कबीर वचनावली	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	नागरी प्रचारिणी सभा,काशी १९५८
कबीर साहित्य	वेल वेडियर प्रेस	१९२७
पवित्र बाइबिल	अनु.वाल्द बुल्के व.फा.डॉ.कामिल बुल्के	हिन्दी साहित्य समिति, इलाहाबाद १९८६
नया विधान	अनु.फा.डॉ.कामिल बुल्के	सत्यभारती, राँची, १९८६

(ग) आलोचनात्मक ग्रन्थ

आधुनिक काव्य-धारा डॉ.केसरी नारायण शुक्ल सरस्वती मंदिर, काशी,१९००

उत्तरी भारत की संत परंपरा आचार्य परशुराम चतुर्वेदी भारती भंडार, इलहबाद, १९५१

आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ.लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय	हिन्दी परिषद् इलाहाबाद, १९४२
आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका	डॉ.लक्ष्मी सागर वैर्ष्णेय	हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद १९३४
ईसाचरित	जोली एस.जे अनु. रामचन्द्र शर्मा	अनुपम बुक्स दिल्ली, १९८६
कबीर	आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकार बम्बई १९४२
कबीर की विचारधारा	गोविन्द त्रिगुणायत	साहित्य निकेतन प्रयाग, १९५६
कबीर दर्शन	डॉ.रामजीलाल 'सहायक'	हिन्दी विभाग लकनउ विश्वविद्यालय, १९६२
क़बीर और कबीर पंथ तुलनात्मक अध्ययन	डॉ.केदारनाथ द्विवेदी	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, १९६५
कबीर साहित्य का अध्ययन	पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव	साहित्य रत्नमाला कार्यालय बनारस, १९५८
कबीरःसाहित्य, साधना और पंथ	प्रो.वासुदेव सिंह	संजय बुक्ससेन्टर, वारणासी १९९३
कबीर आधुनिक संदर्भ में	डॉ.राजदेवसिंह	लोकभारती प्रकाशन, महात्मागाँधी मार्ग इलाहाबाद, १९९४
कबीर चिन्तन	ब्रजभूषण शर्मा	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९२
कबीर का सामाजिक दर्शन	डॉ.प्रह्लादमौर्य	पुस्तक संस्थान, काँनपूर, १९७९
कबीर एवं तुलसी की सामाजिक दृष्टि	सरिता रॉय	वाणी प्रकाशन, नईदिल्ली, १९९१

कबीर की भक्ति भावना	विलियम द्वायर	जयभारती प्रकाशन, दिल्ली १९७६
कबीरः एक नई दृष्टि	रघुवंश	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९१
कबीर बानी	डॉ.भगीरथ मिश्र	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७०
कबीर-वाणी	डॉ.पारसनाथ तिवारी	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद १९७०
कबीरःकाव्य के रूप	डॉ.नज़ीर मुहम्मद	भारतीय प्रकाशन मंदिर, अलिगढ १९७१
कबीर जीवन और दर्शन	डॉ.भोलानाथ तिवारी	साहित्य भवन, इलाहाबाद १९७८
कबीर व्यक्तित्व,कृतित्व एवं सिद्धान्त	डॉ.सरनाम सिंह	भारतीय शोध संस्थान, दिल्ली १९६९
कबीर का रहस्यवाद	डॉ.रामकुमार वर्मा	साहित्य भवन, इलाहाबाद, १९६१
कबीर मूल्यांकन पुनर्मूल्यांकन	डॉ.कामेश्वर प्रसाद सिंह	विजयप्रकाशन मंदिर, वारणासी
कबीर-कवि और युग एक पुनर्मूल्यांकन	डॉ.के श्रीलता	जवहरपुस्तकालय, मदुरा १९९७
कबीर एक अनुशीलन	डॉ.रामकुमार वर्मा	साहित्यभवन, इलाहाबाद १९८३
कबीर काव्यःप्रतिभा और संरचना	डॉ.हरिहरप्रसाद गुप्त	भाषा साहित्य संस्थान, दिल्ली १९८३
कबीर पंथःसाहित्य दर्शन एवं साधना	डॉ.उमा ठुकरान	हिन्दी बुकसेन्टर, दिल्ली, १९९८
कबीर कल्पना शक्ति और सौदर्य	ब्रह्मदत्तशर्मा	भारतेन्दुभवन, शिम्ला, १९८९
कबीर का स्त्री दृष्टिकोण	सेवा सिंह	निर्मलप्रकाशन, दिल्ली, १९९४

कबीर साहब युगेश्वर लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद १९९९

कबीर मीमांसा रामचन्द्र तिवारी लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद १९९९

कबीर साहित्य की परख आचार्य परशुराम चतुर्वेदी भारतीय भण्डार, प्रयाग, १९५४

कबीर डा.विजयेन्द्रस्नातक राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली १९६९

कबीर चिन्तन डॉ.नारायण प्रसाद वाजपेय भावना प्रकाशन दिल्ली १९८०

मध्यकालीन संत साहित्य डॉ.रामखिलावन पाण्डेय हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,.काशी १९७१

मध्यकालीन हिन्दी संत,विचार और साधना डॉ.केशनी प्रसादचौरासिया हिन्दुस्थान अकादमी दिल्ली १९६५

मध्यकालीन भारत का इतिहास डॉ.ईश्वरी प्रसाद इन्डयनप्रेस पब्लिकेशन, इलाहाबाद १९६५

चिन्तामणि भाग १ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सरस्वती मंदिर,काशी १९४५

चिन्तामणि भाग २ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इण्डियन प्रेस, प्रयाग १९४९

तुलसीदास के काव्य में नैतिक मूल्य डॉ.चरणदास शर्मा भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दिल्ली, १९७१

निर्गुण धारा वैजनाथ विश्वनाथ मानसरोवर प्रकाशन,गया,१९७६

परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कतिपय दिशा निर्देश स्वामी गोकुलानन्द रामकृष्ण मिशन, दिल्ली, १९९२

पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास डॉ.अवधेश बिहारी पाण्डेय सेंट्रलबुक डिपो, इलाहाबाद १९७९

भारतीय दर्शन बलदेव उपाध्याय शारदा मंदिर, वारणासी,१९३५

भारत में नास्तिकवाद कृष्णकुमार दीक्षित शब्दकार, दिल्ली १९९६

भारतीय संस्कृति के रामलाल वर्मा सूर्य भारती प्रकाशन, दिल्ली १९९७

भारतीय संस्कृति की महिमा-विविध आयाम	कृष्णभावुक	प्रेमप्रकाशन मन्दिर, दिल्लि १९९२
भक्ति और रीतिकालीन हिन्दी मुक्तक काव्य	जितेन्द्रनाथ पाठक	भूमिका प्रकाशन, दिल्ली १९९६
भारतीय संस्कृति और साधना	गोपीनाथ कविराज	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद,पटना १९६३
भारतीय दर्शन	बलदेव उपाध्याय	शारदा मंदिर, वारणासी १९५६
भारतीय चिंतन परंपरा के दामोदरन		राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली १९९०
भारत का इतिहास	शेमिला यापर	राजकमल प्रकाशन ,दिल्ली १९८७
भारतीय नारी दशा और दिशा	आशाराणी	नाशनल पब्लिशिंग हाऊस,दिल्ली १९८३
महात्मा कबीर	श्रीहरिहरनिवास द्विवेदी	पुस्तक मन्दिर, लाहोर १९९३
मध्याकालीन भारत	डॉ.पी.डी.गुप्ता	नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, १९६७
मानवपुत्र ईसा-जीवन और दर्शन	रघुवंश	लोकभारतीप्रकाशनइलाहाबाद १९८५
मसीही धर्म का इतिहास	बैन्जामिन खान	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद १९८५
युग-द्रष्टा कबीर	श्री.तारकनाथ बाली	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा १९५७
रामचरित मानस साहित्यिक मूल्यांकन	सुधाकर पांडेय	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली १९९९
लोकवादी तुलसीदास	विश्वनाथ त्रिपाठी	राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली १९९९
लोकजीवन और साहित्य	डॉ.रामविलास शर्मा	विनोद पुस्तक मंदिर,आगरा १९७०
लोकवादी तुलसीदास	विश्वनाथ त्रिपाठी	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, १९९९

साहित्य और संस्कृति	मोहन राकेश	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
साहित्य और संस्कृति	मोहन राकेश	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली १९९०
सफलता और सफलता	डॉ.श्यामसिंह शर्मा	स्वस्थ पब्लिशिंगहाउस,दिल्ली१९८३
संत साहित्य	डॉ.श्यामसिंह शर्मा	स्वस्थ साहित्य समिति,दिल्ली१९८२
संत कबीर	राजेश्वर प्रसादचतुर्वेदी	भारती साहित्य मन्दिर,दिल्ली१९६९
संत कबीर दर्शन	राजेन्द्र सिंह गौड	साहित्य भवन,इलाहाबाद १९७९
संत साहित्य	डॉ.सुदर्शन सिंह मजीष्या	रूपकमल प्रकाशन, दिल्ली १९६२
संत साहित्य में मानव मूल्य	डॉ.मीना मिश्रा	भारत प्रकाशन मंदिर, अलिगठ, १९९२
साहित्य की सामाजिक भूमिका	डॉ.देवेश ठाकूर	संकल्प प्रकाशन, मेरठ,१९८६
.साहित्य और सामाजिक मूल्य	डॉ.हरदयाल	विभूत प्रकाशन, दिल्ली १९८५
हिन्दी में नीति काव्य का विकास	डॉ.रामस्वरूप शास्त्री	दिल्ली पुस्तक सदन, १९६२

(ग) अंग्रेज़ी ग्रन्थ

A History of the world	Alice Magenis &John Gorra Appel	Publishing company California 1981
A Thelogy of the old Testament	John L.Makenzie	Image Books Newyork 1974
Ancient civilization of East and West	G.Bongard&Co	Progress Publishers Moscow
Ethics for today	Titus H.H.	Eursia Publishing House New Delhi 1966

Hindu-Caste and sets	Bhattacharya	Editions Indian Calcutta1973
Hindu religion and ethics	Pushpendukumar Sharma	Asian Publication Service India 1979
Hindu civilization	K.M.Munshi R.R.Diwakar	Bharatiya Vidhya Bhavan Bombay
Introduction to the New Testament	Robert V. Crapps	Ronald Press Newyork 1969
Jesus Christ the Liberator	Boff, Leonard	Orbis Newyork 1978
Our oriential Heritage the story of civilization	Will Durant	Simon schuster Newyork 1954
Our cultural Heritage	Will Durrant Simon Schuster	Newyork 1956
Religious of India	A.Bharth	S.Chand&company Bombay 1969
The Background of the New Testament	Yohan Dhulla	Chatto and winds Ltd London
The Daily study Bible Index Volume	Dr.Willian Barclay	Glasgow University Scotland
The Daily study Bible	St.John	Glasgow University Scotland
The Daily study Bible	St.Luke	Glasgow University Scotland
The Daily study Bible	St.Mark	Glasgow University Scotland
The Daily study Bible	St.Mathew	Glasgow University Scotland
The Daily study Bible	Corinthians	Glasgow University Scotland

The Daily study Bible Galatians Glasgow University Scotland

The Daily study Bible Hebrews Glasgow University Scotland

The Daily study Bible James&Peter Glasgow University Scotland

The Daily study Bible John&Jude Glasgow University Scotland

The Daily study Bible Philippians Glasgow University Scotland

The Daily study Bible Romans Glasgow University Scotland

The Jerome Biblican Commentary Rolans E.Murphy Catholic University of America Washington1968

The Life of Greece WillDurrant Simon Schuster Newyork1666

(ग) मलयालम

आत्मदर्शनम् डॉ.सिरियक कणिचाई ज्योति बुक सेंटर श्रिशूर

गिरिप्रभाषणम् फा.मात्यु नटक्कल सन्देशनिलयम

जीवन दर्शन अथवा

पषयानियमत्तिनोरु आमुखम डॉ.जार्ज पुन्नकोट्टिल सेंट तोमस सेमिनारी कोट्टयम १९८६

पुतिनियमत्तिनोरु आमुखम डॉ.जार्ज पुन्नकोट्टिल सेंट तोमस सेमिनारी कोट्टयम १९८६

बाइबिल ओरु तीर्थयात्रा जोन वल्लाट डी.सी.बुक्स, कोट्टयम १९८८

बाइबिल ओरु प्रारंभ पठनम् डॉ.जोसफ कोट्टक्कल सेंट तोमस सेमिनारी, कोट्टयम १९९५

बाइबिल पठन सहायी डॉ.जोसफ पातरापानक्कल धर्माराम पब्लिसिटि, बंगलूर१९८७

बैबिल प्रश्नगल डॉ.जोसफ कोट्टक्कल सेंट तोमस सेमिनारी कोट्टयम १९८९

बाइबिलनोरु व्याख्यानम् डॉ.तोमस कय्यलपरंबिल सेंट तोमस सेमिनारी कोट्टयम

भगवद्गीतयुम बाइबिलुम	मारटिन सी जोसफ	असीसी आश्रम पाकोड १९८८
मत्ताई, मरकोस, लूका, बाइबिल करसपोण्टन्स		पी.ओ,सी सुविशेषम पालारिवट्टम
योहन्नान एषितिय सुविशेषम		१९८९
येशुख्रिस्तु	के.पी.पत्रोस	मार लूयिस बुकसेंटर एरणाकुलम १९८६
येशु व्यक्तियुम शक्तियुम	सेबास्टिन पैनाडत्त	यात्रा,जीवनबुक्स भरणङानम १९९२
वचनविज्ञानियम	जोस मानिपरंबिल	बिबलिया पब्लिकेशनन्सआलूर१९९२
वचनवीधी	जोनसन कालापरंबिल	सेंट तोमस सेमिनाली कोट्टयम
सुविशषङल ओरु पश्चात्तलपठनम्	फिलिप तय्यिल	डी पोल प्रेस कोचिन १९९९
सुविशंषङल ओरामुखम	डॉ.जे.पात्रपाङकल	दीपिका बुक हाउस कोट्टयम १९८२
सुविशेष भाष्यम्	जी.चेटियत	मलङकरा सेमिनारी पब्लिकेशन तिरुवनन्दपुरम १९९७
सुविशेष पठनङल	डॉ.मात्यु वेल्लानिक्कल	सेंट तोमस सेमिनारी कोट्टयम १९८०
वनचदर्शनम्	डॉ.पोल साबियो	धर्मराम पब्लिकेषन्स बागलूर १९९६

(ङ) पत्रिकाएँ

आलोचना	त्रैमासिक	नवंबर १९९१
आलोचना	त्रैमासिक	मार्च १९९२
आलोचना	त्रैमासिक	जुलाई १९९२
पवित्र हृदय का संदेश	मासिक	सितंबर १९९३
पवित्र हृदय का संदेश	मासिक	जुलाई १९९४
भाषा	त्रैमासिक	सितंबर १९६५

भाषा	त्रैमासिक	जून १९७३
वेद प्रदीप	मासिक	एप्रैल १९९२
वेद प्रदीप	मासिक	मई १९९२
सन्देश	मासिक	मार्च १९९१
सन्देश	मासिक	एप्रैल १९९१
सन्देश	मासिक	मई १९९१
सन्देश	मासिक	जुलाई १९९१
समीक्षा	मासिक	जनवरी १९९०
समीक्षा	मासिक	मार्च १९९३
साहित्य सन्देश	त्रैमासिक	जुलाई १९५८
संग्रथन	मासिक	सिंतंबर १९९७

(च) अंग्रेज़ी

Jesus and his times Readers digest 1987Readers Digest Association 1987

Mysteries of the Bible Almu E. Readers DigestAssocition1988

The Bible Today Vol.19 May 1981 The Liteurgical Press U.S.A.

The Gospel of St.John Tyndale House PublishersWheabon USA

(छ) मलयालम

कार्मल	वाल्टर गास्पर	तिरुवनन्तपुरम १९८५
केरला टैम्स		एप्रैल १९८६
जीवधारा		जनवरी १९८६
जीवधारा		फरवरी १९८९
तालन्त		मार्च १९८४
नवचेतना		सितंबर १९८२
बाइबिल भाष्यम		मई १९७८
मतउम चिन्तयुम		सितंबर १९९५

समर्पिता मार्च १९८५

वचनोत्सवम् १९९२,१९९३

शालोम टैम्स सितंबर १९९३

(ज) कोश ग्रन्थ

Bible Dictionary Rev.A.C.Clayton Gurunandhan Publications Kottayam 1973

Dictionary of Biblical Theology Xavier Leon Dufour St.Peters Seminary Bangalore

Encyclopaedia of Religion & Ethics Vol.ii James Hastings Oxford Street Newyork

****